

जैनामृत समिति ग्रंथाङ्क ३

श्राद्धविधि-हिन्दी भाषान्तर.



प्रकाशक,

जैनामृत समिति—उदयपुर (मेवाड़)



कीमत २—१२—०

सामनगरवास्तव्यश्रेष्ठिधारणीभाइसुपुत्रलक्ष्मीचन्द्रतनुजश्रेष्ठिचुनीलालेन
स्मृतोद्यापने स्वमातुः संतोषाभिधानाया भक्तये प्राभृतीकृतम् ।

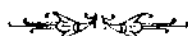
॥ श्री जैनामृतसमितिग्रंथमाला, ग्रंथांकः ३ ॥

आचार्यधुरन्धर श्रीरत्नशेखरसूरि विरचित—

श्राद्धविधि मूल

आर

विधिकौमुदीनामकटीकाका भाष्यस्वरः

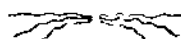


प्रकाशक—जैनामृतसमिति-उदयपुर.



द्रव्य सहायक—

अहमदाबाद निवासी पोरवाड वंशीय,
सेठ जमनाभाई भगुभाईकी धर्मपत्नी,
सेठानी माणेकबाई,
सेठानी समरथबाईके नाम के स्थापित किये हुए
ज्ञान-भंडार के द्रव्य से.



जैनबन्धु प्रिंटिंग प्रेस, पीपली बाजार इन्दौर में छपा.

प्रथमावृत्ति

५००

कीमत

२-१२-०

{ विक्रम सं. १९८७

{ इ. सन १९३०





ओसवाल जुहारमल मिश्रीलाल पालरेचा

के

जैनबन्धु प्रिंटिंग प्रेस, पीपली बाजार हन्दौर में छपा.



श्रीश्राद्धविधि हिन्दी भाषान्तर

की अनुक्रमणिका.

विषयांक.	विषयका नाम.	पृष्ठांक.
१	टीकाकारकृत मंगलाचरण ।	१
२	१ मंगलादि मूलगाथा ।	२
३	इस ग्रंथमें आये हुए छः द्वारोंके नाम, मूल गाथा २ ।	४
४	श्रावकधर्मको ग्रहण करने योग्य पुरुषके लक्षण, मूलगाथा ३ ।	४
५	दृष्टिरागी धर्म नहीं पा सकता, इसपर भुवनभानु- केवलीका दृष्टान्त,	५
६	धर्मद्वेषी धर्म नहीं पा सकता, इस पर वराह- मिहिरका दृष्टान्त	५
७	मूर्खपुरुष गुरुके वचनका भावार्थ नहीं जान सकता, उसपर देहाती कृष्णपुत्रकी कथा	५
८	श्रावकके इकवीस गुण	९
९	भद्रकपने पर शुकराजकी कथा	

विषयांक	विषय का नाम-	पृष्ठांक.
१०	नाम, स्थापना, द्रव्य और भाव ये चार प्रकारके श्रावकका स्वरूप, मूल गाथा ४	१२१
११	व्रतश्रावक पर सुरसुंदरकुमारकी स्त्रियोंकी कथा	१२३
१२	श्रावकसे त्रिविधत्रिविधप्रकारके पञ्चखान क्यों नहीं होता ? इस सम्बन्धमें प्रश्नोत्तर	१२४
१३	मातपितासमानआदि दो तरह से चार प्रकार के श्रावक और उसका द्रव्यभावभेद	१२५
१४	श्रावकशब्दका अनेक तरह से अर्थ	१८२

दिनकृत्य प्रकाश. १

१५	श्रावकने प्रातः किस वक्त उठना ? और उठकर क्या करना ? , मूलगाथा ५	१३०
१६	पृथ्वीआदि पांचतत्त्वोंका तथा चन्द्रसूर्यनाडीका स्वरूप और उससे होनेवाला फल	१३३
१७	नवकार गिननेकी विधि	१३६
१८	जाप करनेकी विधि व उसके लाभ	१३८
१९	नवकार गिननेका फल और उसपर शिवकुमार और वटशबलिकाका दृष्टान्त	१४३
२०	धर्मजागरिका करनेकी विधि	१४४
२१	रात्रिमें हुए कुस्वप्नदुःस्वप्नके नाशके लिये करनेके काउससभाकी विधि	१४६

विषयांक	विषय का नाम	पृष्ठांक.
२२	स्वप्नका विचार व उसके फल	१४७
२३	नियम लेनेकी और अज्ञानतासे उसका भंग होने पर विधि	१४९
२४	नियम लेनेपर कमलश्रेष्ठीका दृष्टान्त	१५३
२५	सचित्त, अचित्त और मिश्रवस्तुका स्वरूप	१५५
२६	शस्त्रके संबंध बिना लवणादि वस्तुएं किस प्रकार अचित्त होती हैं ?	१५५
२७	धान्यके बीजपनेका काल	१६०
२८	लोटके सचित्तअचित्तपनेका काल	१६१
२९	पक्वान्नआदिका काल, अभक्ष्यवस्तु और विदल-का स्वरूप	१६३
३०	उष्णपानीका स्वरूप	१६५
३१	चावलके धोवनका स्वरूप और उसका काल	१६६
३२	नीब्रोदकका स्वरूप	१६७
३३	अचित्तपानीका काल	१६८
३४	सचित्तवस्तुके त्यागपर अंबडपरिव्राजकके शिष्यों-का दृष्टान्त	१७२
३५	चौदहप्रकारके नियमोंका स्वरूप	१७२
३६	नवकारसी तथा ग्रंथिसहित पचचखानका स्वरूप और फल	१७६

दिपयांक.	विषय का नाम.	पृष्ठांक.
३७	चारप्रकारके आहारका स्वरूप	१७९
३८	अनाहार वस्तु और एकांगिकादिआहार का स्वरूप	१८१
३९	पञ्चखानमें चारतरह आहारका भेद	१८३
४०	पञ्चखानके पांच स्थान और तिबिहार चोबिहार पञ्चखान	१८४
४१	मलमूत्रका त्याग किस दिशामें और कैसे स्थान पर करना	१८६
४२	दातन करनेकी विधि तथा उससे होनेवाली अगमचेतियां	१९०
४३	स्नान करनेकी विधि	१९३
४४	केवल द्रव्यस्नान पर तुंबस्नानवाला कुलपुत्रकी कथा	१९६
४५	भावस्नानका स्वरूप	१९७
४६	भूमिपर पड़े हुए पुष्प चढ़ानेके विषयमें चंडालकी कथा	१९८
४७	देवपूजा करते समय कैसा वस्त्र पहिनना चाहिये ? उसका स्वरूप	१९९
४८	दूसरेका वापर हुआ वस्त्र पूजा करते समय न लेना, इसपर कुमारपालराजा और चाइड- मंत्रीका दृष्टांत	२०१
४९	पूजा करते समय द्रव्यशुद्धि तथा भावशुद्धिका लक्षण	२०३
५०	महान्शुद्धिके साथ भगवंतको वंदना करनेको जाने पर दशार्णभद्रराजाकी कथा	२०५

विषयांक.	विषय का नाम.	पृष्ठांक.
५१	सत्तावन प्रकारके वाजिंत्रका स्वरूप	२०७
५२	बत्तीसबद्ध नाटकके भेद	२१०
५३	जिनमंदिरको जाते पांच अभिगम साचवनेका स्वरूप और प्रणामकी विधि	२१३
५४	निर्माल्यका स्वरूप	२१५
५५	नवांगपूजा करनेका वर्णन	२१७
५६	अंगपूजाका स्वरूप	२१९
५७	जिनपूजा करते समय श्रावक दयावान ही होता है इस पर जिणह श्रेष्ठीकी कथा	२२२
५८	मूलनायकजीकी प्रथमपूजा करनेपर प्रश्नोत्तर	२२४
५९	प्रतिमाआदि की स्वच्छता	२२७
६०	तीनतरहकी प्रतिष्ठा	२२८
६१	अग्रपूजाका स्वरूप	२३०
६२	प्रभुको नैवेद्य धरनेपर कृषकका दृष्टांत	२३१
६३	भावपूजाका स्वरूप	२३३
६४	साधु और श्रावकको चैत्यवन्दनके सात सात भेद	२३४
६५	सातचैत्यवन्दनका स्वरूप	२३५
६६	श्रावकको तीन समय देववन्दन	२३६
६७	जिनप्रतिमाकी तीन अवस्था	२३७

विषयांक.	विषय का नाम.	पृष्ठांक.
६८	तीनप्रकारी, पांचप्रकारी, अष्टप्रकारी, सर्वप्रकारी, सत्रहप्रकारी व इक्कीसप्रकारी पूजाका स्वरूप और विधि	२३८
६९	पूजामें कैसे पुष्प काममें लेने चाहिये ? उसका स्वरूप	२४१
७०	पूजाप्रकरणसे इक्कीसप्रकारी पूजा	२४२
७१	स्नात्र करनेकी विधि	२४३
७२	प्रतिमाके स्वयंकारितादि भेद	२५१
७३	चैत्यमेंसे मकड़ीके जाले आदि आशातना टालने- की विधि	२५२
७४	पूजाका अवश्यकर्तव्यत्व	२५४
७५	पूजामें धारण करने योग्य दशात्रिकआदिका स्वरूप	२५५
७६	विधि-अविधिपर चित्रकारपुत्र और दो ब्राह्मणोंकी कथा	२५८
७७	तीनप्रकारकी जिनपूजाका फल	२६२
७८	भक्तिके पुष्पपूजादि पांच भेद	२६३
७९	दूमरेकी जिनपूजाका द्वेष करनेपर कुंतलारानीकी कथा	२६४
८०	आज्ञापालनरूप भावस्तवका स्वरूप	२६६
८१	द्रव्यस्तवकी अपेक्षा भावस्तवकी उत्कृष्टता	२६७
८२	द्रव्यस्तवके ऊपर कुण्ठा दृष्टांत	२६८
८३	जिनमंदिरको जानेका विचारआदिमें होनेवाला फल	२६९

विषयांक.	विषय का नाम.	पृष्ठांक.
८४	त्रिकाल जिनपूजा करनेका फल	२७०
८५	विधि और बहुमान ऊपर चौभंगी	२७१
८६	प्रीतिअनुष्ठानआदि चारतरहका अनुष्ठान	२७२
८७	विधिपूर्वक जिनपूजा करनेके ऊपर धर्मदत्त राजा- की कथा	२७४
८८	देवद्रव्यआदिकी सारसम्हालमें गौका दृष्टान्त	२९६
८९	ज्ञानकी आशातना.	२९८
९०	देवकी जघन्य १०, मध्यम ४० और उत्कृष्ट ८४ आशातनाओंका स्वरूप,	
९१	देवकी बृहद्भाष्योक्त पांचप्रकारकी आशातना,	३०३
९२	गुरुकी तैत्तिरीय आशातनाएं, और उससे अनन्त संसार	३०४
९३	देवद्रव्य और साधारणद्रव्यके नाश उपेक्षा भक्षण और वृद्धिका फल	३०८
९४	देवद्रव्यकी रक्षा करनेपरभी साधुकी निर्दोषता	३६०
९५	देवद्रव्य भक्षण करनेके ऊपर सागरश्रेष्ठीकी कथा,	३१३
९६	ज्ञानद्रव्य भक्षण करने पर कर्मसारकी और साधारणद्रव्य भक्षण करने पर पुण्यसारकी कथा.	३२५
९७	ज्ञानद्रव्य तथा गुरुद्रव्यका स्वरूप,	३३६

विषयांक.	विषय का नाम.	पृष्ठांक.
९८	देवद्रव्यखाते द्रव्य देना कबूल करके शीघ्र न देनेसे होनेवाली हानि और उस पर ऋषभदत्त-श्रेष्ठीकी कथा,	३२७
९९	देवद्रव्यकी ऊगाई करनेमें आलस्य रखने ऊपर एक वाणिककी कथा.	३२९
१००	देरासरके दीपकसे गृहकार्य करने पर एक ऊंटनीकी कथा.	३३१
१०१	देवद्रव्य, ज्ञानद्रव्य और साधारणद्रव्य इन तीनों-खातोंकी कोई भी वस्तु नकरा दिये बिना वापरनेमें दोषका वर्णन इसका स्वरूप.	३३२
१०२	थोड़ा नकरा देकर देरासरकी वस्तु वापरनेके दोष ऊपर लक्ष्मीवतीकी कथा.	३३४
१०३	घरदेरासरमें चढाये हुए चावलआदिकी मुत्तयवस्था.	३३७
१०४	मरनेवालेके पीछे धर्मखाते देना कबूल किये हुए द्रव्यका स्वरूप, तीर्थमें खर्चनेको माने हुए द्रव्यका स्वरूप.	३४०
१०५	किसी भी खातेका या मुत्तयका देना नहीं रखना.	३४१
१०६	गुरुवन्दन विधि और गुरुसाक्षीसे पञ्चस्नान करनेका और पञ्चस्नानका फल,	३४२
१०७	गुरुविनयके सात प्रकार और धर्मदेशना सुननेके	

विषयांक.	विषय का नाम.	पृष्ठांक.
	लाभ और उस पर प्रदेशीराजा थावच्चापुत्रकी कथा.	३४७
१०८	उपदेशभवन और ज्ञानका फल वर्त्तनही है.	३५६
१०९	साधुमुनिराजको निमंत्रण करने तथा बहोरानेका फल	३६०
११०	साधुमुनिराजको निमंत्रण करनेपर जीर्णश्रेष्ठी और अभिनवश्रेष्ठिका दृष्टान्त और बीमार की वेयावश्च करनेकी आवश्यकता	३६१
१११	साध्वियोंकी सारसम्हाल करनेका विचार	३६३
११२	विद्याभ्यासकी आवश्यकता.	३६४
११३	न्याय करने पर यशोवर्मा राजाकी कथा	३६५
११४	आजीविका करनेके सात उपाय	३७१
११५	बुद्धिसे कार्य करनेके ऊपर धनश्रेष्ठिके पुत्रकी कथा.	३७५
११६	राजसेवाकी श्रेष्ठता और रांपीप्रधान की कथा	३७६
११७	तीनप्रकारकी भिक्षा ऋतआदिआजीविकाका स्वरूप.	३८३
११८	द्रव्यका साधन ऐसा व्यापार का विचार.	३८७
११९	द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव इन चारप्रकारसे व्यवहारशुद्धि तथा विरोधीमनुष्यके साथ व्या. पार न करना उसका स्वरूप	३८८
१२०	उधार नहीं देनेकी शिक्षा ऊपर मुग्धपुत्रकी कथा	३९०
१२१	ऋण न रखनेके विषयमें ऋण भवांतरमें भी देना पड़ता है, इस पर भावडश्रेष्ठीकी कथा ।	३९३

विषयांक.	विषय का नाम.	पृष्ठांक.
१२२	देनेलेनेमें विवेकिओंका कार्य.	३९६
१२३	पुण्य प्रबल होवे तो गया हुआ धन भी पीछा मिल सकता है, इस पर आभङ्गश्रेष्ठीकी कथा	३९८
१२४	भाग्यहीनपुरुषने भाग्यशालीपुरुषका आश्रय करना, इस पर एक मुनीमकी कथा	४०२
१२५	लक्ष्मी प्राप्त होने पर भी अहंकार नहीं करना.	४०३
१२६	धनवानोंको अवश्य क्षमा और संप रखना.	४०४
१२७	न्यायकी रीति और जगह जगह न्याय करनेको जाने ऊपर एकश्रेष्ठीकी कथा	४०७
१२८	पापकी अनुमोदनान करने पर दो मित्रोंकी कथा	४०८
१२९	न्यायसे ठग्यार करनेके ऊपर हेलाक श्रेष्ठीकी कथा	४१०
१३०	विश्वासघात करनेके ऊपर राजपुत्रकी कथा	४१३
१३१	पापकी गुप्तलघु आदि चौभंगी	४१७
१३२	न्यायकी आवश्यकता और पुण्यपापकी कारण सहित चौभंगी.	४१८
१३३	सत्य बोलने पर महर्षिसिंहका तथा भीमसोनीका दृष्टांत	४२१
१३४	मित्र कैसा रखना ? वसका स्वरूप	४२३
१३५	साक्षी रखे बिना द्रव्य न देने पर धनेश्वरश्रेष्ठी- की कथा.	४२६

विषयांक.	विषय का नाम.	पृष्ठांक.
१३६	साक्षी रखकर द्रव्य देने पर एक धूर्तवणिककी कथा, निःसंतानवालेकी थापणकी व्यवस्था	४२७
१३७	राजका आश्रयलेनेका फल	४२९
१३८	जूआआदि छोड़ना, जमानत न देना, माममेंही व्यापार करना	४२९
१३९	परदेश जाते भाग्यशाली मनुष्य साथमें होवे तो सुख होता है, इस पर एकवीसमनुष्योंकी कथा	४३१
१४०	परदेश जानेकी विधि	४३२
१४१	आडंबरकी आवश्यकता	४३५
१४२	उष्मनोरथ रखनेका फायदा	४३६
१४३	पापशुद्धि ऊपर चार भिन्नोंकी कथा	४३७
१४४	साधर्मिकवात्सल्य, द्रव्योपार्जन, अल्प इच्छा	४३९
१४५	धर्म, अर्थ और काम ये तीन वर्ग साधनेकास्वरूप	४४०
१४६	आमदनी (आय) के विभाग करनेका स्वरूप	४४०
१४७	वास्तविक आवश्यकता होने पर धन खर्च करनेके ऊपर एक श्रेष्ठीकी कथा	४४४
१४८	धर्मस्थानमें व्यय करनेसे धन बढ़ता है, इस पर विद्यापतिश्रेष्ठीकी कथा	४४५
१४९	न्यायसे और अन्यायसे धन उपार्जन करनेके ऊपर देवश्रेष्ठी और यशश्रेष्ठीकी कथा	४४७

विषयांक.	विषय का नाम.	पृष्ठांक
१५०	न्यायोपार्जित द्रव्यके ऊपर सोमराजकी कथा	४४८
१५१	न्यायोपार्जित धनका दान देने ऊपर चौभंगी, उसमें दूसरे भेद आश्रयी लाखब्राह्मणको जिमाने- वाले ब्राह्मणकी कथा	४५०
१५२	अन्यायोपार्जितधनके ऊपर रंकभ्रेष्ठीकी कथा	४५३
१५३	व्यवहारशुद्धिकी आवश्यकता	४५६
१५४	देशविरुद्ध, कालविरुद्ध और राज्यविरुद्धका स्वरूप	४५७
१५५	राज्यविरुद्ध ऊपर रोहिणीकी कथा	४५९
१५६	लोकविरुद्धका स्वरूप और दूसरेके झूठे दोष कहने पर वृद्धब्राह्मणीकी कथा	४६१
१५७	सबे दोष न कहने ऊपर तीन खोपाडियोंका दृष्टांत	४६२
१५८	लोकविरुद्ध कौन कौन पदार्थ और उनको त्यागने- की जरूर	४६२
१५९	धर्मविरुद्धका स्वरूप	४६३
१६०	पिता १ माता २ सहोदर ३ स्त्री ४ संतान ५ जाति ६ गुरुजन ७ नागरिक ८ और अन्यदर्शनी ९ इन्होका उचिताचरण	४६४
१६१	स्त्रीका कहा करनेपर दुःखी होने ऊपर मंथरकोली- की कथा	४८२

विषयांक.	विषय का नाम.	पृष्ठांक.
१६२	स्त्री रूपवान और पुरुष कुरूप तथा पुरुष रूप- वान और स्त्री कुरूप ऐसे असमजोड़े पर दो- पुरुषोंकी कथा	४८६
१६३	स्वजनोके साथ एकदिल रखने पर पांच अंगु- लियोंका दृष्टांत	४९२
१६४	उचितवचन पर आंबडमंत्रीकी कथा	५०३
१६५	मूर्खके सौ लक्षण	५०५
१६६	नीतिसम्बंधी और उचिताचरणकी शिक्षा	५०८
१६७	व्यवहारशुद्धि पर धनमित्रकी कथा	५१८
१६८	मध्यान्हमें जिनपूजा सुपात्रदान प्रत्याख्यान और स्वाध्याय, मूलगाथा ८	५२२
१६९	भोजनकी रीति और सुपात्रदानकी युक्ति उसके फल व दानके दूषण भूषण	५२३
१७०	सुपात्रदान और परिग्रहपरिमाणव्रत ऊपर रत्न- सारकुमारका चरित्र	५२७
१७१	भोजन आदि करते समय साधर्मिककी भक्ति और दीनजनों पर अनुकंपा करना तथा पोष्यकी सम्हाल लेना	६११
१७२	पथ्यवस्तु खानेका स्वरूप	६१४
१७३	भोजन करने तथा पानी पीनेमें नीति और शास्त्रकी विधि	६१५

विषयांक.	विषय का नाम.	पृष्ठांक.
१७४	भोजनोपरांत करनेके स्वाध्यायकी आवश्यकता	६२०
१७५	सन्ध्याको जिनपूजा प्रतिक्रमण विश्रामणा स्वाध्याय और धर्मकथा, मूलगाथा ९	६२२
१७६	एकवार भोजनका उत्सर्ग तथा शामको किस समय जीमना ?	६२२
५७७	दिवसचरिम पञ्चखान ऊपर एवकाशकी कथा	६२३
	रात्रिकृत्य प्रकाश २	
१७८	प्रतिक्रमण करनेका विधि और स्वरूप	६२५
१७९	प्रतिक्रमणका अभिग्रह पालने ऊपर एक श्रावकका दृष्टांत	६२८
१८०	पांच प्रकारके प्रतिक्रमण व उनको करनेका काल	६२९
१८१	पक्खीप्रतिक्रमण चतुर्दशीको करना कि पूर्णिमाको ? इसका खुलासा	६३०
१८२	चिरंतनाचार्यकृत पंच प्रतिक्रमण करनेकी विधि	६३१
१८३	शीलांगरथ और श्रमणरथका स्वरूप	६४१
१८४	पांचपदकी और नौपदकी अनानुपूर्वीका स्वरूप फल्लादि	६४३
१८५	सज्जाय करने पर धर्मदासश्रावकका दृष्टांत	६४४
१८६	श्रावकने घरके मनुष्योंको धर्मोपदेश करना उसका स्वरूप	६४५

विषयांक.	विषय का नाम.	पृष्ठांक.
१८७	धर्मोपदेश करनेके ऊपर धनभ्रेष्टीका दृष्टांत	६४६
१८८	निद्रा लेनेका स्वरूप और जाग्रत होनेपर वैराग्य- विचार, मूलगाथा १०	६४७
१८९	सोनेकी काम-कषायको जीतनेकी संसारस्थितिकी और धर्ममनोरथ विचारणा	६४९
पर्वकृत्य प्रकाश ३		
१९०	पर्वदिनोंमें पौषध, ब्रह्मचर्य, अनारंभ, तप, आश्विन चैत्रकी ओलीजीकी श्राद्धना, मूलगाथा ११	६६०
१९१	पर्व-तिथियों और अष्टाहिकाओंमें धर्मकृत्य	६६०
१९२	पौषध करनेकी विधि	६६७
१९३	पर्वतिथिमें पौषध करने पर धनेश्वरभ्रेष्टीकी कथा	६७४
चातुर्मासिककृत्य प्रकाश ४		
१९४	हरएक चतुर्मासी और विशेष कर वर्षाचतुर्मासीमें नियम ग्रहण करनेका स्वरूप	६८३
१९५	अप्राप्यवस्तुका त्याग करनेके ऊपर द्रमकमुनि- का दृष्टांत	६८५
१९६	चातुर्माससम्बन्धी भावकभाविकाके नियम.	६८९
१९७	चातुर्मासके नियम पालने पर राजपुत्रकी कथा.	६९२
१९८	लौकिकशास्त्रमें बताये हुए चतुर्मास सम्बन्धी नियम.	६९४

वर्षकृत्य प्रकाश ५

विषयांक.	विषय का नाम.	पृष्ठांक.
१९९	संघपूजादि वर्ष कृत्योंकी संख्या और निर्देश मूलगाथा १२-१३	६९६
२००	साधर्मिकवात्सल्यका स्वरूप.	६९९
२०१	साधर्मिकवात्सल्य ऊपर दंडवीर्य, विमलवाहन- राजा, जगसिंहभेष्टी और आभूसंघपतिका दृष्टान्त.	७०३
२०२	अट्टाड्यात्रा और रथयात्राका स्वरूप.	७०५
२०३	रथयात्रा करने ऊपर संप्रतिराजा और कुमारपाल- राजाकी कथा.	७०७
२०४	तीर्थयात्राका स्वरूप.	७०८
२०५	स्नानोत्सवका स्वरूप.	७१३
२०६	देवद्रव्यकी वृद्धिका स्वरूप.	७१४
२०७	महापूजाका स्वरूप.	७१४
२०८	धर्मजागरिकाका स्वरूप.	७१५
२०९	श्रुतज्ञानकी पूजाका स्वरूप.	७१६
२१०	उजमणिका स्वरूप.	७१७
२११	तीर्थकी प्रभावना करनेका स्वरूप.	७१८
२१२	आलोचना करनेका स्वरूप.	७१९
२१३	आलोचना देनेवाले आचार्यके लक्षण.	७२०
२१४	आलोचना किसके पास लेना ? उसका स्वरूप.	७२१

विषयांक.	विषय का नाम.	पृष्ठांक.
२१५	आलोचना किस प्रकार लेना उसका स्वरूप.	७२२
२१६	आलोचना लेनेवालेके दश दोषोंका स्वरूप.	७२५
२१७	सम्यक्प्रकारसे आलोचना करनेवालेके गुण.	७२७
२१८	भलीभांति आलोचना न करने पर लक्ष्मणासाध्वी- की कथा.	७२९

जन्मकृत्य प्रकाश ६.

२१९	रहनेका स्थान कैसा चाहिये ? उसका स्वरूप.	७३३
२२०	कुप्राममें रहनेसे हानि ऊपर एक वणिकका दृष्टांत.	७३५
२२१	रहनेका घर कैसा होना चाहिये ? उसका स्वरूप.	७३६
२२२	बुरे पड़ोसीसे होनेवाली हानि.	७३७
२२३	भूमिकी परीक्षा.	७३८
२२४	भूमिमेंसे निकले हुए शल्यका फल.	७३८
२२५	सुख शांतिके लिये त्यागने तथा ध्यानमें रखनेके नियम	७३९
२२६	घर बनवानेमें जिनमंदिरकी वस्तु बपरा जानेसे हुई हानिके विषयमें वणिकका दृष्टान्त.	७४०
२२७	घर करने संबंधी विचार.	७४१
२२८	घरमें चित्रादि कैसे होना चाहिये उसका स्वरूप.	७४१
२२९	घरमें वृक्षोंसे होनेवाले शुभाशुभ फलका स्वरूप.	७४२
२३०	घर बंधवानेके नियम.	७४२
२३१	कैसे घरमें रहना उसका स्वरूप.	७४३

विषयांक.	विषय का नाम.	पृष्ठांक.
२३२	श्रेष्ठ महलमें रहनेके फायदे ऊपर विक्रमराजाकी कथा,	७४४
२३३	कालिदास पंडित गायें चराता था पर बिद्याके प्रसादसे सन्माननीय होगया उसका दृष्टांत,	७४५
२३४	इस लोकमें न सीख सके तो कमसे कम दो कलाएं तो अवश्य सीखना,	७४६
२३५	पाणिग्रहण करनेका स्वरूप,	७४७
२३६	वर कन्याके लक्षणकी परीक्षा,	७४८
२३७	आठ प्रकारके विवाह.	७४९
२३८	स्त्रीका रक्षण करनेके उपाय,	७५०
२३९	मित्र कैसे करना ? उसका स्वरूप.	७५१
२४०	जिनप्रतिमा बनवानेका स्वरूप, मूल गाथा १५	७५१
२४१	जीर्णोद्धार करनेका स्वरूप.	७५४
२४२	जीर्णोद्धार करानेवाले मंत्री वाग्भट, भीम और आंबडमंत्रिके दृष्टांत.	७५५
२४३	जिनप्रतिमा स्थापन करनेका स्वरूप.	७५६
२४४	जीवन्तस्वामिकी प्रतिमाका और उदायनराजा का चरित्र,	७५७
२४५	प्रतिमा किस वस्तुकी बनवाना ? उसका स्वरूप.	७६८
२४६	कैसी प्रतिमा पूजनेके योग्य है ? उसका स्वरूप.	७६९

विषयांक.	विषय का नाम.	पृष्ठांक.
२४७	गिरनारपर्वत पर सुवर्णमयबलानकका सम्बंध.	७७१
२४८	प्रतिष्ठा करनेका स्वरूप.	७७४
२४९	पुत्र, पुत्री आदिकी दीक्षाका उत्सव करनेका स्वरूप	७७६
२५०	पदस्थापना (आचार्यपद) देनेका स्वरूप.	७७६
२५१	पुस्तक लिखाने तथा पढवानेका स्वरूप.	७७७
२५२	पौषधशाला बनवानेका स्वरूप,	७७८
२५३	यावज्जीव समकित पालने तथा अणुव्रत पालनेका स्वरूप मूल गाथा. १६	७७९
२५४	अवसर पर दीक्षा ग्रहण करनेका स्वरूप.	७८०
२५५	भावभावकके सत्रह लक्षण.	७८१
२५६	दीक्षा न ली जा सके तो आजीवन आरम्भ त्याग करनेका स्वरूप.	७८४
२५७	यावज्जीव ब्रह्मचर्य पालनेका स्वरूप.	७८५
२५८	भावककी ग्यारहप्रतिमाओंका स्वरूप.	७८५
२५९	अंतकालके समय आराधना करनेका स्वरूप.	७८७
२६०	सर्वअतिचारके परिहारके लिये चार शरणरूप तथा दस द्वाररूप (पुण्य प्रकाशका स्तवनोक्त,) आराधना करनेका स्वरूप मूल गाथा. १७	७८९
२६१	ग्रंथकर्त्ताकी गुर्वावलि.	७९२

॥ नमः श्रीसर्वज्ञाय ॥

श्रीमत्तपोगणाधीशरत्नशेखराचार्यकृत श्राद्धविधि.

मंगलाचरण.

(शार्दूलविक्रीडितछंद)

अर्हसिद्धगणीन्द्रवाचकमुनिप्रप्राः प्रतिष्ठास्पदं,
पञ्च श्रीपरमेष्ठिनः प्रदत्तां प्रोच्चैर्गिरिष्ठात्मताम् ।
द्वेधा पञ्च सुपर्वणां शिखरिणः प्रोदाममाहात्म्यत---
श्वेतश्रितितदानतश्च कृतिनां ये स्मारयन्त्यन्वहम् ॥ १ ॥

जो पंडितोंको अपनी लोकोत्तर प्रतिष्ठासे देवताओंके पांच मेरुका और मनोवांछित वस्तुके दानसे पांच कल्पवृक्षोंका निरन्तर स्मरण कराते हैं ऐसे यशके भण्डार श्रीअरिहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय तथा मुनिवर्य ये पंच परमेष्ठी आराधक भव्यप्राणियोंको पूर्ण प्रतिष्ठाका स्थान (मोक्ष) दो ॥ १ ॥

(२)

(आर्यावृत्त)

श्रीवीरं सगणधरं, प्रणिपत्य श्रुतं गिरं च सुगुरुंश्च ।

विवृणोमि स्वोपज्ञं श्राद्धविधिप्रकरणं किञ्चित् ॥ २ ॥

गौतमादि गणधर युक्त भगवान श्रीमहावीरस्वामी, श्रुतवाणी (जिनभाषित सिद्धान्त) श्रुतदेवी तथा छत्तीस गुणयुक्त सद्गुरु इन सबको भावपूर्वक वन्दना करके 'श्राद्धविधि' प्रकरणकी अल्पमात्र व्याख्या करता हूँ ॥ २ ॥

युगवरतपागणाधिपपूज्यश्रीसोमसुन्दरगुरुणाम् ।

वचनादधिगततत्त्वः सत्त्वहितार्थं प्रवर्त्तेऽहम् ॥ ३ ॥

युगप्रधान, तपागच्छाचार्य तथा पूज्य श्रीसोमसुन्दर गुरु-महाराजके वचनसे केवली भाषित तत्त्वसे विज्ञ, मैं उनके वचन ही से भव्यजीवोंके हितके लिये व्याख्याका आरम्भ करता हूँ ॥ ३ ॥

(मूल गाथा)

सिरिवीरजिणं पणमिअ सुआउ साहेमि किमवि सडुविहिं
रायगिहे जगगुरुणा, जह भणिअं अभयपुट्ठेण ॥ १ ॥

भावार्थः--केवलज्ञान, अशोकवृक्षादि आठ प्रातिहार्य, वाणीके पैतीस गुण इत्यादि ऐश्वर्यसे सुशोभित श्रीवीरजिनेश्वरको मन, वचन, कायासे भावपूर्ण वन्दना करके, राजगृही-नगरीमें अभयकुमारके पूछने पर श्रीवीरजिन भगवानने जिस प्रकार उपदेश किया था उसी प्रकार सिद्धान्त वचन तथा गुरु सम्प्र-

दायका अनुसरण करके संक्षेप मात्र श्राद्धविधि (श्रावकों की सामाचारी) कहता हूँ ॥ १ ॥

यहां श्रीमहावीर स्वामीको 'वीर जिन' इस नामसे संबोधन किया है, उसका कारण यह है कि, कर्मरूप शत्रुओंका समूल नाशकरना, पूर्ण तपस्या करना आदि कारणोंसे वीर कहलाता है, कहा है कि-रागादिकको जीतनेवाला "जिन" कहलाता है । कर्मका नाश करता है तथा तपस्या करता है, उसी हेतुसे वीर्य व तपस्यासे सुशोभित भगवान वीर कहलाता है । इसी प्रकार शास्त्रमें तीन प्रकारके वीर बतलाये हैं '१ दानवीर, २ युद्धवीर, ३ धर्मवीर भगवानमें ये तीनों वीरत्व होनेसे उनको वीर कहा गया है, यथा वार्षिकदानके समय करोड़ों स्वर्णमुद्राओंके दानसे जगतमें दारिद्र्यको मिथ्या करके १ मोहादिकके कुलमें हुवे व कितनेक गर्भमें (सत्तामें) रहे हुए दुर्वार कर्म रूप शत्रुओंका नाश करके २ तथा फलकी इच्छा न रखते असाध्य ऐसी मोक्षदायक तपस्या करके ३ जो तीनों प्रकारकी वीर-पदवीके धारक हुए अर्थात् अतिशय दान देनेसे दानवीर हुए रागादिक शत्रुओंका समूल नाश करनेसे युद्धवीर हुए व कठिन तपस्यासे धर्मवीर हुए ऐसे तीनोंलोकके गुरु श्री महावीरकी वीर संज्ञा यथार्थ है । यहां 'वीरजिन' इस पदसे १ अपायाप-गमातिशय, २ ज्ञानातिशय, ३ पूजातिशय और ४ वचनातिशय ये चार अतिशय श्रीवीरभगवानके लिये सूचित कर दिये

ग्रन्थ के द्वार—

दिण-रत्ति-पव्व-चउमासग-वच्छर-जम्मकिच्च-दाराइ ।

सङ्काणणुगहट्ठा, सङ्खविहीए भणिज्जंति ॥ २ ॥

भावार्थ—१ दिवसकृत्य, २ रात्रिकृत्य, ३ पर्वकृत्य, ४ चातुर्मासिककृत्य, ५ वार्षिककृत्य, और ६ जन्मकृत्य; ये छः द्वार श्रावकजनके उपकारार्थ इस 'श्राद्धविधि' में कहे जायेंगे ॥ २ ॥

इस भांति प्रथम गाथामें मंगल तथा दूसरी गाथामें ग्रन्थका विषय कहा गया । अब 'विद्या, राज्य व धर्म ये तीन वस्तुका योग्य पात्रको दान देना' इस नीतिके अनुसार श्रावक—धर्म ग्रहण करनेके योग्य कौन है ? सो कहा जाता है—

सङ्कुत्तणस्स जुग्गो, भद्गपगई विसेसनिउणमई ।

नयमग्गरई तह दढनियवयणठिई विणिहिट्ठो ॥ ३ ॥

भावार्थ—१ भद्रप्रकृति २ विशेष निपुणमती ३ न्याय-मार्गरति तथा ४ दृढनिजवचनस्थिति; ऐसा पुरुष श्रावक-पनके योग्य है ॥ ३ ॥

इसमें १ भद्रप्रकृति-भद्रस्वभाववाला, कोई भी प्रकारका पक्ष-पात न रख कर मध्यस्थ रहना आदि गुणोंका धारण करने-वाला होनेसे कुछ बातोंमें विवाद न करनेवाला, कहा है कि—

रत्तो दुट्ठो मूढो पुव्वं पुग्गहिओ अ चत्तारि ।

एए धम्माणरिहा अरिहो पुण होई मज्झत्यो ॥

१ मिथ्यात्वमें प्रेम रखनेवाला, २ धर्म द्वेषी, ३ बिलकुल मूढ़ तथा ४ पूर्व व्युद्ग्राहित अर्थात् सद्गुरुका लाभ होनेसे पहिले ही जिसका चित्त किसी मतवादीने एकांतवादमें असत्य समझाकर दृढ़ कर लिया हो वह, ये चार व्यक्ति धर्म ग्रहण करनेके योग्य नहीं, इसलिये जो मध्यस्थ थाने किसी मत पर पक्षपात न रखनेवाला हो, उसीको धर्म ग्रहण करनेके योग्य समझना चाहिये । १ दृष्टिरागी धर्म ग्रहण नहीं कर सकता, यथा—भुवनभानु केवलीका जीव पूर्व-भ्रममें विश्वसेन नामक राजपुत्र था. वह त्रिदंडीका भक्त था, गुरुने बहुत परिश्रमसे उसे प्रतिबोधित किया और अंगीकार किये हुए समकितमें दृढ़ किया, किंतु तो भी पूर्व परिचित त्रिदंडीके वचनसे पुनः इसमें दृष्टिरागका उदय हुआ, जिससे पूर्व प्राप्त समकितको खोकर अनन्तकाल तक संसारमें भ्रमण करता रहा । २ धर्मका द्वेषी धर्म पानेके योग्य नहीं, यथा—भद्रबाहुस्वामीका भाई वराहमिहिर धर्म-द्वेषी होनेके कारण प्रतिबोध पाकर संसारमें भ्रमण करता रहा । ३ मूढ़ अर्थात् वह जो कि गुरुके वचनोंका भावार्थ न समझे । इसके उपर एक किसानके लडकेका लोक प्रसिद्ध दृष्टांत है, यथा—

एक किसानका लडका था, वह इतना जड़बुद्धि था कि सामान्य बात भी नहीं समझ सकता था । एक समय उसकी माताने उसे शिक्षा दी कि “ हे पुत्र ! राज्यसेवाके निमित्त दरबारमें विनय करना चाहिये. ” उसने पूछा कि—“ विनय

क्या होता है ? ” माताने समझाया कि “ प्रणाम—जुहार करना नीची निगाहसे चलना, राजाकी इच्छानुसार वर्तव करना इत्यादि विनय कहलाता है । ” कुछ कालके अनन्तर एक दिन वह लडका राज्यसेवाके हेतु राजधानीकी ओर रवाना हुआ । मार्गमें मृगका शिकार करनेकी इच्छासे कुछ शिकारी लोग छिप कर बैठे हुए थे । ज्योंही उस लडकेकी निगाह उनपर पड़ी त्यों ही उसने उनके सन्मुख जाकर उच्चस्वरसे कहा कि “ भाइयों जुहार ! ” इस तरहका जोरदार शब्द होनेसे आसपासके तमाम मृग भाग गये । इससे क्रुद्ध होकर शिकारियोंने उसे खूब मारा । जब उसने अपनी माताके उपदेशकी सत्य बात कह सुनाई, तब उन्होंने यह कह कर छोड़ा कि “ ऐसे अवसर पर चुप चाप निकल जाना चाहिये । ” आगे जाते २ उसे कुछ धोबी मिले । यह लडका उनको देख कर चोरकी भांति चुपचाप जाने लगा । उन धोबियोंके कपड़े पहिले कइवार चोर चुरा लेगये थे, अतः उन्होंने इसी लडकेको चोर समझकर पकड़ लिया और शिकारीकी बात कहने पर यह कह कर छोड़ दिया कि ऐसे अवसर पर यह बोलना कि “ पानीमें खूब धुलजानेसे साफ होजाओ । ” आगे जाकर देखा कि किसान लोग धरतीमें अन्न बो रहे हैं । इसने उन्हें देख कर धोबियोंके कथनानुसार कहना शुरू किया कि “ पानीमें खूब धुलजानेसे साफ होजाओ. ” यह सुनते ही उक्त किसानोंने भी इसको खूब मारा, अन्तमें पूर्वोक्त सत्य बात मालूम होने पर छोड़ा और यह

उपदेश दिया कि “ ऐसाही खूब २ होओ ” यह कहते जाओ । लडका आगे बढ़ा । कुछ दूर जाकर एक मृतक शव मिला । उसे देखकर इमने चिल्लाना शुरू किया “ ऐसाही खूब २ होओ ” मृतकके साथके लोगोंने इसे यह कहनेसे मना किया व “ ऐसा कभी न हो ” यह कहते जानेके लिये कहा । इन शब्दोंने एक विवाह प्रसंगमें इस लडकेको खूब पिटवाया तथा शिक्षा मिली कि “ हमेशा ऐसाही हो ” यह कहते हुए जाओ । ज्योंही आगे बढ़ा कि एक हथकड़ीबेड़ीसे जकड़ा हुआ जागीरदार कैदी मिला । उसे देखकर इसने कहना शुरू किया कि “ हमेशा ऐसा ही हो ” यह सुन उस कैदीके पक्षवाले ने इसे उपदेश किया कि ऐसे समय पर “शीघ्र छूट जाओ” यह कहना चाहिये । पश्चात् कुछ मित्रोंने जो कि परस्पर संगठन कर रहे थे इसे “शीघ्र छूट जाओ” इन शब्दोंसे अप्रसन्न होकर बहुतही मारा । कुछ कालके अनन्तर इस लडकेने एक सरदारके पुत्रके पास नौकरी करली । एक समय बड़ा दुष्काल पड़ा । धान्यके अभावसे उक्त सरदारपुत्रकी स्त्रीने राबड़ी तैयार करके इस लडकेको अपने पतिको बुलानेके लिये भेजा । उस समय सरदार-पुत्र राजसभामें बैठा हुआ था । इस मूर्ख लडकेने वहीं जाकर उच्च-स्वरसे कहा कि “ राबड़ी तैयार होगई है, चलिये ” इन शब्दोंसे सरदार-पुत्र बहुत लज्जित हुआ व उक्त लडकेको योग्य दंड देनेके बाद समझाया कि “ ऐसी बात मौका देखकर कानमें कहना चाहिये । दैवात् दूसरे दिन सबेरे

ही सरदार-पुत्रके घरमें आग लग गई । परन्तु इस मूर्ख लडकेने बड़ी ही देर बाद एकान्त पाकर सरदार-पुत्रके कानमें यह खबर दी, तब तक मकान जल कर भस्म हो चुका था । सरदार-पुत्रने फिर समझाया कि “ यदि ऐसा मौका आ जाय तो धूम देखते ही स्वतः मिट्टी पानी पटकना चाहिये ” इसी प्रकार एक दिन सरदार-पुत्र स्नान करनेके पश्चात् अपने बालोंको सुगन्धित धूप दे रहा था, इस लडकेने ज्योंही धुआं उठता देखा त्योंही अपने मालिकके सिर पर गोबर, मिट्टी आदिका टोकना डालकर पानी पटक दिया । अन्तमें विवश होकर सरदार पुत्रने इसे नौकरीसे अलग कर दिया । सारांश यह कि ऐसे मूर्ख-पुरुषोंको प्रतिबोध होना शक्य नहीं । ४ पूर्वव्युद्वाहितमें गोशालके नियतिवादमें दृढ़ किये हुए नियतिवादी इत्यादिका दृष्टान्त समझना चाहिये ।

उपरोक्त चारों पुरुष धर्मके अयोग्य हैं । परन्तु आर्द्रकुमारादिककी भांति जो पुरुष मध्यस्थ होवे अर्थात् जिसका किसी मत पर राग द्वेष नहीं, वही व्यक्ति धर्म पानेके योग्य है । इसी कारण मूल गाथामें भी ‘ भद्रप्रकृति ’ ही धर्म योग्य है यह कहा है । २ इसी भांति विशेष निपुणमति अर्थात् हेय (त्याग करने योग्य) और उपादेय (आदर करने योग्य) वस्तुओंमें क्या तत्त्व है ? यह जान लेनेमें जो निपुण हो वही धर्मके योग्य है । ३ तथा व्यवहारकी शुद्धि रखना आदि न्यायमार्ग ऊपर जिसकी पूर्ण अभिरुचि हो वल्लि अन्याय मार्ग ऊपर बिलकुल

न हो वह न्यायमार्ग रति और ४ अपने वचनोंका पालन करनेमें जो दृढप्रतिज्ञ हो वह निजवचनस्थिति ये दोनों पुरुष भी धर्मके योग्य हैं ।

१ भद्रकप्रकृति २ विशेषनिपुणमति ३ न्यायमार्गरति व ४ दृढजिनवचनस्थिति इन ऊपर कहे हुए चार विशेषणोंमें आगमोक्त श्रावकके इक्कीसों गुणोंका समावेश हुआ है ।

श्रावकके इक्कीस गुण इस प्रकार है ।

धम्मरयणस्स जुगो अक्खुहो रुववं पगइसोमो ।

लोगपिओ अक्कुरो भीरु असढो सदक्खिण्णो ॥१॥

लज्जालुओ दयालू मज्झत्थो सोमदिट्ठि गुणरागी ।

सकइ सुपक्खजुत्तो सुदीहंसी विसेसन्नू ॥२॥

बुद्धाणुगो विणीओ कयण्णुओ परहिअत्थकारी अ ।

तह चेव लद्धलक्खो ईगवीसगुणेहि संजुत्तो ॥

१ अक्षुद्र (उदारचित्त), २ रूपवान (जिसके अंग प्रत्यंग तथा पांचों इन्द्रियां अच्छे व विकार रहित हैं), ३ प्रकृतिसौम्य (जो स्वभावही से पापकर्मोंसे दूर रहता है तथा जिसके नौकर, चाकर आदि आश्रित लोग प्रसन्नता पूर्वक सेवा कर सकते हैं), ४ लोकप्रिय (दान, शील, विनय आदि गुणोंसे जो लोगोंके मनमें प्रीति उत्पन्न करनेवाला है), ५ अक्रूर (जो मनमें संश्लेश नहीं रखता है), ६ भीरु (पाप तथा अपयशसे डरनेवाला), ७ अशठ (जो किसी को ठगे नहीं), ८ सदा-

क्षिण्य (कोई कुछ मांगे तो 'उसकी इच्छाका भंग न होना चाहिये' ऐसा डर रखनेवाला), ९ लज्जालु (मनमें शर्म होनेसे बुरे कामोंसे दूर रहनेवाला), १० दयालु, ११ मध्यस्थ तथा सौम्यदृष्टि (जो पुरुष धर्मतत्त्वका ज्ञाता होकर दोषोंका त्याग करता है), १२ गुणरागी-गुण पर रागयुक्त और निर्गुणकी उपेक्षा करनेवाला १३ सत्कथ (जिस मनुष्यको केवल धर्मसम्बंधी बात प्रिय लगती है), १४ सुपक्षयुक्त (जिसका परिवार शीलवन्त व आज्ञाकारी है), १५ सुदीर्घदर्शी (दूरदर्शी होनेसे थोड़े ही परिश्रमसे बहुत लाभ हो ऐसे काम करनेवाला) १६ विशेषज्ञ (पक्षपाती न होनेसे चरतुओंके भीतरी गुण दोषोंको यथार्थ रीतिसे जाननेवाला), १७ वृद्धानुग (दीक्षापर्यायवृद्ध, ज्ञानवृद्ध तथा वयोवृद्ध इनकी सेवा करनेवाला), १८ विनीत (अपनेसे विशेष गुणवालोंका सन्मान करनेवाला), १९ कृतज्ञ (अपने ऊपर किये हुए उपकारको न भूलनेवाला), २० परहितार्थकारी (कुछ भी लाभकी आशा न रखकर परोपकार करनेवाला) और २१ लब्धलक्ष (धर्मकृत्यके विषयमें जिसको उत्तम शिक्षा मिली है) । ये ऊपर कहे हुए इक्कीसों गुण भद्रकप्रकृति आदि चार विशेषणोंमें प्रायः इस प्रकार समाजाते हैं ।

जो मनुष्य १ भद्रकप्रकृति होते हैं उनमें १ अक्षुद्रपन, ३ प्रकृतिसौम्यपन, ५ अक्रूरपन, ८ सदाक्षिण्यपन, १० दयालुपन, ११ मध्यस्थ सौम्यदृष्टिपन, १७ वृद्धानुगपन और १८

विनीतपन ये आठ गुण दृष्टिगोचर होते हैं। जो मनुष्य विशेष निपुणमति होते हैं उनमें २ रूपवानपन, १५ सुदीर्घदर्शीपन, १६ विशेषज्ञपन, १९ कृतज्ञपन, २० परहितार्थकारीपन व २१ लब्धलक्षपन ये छः गुण प्रायः पाये जाते हैं। जो मनुष्य ३ न्यायमार्गरति होते हैं उनमें ६ भीरुपन, ७ अशठपन, ९ लज्जालुपन, १२ गुणरागीपन, तथा १३ सत्कथपन ये पांच गुण बहुधा पाये जाते हैं। जो मनुष्य ४ दृढनिजवचनस्थित होते हैं उनमें ४ लोकप्रियपन और १४ सुपक्षयुक्तपन ये दो गुण प्रायः देखनेमें आते हैं। इसी हेतुसे मूलगाथामें श्रावकोंके इकीसगुणोंके बदलेमें चार विशेषणोंसे चार ही गुण ग्रहण किये हैं।

जिस मनुष्यमें १ भद्रकप्रकृतिपन, २ विशेष निपुणमतिपन और ३ न्यायमार्गरतिपन ये तीन गुण नहीं होते हैं वह केवल कदाग्रही (दुष्ट), मूर्ख तथा अन्यायी होनेसे श्रावक-धर्म पाने के योग्य नहीं। तथा जो ४ दृढप्रतिज्ञी नहीं होता है वह यदि श्रावकधर्मको अंगीकार कर भी ले तोभी ठगकी मित्रता, पागल मनुष्यका श्रृंगार अथवा बन्दरके गलेका द्वार जिस प्रकार अधिक समय तक नहीं ठहर सकते उसी भांति वह मनुष्य भी जीवनपर्यन्त धर्मका पालन नहीं कर सकता है।

इसलिये जो मूलगाथामें वर्णन किये हुए चार गुणोंका धारण करनेवाला मनुष्य होता है वही, जैसे उत्तमतासे तैयार

की हुई भीत चित्रकारीके, मजबूत चुना हुआ पाषा (नींव) महल बांधनेके और तपाकर शुद्ध किया हुआ सोना माणिक्य-रत्नके योग्य है वैसे ही श्रावकधर्म पानेके योग्य है । तथा वही मनुष्य सद्गुरुआदि सामग्रीके योगसे चुल्लक आदि दश दृष्टान्तसे दुर्लभ ऐसे समकित्तादिकको पाता है । और उसे इस प्रकार पालता है जैसा कि शुकराजने पूर्वभयमें पाला था ।

शुकराजकी कथा.

इसी भरतक्षेत्रमें असीम धन धान्यसे परिपूर्ण क्षितिप्रतिष्ठित नामक एक प्रसिद्ध नगर था । इस नगरमें निस्त्रिशता (क्रूरता) केवल खड्गमें, कुशीलता (लोहे फल) केवल हलमें, जडता केवल जलमें और बंधन (बींट) केवल पुष्पमें ही था, किन्तु नगरवासियोंमें से कोई भी क्रूर, कुशील, जड अथवा बंधनमें पड़ा हुआ नहीं दृष्टिमें आता था । इसी नगरमें कामदेवके सदृश रूपवान व अग्निके समान शत्रुओंका संहार करनेवाला ऋतुध्वजराजाका पुत्र मृगध्वज राजा राज्य करता था । राज्य-लक्ष्मी, न्यायलक्ष्मी तथा धर्मलक्ष्मी इन तीनों स्त्रियोंने बड़ी प्रसन्नतासे स्वयं अपनी इच्छासे उस राजासे पाणीग्रहण किया था ।

एक समय वसन्तऋतुमें, जिस समय कि प्रायः मनुष्य खेल क्रीडा ही का रसआस्वादन करते रहते हैं, उस वक्त मृगध्वज राजा अन्तःपुरके परिवार सहित नगरके उद्यान (बगीचा) में क्रीडा

करने गया और हाथी हथिनियोंके समान अपनी रानियोंके साथ जलक्रीडादिक अनेक प्रकारके आनन्द करने लगा । उद्यानमें भूमिरूपी स्त्रीके ओढनेके छत्रके समान एक विशाल सुन्दर आम्रवृक्ष था । उसे देखकर विद्याका संस्कार युक्त होनेके कारण राजा कहने लगा कि पृथ्वीके कल्पवृक्षके समान हे आम्रवृक्ष ! तेरी छाया जगतको बहुत प्यारी लगती है, पत्तोंका समुदाय बड़ा ही मंगलिक गिना जाता है, यह प्रत्यक्ष देखाते हुए तेरे पुष्प (म्होरे) का समुदाय अनुपम फलोंकी वृद्धि करता है, तेरा सुन्दर आकार देखते ही मनुष्यका चित्त आकर्षित हो जाता है, तथा तू अमृतके समान मधुर रसीले फल देता है, इसलिये बड़े बड़े वृक्षोंमें भी तुझे अवश्य श्रेष्ठ मानना चाहिये । हे सुन्दर आम्रवृक्ष ! अपने पत्र, फल, फूल, काष्ठ, छाया आदि संपूर्ण अवयवोंसे सर्व जीवों पर निशिदिन परोपकारमे रत ! क्या तेरे समान अन्य कोई वृक्ष प्रशंसा करनेके योग्य है ? जो बड़े बड़े वृक्ष अपनको आम्रवृक्षके समान कहलवाते हैं उनके तथा उनकी प्रशंसा करनेवाले पापी, मिथ्यावादी कवियोंको धिक्कार है ।

इस भांति आम्रवृक्षकी स्तुति करके राजा सन्मानपूर्वक, जैसे कि देवतागण कल्पवृक्षके नीचे बैठते हैं, आम्रवृक्षकी छायाके आश्रयमें रानियों समेत बैठ गया । सम्पत्तिशान तथा मणिरत्नादि वस्तुओंसे अलंकृत इस प्रकार शोभायमान, मानों स्वयं मूर्तिमान शृंगाररस हो ऐसी सुशोभित अपनी रानियोंको देख कर राजा मृगध्वज आश्रयसे विचार करने लगा कि “ये स्त्रियां

कैसी है? मानो पृथ्वीभरमेंसे सारभूत निकाली हों। ऐसी स्त्रियां मुझे मिली, इसलिये देवकी मेरे ऊपर अपूर्व कृपा है। वैसे तो घर घर स्त्रियां हैं परन्तु इनके समान सुन्दर कहीं नहीं। ठीक है तारागण चन्द्रमा ही के साथ शोभा देते हैं अन्य ग्रहोंके साथ नहीं।

इस भांति विचार करता हुआ राजा मृगध्वजका मन वर्षाऋतुकी नदीके समान अहंकारसे उछलने लगा। इतने ही में उस आम्रवृक्ष पर बैठा हुआ एक सुन्दर तोता समयोचित बोलने-वाले पंडितके समान बोला कि “मनःकल्पित अहंकार किस क्षुद्रप्राणीको नहीं होता? देखो! कहीं आकाश अपने ऊपर न पड़ जाय इस भयसे टिटहरी भी अपने पैर ऊँचे करके सोती है।”

यह सुनकर राजाने विचार किया कि “अहो यह तोता कितना ढीठ है? अहंकार करनेवाले मनको यह बिलकुल तुच्छ क्यों बतलाता है? अथवा यह पक्षी जो कुछ बोलता है सो अजा-कृपाण, काकतालीय, घुणाक्षर व खलतिबिल्वे न्यायसे

१ अचातक धकरीका आना और तलवार का पड़ना।

२ कौबेका बैठना और ताल वृक्षका गिरना।

३ लकड़ीमें रहनेवाले घुन (कीड़ा) का कतरना और उसमें अक्षर का आकार बनजाना।

४ गंजे मनुष्यका वृक्षके नीचे बैठना और उसके सिर पर बेल फल (बिल्ला) का गिरना।

सत्यसा मालूम होता है । परन्तु यह तोता तो बे मतलब स्वभाव ही से यह वाक्य बोला होगा ।

राजा इस प्रकार विचार कर ही रहा था कि तोता पुनः एक अन्योक्ति बोला— “ (इस वाक्यमें मेंडक व हंसका परस्पर संवाद है)

मेंडक-- हे पक्षी ! तू कहांसे आया है ?

हंस-- मैं अपने सरोवर से आया हूँ ।

मेंडक-- वह सरोवर कितना बड़ा है ?

हंस-- बहुत ही बड़ा है ।

मेंडक-- क्या मेरे घरसे भी सरोवर बड़ा है ?

हंस-- हां, बहुत ही ।

यह सुनकर मेंडक हंसको माली देने लगा कि “हे पापी ! तू मेरे सन्मुख क्यों असत्य बोलता है ? धिक्कार है तुझे ! इस पर हंसको यही समझ लेना उचित है कि “क्षुद्रबुद्धि मनुष्य जरासी भी कोई वस्तु पाता है तो भी वह बहुत अहंकार करता है.

यह अन्योक्ति सुनकर राजाने विचार किया कि “इस तोतेने मुझे निश्चय कूप-मेंडक (कुएके अन्दर रहनेवाला मेंडक) बनाया है । आश्चर्य है कि यह उत्तम पक्षी भी मुनि-राजकी भांति ज्ञानी है । ” राजा यह विचार कर ही रहा था कि तोता पुनः बोला । “मूर्खोंके सरदार सदृश गंवारकी कैसी मूर्खता है ? कि जो अपने गांव (खेडा-देहात) को स्वर्गपुरीके

समान समझता है। झोंपड़ीको विमान समझता है। अपने खानेके अन्नादिको अमृत समझता है। पहरने ओढ़नेके कपड़ोंको दिव्य-वस्त्र समझता है। अपने आपको इन्द्र व अपने सर्व परिवारको देवताओंके समान गिनता है। ”

यह सुन राजा विचार करने लगा कि “इस महापंडितने मुझे गंवार समझा, इससे मालूम होता है कि मेरी स्त्रियोंसे भी अधिक सुन्दर कोई दूसरी स्त्री अन्यत्र कहीं है। ”

तोता पुनः बोला— “ ठीक ही है, अधूरी बात कहनेसे मनुष्यको आनन्द नहीं होता। हे राजन् ! जबतक तू गांगलि-ऋषीकी पुत्रीको नहीं देखेगा तभीतक तू अपने अन्तःपुरकी स्त्रियोंको मनोहर समझेगा। वह त्रिलोकमें ऐसी सुन्दर व सर्व अवयवोंसे परिपूर्ण है कि विधाताने मानो उसे बनाकर सृष्टि-रचनाका बदला प्राप्त किया है। जिसने उस कन्याको नहीं देखा उसका जीवन निष्फल है। और जिसने कभी देखा हो पर आलि-गन न किया उसका भी जीवन अकारथ है। क्या कोई उसे देख कर कभी अन्य स्त्रीसे प्रीति कर सकता है ? अमर माल-तीके पुष्पको त्याग कर क्या अन्य पुष्प पर आसक्त हो सकता है ? नहीं, कदापि नहीं। जो सूर्यकी पुत्री कमलमाला (कमलकी पंक्ति)के सदृश उस कमलमाला कन्याको देखनेकी अथवा उससे विवाह करनेकी इच्छा हो तो शीघ्र मेरे साथ चल ! ”

यह कह कर तोता तुरंत वृक्ष परसे उड़ा । यह देख कर मनमें अत्यंत उत्सुक हुए राजाने चिह्नाकर सेवकोंसे कहा कि “ रे खिदमतगारों ! मेरा पवन समान वेगसे चलनेवाला सन्तान्वय नामक घोड़ा शीघ्र तैयार करके यहां लाओ ? ”

ज्यों ही उन्होंने घोड़ेको लाकर उपस्थित किया त्यों ही करोड़ों राजाओंका राजराजेश्वर चक्रवर्ती मृगध्वज घोड़े पर चढ़ कर उस तोतेके पीछे चला । जिम तरह दूरके लोगोंने तोतेकी बाणी नहीं सुनी वैसे ही किसी देवी कारणसे पासका भी कोई मनुष्य कुछ सुन समझ न सका । इससे मंत्री आदि राजाकी इस एकाएक कृतिको देख कर घबरा गये और कुछ दूर तक राजाके पीछे २ गये किंतु अन्तमें निराश होकर वापस लौट आये । इधर आगे तोता व पीछे राजा दोनों पवन वेगसे चलते हुए ५०० योजन पार कर गये । परंतु कोई दिव्य प्रभावसे इतनी दूर निकलजाने पर भी ये बिल्कुल न थके और जिस तरह कर्मसे खिंचा हुआ मनुष्य भवान्तरमें भटकता है उसी भांति विघ्नसे बचानेवाले उस तोते से खिंचा हुआ राजा मृगध्वज एक घने जंगलमें पहुंचा ।

महान पुरुषोंमें भी पूर्वभवका संस्कार कैसा प्रबल होता है ? नाम धाम कुछ भी ज्ञात न होने पर भी देखो राजा उस तोतेके साथ होगया । उस वनमें मानों मेरुपर्वतका एक खंड हो, ऐसा कल्याणकारी व दिव्य कान्तिधारी श्रीआदिनाथका

एक सुवर्णरत्नमय मंदिर था । उसके कलश पर बैठकर तोता मधुर शब्दोंसे बोला कि “ हे राजन् ! जन्मसे अभीतक किये हुए संपूर्ण पापोंकी शुद्धिके निमित्त श्रीआदिनाथ भगवानको वन्दना कर ” राजाने यह समझ कर कि तोतेको जानेकी बहुत जल्दी है, शीघ्र घोड़े परसे ही भगवानको वन्दना करी । चतुर तोतेने राजाका अभिप्राय समझ कर उसके हितके लिये स्वयं मंदिरमें जाकर प्रभुको प्रणाम किया । जिस तरह श्रेष्ठपुरुषोंके चित्तमें ज्ञानके पीछे २ विवेक प्रवेश करता है उसी भांति राजा भी घोड़े परसे उतरके तोतेके पीछे २ मंदिरमें गया । वहां श्रीकृष्णभ-देव भगवानकी रत्न-जटित और अनुपम प्रतिमा देखकर वन्दना करके इस प्रकार स्तुति करने लगा—

“एक तरफ तो स्तुति करनेके लिये बहुत उत्सुक । और दूसरी तरफ निपुणताका अभाव, ऐसा होनेसे मेरा चित्त भक्तिसे स्तुति करनेकी ओर तथा शक्ति न होनेसे न करनेकी ओर खिंचनेसे डोलायमान होता है । तथापि हे नाथ ! मैं यथाशक्ति आपकी स्तुति करता हूं, क्या मच्छर भी अपनी शक्तिके अनुसार वेगसे आकाशमें नहीं उड़ता ? अपरिमित (प्रमाण रहित) दाता ऐसे आपको मित (प्रमाण सहित) देनेवाले कल्पवृक्ष आदि-की उपमा किस प्रकार दी जा सकती है ? इसलिये आप अनुपम हो । आप किसी पर प्रसन्न नहीं होते और न किसीको कुछ देते हैं तथापि सर्व मनुष्य आपकी आराधना करते हैं इसलिये

आपकी गति अद्भूत है । आप ममता न होते हुए भी जगत् रक्षक और कोई जगह साथ न होते हुए भी जगत् प्रभु कहलाते हो । ऐसे लोकोत्तर स्वरूपके धारक मनुष्यरूपी आपको मेरा नमस्कार है।”

पासही आश्रममें बैठे हुए गांगलि ऋषिने राजाकी मधुर-शब्दसे की हुई इस स्तुतिको आनन्दपूर्वक श्रवण की । और साक्षात् शंकरके समान जटाधारी तथा बल्कल (वृक्षोंकी छाल) वस्त्रधारी, निर्मल विद्याके ज्ञाता ऐसे वे कारणवश मंदिरमें आये और भक्तिपूर्वक श्रीऋषभदेव भगवानको वन्दना करके मनोहर, निर्दोष तथा तुरन्त बनाये हुए नवीन गद्यात्मक वचनोंसे इस भांति स्तुति करने लगे—

“तीनों लोकके नाथ, त्रिलोकोपकारी यशकीर्ति देनेमें समर्थ, अनंतज्ञान, अनंतदर्शन आदि अतिशयोक्ते सुशोभित हे आदिनाथ भगवन् ! आपकी जय हो । नाभिराजाके कुलरूपी कमलको विकसित करनेके लिये सूर्यके समान, तीनों लोकोंके जीवोंको स्तुति करने योग्य, श्रीमरुदेवी माताकी कुक्षिरूप सुन्दर सरोवरमें राजहंसके समान हे भगवान् ! आपकी जय हो । त्रिलोकवासी भव्य-प्राणियोंके चित्तरूपी चकोर पक्षीका शोक दूर करनेके लिये सूर्यके समान, अन्य सम्पूर्ण देवताओंके गर्वको समूल नष्ट करनेवाले निस्सीम, निर्दोष व अद्वितीय ऐसी महिमा और तेज रूप लक्ष्मी के विलासके लिये कमलाकर

(कमल सरोवर) ऐसे हे भगवान् ! आपकी जय हो । सरस भक्तिरससे सुशोभित तथा स्पर्धासे वन्दना करते हुए देवताओं तथा मनुष्योंके मुकुटोंमें जड़े हुए रत्नोंकी कान्तिरूप निर्मल जलसे धुल गये हैं चरण जिनके, तथा समूल नाश कर दिये हैं मनके अन्दर रहे हुए राग द्वेषादिक मल जिनने ऐसे हे भगवन् ! आपकी जय हो । अपार भवसागरमें डूबते हुए जीवोंको किनारे लगानेके लिये जहाज समान, सर्व स्त्रियोंमें श्रेष्ठ सिद्धिरूप स्त्रीके प्रियपति, जरा-मरण-भयसे रहित, सर्व देवोंमें उत्तम ऐसे हे परमेश्वर, युगादि तीर्थकर, श्रीआदिनाथ भगवन् आपको नमस्कार है ।”

इस प्रकार स्तुति करके गांगलि ऋषिने सरल स्वभावसे मृगध्वज राजाको कहा कि-“ऋतुध्वज राजाके कुलमें ध्वजाके समान हे मृगध्वज राजन् ! हे वत्स ! तू मेरे आश्रममें चल, तू मेरा अतिथि है । मैं आनन्द पूर्वक तेरा अतिथिसत्कार करूंगा । तेरे समान अतिथि तो भाग्य ही से मिलते हैं।”

गांगलि ऋषिके ये वचन सुनकर राजा मृगध्वज मनमें विचार करने लगा कि ‘ये ऋषि कौन है ? मुझे आग्रह पूर्वक किस कारण बुलाता है ? और परिचय न होते भी यह मेरा नाम धाम कैसे जानता है ? इत्यादि विचारोंसे आश्चर्ययुक्त होकर वह ऋषिके साथ उनके आश्रम पर गया । ठीक है-सत्पुरुष किसीकी प्रार्थना का अनादर नहीं करते ।

ऋषिने महाप्रतापी मृगध्वज राजाका भलीभांति अतिथि

सत्कार किया। वास्तवमें ऐसे तपस्वी तो जो काम हाथमें ले लेते हैं उसमें यशस्वी ही होते हैं। तत्पश्चात् बुद्धिशाली गांगलि-ऋषिने राजासे कहा कि—“हे राजन् ! आपके आगमनसे हम कृतार्थ हुए, इसलिये हमारे कुलको अलंकारके समान, जगतके नेत्रोंको वश करनेके लिये साक्षात् कामणरूप, हमारे जीवनके प्रत्यक्ष प्राणरूप, कल्पवृक्षके फूलोंकी मालाके समान कमल-माला नामक मेरी कन्या आप ही के योग्य है, आप उसका पाणिग्रहण करके हमको अंगीकार करो।”

“मन भाती बात ही वैद्य ने बताई” ऐसा ही अवसर हुआ। मनमें तो राजाको स्वीकार ही थी, तो भी ऋषिने जब बहुत ही आग्रह किया तब राजाने यह बात स्वीकार की, सत्पुरुषों की यही रीति है।

पश्चात् ऋषिने अपनी नवयौवन-सम्पन्न कन्याका राजाके साथ विवाह किया। शुभ कार्यमें विलम्ब कैसा ? जिसके शरीर पर बल्कल वस्त्रके सिवाय कोई अलंकार नहीं था तो भी राजा मृगध्वज ऋषिकन्या कमलमालाको देख कर बहुत प्रसन्न हुआ। क्यों न हो ? राजहंसकी प्रीति कमलमाला (कमलोंकी पंक्ति) पर होना ही चाहिये।

अंतमें ऋषिने कर मोचनके समय जमाई (राजा) को पुत्र संतति-दायक एक मंत्र दिया। ऋषियोंके पास और कौनसी वस्तु देने लायक है ? उस समय आनन्द पायी हुई तापसिनीयोंके

धवल-गीतोंसे बन गूँज उठा। गांगालि ऋषिने अपनी तथा वरकी योग्यतानुसार सर्व विधि स्वयं कराई, इससे भी बहुत शोभा हुई।

विवाहके पश्चात् राजाने ऋषिसे कहा कि “मैं किसीको भी राज्यव्यवस्था न समझला कर अचानक इधर आगया हूँ” ऋषिने कहा कि ‘तो शीघ्र जानेकी तैयारी करो’। हमारे समान दिगम्बरकी तैयारीमें क्या विलम्ब ? परन्तु हे राजन् ! तेरा दिव्य वेष और अपना वल्कल-वेष देख २ कर यह कमलमाला महान् पुरुषोंको भी दुःख पैदा कर देती है; साथ ही इसने आज तक आश्रममें सदा वृक्षोंको जल पिलाया है व जन्मसे अभी तक केवल तापसी-स्त्रियोंके रीति-रिवाज देखती आई है। इसीसे जन्मसे भोली है, परन्तु तुझमें पूर्ण अनुरागिणी है। राजन् ! इस मेरी कन्याको सोतोंसे (अन्य रानियोंसे) किसी प्रकारका तिरस्कार न होना चाहिये।”

राजा ने कहा-“अन्य रानियोंसे इसकी पराभूति (विशेष-पटुद्धि) होगी, पराभूति (तिरस्कार) कदापि न होगा। इससे आपके अचनोंमें लेश मात्र भी कमी न होगी-”

इतना कह कर चतुर राजाने तापसीजनोंको प्रसन्न करके तापसी-स्त्रियों आदिको संतोष देनेके उद्देशसे पुनः कहा कि “अपने स्थान पर पहुँचने पर इसके संपूर्ण मनोरथ पूर्ण करूंगा, अभी यहां तो वस्त्रादिक भी कहां से मिल सकते हैं ?”

खेदपूर्वक गांगलिकृषिने कहा कि “जन्म दरिद्रीकी भांति मुझ दरिद्रीसे पुत्रीको पहिरावनी भी नहीं दी जा सकती, मुझे धिक्कार है” यह कहते हुए ऋषिकी आंखोंसे दुःखके आंसू गिरने लगे । इतने ही में जलवृष्टिकी भांति एक पासेके आमके वृक्ष परसे दिव्यवस्त्र, अलंकार आदि गिरकर ढेर लग गया । यह देख सबने आश्चर्य चकित हो मनमें निश्चय किया कि “इस कन्याका भाग्य उत्तरोत्तर बढ़ता ही जाता है । मेघ वृष्टिके समान झाड़ परसे फल तो गिरते हैं पर वस्त्रालंकार पड़ते कभी नहीं देखा । वास्तवमें पुण्य का प्रभाव अद्भुत है ।

पुण्यैः संभाव्यते पुंसामसंभाव्यमपि क्षितौ ।

तेरुमेंरुसमाः शैलाः किं न रामस्य वारिधौ ! ॥१॥

इस लोकमें पुण्यसे क्या संभव नहीं ? अर्थात् सब कुछ संभव है । देखो, रामचन्द्रके पुण्यसे मेरुपर्वतके समान शिलाएं भी सागर पर तैरती रही थीं ।

तदनन्तर राजा मृगध्वज गांगलि ऋषि तथा नव वधू कमलमालाके साथ आनन्ददायक श्रीआदिनाथ भगवानके मंदिरमें गया और ‘हे प्रभो! आपके पवित्र दर्शन पुनः शीघ्र मिले व शिला पर खुदी हुई मूर्तिके सदृश आपकी मूर्ति मेरे चकित चित्तमें सर्वदा स्थित रहे’ यह कह अपनी स्त्री कमलमाला सहित भगवानको वन्दना करके मंदिरके बाहिर आया तथा ऋषिसे मार्ग पूछा ।

ऋषिने उत्तर दिया कि “मैं मार्ग आदि नहीं जानता हूँ”
तब राजा बोला कि ‘तो आपको मेरे नाम इत्यादि कैसे ज्ञात हुए?’

ऋषि बोले—“हे राजन् ! सुन । एक वक्त मैंने मेरी इस नवयौवना कन्याको आनन्दसे देख कर विचार किया कि इसे योग्य वर कौन मिलेगा ? इतनेमें आम्त्रके वृक्ष पर बैठे हुए एक तोतेने मुझसे कहा—“हे गांगलि ! वृथा चिंता न कर । ऋतुध्वज राजाके पुत्र मृगध्वज राजाको मैं आज ही इस जिन-मन्दिरमें बुला लाता हूँ । जिस प्रकार कल्पवल्ली, कल्पवृक्षको वरने योग्य है उसी प्रकार तेरी यह कन्या जगतमें श्रेष्ठ राजा मृगध्वजको वरनेके योग्य है; इसमें लेश मात्र भी संशय नहीं।” यह कह कर तोता उड़ गया और कुछ देरके बाद ही हे राजन् ! आप आये और पश्चात् धरोहर वस्तु जिस तरह वापस देते हैं वैसे मैंने आनन्दसे यह कन्या आपको दी । इससे अधिक मैं कुछ नहीं जानता. यह कह कर ऋषि चुप होगये । राजाने विचार किया कि “अब क्या करना चाहिये ?”

इतने ही में अवसरज्ञाता पुरुषकी भांति तोतेने शीघ्र आकर कहा कि, “हे राजन् ! आ, आ ! मैं तुझे मार्ग दिखाता हूँ । यद्यपि मैं जातिका एक क्षुद्र पक्षी हूँ तथापि मैं आश्रित (मेरे विश्वास पर रहे हुए) जनकी उपेक्षा नहीं करता । अपने ऊपर विश्वास रख कर बैठा हुआ कोई साधारण जीव होवे उसकी भी उपेक्षा नहीं करना चाहिये तिस पर बड़ेकी उपेक्षा न करना

इसमें तो कहना ही क्या है ? क्या चंद्रमा अपने आश्रित खर-गोश के बालक को क्षुद्र होनेसे उसे गोदमें से अलग पटक देता है ? नहीं, हे राजन् ! तू जगतमें श्रेष्ठ व आर्य होते हुए भी अनार्यकी भांति क्षण भरमें मुझे भूल गया, परन्तु मैं क्षुद्र प्राणी तेरे समान मनुष्यको कैसे भूल सकता ? ”

तोतेके ये वचन सुन कर राजाको बड़ा आश्चर्य हुआ और गांगलि ऋषिको प्रणाम करके शीघ्र स्त्री समेत घोड़े पर बैठकर तोतेके पीछे चला । अपने नगरको पहुंचनेकी बड़ी उत्सुकतासे राजा तोतेके पीछे २ जा रहा था । ज्योंही उसका क्षितिप्रतिष्ठित नगर कुछ २ नजर आने लगा तब वह तोता सुस्त होकर एक वृक्ष पर बैठ गया । यह देख चकित होकर राजाने आग्रहपूर्वक तोतेसे पूछा—“हे तोते ! यद्यपि नगरके महल कोट आदि दीखते हैं तथापि अभी नगर दूर है, तू इस भांति अप्रसन्न होकर क्यों बैठ गया ?”

तोतेने हुंकारा (हां) देकर कहा कि—“ऐसा करनेका एक भारी कारण है । पंडित-जन बिना कारण कोई भी कार्य नहीं करते हैं ।” राजाने घबराकर पूछा—“वह क्या ?”

तोता बोला—हे राजन् ! सुन । चन्द्रपुरीके राजा चन्द्रशेखरकी चन्द्रवती नामक बहिन जो कि तेरी प्यारी स्त्री है वह अन्दरसे कपटी व ऊपरसे मधुर भाषण करनेवाली होनेसे गायके समान मुंहवाले सिंहके समान है । जलके समान स्त्रीकी भी प्रायः

टोटी गति होती है । 'तू बैरागी भांति राज्य छोड़कर कहीं दूर चला गया है' यह सोचकर इच्छित अवसर मिलनेसे प्रचल हुई शाकिनी समान तेरी स्त्रीने तुरत अपने भाईको खबर दी कि 'राज्य छीननेका यह मौका है' अपना स्वार्थ साधनेके लिये कपट ही एक मात्र अवलाओंका भारी बल है ।

बहिनका संदेश पाकर चन्द्रशेखरने चतुरंगिणी सेनाके साथ आकर तेरे राज्यको लेनेके लिये चढाई की है । भला सामने आया राज्य कौन छोड़े ?

शत्रुको देख कर तेरे वीर सरदारोंने भीतरसे नगरके द्वार बंद कर दिये । इधर जिस तरह सर्प अपने शरीरसे धनको घेरता है उसी तरह चन्द्रशेखरने अपनी सेनासे चारों तरफसे नगरको घेर लिया है । तेरे पराक्रमी सरदार नगरके अन्दर चारों तरफ खड़े रह कर शत्रुसे लड़ रहे हैं; परन्तु "नायक बिना सेना दुर्बल है " इस कहावतके अनुसार अपने आपको बिना नायक समझनेवाली तेरी सेना किस प्रकार जीत सकती है ? इस समय हम नगरमें किस भांति जा सकेंगे ? इससे राजन् ! मैं मनमें बहुत चिंतित होकर इस वृक्ष पर बैठा हूं ।

तोतेके मुंहसे यह हृदय-विदारक बात सुनते ही राजाके मनमें संताप उत्पन्न हुआ, मानो नगरमें जानेका मार्ग मिल गया हो पश्चात् मनमें विचार किया कि, "दुष्ट आचरणवाली स्त्रीके मनके अन्दर रहनेवाले कपटको धिक्कार है ! चन्द्रशेखर राजाका

भी यह कैसा साहस ! उसके मनमें जराभी डर नहीं ! उसे अपने स्वामीके राज्य हरणकी अभिलाषा हुई ! यह उसका कितना भारी अन्याय ! अथवा चन्द्रशेखरका क्या दोष ? नायक रहित राज्यको लेनेकी बुद्धि किसे नहीं होती ? कोई रखवाला नहीं होवे तो खेतको सूअरके समान क्षुद्र प्राणी भी क्या नहीं खा जाते ? अथवा विवश होकर राज्यकी ऐसी अवस्था करनेवाले मुझे ही अधिकार है । कोईभी कार्यमें विवेक न करना यह सर्व आपदाओंकी वृद्धि करनेवाला है । विवेक बिना कुछ भी करना धरोहर रखना, किसी पर विश्वास करना, देना, लेना, बोलना, छोड़ना, खाना आदि सब मनुष्यको प्रायः पश्चात्ताप पैदा करते हैं कहा है कि—

सगुणमपगुणं वा कुर्वता कार्यजात, परिणतिरवधार्या यत्नतः पण्डितेन
अतिरभसकृतानां कर्मणामाविपत्तेर्भवति हृदयदाही शल्यतुल्यो विपाकः

गुणयुक्त अथवा गुणरहित कोई भी कार्य करना हो तो बुद्धिमान मनुष्यको चाहिये कि कार्य आरंभ करनेके पहिले उसका परिणाम सोचना चाहिये । जिस भांति हृदयादि मर्म-स्थलमें घुसा हुआ शस्त्र मरण तक हृदयको पीड़ा करता है उसी भांति विवेक बिना एकाएक कोई कार्य करनेसे भी मरण पर्यंत क्लेश होता है । ”

इस तरह राज्यकी आशा छोड़ मनमें नाना प्रकारके पश्चात्ताप करते मृगध्वज राजाको तोतेने कहा कि, “हे राजन् ! व्यर्थ

पश्चात्ताप न कर । मेरे वचनोंके अनुसार कार्य करनेसे कभी अशुभ नहीं होता । योग्य वैद्यकी योजनानुसार उपचार करने पर व्याधि कभी भी बाधा नहीं कर सकती । हे राजन् ! तू यह न समझ कि, मेरा राज्य मुफ्तमें चला गया । अभी तू बहुत समय तक सुखपूर्वक राज्य भोगेगा । ”

ज्योतिषीकी भांति तोतेके ऐसे वचन सुनकर मृगध्वजराजा अपना राज्य पुनः पाने की आशा करने लगा । इतने ही में बनमें लगी हुई अग्निके समान चारों तरफ फैलती हुई चतुरंगिणी सेना तितर-वितर आती देख भयसे मनमें विचार करने लगा कि--“जिसने मुझे इतनी देर तक दीनता उत्पन्न करी वही यह शत्रुकी सेना मुझे यहां आया जानकर निश्चय ही मेरा वध करनेके लिये दौड़ती आ रही है । अब मैं अकेला इस स्त्रीकी रक्षा कैसे करूं ? व इनसे किस तरह लड़ूं ? इस तरह विचार करते राजा ‘किंकर्तव्यविमूढ’ हो गया । इतनेमें “ हे स्वामिन् ! जीते रहो, विजयी होवो, आपके सेवकोंको आज्ञा दो । महाराज ! जिस प्रकार गया हुआ धन वापस मिलता है वैसे ही पुनः आज आपके दर्शन हुए । बालकके समान इन सेवकोंकी ओर प्रेम-दृष्टिसे देखो । ” इत्यादि वचन बोलनेवाली अपनी सेनाको देखकर मृगध्वज राजाको बड़ा आश्चर्य हुआ । पश्चात् हर्षित होकर राजाने सैनिकोंसे पूछा कि, “तुम यहां किस प्रकार आये ? ” सैनिकोंने उत्तर दिया कि, “ हे प्रभो ! यहां पधारे

हुए आपके चरणोंका दर्शन करना हमको उचित है । परंतु ज्ञात नहीं कि हमको जल्दीसे कौन व किस प्रकार यहां लेआया. महाराज ! आपके अहोभाग्यसे यह कोई देवताओंका प्रभाव हुआ मालूम होता है । ”

यह आश्चर्यकारक घटना देखकर राजा बहुत चकित हुआ और मनमें तर्क करने लगा कि ‘कदाचित् यह इस तोतेके ही वचनका प्रभाव है । मुझे इसका बहुत मान सत्कार करना चाहिये’ क्यों कि, इसने मुझ पर अनेक उपकार किये हैं । कहा है कि—

“ प्रत्युपकुर्वन् बह्वपि न भवति पूर्वोपकारिणस्तुल्यः ।

एकोऽनुकरोति कृतं निष्कारणमेव कुरुतेऽन्वयः ॥ १ ॥

कोई पुरुष अपने ऊपर उपकार करनेवालेका इष्ट कार्य करके कितना ही बदला दे, किंतु वह अपने ऊपर प्रथम उपकार करनेवालेकी कदापि समानता नहीं कर सकता । कारण कि, वह मनुष्य प्रथम उपकार करनेवाली व्यक्तिका उपकार ध्यानमें रख कर उसका अनुकरण करता है । तथा प्रथम उपकार करनेवाला पुरुष तो किसी भी प्रकारके बदलेकी आशा न रखते हुए उपकार करता है । ”

इस प्रकार विचार करके राजा प्रीतिपूर्वक तोतेकी तरफ देखने लगा, इतनेमें प्रातःकालके समय सूर्यके प्रकाशसे अदृश्य हुआ बुधका तारा जेमे कहीं नहीं दीखता वैसे हां वह तोता भी देखनेमें नहीं आया । राजा विचार करने लगा कि “ मैं

कुछ तो भी उपकारका बदला दूंगा, इस भयसे यह उत्तम प्राणी (तोता) उपकार करके कहीं दूर चला गया, इसमें कोई संशय नहीं । कहा है कि—

इयमुच्चधियामलौकिकी महती काऽपि कठोरचित्तता ।

उपकृत्य भवंति दूरतः परतः प्रत्युपकारभीरवः ॥ १ ॥

बुद्धिशाली सत्पुरुषोंके मनकी कोई अलौकिक तथा बहुत ही कठोरता है कि, वे उपकार करके प्रत्युपकारके भयसे शीघ्र इधर उधर हो जाते हैं । ऐसा ज्ञानी जीव निरंतर पास रहे तो कठिन प्रसंग आदि सबकुछ ज्ञात हो सकता है । कोई भी आपत्ति हो वह सहजमें दूर की जा सकती है । अथवा ऐसा सहायक जीव प्रायः मिलना ही दुर्लभ है । कदाचित मिल भी जावे तो दरीद्रीके हाथमें आये हुए धनकी भांति अधिक समय तक पास नहीं रह सकता । यह तोता कौन है ? यह इतना जानकार कैसे हुआ ? मुझे पर यह इतना दयालु क्यों ? कहाँसे आया ? और इस वृक्ष परसे कहाँ गया ? यह सब घटना कैसे हुई ? मेरी सेना यहां किस प्रकार आई ? इत्यादिक मुझे संशय है । परंतु जैसे गुफाके अंदरके अंधकारको बिना दीपक कोई दूर नहीं कर सकता, वैसे ही उस तोतेके बिना इस संशयको कौन दूर कर सकता है ? ”

इस प्रकारके नाना विचारोंसे राजा व्यग्र होगया । इतनेमें उसके मुख्य सेवकोंने इस घटनाका वर्णन पूछा । राजाने आरंभ से

ही संपूर्ण वृत्तांत तोतेका कह सुनाया। उसे सुनकर सर्व सेवकगण चकित व हर्षित हुए और बोले कि, “ हे महाराज ! थोड़े ही समयमें आपका व तोतेका कहीं भी पुनः समागम होगा। ” क्यों कि जो पुरुष किसीका हित करनेकी इच्छा करता है वह उसकी अपेक्षा रखे बिना भी नहीं रहता। जिसभांति सूखा हुआ पत्ता शीघ्र टूट जाता है, वैसे ही आपके मनका सब संशय भी ज्ञानी मुनिराजको पूछनेसे शीघ्र नष्ट होने योग्य है। कारण कि ऐसी कौनसी बात है जो ज्ञानी पुरुष नहीं जान सकते ? इस लिये हे महाराज ! आप सब चिंता छोड़कर नगरमें पधारिये, ताकि मेघके दर्शनसे जैसे मोरको हर्ष होता है वैसे आपके दर्शनसे नगरवासी लोगोंको आनंद हो। ”

सेवकोंकी यह बात राजाको पसंद आई। ठीक है, अवसरके अनुसार किया हुआ कार्य और कहा हुआ वचन किसको सम्मत नहीं होता ?

तत्पश्चात् मृगध्वज राजा परिवार सहित मंगल वाजोंकी मधुरध्वनिसे दिशाओंको गुंजाता हुआ अपने नगरकी ओर चला। अपने बिलसे दूर खड़ा हुआ चूहा तक्षक सर्पको सामने आता देख कर जिस प्रकार भाग जाता है, उसी प्रकार परिवार सहित धूम धडाकेसे आते हुए राजा मृगध्वजको देख कर चंद्रशेखर राजा भाग गया। और चालाक बुद्धि होनेके कारण उसने उसी समय अपने एक चतुर दूतके साथ मृगध्वज राजाको भेंट भेजी,

उस दूतने मृगध्वज राजाके पास आ विनय पूर्वक कहा कि, "हे महाराज! हमारे स्वामी आपको प्रसन्न करनेके हेतु आपके चरण-कमलोंमें विनंती करते हैं कि, 'किसी भूतके छलसे, आप राज्य छोड़कर कहीं चले गये' ऐसा समाचार पाकर मैं आपके नगरमें अमन चैन रख कर उसकी रक्षाके हेतु आया था, परंतु आपके सरदारोंको इस बातका ज्ञान न होनेसे वे सज धज कर शत्रुकी भांति मेरे साथ लड़ने लगे। परंतु मैंने सब तरहसे शस्त्र प्रहार सहन करके आपके नगरकी रक्षा की। समय पड़ने पर जो स्वामीका चित्तसे कार्य नहीं करता वह क्या सेवक हो सकता है ? नहीं। प्रसंग पड़नेपर पुत्र पिताके लिये, शिष्य गुरुके लिये सेवक स्वामीके लिये और स्त्री पतिके लिये अपने प्राणको तृण समान समझते हैं, यह लोकोक्ति ठीक है।"

चन्द्रशेखरके दूतके यह वचन सुनकर मृगध्वज राजाको इन वचनोंकी सत्यताके विषयमें कुछ संशय तो हुआ, परन्तु 'कुछ अंशमें सत्य होंगे' ऐसा सरल स्वभावसे मान लिया। और मिलनेके लिये सन्मुख आये हुए चन्द्रशेखर राजाका उचित सत्कार किया। यह मृगध्वज राजाकी कितनी दक्षता, सरलता तथा गंभीरता है ?

तत्पश्चात् लक्ष्मीके समान कमलमालाके साथ विष्णुके समान सुशोभित मृगध्वज राजाने अर्पूव आनन्दोत्सव सहित नगरमें प्रवेश किया और जिस भांति शंकरने चन्द्रकलाको मस्तक पर

धारण किई है उसी भांति अपनी सुन्दर प्रिय पत्नी कमलमाला-को पट्टरानी पद पर स्थापित कर दी; यही योग्य भी था । “जिस प्रकार युद्धमें जय प्राप्ति करनेवाला केवल राजा ही होता है परन्तु पैदल आदि सेना ही उसको सहायता करती है, उसी प्रकार पुत्र आदि इष्ट वस्तुओंको देनेवाला केवल धर्म है, परन्तु मंत्र आदि ही उसके सहायक हैं.” यह विचार कर राजाने पुत्र प्राप्ति के निमित्त एक दिन स्थिर चित्त होकर गांगलि ऋषिके दिये हुए मंत्रका जप किया, जिससे सब रानियोंके एक एक पुत्र उत्पन्न हुआ । सत्य है, योग्य कारणोंके मिलजाने से अवश्य ही कार्यकी उत्पाति होती है । यद्यपि राजा मृगध्वज सरल स्वभावसे चन्द्रवती रानीको बहुत मानता था, तथापि उसने पतिके साथ जो बैर किया था उस पापके कारण उसे सन्तान न हुई ।

एक दिन रात्रिके समय रानी कमलमाला सुख पूर्वक सो रही थी, उस समय उसने एक दिव्य स्वप्न देखा और राजासे इस भांति कहने लगी कि, “हे प्राणनाथ ! आज कुछ रात्रि रहते स्वप्नावस्थामें मैंने उस आश्रमके चैत्यमें विराजमान श्रीऋषभदेव भगवानको वन्दना की, उसी समय भगवानने प्रसन्न होकर मुझसे कहा कि, ‘हे भद्रे ! तू यह तोता ले तथा अन्य किसी समय मैं तुझे एक हंस दूंगा । यह कह कर भगवान. ने एक दिव्य वस्तुके समान अत्यन्त सुन्दर तोता मुझे दिया ।

प्रभुके उक्त प्रसादसे मुझे इतना आनन्द हुआ कि मानों चारों ओरसे ऐश्वर्यकी प्राप्ति हुई हो, उसी समय मेरी निद्रा सुल गई। हे स्वामी ! एकाएक प्राप्त हुए इस स्वप्नवृक्षके हमको कैसे फल मिलेंगे, सो कहिये ?”

परमानन्दरूप कंदको नव पल्लव (हरा भरा) करनेके लिये मेघवृष्टिके सदृश कमलमालाके वचन सुनकर स्वप्नफलका ज्ञाता राजा मृगध्वज बोला कि, “हे प्रिये ! देवताओंके दर्शनके समान ऐसे दिव्य स्वप्न के दर्शन भी बड़े दुर्लभ हैं। विरला ही भाग्यशाली जीव ऐसे स्वप्नोंका दर्शन करता है तथा तदनुसार फल पाता है। सुन्दरी ! जिस भांति पूर्व दिशाको सूर्य चन्द्रके समान दो प्रतापी पुत्र होते हैं उसी भांति तेरे भी अनुक्रमसे दो तेजस्वी पुत्र होवेंगे। पक्षी कुलमें श्रेष्ठ तोते और हंसकी भांति वे दोनों ही अपने राज्यमें प्रतिष्ठित होवेंगे। हे प्रिये ! इसमें जरा भी संशय नहीं कि भगवानने प्रसादरूप जो तुझे दो पुत्र दिये हैं वे दोनों अन्तमें मुक्त होकर भगवान ही के सदृश पूजनीय होवेंगे-”

यह वचन सुनकर रानी पुलकित होगई और रानी कमलमालाने, पृथ्वी अमूल्य रत्नको अथवा आकाश सूर्यको धारण करता है उसी भांति गर्भ धारण किया। मेरुपर्वतकी भूमिमें दिव्य-रसोंसे जिस प्रकारसे कल्पवृक्षका कंद पुष्ट होता है उसी प्रकार राजाके धर्मानुसार समय व्यतीत करनेसे गर्भ वृद्धिको प्राप्त हुआ तथा

यथोचित समय पर शुभ दिवस, शुभ लग्नमें पूर्व दिशामें पूर्ण चन्द्रमाके समान रानी कमलमालाके गर्भसे सुपुत्रका प्रसव हुआ। पट्टरानीका पुत्र होनेसे अन्य पुत्रकी अपेक्षा इसका जन्मोत्सव विशेषता से मनाया गया। तीसरे दिन राजाने आनन्दोत्सव सहित उस पुत्रको सूर्य चन्द्रमाका दर्शन कराया। छठे दिन राज्योचित धूमधामसे रात्रिजागरण किया। तत्पश्चात् शुभ मुहूर्त देखकर स्वप्नके अनुसार उसका 'शुकराज' नाम रखा। पंच समितिसे रक्षित धर्मकी भांति पांच धायमाताओंसे पलता हुआ शुकराज नवचन्द्रकी भांति बढने लगा। राज्य कुलकी रीतिके अनुसार राजाने अन्नप्राशन, रिंखण (घुटने चलना), चालण (चलना) वचन (बोलना), वस्त्राच्छादन (कपड़े पहनाना), वर्षगांठ इत्यादिक सर्व कार्य बड़े आनन्दोत्सवसे किये। क्रमशः शुकराज पांच वर्षका हुआ। इतने अल्पायुमें भी जिस भांति पांच वर्षका आम्रवृक्ष सुमधुर फल देता है उसी भांति वह जो कुछ भी कार्य करता था उसका फल भी सर्वदा उत्तम ही होता था। परिपूर्ण सर्व सद्गुणोंने मनहीमन स्पर्धा रख कर इन्द्रपुत्र जयन्तकी रूपसंपदाको जीतने वाले शुकराजका आश्रय लिया। यह बालक बोलनेकी चतुरता, मधुरता, पटुता तथा भावपूर्णता आदि गुणोंसे विद्वानोंकी भांति सज्जनोंके मनको आनन्दित करने लगा।

एक समय वसन्तऋतुमें जब कि सारा उद्यान सुन्दर,

सुगन्धित पुष्पोंसे सुगन्धमय हो कर लहरा रहा था, मृगध्वज राजा सारे स्त्री पुत्रादिक परिवार सहित वहां गया और पूर्व परिचित आम्रवृक्षके नीचे बैठा तथा पिछली बातोंका स्मरण करके कमलमालासे कहने लगा कि, "जिस वृक्ष पर बैठे हुए तोते द्वारा तेरा नाम सुन कर मैं वेगसे आश्रम तरफ दौड़ा और वहां तेरा पाणिग्रहण करके कृतार्थ हुआ, वह यही सुन्दर आम्रवृक्ष है."

पिताकी गोदमें बैठा हुआ शुकराज यह बात सुनकर शस्त्रसे काटी हुई कल्पवृक्षकी डालीके समान मूर्छित होकर भूमि पर गिर पड़ा। मातापिताका बड़ा हुआ हर्ष एकदम नष्ट होगया। आतुर होकर उन्होंने इस प्रकार कोलाहल किया कि सब लोग वहां एकत्रित होगये। सब लोग बहुत ही आकुल व्याकुल होगये, भारी हाहाकार मचगया। सत्य है बड़ा पुरुष सुखी तो सब सुखी और वह दुखी तो सब दुखी।

चन्दनका शीतल जल छिड़कना, केलपत्रसे हवा करना आदि अनेक शीतल उपचार करनेसे बहुत समयके बाद शुकराजको चैतन्य हुआ। यद्यपि उसकी आंखें कमलपुष्पकी भांति खुल गईं, चैतन्यतारूप सूर्यका उदय होगया तथापि मुखकमल प्रफुलित नहीं हुआ। विचारपूर्वक वह चारों ओर देखने लगा, किन्तु छद्मस्थ तीर्थंकरकी भांति मौन धारण करके बैठा रहा।

मातापिताने विचार किया कि—“दैवयोगसे यह इधर उधर देखता है इसमें कुछ तो भी छल-कपट होना चाहिये, परंतु विशेष दुःखकी बात तो यह है कि इसकी वाचा ही बंद होगयी।”

इस प्रकार संकल्प विकल्प करते चिन्तातुर होकर वे उसे घर ले गये । राजाने कुमारकी वाणी प्रकट करने के लिये नाना-प्रकारके उपाय किये, परंतु वे सर्व दुर्जन पर किये हुए उपकारोंकी भांति निष्फल होगये । छःमास इसीभांति व्यतात होगये, परंतु कुमारकी मौनावस्थाका कोई भी योस्य निदान न कर सका।

“ बड़े खेदकी बात है कि विधाता अपने रचेहुए प्रत्येकरत्नमें कुछ तो भी दोष रख देता है, जैसे कि— चंद्रमामें कलंक, सूर्यमें तीक्ष्णता, आकाशमें शून्यता, कौस्तुभमणिमें कठोरता, कल्पवृक्षमें काष्ठपन, पृथ्वीमें रजःकण, समुद्रमें खारापन, सर्व-जगत्को ठंडक देनेवाले मेघमें कृष्णता, जलमें नचिगति, स्वर्ण-मय मेरुपर्वतमें कठिनता, कपूरमें अस्थिरता, कस्तूरीमें कालापन, सज्जनोंमें निर्धनता, श्रीमानोंमें मूर्खता तथा राजाओंमें लोभ रख दिया है, वैसे ही सर्वथा निर्दोष इस कुमारको मूक (गूंगा) कर दिया है । ” इस प्रकार समस्त नगरवासी जन उच्चस्वरसे शोक करने लगे । भला, बड़े लोगोंका कुछ अनिष्ट हो जाय तो किसको खेद नहीं होता ?

कुछ कालके अनन्तर कौमुदी महोत्सवका समय आया (इस उत्सवमें प्रायः लोग प्रकाशरूपसे क्रीडा करते हैं व बहुत

ही आनंद मनाते हैं ।) तब पुनः राजा कमलमाला तथा शुक-
राज कुमारको लेकर उद्यानमें गया । और उस आम्रवृक्षको
देखतेही खिन्न होकर कमलमालासे कहने लगा कि, “ हे देवी
विषके समान इस आम्रवृक्षको दूर ही से त्यागना चाहिये । क्यों
कि इसीके नीचे अपने पुत्रकी यह दुर्दशा हुई है । ” यह कह
कर ज्योंही आगे बढ़ने लगा त्योंही एकाएक उसी वृक्षके नीचे
हर्ष उत्पन्न करनेवाली दुंदुभीकी ध्वनि हुई । राजाके पूछनेपर
किसीने कहा कि, “ श्रीदत्त मुनिमहाराजको अभी ही केवल-
ज्ञान उत्पन्न हुआ है, उसका देवता महोत्सव करते हैं । ” केवली
भगवानको पुत्रके विषयमें पूछनेकी इच्छासे राजाने उत्सुकता-
पूर्वक परिवार सहित वहां जाकर मुनिराजको वंदना करके वहां
पर्वदामें पुत्रके साथ बैठ गया । केवली मुनिराजने अमृत तुल्य
क्लेशको दूर करनेवाला उपदेश दिया ।

अवसर पाकर राजाने पूछा कि, “ हे महाराज ! मेरे इस
पुत्रकी वाचा बन्द होगई है इसका क्या कारण है ?

केवली महाराजने उत्तर दिया कि, “यह बालक बोलेगा”
यह सुन हर्षित हो राजा बोला कि “तो यह बार २ हमारी
तरफ देखता ही क्यों रह जाता है ? ” केवली महाराजने कुमार-
को लक्ष करके कहा कि, “ शुकराज ! तू मुझको यथाविधि
वन्दना कर ” यह सुनते ही शुकराजकुमारने उच्चस्वरसे वंदना
सूत्र (इच्छामि खमासमणका पाठ) बोल कर केवली महाराज-

को बंदना की। यह देख कर वहां उपस्थित सब लोगोंको बड़ा ही आश्चर्य हुआ और कहने लगे कि, “कैसी आश्चर्यकी बात है ?, मुनि महाराजकी यह कैसी अपूर्व महिमा है कि बिना मंत्र तंत्रके देखते ही यह बालक स्पष्ट बोलने लग गया ”।

पश्चात् राजाके स्पष्ट कारण पूछने पर केवली महाराजने कहा कि, “हे चतुर ! इस आकस्मिक घटनाका कारण पूर्वभवमें हुआ था, सो सुन !

पूर्व कालमें मलयदेशमें भद्रिलपुर नामक एक श्रेष्ठ नगर था। वहां याचक-जनोंको श्रेष्ठ अलंकारादि देनेवाला तथा अपने दुश्मनोंको बन्दीगृह भेजने वाला, चातुर्य, औदार्य, शौर्य आदि गुण सम्पन्न, आश्चर्यकरा चारित्रवान जितारि नामक राजा राज्य करता था। एक समय वह सभामें बैठा था कि इतनेमें द्वारपालने आकर विनती की कि, “हे देव ! आपके दर्शनकी इच्छासे आया हुआ विजयपाल राजाका शुद्धचित्त दूत द्वार पर खड़ा है।”

राजाने उसे अन्दर लानेकी आज्ञा देने पर द्वारपाल उसे लेकर अंदर आया। अपने कर्तव्यका ज्ञाता और सत्यवादी दूत राजाको प्रणाम करके कहने लगा---

“हे महाराज ! साक्षात् देवपुर (स्वर्ग) के समान देवपुर नामक एक नगर है। वहां वासुदेवके समान पराक्रमी विजयदेव नामक राजा है। उसकी महासती पट्टरानीका नाम प्रीतिमती

है। उत्तम राजनीतिसे जिस भांति साम, दाम, दंड, और भेद ये चार उपाय उत्पन्न होते हैं, उसी भांति रानीसे चार श्रेष्ठ पुत्र उत्पन्न हुए। उनके बाद हंसनीके दोनों उज्ज्वल पंखोंकी भांति मोसाल तथा पिताके दोनों ही शुद्ध कुलवाली एक सुलक्षणा व सुन्दर हंसी नामक कन्या हुई। लौकिक ऐसी रीति है कि जो वस्तु थोड़ी होती है उस पर विशेष प्रीति रहती है। तदनुसार इस कन्या पर चारों पुत्रोंकी अपेक्षा मातापिताकी विशेष प्रीति थी। जब यह कन्या आठ वर्षकी होगई तब दूसरी रानीने भी एक सर्वोत्तम सारसी नामक कन्याको जन्म दिया। मुझे ऐसा ज्ञात होता है कि विधाताने सम्पूर्ण पृथ्वी तथा स्वर्गका सार लेकर इन दोनों कन्याओंकी रचना की है। क्योंकि उन दोनोंकी तुलना आपस ही में हो सकती है। सारे विश्वमें ऐसी कोई कुमारी नहीं कि जो इनकी समानता कर सकती हो। उन दोनोंकी परस्पर इस भांति प्रीति होगई कि वे यह सोचने लगीं कि 'हम दोनोंका शरीर अलग २ न होकर एक ही होता तो उत्तम था, पर बड़ा खेद है कि ऐसा नहीं हुआ' यथा क्रम जब दोनों कामदेवरूप हस्तिके क्रीडावनेके समान, तरुणावस्थाको प्राप्त हुई तब उन्होंने त्रियोग भयसे यह निश्चय किया कि 'हम दोनों एकही पति को वरेंगी।' पश्चात् हमारे महाराजेन दोनों पुत्रियोंको मनोहर वरकी प्राप्तिके निमित्त स्वयं यथाविधि स्वयंवर मंडपकी रचना की। उसकी रचना इतनी सुन्दरतासे

की गई है कि उसकी शोभाका वर्णन करना कठिन ही नहीं बल्कि असम्भव है । घास तथा धान्यादिक की तो इतनी बड़ी राशियां (ढेर) की गई हैं कि उनके सन्मुख पर्वत-की ऊंचाईकी कोई गिन्ती नहीं । तत्पश्चात् महाराजने अंग, बंग, कलिंग, आंध्र, जालंधर, मरुस्थल, लाट, भोट, महाभोट, मेदपाट, विराट, गौड, चौड, महाराष्ट्र, सौराष्ट्र, कुरु, जंगल, गुर्जर, आभीर, कीर, काश्मीर, गोल्ल, पंचाल, मालव, हूण, चीन, महाचीन, कच्छ, कर्नाटक, कोंकण, सपादलक्ष, नेपाल, कान्यकुब्ज, कुंतल, मगध, निषध, सिन्धु, विदर्भ, द्रविड, उड्क, आदि देशोंके अनेक राजाओंको स्वयंवरमें पधारनेके लिये निमंत्रित किये हैं । हे मलयदेशाधिपति महाराज ! वहां पधारनेके लिये विनती करनेके निमित्त मेरे स्वामीने मुझे आपके चरणोंमें भेजा है, अतएव आप पधार कर स्वयंवर को सुशोभित करिए ।”

दूतके वचन सुनकर जितारि राजाके मनमें उन कन्याओंकी अभिलाषा तो उत्पन्न हुई, किन्तु ‘वे कन्याएं मुझे ही वरेंगी इसका क्या विश्वास ?’ जाऊं अथवा नहीं, इत्यादि संकल्प विकल्प करने लगा । निदान ‘पांचके साथ अपने को भी जाना चाहिये’ यह विचार कर उसने प्रस्थान किया । मार्गमें उत्तम शकुन होनेसे वह बड़े उत्साहसे वहां गया । इसी प्रकार बहुत से अन्य राजा भी वहां एकत्रित हुए ।

विजयदेव राजाने समस्त राजाओंका यथायोग्य सत्कार किया। सब राजागण देवताओंकी भांति ऊँचे २ सिंहासनों पर बैठे, इतनेमें साक्षात् लक्ष्मी और सरस्वतीके समान दोनों कुमारियाँ स्नान कर, तिलक लगाकर, शुद्ध वस्त्र तथा आभूषण पहन कर, पालकीमें बैठ कर मंडपमें आईं। जिस भांति बाजारमें ग्राहकोंको कोई दुर्लभ वस्तु विक्रीसे लेना हो तब आगे बढ़ कर शीघ्रतासे एक दूसरेसे अधिक मूल्य देने लगते हैं, उसी भांति मंडपमें बैठे हुए सब राजाओं ने उन दोनों कन्याओंकी प्राप्तिकी इच्छासे 'मैं पहिले दूंगा, मैं पहिले दूंगा' यह कल्पना कर अपनी २ दृष्टि व मन यही सर्वोत्कृष्ट मूल्य कन्याओंको दिया अर्थात् सबने अपनी दृष्टि व मन कन्याओंकी ओर लगाया तथा नानाप्रकारकी चेष्टाओं द्वारा कन्याओंके प्रति अपने २ मनकी अभिलाषा प्रकट करने लगे। तदुपरान्त सखी इस भांति राजाओं की प्रशंसा करने लगी:—

“सर्व राजाओंमें राजराजेश्वरके समान यह राजगृह नगरका राजा है। शत्रुओंके सुखका नाश करनेमें कुशल यह कौशल देशका राजा है। स्वयम्बरकी शोभासे देदीप्यमान यह गुर्जराधिपतिका पुत्र है। जयंत नामक इन्द्रपुत्रसे भी विशेष ऋद्धिसे सुशोभित यह सिन्धुदेशाधिपतिका पुत्र है। शौर्यलक्ष्मी तथा औदार्यलक्ष्मीके क्रीडास्थल तुल्य यह अंगदेशका राजा है। अत्यन्त रमणीय तथा सौम्य यह कलिंगदेशका राजा है।

कामदेवके मदको नष्ट करने वाला रूपशाली यह बंगदेशका राजा है । अपार लक्ष्मीका स्वामी यह मालवेदेशाधिपति है । यह प्रजापालक तथा अत्यन्त दयालु नेपालदेशका राजा है । प्रसिद्ध सद्गुणोंसे जो बहुत आदरणीय है ऐसा यह कुरुदेशका राजा है । शत्रुओंका समूल नष्ट करने वाला यह निषधदेशका राजा है । कीर्तिरूप चंदनवृक्षोंकी सुगन्धीसे साक्षात् मलयपर्वतके समान सुशोभित यह मलयेदेशका राजा है ”

इस भांति जब सखी समस्त राजाओंकी प्रशंसा कर चुकी तब जैसे इन्दुमतीने अजराजाको वरा वैसे ही हंसी तथा सारसी दोनोंने जितारि राजाके गलेमें वरमाला डाल दी । उस समय अन्य राजाओं के मनमें इच्छा, उत्सुकता, संशय, अहंकार, खेद, लज्जा, पश्चात्ताप तथा अदृष्टि आदि मनोविकार प्रकट हुए । कितनेक समझदार राजाओंको आनन्द भी हुआ । किसी २ राजाको स्वयंवर पर, किसीको अपने आगमन पर किसीको अपने भाग्य पर तथा किसी २ को अपने मनुष्य भव पर अरुचि उत्पन्न हुई.

तदनन्तर राजा विजयदेवने शुभ दिन देखकर बड़े समारोहके साथ जितारि राजाके साथ अपनी दोनों कन्याओंका विवाह किया, तथा बहुतसा द्रव्य, वाहन, सेना आदि देकर वरका यथोचित सत्कार किया ।

दूसरे बड़े २ राजा भी इस स्वयंवरमें निराश होगये इसका

यही कारण है कि पुण्यके बिना मनुष्योंको मनवांछित वस्तु कभी प्राप्त नहीं होती । यद्यपि जितारि राजासे इर्षा रखनेवाले उस समय सैकड़ों राजा थे पर बड़े ही आश्चर्य की बात है कि कोई भी कुछ उपद्रव न कर सका, अथवा यह मानना चाहिये कि जो स्वयं जितारि शत्रुको जीतने वाला है उसका पराभव कौन कर सकता है ?

कुछ समयके पश्चात् रति प्रीतिके समान दो स्त्रियोंसे काम-देवको लज्जित करता तथा दूसरे राजाओंके गर्वको खंडन करता हुआ राजा जितारि अपने देशकी ओर विदा हुआ । वहां पहुंच कर हंसी तथा सारसी दोनोंको पट्टाभिषेक किया । राजा अपने दोनों नेत्रोंकी भांति दोनों पर समान प्रीति रखता था. परन्तु दोनोंके मनमें सपत्नीभाव (सौतपन) से स्वाभाविक भ्रम पैदा होगया । इससे दोनों का जो वास्तविक प्रेम था वह स्थिर न रह सका । हंसी सरल स्वभाव थी, किन्तु सारसीकी कपटी प्रकृति थी । समयानुसार उसने राजाको प्रसन्न करनेके हेतु कपट करके मायासे बहुत भारी कर्म संचय किया । जीव कपट करके व्यर्थ अपने आपको परलोकमें नीच गतिमें ले जाते हैं, वह उनकी कितनी अज्ञानता है ?

हंसी तो सरल प्रकृति थी ही । उसने अपने सद्गुणोंसे कर्म बंधनोंको शिथिल कर दिया तथा राजाको भी मान्य होगई एक समय राजा जितारी हंसी व सारसीके साथ

झरोखेमें बैठ कर नगरकी शोभा देख रहा था। इतने ही में नगरमेंसे बाहिर निकलता हुआ यात्रियोंका पवित्र संघ उसकी दृष्टिमें आया। राजाने अपने एक सेवकसे पूछा कि “ यह क्या है ? ” सेवकने वहां जाकर ज्ञात किया व पुनः वापस आकर राजासे निवेदन किया कि “ हे महाराज ! यह शंखपुर (शंखेश्वर) से आया हुआ संघ विमलाद्री नामक महार्थी (पाली-ताणा) को जाता है. ”

यह सुन कौतुक वश राजा उस संघमें गया, वहां श्रुत-सागर नामक आचार्यको देखकर वंदना करी और शुद्ध परिणामसे पूछा कि, “ इस जगत्में विमलाद्री यह कौन है ? यह तीर्थ कैसे हुआ तथा इसका क्या माहात्म्य है ! ”

क्षीराश्रव नामक महालब्धि धारक आचार्य श्रुतसागर सूराने राजाके वचन सुनकर कहा—

“ हे राजन् ! धर्म ही से इष्ट मनोरथकी सिद्धी होती है, कारण कि जगत्में धर्म एक मात्र सारभूत है, धर्ममें भी अर्हत्प्रणीत धर्म श्रेष्ठ है और उसमें भी तत्त्वश्रद्धात्नरूप समकित श्रेष्ठ है। कारण कि समकित बिना समस्त अज्ञानकष्ट रूप क्रियाएं बांझ वृक्षकी भांति निष्फल है। तत्त्वश्रद्धानरूप सम-कितमें वीतराग देव, शुद्ध प्ररूपक गुरु तथा केवलभाषित धर्म ये तीन तत्त्व आते हैं। इन तीनों तत्त्वोंमें वीतराग देव मुख्य हैं। सर्व वीतरागोंमें प्रथम युगादाश श्री ऋषभदेव भगवान् हैं। इन

भगवानके शासनमें इस विमलाद्री तीर्थकी अद्भुत महिमा प्रकट हुई । सब तीर्थोंमें यही विमलाद्री तीर्थ मुख्य श्रेष्ठ है । पृथक् २ कारणोंसे इस तीर्थके बहुतसे नाम हैं, यथा:— १ सिद्धि क्षेत्र, २ तीर्थराज, ३ मरुदेव, ४ भगीरथ, ५ विमलाचल, ६ बाहुबली ७ सहस्रकमल, ८ तालध्वज, ९ कदंब, १० शतपत्र, ११ नगाधिराज, १२ अष्टोत्तरशतकूट, १३ सहस्रपत्र, १४ ढंक, १५ लौहित्य, १६ कपर्दिनिवास, १७ सिद्धिशेखर, १८ पुंडरीक, १९ मुक्तिनिलय, २० सिद्धिपर्वत तथा २१ शत्रुंजय । ऐसे इस तीर्थके इक्कीस नाम देवता, मनुष्य तथा ऋषियोंने कहे हैं । वही वर्तमान समयमें भव्य प्राणी कहते हैं । उपरोक्त ये नाम इसी अवसर्पिणीमें जानो । जिनमेंसे कितने ही नाम तो पूर्वकाल में होगये हैं और कितने ही भविष्कालमें होनेवाले हैं, इनमें प्रत्यक्ष अर्थवाला 'शत्रुंजय' यह नाम आते भवमें तू ही निर्माण करेगा, यह हमने ज्ञानियोंके मुंहसे सुना है । इसके अतिरिक्त श्री सुधर्मास्वामी रचित श्रीशत्रुंजयमहाकल्प में इस तीर्थके १०८ नाम कहे हैं, यथा:— १ विमलाद्री, २ सुरशैल, ३ सिद्धि-क्षेत्र, ४ महाचल, ५ शत्रुंजय, ६ पुंडरीक, ७ पुण्यराशी, ८ श्रीपद, ९ सुभद्र, १० पर्वतेश्वर, ११ दृढशक्ति, १२ अकर्मक, १३ महापद्म, १४ पुष्पदंत, १५ शाश्वत, १६ सर्वकामप्रद, १७ मुक्तिगृह, १८ महातीर्थ, १९ पृथ्वीपीठ, २० प्रभुपद, २१ पातालमूल, २२ कैलास, २३ क्षितिमंडलमंडन इत्यादि

१०८ नाम कहे हैं। इसी अवसर्पिणीमें ऋषभदेव भगवानसे लेकर चार तीर्थकरोंका यहां समवसरण हुआ, है तथा भविष्यमें नेमिनाथके सिवाय बाकी १९ तीर्थकरोंका समवसरण यहां होनेवाला है। इसी प्रकार पूर्वकालमें यहां अनन्त सिद्ध हुए हैं व भविष्यकालमें भी होंगे, इसी कारण इस तीर्थको सिद्ध-क्षेत्र कहते हैं। सारे जगत्के स्तुति करने योग्य महानिदेह-क्षेत्रमें विचरनेवाले शाश्वत तीर्थकर भी इस तीर्थकी बहुत प्रशंसा करते हैं, उसी प्रकार वहां के भव्य जीव भी नित्य इसका स्मरण करते हैं। जिस भांति उत्तमभूमिमें बोया हुआ बीज कईगुणा हो जाता है, उसी भांति इस शाश्वततीर्थमें की हुई यात्रा, पूजा, तपस्या, स्नात्र तथा दान ये सर्व अनन्त-गुण फल देते हैं। कहा है कि—

पत्न्योपमसहस्रं च ध्यानालक्ष्मभिप्रहात् ।

दुष्कर्म क्षीयते मार्गे, सागरोपमसंमितम् ॥ १ ॥

शत्रुं जये जिने दृष्टे, दुर्गतिद्वितयं क्षिपेत् ।

सागराणां सहस्रं च, पूजान्नात्रविधानतः ॥ २ ॥

एकैकस्मिन्पदे दत्ते, पुंडरीकगिरिं प्रति ।

भवकोटिकृतेभ्यऽपि, पातकेभ्यः प्रमुच्यते ॥ ३ ॥

अन्यत्र पूर्वकोट्या यत्, शुभध्यानेन शुद्धधीः ।

प्राणी बध्नाति सत्कर्म, मुहूर्तादिह तद् ध्रुवम् ॥ ४ ॥

जं कोडीए पुण्णं कामिअआहारभोइआए ३ ।
 तं लहइ तत्थ पुण्णं एगोवासेण सेत्तुंजे ॥ ५ ॥
 जं किंचि नाम तित्थं सग्गे पायाळि माणुसे लोए ।
 तं सव्वमेव दिट्ठं पुंडरीए वंदिएसंते ॥ ६ ॥
 पडिलंभंते संघं दिट्ठमदिट्ठे अ साहु सित्तुंजे ।
 कोडिगुणं च अदिट्ठे दिट्ठेउ अणंतगं होइ ॥ ७ ॥
 नवकारपोरिसीए पुरिमड्डेगासणं च आयामं ।
 पुंडरिअं च सरंतो फलकंखी कुणइ अभत्तट्ठं ॥ ८ ॥
 छट्ठमदसमदुवालसाण मासद्धमासखमणाणं ।
 तिगरणसुद्धो लहइ सित्तुंजं संभरंतो अ ॥ ९ ॥
 नावि तं सुवण्णभूमीभूसणदाणेण अन्नतित्थेसु ।
 जं पावइ पुण्णफलं पूयाणहवणेण सित्तुंजे ॥ १० ॥
 धूवे पक्खुववासो मासक्खणं कपूरधूर्वाभि ।
 कत्तिअमासक्खवणं साहु पडिलाभिए लहइ । ११ ॥

शत्रुंजयतीर्थका ध्यान करनेसे हजार पल्योषमके बराबर
 अशुभकर्मका स्थितिक्षय हो जाता है, यात्राकी बाधा (मानता)
 लेनेसे लाख पल्योषमके समान अशुभकर्मकी स्थितिका क्षय हो
 जाता है और शत्रुंजयको जानेके मार्गमें पैर रखनेसे एक सागरो-
 षमके बराबर अशुभ कर्मकी स्थितिका क्षय होता है । शत्रुंजय-
 पर्वत ऊपर श्रीआदिनाथ भगवानके दर्शन करनेसे तीर्थच व
 नारकी इन दो दुर्गतियोंका नाश होता है । उसी तरह कोई

भव्यप्राणी वहाँ स्नात्र पूजा करे तो हजार सागरोपमके बराबर अशुभकर्मकी स्थितिका क्षय होता है। कोई भव्यजीव शत्रुंजय-पर्वतकी ओर जानेके लिये एक एक पैर रखे तो करोड़ों भवोंमें किये हुए पापोंसे भी वह मुक्त हो जाता है। कोई शुद्धपरिणाम-वाला प्राणी अन्य स्थान पर करोड़ पूर्व पर्यन्त शुभध्यान करके जितना शुभ कर्म संचय करता है, उतना शुभ कर्म इस पर्वतमें दो घड़ी मात्र शुभ ध्यान करनेसे संचय कर लेता है। करोड़ों वर्ष तक मुनिराजको इच्छितआहार देनेसे तथा साधर्मी भाईको इच्छाभोजन देनेसे जो पुण्य संचित होता है वही पुण्य शत्रुंजयपर्वत ऊपर सिर्फ एक उगवास करनेसे संचित होता है; जो भव्य प्राणी भावपूर्वक शत्रुंजयपर्वतको वंदना करता है उसने स्वर्गमें, पातालमें तथा मनुष्यक्षेत्रमें जितने तीर्थ हैं उन सबका दर्शन करलिया ऐसा समझना चाहिये। यदि कोई प्राणी श्रेष्ठ शत्रुंजयतीर्थके दर्शन करे अथवा न करे परन्तु जो शत्रुंजय को जाते हुए संघका वात्सल्य करे तो भी बहुत ही शुभ कर्म संचय करता है, यथा:—

शत्रुंजयपर्वतको न देख कर भी जो शत्रुंजयके संघका ही केवल वात्सल्य करता है उसे साधारण साधर्मीवात्सल्यकी अपेक्षा करोड़गुणा पुण्य प्राप्त होता है, तथा जो शत्रुंजयके दर्शन करके संघ वात्सल्य करता है वह अनंतगुणा पुण्य प्राप्त करता है। जो भव्य प्राणी मन, वचन कायाकी शुद्धि रखकर

प्रथम शत्रुंजयतीर्थका स्मरण करे, पश्चात् आहार त्यागके निमित्त नोकारसी, पोरिसी, पुरिमड्ड, एकाशन, आंघ्रिल, छट्ट, अट्टम, दशम (चार उपवास), दुवालय (पांच उपवास), मासखमण, अर्धमासखमण (पन्द्रह उपवास) आदि पञ्चखान करे, वह पञ्चखानका परिपूर्ण फल पाता है । शत्रुंजयपर्वतके ऊपर पूजा तथा स्नात्र करनेसे मनुष्यको जो पुण्य उपलब्ध होता है, वह पुण्य अन्यतीर्थोंमें चाहे कितना ही स्वर्ण, भूमि तथा आभूषणका दान देने परभी नहीं प्राप्त हो सकता । कोई प्राणी शत्रुंजयपर्वत पर धूप खेवे तो पन्द्रह उपवासका, कपूरका दीपक करे तो मासखमणका और मुनिराजको योग्य आहार दान करे तो कार्तिकमासमें किये हुए मासखमणका पुण्य प्राप्त करता है । जिस प्रकार तालाब, सरोवर, नदियां आदि जलके सामान्यस्थान तथा समुद्र जलनिधि कहलाता है उसीभांति अन्य तो तीर्थ हैं किन्तु यह शत्रुंजय महातीर्थ कहलाता है । जिस पुरुषने शत्रुंजयकी यात्रा करके अपने कर्तव्यका पालन नहीं किया उसका मनुष्यभव, जीवन, धन, कुटुम्ब आदि सब व्यर्थ हैं । जिसने शत्रुंजय तीर्थको वन्दना नहीं की उसको मनुष्यभव मिलने पर भी न मिलनेके समान है, एवं जीवित होते हुए भी उसे मृतक तुल्य समझना चाहिये, तथा वह बहुत ज्ञानी होने पर भी अज्ञानीके ही सदृश्य है । जब कि दान, शील, तप तथा तीव्र धर्म क्रियाएं करना कठिन हैं तो सहज ही में होने

वाली तीर्थ वन्दना आदर सहित क्यों न करना चाहिये ? जो पुरुष * छः-- री पालन करके पैदल ही शत्रुंजय तीर्थकी सात यात्राएं करता है, वह पुरुष धन्य व जगत-मान्य है। कहा है कि—

छद्देणं भत्तेणं अपाणएणं तु सत्त जत्ताओ ।

जो कुण्ड सिक्तुंजे सो तइअभवे लहइ सिद्धि ॥ १ ॥

जो मनुष्य लगातार चौविहार छट्ट करके शत्रुंजय तीर्थकी सात यात्राएं करता है वह तीसरे भवमें सिद्धिको प्राप्त होता है।

जिस भांति मेघजल काली मिट्टीमें मार्दव (कोमलता) उत्पन्न कर देता है उसीभांति गुरुमहाराज श्रीश्रुतसागरसूरिके वचनसे राजा जितारीका मन भद्रक होनेसे अत्यन्त कोमल होगया। सूर्यके समान श्रीश्रुतसागरसूरिके सूर्यरश्मि समान वचनोंसे जितारी राजाके मनमें स्थित मिथ्यात्व-तमका नाश होकर सम्यक्त्वरूप प्रकाश उत्पन्न होगया। समकित लाभ होनेसे राजाका मन शत्रुंजयकी यात्रा करनेको बहुत उत्सुक होगया जिससे उसने शीघ्र मंत्रियोंको आज्ञा की कि, “हे मंत्री-जनों! बहुत जल्दी यात्राकी तैयारी करो।” यह कह कर राजा-ने सहसा ऐसा अभिग्रह लिया कि, “जब मैं पैदल चल कर

* १ एकलहारी-दिनमें एक समय भोजन करना. २ सचित्तपरि-हारी-सचित्त वस्तुका त्याग करना. ३ ब्रह्मचारी-ब्रह्मचर्य पालन करना ४ पयचारी-पैदल चलना. ५ गुरुसहचारी-गुरुके साथ चलना, तथा ६ भूमिसंथारी-भूमि पर सोना ।

शत्रुंजय पर्वत पर श्रीकृष्णभदेव भगवानको वन्दना करूंगा तभी मैं अन्न जल ग्रहण करूंगा ” हंसी, सारसी आदि अन्य लोगोंने भी ‘यथा राजा तथा प्रजा’ की नीतिके अनुसार यही अभिग्रह लिया । धर्मकार्य करते समय यदि मनुष्यको विचार करना पड़े तो वह भाव ही क्या है ? इसीलिये राजादिकोंने केवल भाववश बिना विचार किये ही तुरत अभिग्रह लिया । मंत्री आदि लोगोंने राजाको नानाभांतिसे समझाया कि, “ कहां तो अपना नगर और कहां शत्रुंजय तीर्थ ! सहसा ऐसा अभिग्रह लेना यह कैसा कदाग्रह है ? यह कितने खेदकी बात है ? ” इसी भांति श्रुत-सागर स्वरिजीने भी कहा कि, “ हे राजन् ! वास्तवमें विचार करके ही अभिग्रह लेना योग्य है, क्योंकि बिना विचार कार्य करनेसे यदि पीछेसे पश्चात्ताप होवे तो उस कार्यसे कोई लाभ नहीं, इतना ही नहीं बल्कि आर्त्तध्यानसे अशुभकर्मका संचय होता है ” जितारी राजाने कहा कि, “ गुरुमहाराज ! पानी पीकर जात पूछने अथवा मुंडनके पश्चात् मुहूर्त पूछनेसे जैसे कोई लाभ नहीं वैसे ही अब विचार करनेसे क्या लाभ है ? हे महाराज ! किसी प्रकार पश्चात्ताप न करके मैं अपने अभिग्रहका पालन करूंगा तथा आपके चरणोंके प्रसादसे शत्रुंजय पर जाकर श्रीकृष्णभदेव भगवानके दर्शन करूंगा, इसमें कौनसी असंभव बात है ? क्या सूर्यका सारथी अरुण पंगु होने पर भी सूर्यकी महेरबानीसे नित्य संपूर्ण आकाश मार्गका भ्रमण नहीं करता ? ” यह कह कर राजा सकुटुंबपरिवार संघके साथ चला ।

मानों कर्मरूप शत्रु पर चढ़ाई करना हो इस भांति शीघ्रता-से मार्ग काटते हुए कुछ दिनोंके पश्चात् राजा काश्मीर देशके एक वनमें पहुँचा। उस समय क्षुधा, तृषा, पैदल चलना तथा मार्गका परिश्रम इत्यादि कारणोंसे राजा तथा दोनों रानियाँ व्याकुल होगये थे। तब राजाके सिंह नामक चतुर प्रधानने चिन्तातुर होकर श्रुतसागरसूरिजीसे कहा कि, “ गुरुमहाराज ! आप युक्तिसे राजाके मनका समाधान करिये, अन्यथा धर्मके स्थानमें उलटी लोकमें हंसी होगी। ” यह सुन श्रीश्रुतसागरसूरिजीने राजासे कहा कि, “ हे राजन् ! अब तू लाभालाभका विचार कर। सहसा किया हुआ कोई कार्य ग्रामाणिक नहीं समझा जाता। इसी हेतुसे पञ्चकखानके दंडकमें सब जगह सहसाकारादिको छूट रखी है। ”

राजा जितारि यद्यपि शरीरसे व्याकुल होगया था तथापि मनसे सावधान था। उसने कहा कि, “ हे महाराज ! यह उपदेश उस व्यक्ति पर घटित हो सकता है जो की हुई प्रतिज्ञाका पालन करनेमें अशक्त हो, मैं तो सर्वथा मेरे अभिग्रहको पालनेमें समर्थ हूँ। प्राण जाय तो चिन्ता नहीं पर मेरा अभिग्रह कदापि भंग नहीं हो सकता। ”

उस समय हंसी तथा सारसीने भी धैर्य तथा उत्साह पूर्वक अपने पतिको उत्तेजन देकर अपना अभिग्रह पालनेके लिये आग्रह करके वीरपत्नीत्व प्रकट किया। सब लोग भी राजाकी

मनही मन इस भांति स्तुति करने लगे कि, “ अहो ! इस राजा-का मन धर्ममें कितना तल्लीन है ? इसका कुटुम्ब भी कैसा धर्मी है ? तथा इसका सच्व भी कितना दृढ़ है ?

सिंहमंत्री चित्तके समान चिन्तासे व्याकुल होकर विचार करने लगा कि अब क्या होगा ? इस समय क्या करना उचित है ? उसका हृदय-कमल संतापसे कुम्हला गया और समय होने पर वह सो गया । इतनेमें शत्रुंजयके अधिष्ठायक सिंह नामक यक्ष-ने स्वप्नमें प्रकट होकर उसे कहा कि, “ हे मंत्रीश ! चिन्ता न कर, राजा जितारिके साहससे संतुष्ट होकर मैं अपनी दिव्य-शक्तिसे शत्रुंजय तीर्थको यहां पास ही ले आता हूं । प्रातःकालमें तुम प्रयाण करोगे वैसे ही तुमको निश्चय शत्रुंजयके दर्शन होंगे, वहां भगवान् ऋषभदेवके दर्शन करके तुमने अपना अभिग्रह पूर्ण करना ।” यह सुन मंत्रीने स्वप्न ही में यक्षसे कहा कि “ हे यक्ष ! जैसे तूने मुझे सावधान किया वैसेही सब लोगोंको भी कर, ताकि सबको विश्वास आवे, ” मंत्रीके वचनानुसार यक्षने सब लोगोंको स्वप्नमें उक्त बात कह दी और उसी समय उसने क्षण-मात्रमें उस वनके पर्वत पर नया शत्रुंजय तीर्थको बनाकर स्थापित कर दिया । सत्य है, देवता क्या नहीं कर सकते । देवताओंने विकुर्वित की हुई वस्तु यद्यपि अधिक समय तक न रहे किंतु एक पक्ष तकही रह सकती हैं परन्तु गिरनार ऊपरकी जिन-मूर्तिके समान देवताओंने रची हुई वस्तु तो चिरकाल तकभी रहती है ।

प्रातःकाल होते ही श्रीश्रुतसागरदेव ~~जिसने स्वामी की स्ति~~
 सिंह मंत्री, रानियां तथा संघके अन्य सब लोग परस्पर स्वप्न-
 की चर्चा करने लगे । सबके स्वप्न एक समान मिले, तब सब
 लोग आगे बढ़े, और स्वप्नके अनुसार वहीं शत्रुजय तीर्थको
 देखकर बहुत प्रसन्न हुए । सबने श्रीकृष्णभेदेव भगवानकी वंदना-
 पूर्वक पूजा करके अपना अभिग्रह पूर्ण किया । उस समय श्रीभग-
 वानके दर्शनके उत्पन्न हुए हर्षसे उनका शरीर पुलकायमान होगया
 तथा सुकृतरूपमें उनकी आत्मा निमग्न हो गई । तत्पश्चात् सबने
 स्नात्र पूजा करी, ध्वजा चढ़ाई, माला पहिराई तथा अन्य धर्म-
 कृत्य करके वहांसे विदा हुए ।

राजा वहांसे चला तो सही किन्तु भगवानकी गुणरूप
 मोहिनीसे आकर्षित होकर पुनः वन्दना करनेको फिरा । इस
 भांति मानो सात नरकरूप दुर्गतिमें पडनेसे आत्माका रक्षण
 करनेके हेतु सात बार मार्ग चला और सात बार भगवानको
 वन्दना करनेके लिये वापस लौटा । यह देखकर सिंहमंत्रीने
 राजासे प्रश्न किया कि, "हे महाराज ! यह क्या है ?" राजाने
 उत्तर दिया कि-बालक जिस भांति माताको नहीं छोड़ सकता
 वैसे ही मैं इस तीर्थराजको नहीं छोड़ सकता, अतएव मेरे यहीं
 रहने के लिये एक उत्तम नगरकी रचना कर, " संच है ऐसा
 मन वांछित स्थान कौन बुद्धिमान छोड़ सकता है ?

बुद्धिमान मंत्रीने अपने स्वामीकी आज्ञा पाते ही वास्तुक-

शास्त्रमें वर्णित रीतिके अनुसार 'विमलपुर' नामक नगर बसाया। इस नगरमें किसी भांतिका भी कर आदि नहीं लिया जाता था। अतः संघमेंसे अन्य भी बहुतसे मनुष्य स्वार्थ तथा तीर्थकृत्य की साधनाके हेतु वहां बस गये। राजा जितारि भी उत्तम राज्य-ऋद्धिका भोग करता हुआ द्वारिकामें कृष्णकी भांति सुखसे रहने लगा। वहां भगवानके मंदिर ऊपर एक हंस सदृश मधुरभाषी तोता रहता था। वह राजाके मनको बहुत रिझाने लगा, इससे वह राजाका एक खिलौना होगया। अरिहंत प्रभुके मंदिरमें जाने पर भी राजाका अरिहंत ध्यान धुंएसे मलीन हुए चित्रोंकी भांति तोतेके क्रीडारससे मलीन होगया। कुछ समय जाने पर राजा जितारिका अंतकाल आया तब उसने धर्मी लोगोंकी रीतिके अनुसार श्रीकृष्णभदेव भगवानके चरण-कमलोंके पास अनशन किया। उस समय हंसी तथा सारसीने धैर्य धारण कर राजाकी सम्हाल की तथा उसे नवकारमंत्र सुनाया। उसी समय पूर्वपरिचित तोतेने मंदिरके शिखर पर बैठ कर मधुर ध्वनी की। कर्मकी विचित्रगतिसे राजाका ध्यान उस तरफ चला गया और अंतमें तोतेके ध्यानसे राजा तोते ही की योनिमें उत्पन्न हुआ।

जिस तरह अपनी ही छायाका उल्लंघन करना अशक्य है उसी तरह भवितव्यताका भी उल्लंघन नहीं किया जा सकता, पंडित लोगोंने कहा है कि 'ऐसी मति, तैसी गति' इसी उक्तिके

अनुसार राजा जितारि तोता हुआ । भगवान् जिनेश्वरने कहा है कि--“तोता मैना आदि तिर्यचके साथ क्रीडा करनेसे अनर्थ उत्पन्न होता है,” यह सत्य है । धर्मपरायण होते हुए भी राजा जितारिकी इस क्रीडासे ऐसी दुर्गति हुई, इससे जीवकी विचित्र-गति और जिनभाषित स्याद्वाद स्पष्ट प्रकट होता है । यद्यपि शत्रुंजयतीर्थकी यात्रा करनेसे मनुष्यके नारकी तथा तिर्यच इन दो दुर्गतियोंको प्राप्त करने वाले अशुभ कर्मका क्षय होता है तथापि क्षय होने के बाद भी जो वह अशुभ कर्म का संचय करे तो अवश्य भोगना पड़ता है । इससे तीर्थका माहात्म्य लेश मात्र भी कम नहीं होता, कारण कि वैद्यके अच्छे कर देने पर भी यदि कोई अपथ्य करके रोगी हो जावे तो उसमें वैद्यका क्या दोष? जो भी राजा जितारि पूर्वभवके दुर्दैव वश उत्पन्न हुए कुध्यानसे तिर्यच-योनिमें गया तो भी थोड़े ही कालमें उसे कल्याणकारी श्रेष्ठ समकितका फल प्राप्त होगा ।

तत्पश्चात् राजाका अग्नि संस्कारादिक उत्तर कार्य होजाने पर हंसी तथा सारसी दोनों रानियोंने उसी दिन दीक्षा ली, और अंतमें मृत्यु पाकर वे स्वर्गमें देवियां हुई । अवधिज्ञानसे जब उन्हें यह ज्ञात हुआ कि उनका पति तिर्यच-योनि में तोता हुआ है तब बड़े खेदसे उन्होंने वहां जाकर उसे प्रतिबोधित किया व उसी तीर्थ पर उससे अनशन कराया । वह तौता मृत्यु पाकर उन्हीं देवियोंका प्रतिरूप देव हुआ । कालक्रमसे

प्रथम वे दोनों देवियां स्वर्गसे च्युत हुईं। तब उस देवने केवली भगवानसे पूछा कि, “हे प्रभो ! मैं सुलभबोधि हूं कि दुर्लभ-बोधि ?” केवली भगवानने उत्तर दिया-“ तूं सुलभबोधि है । पुनः उसने पूछा “यह बात किस भांति सो समझाइए .” केवलीने कहा कि, “जो तेरी दोनों देवियां स्वर्गसे पतित हुई हैं उनमें हंसीका जीव तो क्षितिप्रतिष्ठित नगरमें ऋतुध्वज राजाका पुत्र मृगध्वज राजा हुआ है, और सारसीका जीव पूर्व-भवमें माया करनेसे काश्मीर देशके अंदर विमलाचलके पास एक आश्रममें गांगलि ऋषिकी कमलमाला नामक कन्या हुई है, तूं अब उनका जातिस्मरणज्ञान वाला पुत्र होगा”

श्रीदत्त मुनि कहते हैं कि-“ हे मृगध्वज राजन् ! केवलीके मुखसे यह बात सुनकर तोतेका जीव देव समान मधुर वचनसे तुझे उस आश्रममें ले गया, वहां तुझे कन्याको पहिरानेके लिये वस्त्रालंकारादि दिये, वापस तुझे लाकर तेरी सेनामें सम्मिलित किया और पश्चात् वह स्वर्गमें गया । वहांसे च्युत होकर अब यह तेरा पुत्र हुआ है । इसने अपना वर्णन सुनकर जातिस्मरण ज्ञान पाकर विचार किया कि, “पूर्वभवमें जो मेरी दो स्त्रियां थी वही इस भवमें मेरे माता पिता हुए हैं, अब मैं उनको हे तात ! हे मात ! यह किस प्रकार कहूं ? इससे मौन धारण करना ही उत्तम है” इस विचारसे कुछ भी दोष न होने पर भी इसने आज तक मौन साधन किया और अभी हमारा वचन न उल्लंघन

करना यह सोच कर बोलने लगा । पूर्वभवके अभ्याससे बाल्यावस्था होते भी इसका समकित आदि दृढ़ है । पूर्वभवके ही अभ्याससे संस्कार दृढ़ रहते हैं।”

पश्चात् शुकराजने भी यह संपूर्ण बात निष्कपट भावसे स्वीकार की । केवली महाराजने पुनः कहा कि, “हे राजपुत्र ! इसमें आश्चर्य ही क्या? यह संसार नाटकके समान है । सर्वजीवोंने परस्पर सब प्रकारके सम्बंध अनंत बार पाये हैं । कारण कि जो इस भवमें पिता है, वह दूसरे भवमें पुत्र हो जाता है, पुत्र है वह पिता हो जाता है, स्त्री है वह माता हो जाती है और माता है वह पिता हो जाता है । ऐसी कोई भी जाति नहीं, योनि नहीं, स्थान नहीं तथा कुल नहीं कि जहां सर्व प्राणी अनेकों बार जन्मे तथा मरे न हों । इस लिये सत्पुरुषने समता रख कर किसी भी वस्तु पर राग, द्वेष न रखना चाहिये । केवल व्यवहार-मार्ग अनुसरण करना उचित है ”

पश्चात् राजाको संबोधन करके श्रीदत्त मुनि बोले कि, “हे राजन् ! मुझे ऐसा ही संबन्ध विशेष वैराग्यका कारण हुआ है, सो चित्त देकर सुन—

श्रीदेवीके रहनेके मंदिर समान श्रीमंदिरपुर नामक नगरमें एक स्त्रीलंपट, कपटी तथा दुर्दान्त (जो किसीसे जीता न जा सके) सूरकान्त नामक राजा राज्य करता था । उसी नगरमें महान उदार सोम नामक श्रेष्ठ (सेठ) रहता था ।

उसकी स्त्री सोमश्री अत्यन्त सुन्दर थी । उसको श्रीदत्त नामक एक पुत्र तथा श्रीमती नामक पुत्र-वधू थी । इन चारोंका मिलाप उत्तम पुण्यके योगही से हुआ था । कहा भी है कि -

यस्य पुत्रा वशे भक्ता, भार्या छंदोनुवर्तिनी ।

विभवेष्वपि संतोषस्तस्य स्वर्ग इहैव हि ॥ १ ॥

जिस पुरुषका पुत्र आज्ञाकारी हो, स्त्री पतिव्रता तथा आज्ञाधारिणी हो तथा वह मिले उतने ही द्रव्यमें संतुष्ट हो उसे यही लोक स्वर्ग है । एक समय सोमश्रेष्ठि स्त्री सहित वायु सेवनार्थ उद्यानमें गया । देवयोगसे राजा सूरकान्त भी उसी उद्यानमें आया । वहां सुन्दर सोमश्रीको देखकर उस पर आसक्त हो गया और राग वश होकर क्षण मात्रमें उसे अपने अन्तःपुरमें भेज दिई । सत्य है-तरुणावस्था, धनकी विपुलता, अधिकार तथा अविवेक इन चारोंमेंसे कोई एक वस्तु भी हो तो अनर्थकारी है तो फिर जहां चारों एकत्र हो जावे वहां अनर्थ उत्पन्न होनेमें संशय ही क्या है ?

सोमश्रेष्ठिने मंत्री आदिसे प्रेरणा की तदनुसार उन लोगोंने युक्ति पूर्वक राजाको समझाया कि “महाराज ! अन्याय अकेला ही राजरूप लताको जलाकर भस्म कर देनेके लिये दावाग्निके समान है, ऐसी अवस्थामें कौन राज्यवृद्धिकी इच्छुक व्यक्ति परस्त्रीकी लालसा करता है ? सदैव राजा लोग ही प्रजाको अन्याय मार्गसे बचाते हैं उसके बदले यदि स्वयं वेही अन्याय

करने लग जावें तो मानों समुद्रमें बलवान मत्स्य निर्बल मत्स्य-को खा जाते हैं, वही नीति हुई.” इत्यादि, इस कथनका राजाके मन पर कुछ भी असर न हुआ, उसने उलटे मंत्री आदिको निकाल दिये और नाना भांतिसे अग्निवर्षाके समान दुर्वचन कहने लगा । मंत्रियोंने सोमश्रेष्ठिको समझाया कि, “हे श्रीष्ठ ! अब कोई उपाय नहीं दीखता । हाथीको किस भांति कान पर रखना चाहिये ? जो खेतके आस पास लगाई हुई बाड़ ही खेत खाने लगे तो क्या उपाय किया जाय ? कहा है कि-जो माता पुत्रको विप दे, पिता पुत्रको बेचे और राजा सर्वस्व हरण करे तो उपाय ही क्या ?

पश्चात् सोमश्रेष्ठिने बहुत खिन्न होकर अपने पुत्रसे कहा कि, “हे श्रीदत्त ! दुर्भाग्यसे अपना बहुत ही मान भंग हुआ है, समय पर पितामाताका पराभव तो पुत्र भी सहन कर सकता है, परन्तु स्त्रीका पराभव तो तिर्यच भी नहीं सह सकता. अतः कोई भी उपायसे इसका बदला अवश्य देना चाहिये । मुझे इस समय द्रव्यका उपयोग ही एक मात्र उपाय दीखता है, अपने पास छः लाख रुपये हैं, उसमेंसे पांच लाख साथ लेकर मैं कोई दूर देश जाऊंगा, वहां जाकर किसी बलिष्ठ राजा की सेवा करूंगा तथा उसे प्रसन्न करके उसकी मददसे क्षणभरमें तेरी माताको छुड़ा लाऊंगा । अपनेमें प्रभुता न हो व राजा भी वशमें न हो तो इष्टकार्यकी सिद्धि किस तरह हो सकती है ?

जो अपने पास नौका न हो अथवा नौकाका मछलाह उत्तम न हो तो समुद्र पार कैसे कर सकते हैं ?” यह कह द्रव्य साथ लेकर सोमश्रेष्ठी चुपचाप वहाँसे चला गया । सत्य है पुरुष स्त्रीके लिये दुष्कर-कार्य भी करसकते हैं , देखो ! क्या पांडवों ने द्रोपदीके लिये समुद्र पार नहीं किया था ?

सोमश्रेष्ठीके विदेश चले जानके बाद श्रीदत्तको एक कन्या उत्पन्न हुई, अवसर पाकर दुर्दैव भी अपना जोर चलाता है । श्रीदत्तने मनमें विचार किया कि, “धिकार है ! मुझे मुझपर कितने दुःख आ पड़े. एक तो मातापिताका वियोग हुआ, द्रव्यकी हानि हुई. राजा द्वेषी हुआ और तिस पर भी कन्याकी उत्पत्ति हुई । दूसरेको दुःखमें डालकर संतोष पाने वाला दुर्दैव अभी भी मालूम नहीं क्या करेगा ?” इस भांति चिन्ता करते दस दिन व्यतीत होगये । तत्पश्चात् उसके एक मित्र शंखदत्तने उसे कहा कि, “हे श्रीदत्त ! दुःख न कर । चलो, हम द्रव्य उपार्जनके हेतु समुद्र यात्रा करें, उसमें जो लाभ होगा वह हम दोनों समान भागसे बांट लेंगे ”

श्रीदत्तने यह बात स्वीकार की और अपनी स्त्री तथा कन्याको एक सम्बन्धीके यहाँ रख कर शंखदत्तके साथ सिंहल-द्वीपमें आकर बहुत वर्ष तक रहा । पश्चात् अधिक लाभकी इच्छासे कटाह द्वीपमें जाकर सुख पूर्वक दो वर्ष तक रहा । क्रमशः दोनोंने आठ करोड़ द्रव्य उपार्जन किया । देवकी अनुकूलता

तथा दीर्घ प्रयत्न दोनोंका योग होने पर द्रव्य लाभ हो उसमें आश्चर्य ही क्या है ? कुछ कालके अनन्तर उनने बहुतसा किराना खरीदा तथा अनेकों जहाज भरके वहाँसे सुख पूर्वक विदा हुए। एक समय दोनों जहाजके झुंजे (डेक) में बैठे थे कि समुद्रमें तैरती हुई एक संदूक पर उनकी दृष्टि पड़ी। शीघ्रही उन्होंने मल्लाहों द्वारा उसे बाहर निकलवायी 'उसके अन्दरसे जो कुछ निकलेगा उसे आधा २ बांट लेंगे' यह निश्चय करके संदूक खोली, उसमेंसे नीमके पत्तोंमें लपेटी हुई एक नीलवर्णकी कन्या निकली जिसे देख कर सबको आश्चर्य हुआ।

शंखदत्त बोला कि, "इस कन्याको किसी दुष्ट सर्पने काटा है इससे किसीने इस जलमें बहा दी है, " यह कह तुरन्त उसने मंत्र द्वारा उस पर जल छिड़कर सचेतन की बहर्षसे कहने लगा कि, "मैंने इसे जीवित की है इसलिये मेनकाके समान इस सुन्दररमणीसे मैं ही विवाह करूंगा।" यह सुन श्रीदत्त भी कहने लगा कि, "शंखदत्त ! ऐसा न कहो, कारण कि मैंने पहिले ही से कहा था कि 'आधा आधा भाग बांट लेंगे, तदनुसार इस कन्याको मैं लूंगा तथा तेरे आधे भागके बदले तुझे द्रव्य दे दूंगा"

जिस भांति मदनफल (मेनफल) के खानेसे वमन हो जाता है उसी तरह ऊपर लिखे अनुसार विवादसे दोनों जनोंन स्त्रीसंभोग अभिलाषासे पारस्परिक प्रीति त्याग दी। कहा

भी है कि, एक दूसरेके ऊपर अपूर्व प्रीति रखनेवाले सहोदर भाई अथवा मित्रोंमें स्त्री ही एक ऐसी वस्तु है कि जो भेद उत्पन्न कर देती है । कितना ही मजबूत ताला क्यों न हो चाबीरूप स्त्री अन्दर प्रवेश करते ही सब खोल देती है ।

निदान दोनोंमें जब वादी प्रतिवादीकी भांति बहुत कलह उपस्थित हुआ, तब खलासियोंने कहा कि, “अभी आप स्वस्थ रहिए, दो दिन बाद अपना जहाज सुवर्णकूल नामक बन्दर पर पहुँचगा, वहाँ कोई बुद्धिमान पुरुषोंसे इस बातका निर्णय करा-इएगा,” यह सुन शंखदत्त चुप हो रहा । श्रीदत्त मनमें विचार करने लगा कि “इस कन्याको शंखदत्तने सचेतन की है अतएव न्याय होने पर यह कन्या इसीको मिलेगी । इसलिए वह अवसर आनेके पहिले ही मैं कोई उपाय करूँ,”

यह सोचकर दुष्टबुद्धि श्रीदत्तने शंखदत्तके ऊपर अपना पूर्ण विश्वास जमाया और कुछ देरके पश्चात् उसे लेकर पुनः छजे (डेक) में आ बैठा और कहने लगा कि “मित्र ! देख तो, यह आठ मुँहका मत्स्य जा रहा है,” यह सुन ज्योंही कौतुकवश शंखदत्त झुक कर देखने लगा त्योंही मित्र श्रीदत्तने शत्रुकी भांति उसे धक्का देकर समुद्रमें डाल दिया । धिक्कार है ऐसी स्त्रीको ! जिसके कारण श्रेष्ठ मनुष्य भी मित्र-द्रोही हो जाते हैं । ऐसी स्त्रीका मुँह सुंदर होते हुए भी देखनेके योग्य नहीं । नीच ऐसा श्रीदत्त इष्टकार्य पूर्ण हो जानेसे मन ही मन बड़ा प्रसन्न हुआ,

परन्तु कपटी प्रीति दिखानेके हेतु प्रातःकाल होते ही बनावटी खेद करता हुआ चिछाने लगा कि, हाय ! हाय !! मेरे मित्रका न जाने क्या होगया, कहां चला गया इत्यादि” अंतमें दो दिन बाद वह सुवर्णकूल बंदर पहुंचा । वहां जाकर उसने राजा-को बड़े २ हाथी भेंट किये । राजाने प्रसन्न होकर उसका आदर पूर्वक स्वागत किया तथा हाथियोंका बहुतसा मूल्य देकर बन्दरका कर भी माफ किया । श्रीदत्तने वहां रह कर खूब व्यापार करना शुरू किया तथा उस कन्याके साथ विवाह करनेके लिये लग्न निश्चित करके विवाहकी सामग्रियां तैयार करवाने लगा । वह नित्य राजसभामें जाया करता था । वहां राजाकी एक अत्यन्त रूपवती चामरधारिणीको देख कर एक मनुष्यसे उसका वर्णन पूछा । उस मनुष्यने कहा कि, “यह राजाकी आश्रित सुवर्णरेखा नामक प्रख्यात वेश्या है, अर्ध लक्ष (५००००) द्रव्य लिये सिवाय किसीसे बात भी नहीं करती है ।”

यह सुन श्रीदत्तने उस वेश्याको अर्धलक्ष द्रव्य देना स्वीकार किया तथा उसे व उस कन्याको रथमें बिठाकर बनमें गया । वहां शांति पूर्वक बैठ कर एक तरफ उस कन्याको तथा एक तरफ उस वेश्याको बिठा कर हास्य-भरी बातें करने लगा । इतने ही में एक बन्दर चतुराईसे अनेक बन्दरियोंके साथ काम-क्रीडा करता हुआ वहां आया । श्रीदत्तने उसे देख कर सुवर्णरेखासे पूछा कि, “क्या यह सब बन्दरियां इस बन्दरकी स्त्रियां ही

होगी ?” वेश्या सुवर्णरेखाने उत्तर दिया कि, “हे चतुर ! तिर्यच जातिके विषयमें यह क्या प्रश्न ? इसमें कोई इसकी माता होगी, कितनी ही बहिने होंगी, कितनी ही पुत्रियां होंगी, तथा कितनी ही और कोई होगी। ” यह सुन श्रीदत्तने शुद्ध चित्त व गम्भीरतासे कहा कि जिसमें माता, पुत्री, बहिन इतना भी भेद नहीं ऐसे अविचेकी तिर्यचके अतिनिष्ठ जीवनको धिक्कार है ! वह नीच जन्म व जीवन किस कामका है ? जिसमें इतनी भारी मूर्खता हो कि कृत्याकृत्यका भेद भी न जाना जा सके”

यह सुन जैसे कोई अभिमानी वादी किसीका आक्षेप वचन सुन कर शीघ्र जबाब देता हो वैसे ही उस बन्दरने जाते २ वापस फिर कर कहा कि, “ रे दुष्ट ! रे दुराचारी ! रे दूसरोंके छिद्र देखनेवाले ! तू केवल पर्वत पर जलता हुआ देखता है परन्तु यह नहीं देखता कि स्वयं अपने पैर नीचे क्या जल रहा है ? केवल तुझे दूसरेके ही दोष कहते आते हैं ! सत्य है—

राईसरिसवमित्ताणि परच्छिदाणि गवेसइ ।

अप्पणो बिल्लभित्ताणि पासंतोवि न पासई ॥ १ ॥

दुष्ट मनुष्य को दूसरेके तो राई अथवा सरसोंके समान दोष भी शीघ्र दीख पड़ते हैं परन्तु अपने बिल्वफलके समान दोष दीखते हुए भी नहीं दिखते । रे दुष्ट ! नीच इच्छासे एक तरफ अपनी माता तथा एक तरफ अपनी पुत्रीको बैठा कर तथा अपने मित्रको समुद्रमें फेंक कर तू मेरी निन्दा करता है ? ” यह कह कर

वन्दर उछलता कूदता शीघ्र अपने झुंडमें जा मिला । इधर हृदय-
में वज्र-प्रहारके समान वेदना भोगता हुआ श्रीदत्त विचार करने
लगा कि- “ धिकार है ! वन्दरने एकदम ये क्या दुर्वचन कहा ?
जो मुझे समुद्रमें अचानक बहती हुई मिली वह मेरी कन्या किस
भांति हो सकती है ? तथा यह सुवर्णरेखा भी मेरी माता कैसे
हो सकती है ? मेरी माता तो इससे किंचित् ऊंची है, उसके
शरीरका वर्ण भी कुछ श्याम है । अनुमानसे उम्रके वर्ष गिनू तो
यह कन्या कदाचित् मेरी पुत्री हो ऐसा संभव है; परन्तु सुवर्ण-
रेखा मेरी माता हो यह कदापि संभव नहीं; तथापि इससे
पूछना चाहिये. ”

यह सोचकर उसने सुवर्णरेखासे पूछा तो उसने स्पष्ट उत्तर
दिया कि, “ अरे मुग्ध ! यहां विदेशमें तुझे कौन पहिचानता
है ? तू व्यर्थ जानवरके कहनेसे क्यों भ्रममें पड़ता है ? ” परन्तु
श्रीदत्तके मनकी शंका इससे दूर न हुई । वह शीघ्र वहांसे उठा ।

जिस कार्यमें शंका उत्पन्न हो जाय उसे करना सत्पुरुषको
कभी योग्य नहीं । जान बूझ कर कौन प्राणी अथाह जलमें
प्रवेश करता है ?

इधर उधर भ्रमण करते हुए श्रीदत्तने एक मुनिराजको
देखा, और उसको वन्दना करके पूछा कि, “ हे स्वामिन् ! एक
वन्दरने मुझे भ्रांति-समुद्रमें डाला है । आप ज्ञानकी सहायतासे
मेरा उद्धार करिये. ”

मुनिराजने कहा-- “ इस जगत्में सूर्यकी भांति भव्यजीव-
रूप कमलको बोध करनेवाले मेरे गुरु केवली हैं. वे इसी देशमें
हैं । मैं केवल अवधिज्ञानसे जो कुछ जानता हूं वह तुझे कहता
हूं. बन्दरने जो कुछ कहा वह सर्व सत्य है । ” प्रभो ! “ कैसे
सत्य मानूं ? ” श्रीदत्तके यह पूछने पर मुनिराज बोले कि, “ हे
चतुरपुरुष ! सुन । प्रथम तुझे तेरी पुत्रीका वर्णन सुनाता हूं ।

तेरी माताको लुडानेके उद्देश्यसे तेरा पिता रणवीर समर
नामक पल्लीपतिके पास गया । ‘ऐसा वीर पुरुष ही अपना कार्य
करनेके सर्वथा योग्य है ’ यह विचार करके पल्लीपतिको सब
वृत्तान्त कह सुनाया तथा द्रव्य भी भेंट किया । पश्चात् पल्लीपति
ने श्रीमंदिरपुर पर चढ़ाई की । समुद्रकी वाडके समान एकाएक
चढ़ी हुई पल्लीपतिकी सेनासे मंदिरपुरवासी प्रजाजन बहुत भयभीत
हुए, तथा संसारसे भय पाये हुए जीव जैसे शिवमुखकी इच्छा रखके
सिद्धिका विचार करे उसी मुजब सब लोग किसी सुरक्षित स्थानमें
जानेका विचार करने लगे। उस समय तेरी स्त्री अपनी कन्याको लेकर
गंगा किनारे बसे हुए सिंहपुर नगरमें अपने पिताके घर गई,
तथा बहुत वर्ष तक वहां अपने भाईके पास रही । यह नियम
ही है कि स्त्रियोंका पति, सासु, श्वसुर आदिका वियोग होजाय
तो पिता अथवा भाई ही उसकी रक्षा करते हैं । एक समय
आषाढमासमें तेरी कन्याको विषघर सांपने काटा, धिक्कार है
ऐसे दुष्ट जीवोंके दुष्टकर्मको । सर्प विषसे वह कन्या अचेत होगई,

अनेकों उपचार किये गये लेकिन सब व्यर्थ हुए. सर्पके काटे हुए मनुष्यका जल्दी अग्निसंस्कार करना योग्य नहीं, कारण कि आयुष्य दृढ़ हो तो कदाचित्त वह पुनर्जीवित हो जावे, इस विचारसे तेरी स्त्रीआदि सब लोगोंने उसे नीमके पत्तोंमें लपेट एक सन्दूकमें बन्द कर गंगाप्रवाहमें बहा दी। जलवृष्टि-की अधिकतासे ज्योंही भयंकर बाढ़ आई त्योंही वह सन्दूक बहती हुई समुद्रमें पहुंची तथा तेरे हाथ लगी। इसके आगेका वृत्तान्त तुझे ज्ञात ही है।

अब तेरी माताका वर्णन कहता हूं, स्थिरचित्त होकर सुन-पल्लीपतिकी दुर्भेद्य सेना ज्योंही पास आई तो उसके तेज-से राजा सूरकान्त निस्तेज हो गया। उसने शीघ्रही पहाड़की भांति किल्लेकी रचना की। उसमें सर्व खाद्य पदार्थ पूर्णरूपसे भर दिये तथा किल्लेके अंदर स्थान २ पर योग्य पराक्रमी योद्धाओंको नियत कर दिये। जो राजा शत्रुका सामना नहीं कर सकता है उसकी यही नीति है। इधर पल्लिपतिकी सेनाने चारों ओरसे किल्ले पर धावा कर दिया। मुनिराजके वचन जिस भांति दुष्कर्मोंका शीघ्र ही नाश कर डालते हैं उसी प्रकार पल्लीपतिकी सेनाने बातकी बातमें किल्ला तोड़ डाला तथा मदोन्मत्त हाथीकी भांति सूरकान्तकी सेनाके योद्धाओंके बाणरूप अंकुशकी कुछ परवाह न करते एकदम श्रीमंदरपुरकी पोलका दरवाजा तोड़कर वह सेना नदीप्रवाहकी भांति

भीतर घुस गई । तेरा पिता स्त्रीप्राप्तिकी उत्सुकतासे आगे जा रहा था । वह एक तीक्ष्णवाणके कपालमें लगनेसे मृत्युको प्राप्त हो गया । सत्य है, मनुष्य कुछ सोचता है पर दैव कुछ करता है । स्त्रीको छुड़ा कर लानेका प्रयत्न ही उसकी मृत्युका कारण हो गया, कहावत है कि हाथीके मनमें कुछ और था, सिंहके मनमें और, सर्पके मनमें और तथा शियालके मनमें भी और, परन्तु दैवके मनमें तो सबसे ही निराला था । पल्ली-पतिकी सेनाके नगरमें प्रवेश करते ही राजा सरकान्त बहुत घबराया तथा वहाँसे कहीं भाग गया । सत्य है पापियोंकी जय कहाँसे हो ? पल्लीपतिकी सेनाने तुरन्त हरिणीकी भांति धूजती हुई सोमश्रीको पकड़ ली । पश्चात् नगर लूटकर सब भिल्ल सैनिक अपने २ स्थानको जाने लगे । इस भगदौड़में मौका पाकर सोमश्री भी वहाँसे भाग निकली, तथा वनमें भटकती हुई उसने एक वृक्षका फल खाया जिससे उसका शरीर तो किंचितमात्र टिंगना होगया, परन्तु शरीरकान्ति पहिलेकी अपेक्षा बहुत ही दिव्य तथा सुन्दर होगई । मणि, मंत्र तथा औषधियोंका प्रभाव ही अद्भुत है । मार्गमें जाते हुए कुछ वणिकलोगोंको इसे देखकर बड़ा ही आश्चर्य हुआ । वे इससे पूछने लगे कि , “ हे सुन्दरी! क्या तू कोई देवांगना, नाग कुमारी, वनदेवी, स्थलदेवी अथवा जलदेवी है? हमको विश्वास है कि तू मानवी तो कदापि नहीं है । सोमश्रीने गदगद-

स्वयं उत्तर दिया कि “हे विज्ञानियों ! तुम विश्वाससे मानो कि मैं कोई देवी देवता नहीं, बल्कि मनुष्य ही की स्त्री हूँ । इस सुंदररूप ही ने मुझे दुःख सागरमें डाली है । जब दैव प्रतिकूल होता है तो गुण भी दोष हो जाता है ।

यह सुन उन्होंने सुखपूर्वक अपने पास रखनेका वचन देकर सोमश्रीको अपने साथमें ले ली तथा गुप्तरत्नकी भांति उसकी रक्षा करने लगे । तथा उसके रूपगुण पर आसक्त होकर हर एक वणिक उससे विवाह करनेकी इच्छा करने लगा । कुछ समयके बाद वे फिरते २ इसी सुवर्णकूलवंदरमें आये तथा बहुतसा किराना खरीदा । इतनेमें एक वस्तु बहुत सस्ती हो गई । प्रायः वणिकलोगोंकी यह रीति ही है कि भाव बढ़ जानेकी अभिलाषासे सस्ती वस्तु विशेष खरीदते हैं, परन्तु फल भोगनेसे जिस भांति पूर्वभवका संचित पुण्य क्षीण हो जाता है इसी भांति प्रथम ही बहुतसी वस्तुएं खरीद लेनेसे उनके पास का द्रव्य क्षीण होगया, तब सबने विचार करके सोमश्रीको एक वेश्याके यहां बेच दी । मनुष्योंको अपार लोभ होता है और जिसमें वणिकजनोंको तो अधिक ही होता है, इसमें संशय ही क्या ? इस नगरकी विभ्रमवती नामक वेश्याने एक लक्ष द्रव्य देकर आनन्दपूर्वक सोमश्रीको मोल ले ली । सत्य है, वेश्याकी जाति ही ऐसी है, उसको तरुण स्त्री मिल जाय तो वह कामधेनुके समान समझती है । विभ्रमवतीने उसका ‘सुवर्णरेखा’

यह नया नाम रखा और बड़े परिश्रमसे शिक्षा देकर इसे गीत, नृत्य आदि सिखाया, क्योंकि इन कलाओंमें निपुणता ही केवल वारांगनाओंका धन है। क्रमशः सुवर्णरेखा वेश्या-कर्ममें इतनी निपुण होगई कि मानों जन्म ही से वेश्याका धन्धा करती हो। ठीक ही है, पानी जिसके साथ मिलता है वैसा ही रंग रूप ग्रहण कर लेता है। दुर्जनकी संगतिको धिक्कर है ! देखो, वह सोमश्री एक भव छोड़ कर मानो दूसरे भवमें गई हो इसभांति बिलकुल ही बदल गई अथवा दुर्दैववश एक ही भवमें अनेक भव भोग रही है। सुवर्णरेखाने अपनी कलाओंसे राजाको इतना प्रसन्न किया कि जिससे उसने इसे अपनी चामरधारिणी नियत कर दी।

मुनि कहते हैं कि, “हे श्रीदत्त ! यह तेरी माता ऐसी हो गई है मानो दूसरा भव पाई हो। पूर्वका रूप वर्ण बदल जानेसे तू इसे पहिचान न सका, परन्तु इसने तुझे पहिचान लिया था तथापि शर्म और द्रव्य लोभसे परिचय नहीं दिया। जगतमें लोभका कैसा अखंड साम्राज्य है ? किसीने इस लोभको नहीं छोड़ा। धिक्कार है ! ऐसे वेश्या-कर्मको ! जो संपूर्ण पाप व दुष्कर्मकी सीमा कहलाता है तथा जिससे प्रत्यक्ष माता पुत्रको पहिचान कर भी द्रव्यलोभसे उसके साथ काम-क्रीडा करनेकी इच्छा करती है। वही व्यक्ति सर्वथा योग्य है जो ऐसी शीलभ्रष्ट वेश्याओंको निंदातिनिंदा तथा त्याज्यसे त्याज्य मानता है। ”

मुनिके ये बचन सुनकर श्रीदत्तको बहुत दुःख व आश्चर्य हुआ । पुनः उसने मुनिसे पूछा कि, “हे त्रैलोक्याधीश ! यह सब वृत्तान्त उस बन्दरने कैसे जाना ? महाराज ! जिस भांति मुनिराज जीवोंको संसार-बंधनसे बचाते हैं, उसी भांति उसने मुझे अंध-कूपमें गिरनेसे बचाकर बहुत ही अच्छा किया, परन्तु वह मनुष्यकी भाषा किस तरह बोलता था सो समझाइये ”

मुनिमहाराज कहने लगे कि, “हे श्रीदत्त ! तेरा पिता सोमश्रेष्ठी स्त्रीके ध्यानमें निमग्न होकर नगरमें प्रवेश करते हुए एकाएक बाण लगनेसे मृत्यु पाकर व्यंतर हुआ । चित्तमें बहुत राग होनेसे भ्रमरकी भांति वह अनेकों वनोंमें भ्रमण करता हुआ इधर आया, तथा तुझे अपनी मातामें आसक्त हुआ देख कर उसने बन्दरके शरीरमें प्रवेश करके तुझे सावधान किया । परभवमें जाने पर भी पिता सदैव पुत्रका हिताकांक्षी ही रहता है । वही तेरा पिता पुनः बन्दरके रूपमें अभी यहाँ आवेगा और पूर्व-भवके प्रेमसे तेरी माताको पीठ पर बिठाकर तेरे देखते २ शीघ्र यहाँसे ले जावेगा ।”

मुनिराज यह कह ही रहे थे कि इतनेमें उसी बन्दरने आकर जैसे सिंह अम्बाजीको पीठ पर धारण करता है वैसे ही सुवर्णरेखाको अपनी पीठ पर बिठा कर वह अपने इष्ट स्थानकों चला गया ।

इधर विभ्रमवतीने अपनी दासियोंसे पूछा कि “सुवर्णरेखा कहां है ?” दासियोंने उत्तर दिया कि, “एक लक्ष देना स्वीकार करके श्रीदत्त नामक श्रेष्ठी उसे उद्यानमें ले गया है।”

कुछ समयके पश्चात् विभ्रमवतीकी भेजी हुई दासियोंने एक दुकान पर बैठे हुए श्रीदत्तसे पूछा कि, “सुवर्णरेखा कहां है ?” श्रीदत्तने उत्तर दिया—“कौन जाने कहां गई ? मैं क्या उसका नौकर हूं ?”

दासियोंने जाकर यही बात विभ्रमवतीको कही। तब क्रोधसे राक्षसीके समान होकर उस वेश्याने राजाके सन्मुख जाकर, “हे राजन् ! मैं लुट गई, लुट गई !! इस भांति पुकार करना शुरू किया ।” राजाने पूरा हाल पूछा तब वह कहने लगी कि, “मेरी साक्षात् सुवर्णपुरुषरूपी सुवर्णरेखाको चोर शिरोमणि श्रीदत्तश्रेष्ठीने कहीं छिपा दी है ।”

“श्रीदत्तने गणिकाकी चोरी करी यह बात कितनी असंभव है ?” यह सोचकर राजाको बड़ा आश्चर्य हुआ और उसने श्रीदत्तको बुलाकर यह बात पुछी। श्रीदत्तने यह सोचकर कि ‘जो मैं सब बात सत्य भी कह दूंगा तो भी ऐसी बात पर कौन विश्वास करेगा ?’ कुछ भी स्पष्ट उत्तर नहीं दिया। कहा भी है कि

असंभाव्यं न वक्तव्यं, प्रत्यक्षं यदि दृश्यते ।

यथा वानरसंगीदं, यथा तरति सा शिला ॥ १ ॥

बन्दरकी संगीतकला या पानी पर तैरती शिलाके समान कोई अवटित बात नजर आवे तो भी प्रकट नहीं करना ही उत्तम है ।

पापकर्म जैसे मनुष्यको नरकमें डालते हैं वैसे ही राजाने श्रीदत्तको बन्दीगृहमें डाल दिया और क्रोधकी अधिकतासे उसकी सब संपत्ति जप्त करके उसकी कन्याको अपने यहां दासी बना लिया । सत्य है, भाग्यकी भांति राजा भी किसीका सगा नहीं ।

बन्दीगृहमें पड़े हुए श्रीदत्तको जब यह विचार उत्पन्न हुआ कि, जैसे पवनसे अग्नि सुलगती है वैसे ही मैंने कोई उत्तर नहीं दिया इससे राजाकी कोपाग्नि धधक उठी है अतएव यदि मैं यथार्थ बात कह दूं तो कदाचित् छुटकारा हो जावेगा । तब उसने पहरेवालेके द्वारा राजाको प्रार्थना की ।

जब राजाने उसे बन्दीगृहसे निकालकर पुनः पूछा तो उसने कहा कि “एक बन्दर सुवर्णरेखाको ले गया है” यह सुनकर सबको हंसी आ गई, वे आश्चर्य पाकर कहने लगे कि, “अहा ! कैसी सत्य बात कही ! यह दुष्ट कितना ढीठ है !”

राजाका क्रोध और भी बढ़ गया उसने एकदम श्रीदत्तको प्राणदंडकी आज्ञा दी । यह बात योग्य ही है कि बड़े मनुष्योंका रोष अथवा तोष शीघ्र ही भला या बुरा फल देता है । राजाकी आज्ञानुसार उसके वीर सुभट तुरन्त ही श्रीदत्तको वध्यस्थल पर

ले गये । तब वह मनमें विचार करने लगा कि, “माता तथा पुत्रीके साथ कामभोग करना तथा मित्रघातकी चेष्टा इत्यादि महान् पातक मेरे हाथसे हुए हैं, उनका फल इसी भवमें मुझे मिल गया, धिक्कार है ऐसे दुर्दैवको कि जिसका इतना बुरा परिणाम है, सत्य कहने पर भी इतना अयोग्य परिणाम हुआ । तूफानी समुद्रके समान प्रतिकूल दैवको कौन रोक सकता है ? क्या कोई अपनी कल्लोलमाला (लहरों) से बड़े २ पर्वतोंको तोड़ देनेवाले सन्मुख आते हुए समुद्रप्रवाहको रोक सकता है ? इसी तरह पूर्वभवमें किये हुए कर्मोंके शुभाशुभ परिणामको भी कोई रोक नहीं सकता.”

इतने ही में मानो श्रीदत्तके पुण्योंने आकर्षित किया हो इसी भांति इस देशमें विहार करते हुए मुनिचन्द्र नामक केवलीका उसी समय नगरके बाहरके उद्यानमें आगमन हुआ । उद्यान-पालकेके द्वारा खबर मिलते ही राजा सपरिवार वहां गया और जैसे बालक प्रातःकाल होते ही माताके पास खानेको मांगता है वैसे ही मुनिराजके पास उपदेशकी याचना की । गुरुमहाराजने कहा कि, “वन्दरको रत्नमालाके समान, जिसके हृदयमें जगत हितकारी धर्म व न्यायका मूल्य नहीं उसको क्या उपदेश दिया जाय ?”

यह सुन राजाने घबरा कर पूछा कि, “हे महाराज ! मैं किस प्रकार अन्यथी हूं ?” मुनिचन्द्रकेवलीने उत्तर दिया--

“सत्यभाषी श्रीदत्तका वचन तू क्यों नहीं मानता ? राजाने लज्जित होकर उसी समय श्रीदत्तको बुलाया और आदरयुक्त अपने पास बैठा कर मुनिराजसे पूछा कि “महाराज ! यह सत्य-भाषी कैसे ?” इतने ही में वही बंदर पीठ पर सुवर्णरेखाको लिये हुए वहां आया तथा उसे पीठसे उतार कर आप भी वहीं बैठ गया । सब लोग कौतुकसे उसे देखने लगे । राजा आदि सबने सत्यवक्ता श्रीदत्तकी बहुत प्रशंसा की तथा केवली भगवानसे सब वृत्तान्त पूछा । तब उन्होंने सब बात यथार्थ कह सुनाई ।

तत्पश्चात् श्रीदत्तने सरल-भावसे प्रश्न किया कि, “हे महाराज ! मुझे अपनी माता तथा पुत्री पर कामवासना क्यों उत्पन्न हुई ?”

केवली भगवानने कहा कि, “यह सब तेरे पूर्वभवका प्रभाव है इसलिये तेरा पूर्व भव सुन—

पांचालदेशके कांपिल्यपुरनगरमें अग्निशर्मा नामक ब्राह्मण रहता था । उसके चैत्र नामक एक पुत्र था । चैत्रको शंकरकी भांति गंगा व गौरी नामक दो स्त्रियां थीं । एक बार वह ब्राह्मणपुत्र चैत्र, मैत्र नामक मित्रके संग कुंकण देशमें याचना करने गया । ब्राह्मणोंको याचना बहुत ही प्रिय लगती है । ग्राम ग्राम भ्रमण करके उन्होंने बहुतसारा द्रव्य उपार्जन किया । एक दिन जब कि चैत्र सो रहा था, मैत्रने हृदयमें दुष्ट अध्यवसाय

रख कर विचार किया कि ' इस चैत्रको मार कर मैं सर्व द्रव्य ले लूं और तुरत मारने को उठा । अनर्थको पैदा करनेवाले ऐसे द्रव्यको धिक्कार है ! जिस भांति दुष्ट वायु मेघको छिन्न भिन्न कर देता है उसी भांति द्रव्यका लोभी मनुष्य विवेक, सत्य, संतोष, लज्जा, प्रीति तथा दया आदि सद्गुणोंको शीघ्र नष्ट कर देता है । परन्तु सुदैवके योगसे उसी समय मैत्रके चित्तमें विवेकरूपी सूर्यका उदय हुआ और उससे लोभरूप गाढ अन्धकारका नाश होगया । वह विचार करने लगा कि, "मुझ पर विश्वास करनेवाले मित्रका बध करने वाले मुझको धिक्कार है । ऐसे अध्यवसायसे मैं निंद्यसे भी निंद्य होगया "। इत्यादि विचार करता हुआ वह यथावत् अपने स्थान पर बैठ गया ।

प्रातःकाल होते ही पुनः भ्रमण करना प्रारंभ किया । जिस भांति गड्ढा खोदनेसे बढता है उसी भांति लाभसे लोभ भी बढता है, साथ ही अतिलोभ करनेसे इसी लोकमें एकदम अनर्थकी उत्पत्ति होती है, इसमें संशय नहीं ।

लोभरूप नदीके पूरमें डूबे हुए वे दोनों ब्राह्मण एक समय मार्गमें आई हुई वैतरणीनदीके पूरमें उतरे तथा डूबकर मर गये, तथा प्रथम तिर्यच योनि पाई । पश्चात् नाना भव भ्रमण करके हे श्रीदत्त ! तुम दोनों मित्र (शंखदत्त व श्रीदत्त) हुए । शंखदत्तने पूर्वभवमें तेरे वधका विचार किया था इससे तूने

उसे समुद्रमें डाल दिया । जिस प्रकार लेनदारका कर्ज व्याज सहित चुकाना पड़ता है उसी भांति पूर्वभ्रमके किये हुए कर्म भी यथाक्रम भोगने पड़ते हैं ।

तेरी दोनों स्त्रियां तेरे वियोगसे संसार-मोह छोड़कर तपस्विनी होगई तथा मासखमण मासखमण (मासिक उपवास) रूप तपस्या करने लगी । विधवा होने पर कुलीनस्त्रियोंको यही उचित है । मनुष्य भव पाकर यह भव तथा पूर्व भव दोनों ही मुफ्त गुमा बैठे ऐसा कौन मूर्ख है ?

एक दिन अधिक तृषा लगनेसे व्याकुल होकर गौरीने एक दासीके पाससे बहुत बार पानी मांगा । दुपहरका समय होनेके कारण निद्राके वश हुई उस दासीने ढीठ-मनुष्यकी भांति कुछ भी उत्तर नहीं दिया । गौरी यद्यपि स्वभावसे क्रोधी नहीं थी तथापि उस समय उसने दासी पर बहुत क्रोध किया । प्रायः तपस्वी, रोगी, और क्षुधा तथा तृषासे पीडित मनुष्योंको थोड़ेसे कारण पर ही बहुत क्रोध चढ़ आता है ।

गौरीने क्रोधसे कहा—“रे नीच ! मेरे हुए मनुष्यकी भांति तू मुझे जवाब नहीं देती है इसका क्या कारण है ? ” इस तरह तिरस्कारयुक्त वचन सुनने पर दासी उठी व मधुर वचनोंसे गौरीका समाधान करके उसे पानी पिलाया । परन्तु गौरीने, दुष्ट-वचनोंके कारण बहुत दुःखसे भोगनेके योग्य कर्म संचित किया । हँसीमें कहे हुए कुवचनोंसे भी जब कर्म संचय होता है तो क्रोधस

बोले हुए वचनोंसे कर्मका संचय हो इसमें शंका ही क्या है ?

गंगाने भी कामका समय बीत जाने पर आई हुई एक दासीको क्रोधसे कहा कि, “अरे दुष्ट दासी ! तू अब आई है, क्या तुझे किसीने कैद कर दी थी ?”

सारांश यही कि, गंगा व गौरी दोनोंने क्रोधवश समान ही कर्मोंका संचय किया ।

एक समय बहुतसे काम-व्यसनी-लोगोंके साथ विलास करती हुई एक वेश्याको देख कर गंगाने विचार किया कि, “भ्रमरोंका झुंड जिस भांति प्रफुल्लित मोगरेकी बेलको भोगते हैं, उसी भांति बहुत कामी-भ्रमर (लोग) जिसे भोगते हैं, ऐसी स्त्री धन्य है; तथा मेरे समान अभागिनीसे भी अभागिनीको जिसको पति तक छोड़कर परलोक चला गया, उसको बार बार धिक्कार है !”

दुष्टमति गंगाने ऐसे आर्त्तध्यानसे वर्षाऋतुमें लौह पर चढ़े हुए कीटके समान पुनः कर्म संचय किया । अन्तमें मृत्युको पाकर दोनों देवलोकमें ज्योतिषी-देवताकी देवियां हुई तथा वहांसे च्युत होकर गंगा तेरी माता व गौरी तेरी पुत्री हुई । पूर्वभवमें दासीको दुर्वचन कहा था इससे तेरी पुत्रीको सर्प-दंश हुआ और तेरी माताको इसीसे भिल्लीकी पल्लीमें रहना पड़ा, तथा गणिकाकी प्रशंसा करी इससे गणिकापन भोगना पड़ा । पूर्व-कर्मसे असंभव बात भी संभव हो जाती है । बड़े खेदकी

बात है कि जो कर्म केवल मन अथवा वचनसे संचित होते हैं, उनकी अगर आलोचना न होवे तो कायासे इस तरह भोगना पड़ते हैं। तूने पूर्व भवके अभ्याससे इन दोनों पर काम वासना रखी। जैसा अभ्यास होता है वैसा ही संस्कार पर भवमें प्रकट होता है। धर्म-संस्कार तो अधिकाधिक अभ्यास होने पर भी प्रकट नहीं होते, परन्तु कच्चे-पक्के सामान्य संस्कार तो पर भवमें आगे आगे दौड़ते हैं।

केवली भगवान्‌के ये वचन सुनकर श्रीदत्तको संसार पर वैराग्य तथा खेद उत्पन्न हुआ। उसने पुनः पूछा कि, “हे महाराज ! संसारसे मुक्त होनेका कोई उपाय बतलाइये। जिसमें ऐसी विडम्बना होती है उस स्मशान समान संसारमें कौन जीवित व्यक्ति सुख पा सकती है ?”

मुनिराजने कहाः—“संसाररूप गहन-वनसे मुक्त होनेका चारित्र ही केवल उत्तम साधन है; इसलिये तू शीघ्र चारित्र ग्रहण करने का प्रयत्न कर。” श्रीदत्तने कहा--“बहुत अच्छा, पर इस कन्याको कोई योग्य स्थल देख कर देना है, कारण कि इसकी चिन्ता मुझे संसार सागरमें तैरते गलेमें बंधे हुए पत्थरके समान है” मुनिराज बोले कि “हे श्रीदत्त ! तू व्यर्थ पुत्रीकी चिन्ता न कर, कारण कि तेरी पुत्रीके साथ तेरा मित्र शंखदत्त विवाह करेगा。” श्रीदत्तने आंखोंमें आँसू भरकर गद्गद स्वरसे कहा कि “हे महाराज ! मुझसे क्रूर व पापीको वह मित्र कहाँसे

मिले ?” मुनिराजने कहा—खेद न कर और दुःखी भी मत हो । तेरा मित्र मानो बुलाया ही हो उस भांति अभी यहाँ आवेगा-

श्रीदत्त आश्चर्यसे हंस कर विचार करता ही था कि इतने में दूरसे शंखदत्तको आता हुआ देखा । उधर शंखदत्त श्रीदत्तको देख कर अत्यन्त क्रोधित हो यमकी भांति क्रूर हो उसे मारने दौड़ा । श्रीदत्त एक तो क्षुब्धित था तथा राजा आदिके पास होनेसे क्षण मात्र स्थिर रहा । इतनेमें मुनिराज बोले कि “हे शंखदत्त ! तू क्रोधको चित्तसे निकाल दे । कारण कि क्रोध अग्निकी भांति इतना तीव्र होता है कि अपने जन्मस्थान तकको जलाकर भस्म कर देता है, क्रोध चाँडाल है, अतएव इसका स्पर्श नहीं करना ही उचित है, यदि स्पर्श हो जाय तो अनेक बार गंगा स्नान करने पर भी शुद्धि नहीं होती है । जैसे भयंकर विषधर सर्प गारुडीका मंत्र सुनते ही शान्त हो जाता है, वैसे ही मुनिराजकी तत्त्वगर्भित-वाणी सुनकर शंखदत्त शान्त हुआ । श्रीदत्तने उसे प्रीतिपूर्वक हाथ पकड़ कर अपने पास बैठाया । बर दूर करनेकी यही रीति है ।

पश्चात् श्रीदत्तने केवली भगवानसे पूछा कि, “हे स्वामिन् यह समुद्रमें से यहाँ किस तरह आया ?”

केवली भगवानने कहा—“जिस समय तूने इसे समुद्रमें फेंका उस समय क्षुधा पीडित मनुष्यको फलकी भांति इसे एक पाटिया मिल गया । बिना आयुष दूटे कभी मृत्यु नहीं हो

सकती । उत्तम वैद्यकऔषधौपचारसे जैसे मनुष्य दुःसाध्य व्याधिसे भी सात ही दिनमें मुक्त हो जाता है वैसे ही वायुके अनुकूल होनेसे पटियेके सहारे यह सात दिनमें किनारे पहुंच गया, और किनारे पर बसे हुए सारस्वत नगरमें इसने विश्राम किया । इस नगरमें इसका संवरनामक मामा रहता था उसने इसे इस दशमें देख कर बहुत खेद प्रगट किया और बड़े प्रेमसे अपने घर लेगया । समुद्रकी उष्णतासे इसके सब अग्रयव जल गये थे । संवरने उत्तमोत्तम औषधियों द्वारा एक मासमें इसे ठीक किया । एक समय इसने अपने मामासे सुवर्णकूल-बंदरका हाल पूछा तो उसने इस तरह वर्णन किया कि--“यहां से अस्सी गांव पर सुवर्णकूल बंदर है । सुना है कि आज कल वहां किसी श्रेष्ठीके बड़े २ जहाज आये हैं。” यह सुनते ही इसके मनमें नटकी भांति हर्ष तथा रोष एक ही साथ उत्पन्न हुआ अर्थात् तेरा पता लग जानेसे तो हर्ष हुआ और तेरी कपट चेष्टाका स्मरण होनेसे रोष पैदा हुआ । इस प्रकार मनमें परस्पर विरुद्ध भाव धारण कर मामाकी आज्ञा लेकर यह यहां आया । पूर्व कर्मके अनुसार इसी प्रकार जीवका संयोग वियोग होता है。” इतना कह कर केवली भगवानने शंखदत्तको भी पूर्व भवका सब सम्बंध कह सुनाया और कहा कि, “हे शंखदत्त ! पूर्व भवमें तूने इसे मारनेकी इच्छा की थी इसी कारण इसने इस भवमें तुझे मारने की इच्छा की । जिस तरह अपशब्दका बदला अपशब्द (गाली)

कहनेसे पूरा होता है वैसे घात प्रतिघातका बदला चुक गया । अब तुमने परस्पर बहुत प्रीति रखना, क्योंकि मित्रता इसलोक तथा परलोकमें भी सर्व कार्योंकी सिद्धि करने वाली है, इसमें संशय नहीं ।” यह वचन सुनकर दोनोंने परस्पर अपने २ अपराधों की क्षमा मांगी और पूर्ववत् प्रीति रखने लगे । ग्रीष्म-ऋतुके अंतमें आई हुई प्रथम जलवृष्टिके समान सद्गुरुके वचनसे क्या नहीं हो सकता है ? तत्पश्चात् केवली भगवानने उपदेश किया कि, “हे भव्य जीवो ! तुम समकित पूर्वक जैन-धर्मकी आराधना करो । जिससे तुम्हारे संपूर्ण इष्टकार्योंकी सिद्धि होगी ।

धर्माः परे परा अप्याम्नादिकवत्फलंति नियतफलैः ।

जिनधर्मस्त्वखिलविधोऽप्यखिलफलैः कल्पइवफलदः ॥१॥

अन्य धर्मोंका चाहे भली भांति आराधन किया हो परन्तु वे केवल आमआदिके वृक्ष समान हैं अर्थात् जैसे आमका वृक्ष केवल आम फल देता है, जामुनका वृक्ष केवल जामुनफल देता है वैसे ही वे धर्म भी केवल नियमित फलके दाता हैं, परन्तु यदि जैनधर्मकी संपूर्णतः आराधना की जावे तो वह कल्पवृक्षकी भांति मनवांछित फल देता है ।”

मोक्षाभिलाषी राजा आदि सर्व लोगोंने यह उपदेश सुन कर केवली भगवानके पास सम्यक्त्व मूल वारह व्रत ग्रहण किये । उस व्यंतर (चन्द्रके जीव) तथा सुवर्णरेखाने भी

समकितको अंगीकार किया । मोहसे उन दोनोंका दिव्य तथा औदारिक संयोग बहुत काल तक रहा, श्रीदत्त अपने घर आया। राजाने उसका बहुत सत्कार किया । तत्पश्चात् उसने अपनी कन्या व आधी संपत्ति शंखदत्तको देकर शेष आधी संपत्ति सात क्षेत्रोंमें विभाजित कर ज्ञानी गुरुके पास दीक्षा ग्रहण की और विहार करता हुआ अब यहां आया है ।

(श्रीदत्त केवली कहते हैं कि) हे मृगध्वज राजन् ! दुस्तरमोहको जीत कर केवल ज्ञान पाया हुआ मैं वही श्रीदत्त हूं । इस भांति जो पूर्व भवमें मेरी स्त्रियां थी वे इस भवमें पुत्री तथा माता हुईं, इसलिये इस संसारमें यह बात कोई आश्चर्य-जनक नहीं, ऐसा विचार करके विद्वान् पुरुषने व्यावहारिक सत्यके अनुसार सर्व व्यवहार करना चाहिये, सिद्धान्तमें दस प्रकारका सत्य कहा है, यथा-१ जनपदसत्य, २ संमतसत्य, ३ स्थापना-सत्य, ४ नामसत्य, ५ रूपसत्य, ६ प्रतीत्यसत्य, ७ व्यवहारसत्य, ८ भावसत्य, ९ योगसत्य, और १० उपमासत्य अर्थात् कुंकण-आदि देशोंमें ' पय, पिच्छं, नीरं, उदकं ' आदि नामसे पानीको जानते हैं, यह प्रथम जनपदसत्य है । २ कुमुद (श्वेतकमल) कुवलय (नीलकमल) आदि सब जातिके कमल कीचड़ ही में पैदा होते हैं तो भी अरविंद (रक्त कमल) ही को पंकज कहना यह जो लोक-सम्मत है इसे सम्मतसत्य जानों । ३ लेप्यादि प्रतिमाको अरिहंत समझना अथवा एक दो इत्यादि अंक लिखना,

किंवा रूपया, पैसा इत्यादिक पर “ यह रूपया है, पैसा है ” ऐसे अर्थकी सूचक मुद्रा (छाप) करना यह स्थापनासत्य है । ४ कुलकी वृद्धि न करने पर भी ‘ कुलवर्धन ’ कहलाना यह नामसत्य है । ५ वेष मात्र धारण करने पर भी जैसे साधु कहलाता है इसे रूपसत्य कहते हैं । ६ केवल अनामिका (टचलीके पास-की अंगुली) कनिष्ठका (टचली अंगुली) की अपेक्षा लम्बी और मध्यमा (बीचकी अंगुली) की अपेक्षा छोटी कहलाती है, इसे प्रतीत्यसत्य कहते हैं । ७ पर्वतके ऊपर स्थित वृक्ष, तृण आदिके जलते हुए भी पर्वत जलता है ऐसा कहा जाता है और बरतनमेंसे पानी गलता हो तो बरतन गलता है, कृश उदरवाली कन्या उदर रहित तथा जिसके शरीर पर थोड़े २ रोम हो ऐसी भेड़ रोम रहित कहलाती है, ऐसेको व्यवहारसत्य जानो । ८ यहां भावशब्दसे वर्णादिक लेना है, अतः पांच वर्णका संभव होने पर भी बंगुला सफेद कहलाता है यह भावसत्य है । ९ दंड धारण करनेसे दंडी कहलाता है यह योगसत्य है । १० तथा ‘ यह तालाब तो साक्षात् समुद्र है ’ इत्यादि जो उपमायुक्त कहा जाता है इसे उपमासत्य कहते हैं । सत्य इतनी प्रकारके हैं इस लिये व्यवहारमें व्यवहारसत्यके ही अनुसार चलना चाहिये ।”

चतुर शुकराज मुनिराजके ये वचन सुन कर अपने माता पिताको “ पिता, माता ” इस तरह प्रकटरूपसे बोलने लगा, जिससे सब लोगोंको संतोष हुआ ।

तदनन्तर मृगध्वज राजाने पूछा कि, “ हे महाराज ! युवा-वस्थामें ही आपको ऐसा वैराग्य प्राप्त हुआ, अतः आपको धन्य है ! क्या मुझे भी किसी समय ऐसा वैराग्य होगा ? केवली भगवानने उत्तर दिया, ‘ हे राजन् ! तेरी चन्द्रवती नामक रानीके पुत्रका मुंह देखते ही तुझे दृढ़ वैराग्य प्राप्त होगा. ’

मुनिराजके वचनोंको सत्य मान कर राजा उनको वन्दना कर हर्षपूर्वक सपरिवार अपने महलमें आया । अपनी सौम्य-दृष्टिसे मानों अमृतवृष्टि करता हो ऐसा शुकराज जब दश वर्षका हुआ तब रानी कमलमालाको दूसरा पुत्र उत्पन्न हुआ । रानीके पूर्वस्वप्नके अनुसार उसका नाम ‘ हंसराज ’ रखा गया । शुक्ल-पक्षके चन्द्रमाकी भांति अपनी रूपादिक समृद्धिके साथ वह दिन प्रतिदिन बढने लगा । साथ ही राम लक्ष्मणकी भांति शुकराज व हंसराज दोनों प्रेमपूर्वक साथ २ खेलने लगे । तथा जैसे काम और अर्थ दोनों धर्मकी सेवा करते हैं इस भांति पिताकी सेवा करने लगे । एक दिन राजा मृगध्वज सभामें बैठे थे कि द्वारपालने आकर तीन शिष्योंके साथ गांगालि ऋषिके आनेकी सूचना दी और आज्ञा पाकर उन्हें अन्दर लाया ।

राजाने ऋषिको योग्य आसन देकर कुशल-क्षेमादि पूछा, ऋषिने भी यथाविधि क्षेम कुशल पूछ कर आशीर्वाद दिया । पश्चात् राजाने विमलाचल तथा ऋषिके आश्रमका समाचार पूछ कर प्रश्न किया कि, “ यहां आपका आगमन किस हेतुसे और

किस प्रकार हुआ है ? ' तब ऋषिने कमलमालाको पडदेके अंदर बुलवाकर कहा कि, ' आज गौमुख नामक यक्ष स्वप्नमें आकर मुझे कहने लगा कि, ' मैं विमलाचल तीर्थको जानेवाला हूं.' मैंने यक्षसे पूछा- " इस तीर्थकी रक्षा कौन करेगा ? " उसने उत्तर दिया कि, ' हे गांगलि ऋषि ! तेरी पुत्री कमलमालाके भीम और अर्जुनके समान लोकोत्तर चरित्रधारी शुकराज व हंसराज नामक दो पुत्र हैं, उनमेंसे किसी एक को तू यहां ले आ । उनके अपरिमित माहात्म्यसे इस तीर्थमें कोई उपद्रव नहीं होवेगा ! ' मैंने कहा, ' क्षितिप्रतिष्ठित नगर तो यहांसे बहुत दूर है, मैं किस प्रकार जाऊं व उन्हें लेकर आऊं ? ' मेरे इस प्रश्न पर यक्षने कहा कि, ' यद्यपि क्षितिप्रतिष्ठित नगर यहांसे बहुत दूर है तथापि मेरे प्रभावसे समीपकी भांति दुषहरके पहिले ही तू जाकर आ जावेगा । ' इतना कह कर यक्ष अदृश्य होगया । प्रातःकाल होते ही मैं जागृत हुआ और वहांसे विदा होकर शीघ्र ही यहां आया । देवताके प्रभावसे क्या नहीं हो सकता है ? हे राजन् ! दक्षिणाकी भांति दोनोंमें से एक पुत्र शीघ्र मुझे दे, ताकि विना प्रयास प्रभातके ठंडे समय ही मैं आश्रम को चला जाऊं " ?

ऋषिके ये वचन सुनकर महा पराक्रमी, उत्कृष्ट कान्तिवान बालक हंसराजने हंसके समान गंभीर शब्दोंसे आदर पूर्वक पिताको कहा कि, " हे तात ! मैं तीर्थरक्षा करने जाऊंगा " यह सुन मातापिताने कहा-- " तेरे वचनोंकी हम बलिहारी लेते हैं । "

ऋषि बोले-“अहा ! बाल्यावस्थामें भी यह कितना आश्चर्यकारी क्षत्रियतेज है ? सत्य है सूर्यकी भांति सत्पुरुषोंका तेज भी अवस्थाकी अपेक्षा नहीं रखता । ”

राजा मृगध्वजने कहा कि, “बालक हंसराज कैसे भेजा जाय ? बालकके शक्तिमान होने पर भी पुत्रस्नेह वश माता-पिताके मनमें तो शंका बनी ही रहती है। पुत्र स्नेह ऐसा है कि भय न होने पर भी उससे मातापिताको पद पद पर भय दृष्टिमें आता है। क्या सिंहकी माता अपने पुत्रके सिंह होने पर भी उसके नाशकी शंका नहीं करती ?”

उसी समय सुदक्ष शुकराज उत्साहपूर्वक बोला-“हे तात ! मैं प्रथम ही से विमलाचलतीर्थको वंदना करनेकी इच्छा करता हूं और यह अवसर भी आ मिला। जैसे नृत्य करनेके इच्छुक मनुष्यके कानमें मृदंगका गंभीर शब्द पड़े, क्षुधातुर पुरुषको भोजनका निमंत्रण आवे तथा निद्रा ग्रसित व्यक्तिको बिछा हुआ बिछौना मिले उसी प्रकार मुझे यह उत्तम साधन प्राप्त होगया है इसलिये आपकी आज्ञासे मैं वहां जाऊंगा ” शुकराजके ये वचन सुनकर राजा मृगध्वज मंत्रियोंके मुखकी तरफ देखने लगा, तब मंत्रीगण बोले-“ऋषिश्रेष्ठ गांगलि ऋषि तो मांगनेवाले हैं, आप दाता हैं, तीर्थस्थानकी रक्षा करनेका कार्य-है तथा रक्षा करनेवाला शुकराज है; इस लिये हमको इस कार्यमें सम्मति देना उचित ही है ”

दूधमें घी व शक्करकी भांति मंत्रियोंकी अनुकूल सम्मति
 सुनकर शुकराज जानेके लिये बहुत उत्सुक हुआ तथा नेत्रोंमें
 अश्रु धारण किये हुए मातापिताके चरणोंमें प्रणाम कर गांग-
 लिक्वषिके साथ चला और अर्जुनके समान वह धनुर्धारी वीर
 क्षणमात्रमें सुयोग्य तीर्थ पर आया तथा सुसज्जित होकर वहां
 रहने लगा । उसके प्रभावेसे उस पर्वत पर फल फूलोंकी खूब
 उत्पत्ति हुई, हिंसक पशु तथा वनमें अग्नि इत्यादिका किंचित्-
 मात्र भी उपद्रव नहीं हुआ । पूर्वभवमें आराधन किये हुए
 धर्मकी महिमा इतनी अद्भुत है कि उसका वर्णन नहीं किया
 जा सकता. कारण कि शुकराजके समान साधारण मनुष्यकी भी
 योग्यता एक महान तीर्थके समान हो गई । तपस्वीजनोंके
 सांनिध्यसे सुखपूर्वक वहां रहते हुए एक दिन रात्रिके समय
 शुकराजने किसी स्त्रीके रोनेका शब्द सुना । उसने उस स्त्रीके
 पास जाकर मधुर-शब्दोंसे उसके दुःखका कारण पूछा । उस स्त्री-
 ने कहा कि “शत्रुके समुदायसे भी कम्पित न होनेवाली चंपा-
 पुरी नगरीमें शत्रुओंका मर्दन करनेवाला शत्रुमर्दन नामक राजा
 है । उस राजाके साक्षात् पद्मावतीके समान गुणवान पद्मावती
 नामक एक कन्या है, मैं उसकी धायमाता हूं । एक समय मैं
 उसे गोदमें लिये बैठी थी कि इतनेमें जैसे सिंह गाय सहित
 बल्लडेको उठा ले जावे उस भांति कोई पापा इधर मुझ सहित उस
 कन्याको उठा लाया तथा मुझे यहां डाल कौएकी भांति वह

दुष्ट कन्याको लेकर भाग गया; इसी दुःखसे मैं रोती हूँ.”

उस स्त्रीके वचन सुन कर शुकराजने उसे धीरज दी और इस को तपस्वीकी एक पर्णकुटी (झोपड़ी) में रखकर विद्याधरकी खोजमें चला। फिरते २ पिछली रात्रिके समय जिन-मंदिरके पीछे जाते उसने भूमि पर पड़े हुए एक मनुष्यको तडफडते हुए देखा तथा उसका नाम व दुःखका कारण पूछा। उसने उत्तर दिया कि “गगनवल्लभपुरके राजा सुप्रसिद्ध विद्याधरका मैं पुत्र हूँ। मेरा नाम वायुवेग है। राजा शत्रुमर्दनकी पुत्रीको हरण कर मैं इस मार्ग से जा रहा था कि तीर्थके उल्लंघनसे मेरी विद्या भ्रष्ट होगई इससे मैं यहां पड़ा हुआ हूँ। सर्वांग पीड़ित होने पर मैंने परकन्याको हरणके पातकसे दुर्गतिका अनुमान करके उस कन्याको तथा उसके ऊपरकी आसक्तिको भी छोड़ दी है। अधिकके हाथसे छुटे हुए पक्षीकी भांति वह कन्या भी मुझे छोड़कर कहीं चली गई। धिक्कार है मुझे कि लाभकी इच्छासे मैंने सुखरूप मूलद्रव्य भी खोदिया और असह्य व्यथाको भोगता हूँ।”

जिस बातकी शोधमें निकला था वही बात मालूम होजानेसे आनंदित होकर खोजते २ शुकराजने मंदिरमें देवी तुल्य उस कन्या को देखी और उसे लेजाकर उक्त धात्रीके पास रखी। बहुतसे उपाय करके विद्याधरको भी आरोग्य किया। जीवनदानके उपकारसे बिके हुए दासकी भांति वह विद्याधर शुकराज पर बहुत प्रीति रखकर उसका सेवक होगया। ‘पुण्यका माहात्म्य अद्भुत है’।

एक समय शुकराजने उस विद्याधरसे पूछा कि, "हे विद्याधर ! क्या तेरे पास आकाशगामिनी विद्या है ?" उसने कहा-- "महाराज ! है; परन्तु वह बराबर स्फुरण नहीं पाती । कोई विद्यासिद्ध पुरुष जो मेरे मस्तक पर हाथ धर कर वह विद्या पुनः मुझे दे तो वह सिद्ध हो सकती है, अन्यथा नहीं।" इस पर शुकराज बोला कि, "तो प्रथम तू मुझे वह विद्या दे, ताकि मैं विद्यासिद्ध हो कर कर्ज लिये हुए द्रव्यकी भांति तेरी विद्या तुझे वापस दे दूं।" तदनुसार वायुवेग विद्याधरने संतोषसे शुकराजको आकाशगामिनी विद्या दी. वह भी विधि-पूर्वक उसे साधन करने लगा । दैवकी अनुकूलता तथा पूर्वभ्रमका पुण्य दृढ होनेसे शीघ्र ही वह विद्या उसे सिद्ध होगई । तत्पश्चात् वही विद्या विद्याधरको वापस दी, उसे भी मुखपाठकी भांति सिद्ध होगई । इससे दोनों व्यक्ति आकाश तथा भूमिगामी होगये । वायुवेगने शुकराजको अन्य भी बहुतसी विद्याएं सिखाई, अगणित पूर्वपुण्योंका योग होने पर मनुष्यको कोई बात दुर्लभ नहीं है ।

पश्चात् गांगलि ऋषिकी आज्ञासे उन दोनोंने एक विशाल विमान निर्मित किया और दोनों स्त्रियोंको साथ लेकर चंपापुरी नगरीमें गये । और मंत्र-सिद्ध पुरुषकी भांति कन्याके अपहरण-से दुःखित राजाका शोक दूर किया । राजाने इसका परिचय पूछा तब वायुवेगने शुकराजका सम्पूर्ण वर्णन कह सुनाया ।

जिससे राजाको ज्ञात हुआ कि यह तो मेरे मित्रका पुत्र है। शास्त्रमें कहा है कि, राजा (रवि) मित्रपुत्र (शनि) का शत्रु है; परन्तु आश्चर्यकी बात है कि वह राजा मित्रपुत्र शुकराज पर बहुत प्रीति रखने लगा तथा हर्षपूर्वक अपनी कन्या भी उसे दे दी। इसी रीतिसे ही प्रीति बढ़ती है' राजाने चंपापुरीमें वर-कन्याके विवाहका भारी उत्सव किया। उस समय वरका बहुत ही सत्कार किया। राजाके विशेष आग्रहसे शुकराज कुछ समय तक वहीं रहा। 'रसेई जिस भांति नमक ही से स्वादिष्ट व उत्तम होती है उसी प्रकार इस लोकके सर्व कार्य पूर्वपुण्य ही से सफल होते हैं, इसलिये विवेकी पुरुषोंने सांसारिक कार्य करते हुए योग्यतानुसार धर्मकार्य भी अवश्य करते रहना चाहिये।' यह विचार कर एक दिन शुकराज कुमार राजाकी आज्ञा लेकर तथा पद्मावतीको पूछ कर विद्याधरके साथ वैताढ्य पर्वत पर चैत्यवन्दन करने को गया। चित्र विचित्र जिन-मंदिरसे सुशोभित उस पर्वतकी शोभा देखता और मार्ग चलता हुआ गगनवल्लभ नगरमें आया। वायुवेगने अपने मातापिताको अपने ऊपर किये हुए उपकारका वर्णन किया तो उन्होंने हर्षसे अपनी कन्या वायुवेगा शुकराजको दी। विवाहोत्सव हो जानेके बाद शुकराज तीर्थ वन्दनके लिये बहुत उत्सुक हुआ, परन्तु आंतरिक प्रीति संस्कार करते हुए वायुवेगके मातापिताने उसे कुछ दिन वहीं रहने पर विवश किया। भाग्यशाली हां अथवा

अभागी हो परन्तु उसे तीर्थयात्राके समान धर्मकृत्य करनेमें विघ्न तो आते ही हैं, परन्तु उसमें अन्तर इतना रहता ही है कि भाग्यशालीको स्थानर पर सत्कार मिलता है और अभागीको पद पद पर तिरस्कार मिलता है। एक समय कोई पर्व आया उसके उद्देश्यसे वायुवेग तथा शुकराज दोनों व्यक्ति विमानमें बैठकर तीर्थ वन्दनके लिये रवाना हुए। पीछेसे किसी स्त्रीने आवाज दिया कि “शुकराज, शुकराज !” जिसे सुन चकित हो दोनों जने खड़े रहे और उसे पूछा कि, “तू कौन है ?” उस स्त्रीने उत्तर दिया कि, “मैं चक्रेश्वरी नामक देवी हूँ। सद्गुरुकी आज्ञाकी भांति गोमुख यक्षकी आज्ञासे मैं काश्मीर देशान्तर्गत विमलाचल तीर्थ पर रक्षा करनेके लिये जा रही थी। मार्गमें ज्यों ही मैं क्षितिप्रतिष्ठितनगर पर आई तो मैंने उच्च स्वरसे रुदन करते हुए एक स्त्रीका आर्च शब्द सुना। उसके दुःखसे दुःखित होकर मैं नीचे उतरी और उसे पूछा कि “हे कमलाक्षि ! तुझे क्या दुःख है ?” उसने उत्तर दिया कि—“मेरे शुकराज नामक पुत्रको गांगलिऋषि अपने आश्रममें ले गया है। बहुत समय व्यतीत हुआ पर अभी तक उसका कुशल समाचार नहीं मिला। इससे मुझे महा दुःख हो रहा है।” यह सुन मैंने कहा—“हे भद्रे ! तू रुदन न कर। मैं वहीं जाती हूँ, वापस लौटते समय तक तेरे पुत्रका कुशल समाचार लेती आऊंगी। इस प्रकार उसका समाधान करके मैं विमलाचल तीर्थ पर

गई, वहां तुझे न देखा तो अवधिज्ञानसे ज्ञात करके मैं यहां आई हूं। हे चतुर ! शीघ्र तेरी आतुर माताको अपने दर्शन देकर शान्तवना दे। जैसे सेवक अपने स्वामीकी इच्छाके अनुसार बर्त्ताव करते हैं उसी प्रकार विशेष कर सुपुत्र अपनी माताकी, सुशिष्य अपने गुरुकी, तथा श्रेष्ठ कुलवधू अपनी सासकी इच्छानुसार बर्त्ताव करते हैं। मातापिता अपने सुख ही के लिये पुत्रकी इच्छा करते हैं। जो पुत्र दुःखके कारण हो तो ऐसा समझना चाहिये कि मानों जलमें अग्नि लगी। मातापितामें भी माता विशेष पूजनीय है। कारण कि पिताकी अपेक्षा पुत्रके लिए माता ही अधिक कष्ट सहती है।

ऊढो गर्भः प्रसवसमये सोढमप्युग्रशूलं, पथ्याहारैः स्नपनविधिभिः
स्तः यपानप्रयत्नैः । विष्टामूत्रप्रभृतिमलिनैः कष्टमासाद्य सद्यः, त्रातः पुत्रः
कथमपि यथा स्तूयतां सैव माता ॥ १ ॥ ६७८ ॥

जिसने गर्भ धरण किया प्रसूतिके समय अतिविषम वेदना सहन की तथा बाल्यावस्थामें स्नान कराना दूधपानका यत्न रखना, मल-मूत्रादिक साफ करना, योग्य भोजन खिलाना आदि बहुत प्रयाससे जिसने रक्षण किया वह माताही प्रशंसनीय है।” यह सुन शोकसे सजल नेत्र होकर शुकराज कहने लगा कि “हे देवि ! समीप आये हुए मर्त्यको वन्दना किये बिना किस प्रकार आऊं ?

छेकेनाप्युत्सुकैनापि, कार्यमेव यथोचितम् ।

सद्धर्ममकविसरंनुप्राप्तमिव भोजनम् ॥ १ ॥ ६८० ॥

चतुर मनुष्योंको उचित है कि चाहे कितनी ही उत्सुकता हो परन्तु प्रथम योग्य कार्यको अवश्य करे । जैसे समय पर भोजन करते हैं वैसे ही अवसर आ जाने पर धर्मकृत्य करना भी आवश्यकिय है । माता इसलोकमें स्वार्थ करनेवाली है परन्तु यह तीर्थ तो इसलोक तथा परलोक दोनों ही में हितकर है; इसलिये उत्सुक होते हुए भी मैं इस तीर्थको वन्दना करके वहाँ आऊंगा । तू मातासे कहना कि 'मैं अभी आता हूँ।' तदनुसार चक्रेश्वरी देवीने शीघ्र ही जाकर कमलमालाको उक्त संदेश कह सुनाया ।

इधर शुकराजने वैताढ्य-पर्वतके तीर्थ पर आकर अत्यन्त आश्चर्यकारक शाश्वत-चैत्यमें शाश्वती-जिन-प्रतिमाका पूजन कर अपना जन्म सफल माना । वापस आते समय दोनों नव वधूओंको अपने साथ ली तथा दोनों श्वसुर और मातामह (नाना) गांगलिऋषिकी आज्ञा ले भगवान् ऋषभदेवको प्रणाम कर विमानमें बैठा, और बहुतसे विद्याधरोंका समुदाय साथमें ले धूमधामसे अपने नगरके समीप आया । उस समय संपूर्ण नगरवासी स्तुति करते हुए उसे देखने लगे । जैसे जयन्त इन्द्रकी नगरीमें प्रवेश करता है उसी भांति शुकराजने अपने पिताकी नगरीमें प्रवेश किया । पुत्रके कुशलपूर्वक आजानेसे

हर्षित होकर राजाने नगरमें उत्सव किया । वर्षाकालमें जल-वृष्टिकी भांति बड़े लोगोंका आनन्द भी सब जगह फैल जाता है ।

युवराजकी भांति शुकराज राज्य कार्य देखने लगा । ठीक ही है, जो पुत्र समर्थ होते हुए भी पिताका राज्यभार हलका न करे वह क्या सुपुत्र हो सकता है ? पुनः वसंतऋतुका आगमन हुआ तब राजा दोनों पुत्रोंको साथमें लेकर सपरिवार एक दिन उद्यानमें गया । लज्जा छोड़कर सब लोग अलग २ क्रीडा करने लगे, इतने ही में एकदम भयंकर कोलाहल उत्पन्न हुआ । राजाके पूछने पर किसी सरदारने तपास कर कहा कि, “हे प्रभो सारंगपुर पत्तनमें वीरांग नामक राजा है उसका शूर नामक शूरवीर पुत्र जैसे हाथी हाथीपर धावा करता है वैसे ही पूर्व-वैरसे क्रोध सहित हंसराज पर चढ़ आया है । ” यह सुन राजा मनमें तर्क करने लगा कि, “मैं राज्य करता हूं, शुकराज कार-भार सम्हालता है, वीरांग मेरा सेवक (मांडलिक) है, ऐसा होते हुए शूर और हंसका परस्पर वैर होनेका क्या कारण है ? ” यह सोचकर उत्सुक होकर उसने शुकराज व हंसराजको साथ ले शूरका सामना करनेके लिये ज्योंही कदम बढ़ाया कि इतनेमें एक सेवकने आ निवेदन किया कि, “हे राजन् ! पूर्वभवमें हंसराजने शूरका पराभव किया था उस वैरसे वह हंसराजके सन्मुख युद्धकी याचना करता है । ” यह सुन राजा मृगध्वज

और शुकराज युद्धकी तैयारी करने लगे परन्तु शूरवीर हंसराज
 उनको छोड़ स्वयं तैयार होकर युद्धस्थलमें जा पहुंचा । शूर भी
 बहुतसे शस्त्रास्त्रोंसे सुसज्जित हो एक भयंकर रथ पर आरुढ़ हो
 कर रणांगणमें आया । अर्जुन और कर्णके समान उन दोनों
 वीरोंका भयंकर शस्त्र-युद्ध सब लोकोंके सन्मुख बहुत ही आश्चर्य-
 कारी हुआ । श्राद्ध-भोजी ब्राह्मण जैसे भोजन करनेमें नहीं
 थकते वैसेही दोनों रणलोलुपी वीर बहुत देर तक नहीं थके ।
 परस्पर समान वीर समान उत्साही तथा समान बलशाली दोनों
 राजकुमारोंको देखकर विजय लक्ष्मी भी क्षण मात्र संशयमें
 पड़ गई कि किसके गलेमें जयमाला डालूं ? इतने ही में जैसे
 इन्द्र पर्वतकी पंख तोड़ता है उस भांति हंसराजने अनुक्रमसे
 शूरके सब शस्त्र तोड़ दिये । इससे शूर मदोन्मत्त हाथीकी भांति
 क्रोधित हो वज्रके समान मुट्ठी बांध कर हंसराजको मारने
 दौड़ा । यह देख राजा मृगध्वज चौंक कर शुकराजकी ओर
 देखने लगा । चतुर शुकराजने शीघ्र ही पिताका अभिप्राय
 समझ कर अपनी विद्याएं हंसराजके शरीरमें पहुंचाई । हंसराज-
 ने इन विद्याओंके बलसे क्षण मात्रमें शूरको उठा लिया और
 बहुतसे आक्षेपयुक्त वचन कह कर गेदकी भांति जोरसे फेंका ।
 शूर अपनी सेनाको लांघ एक किनारे गिरा और मूर्छित होगया ।
 सेवकोंके बहुत प्रयत्न करने पर उसने बाह्य चैतन्यता पाया तथा
 कोपका प्रगट फल देख कर हृदयमें भी चैतन्य हुआ; और

मनमे विचार करने लगा कि, “मैंने व्यर्थ क्रोध वश अपना पराभव कराया तथा रौद्रध्यानसे कर्मबन्धन करके अनन्त दुःखका देनेवाला संसार भी उपार्जित किया, अतः मुझे अधिकार है !” इस भांति अपनी आत्माकी शुद्धि कर व बैर बुद्धिका त्याग कर शूरने मृगध्वज राजा तथा उसके दोनों पुत्रोंसे क्षमा मांगी । चकित हो राजा मृगध्वजने शूरसे पूछा कि, “तू पूर्वभवका बैर किस प्रकार जानता है” ? शूरने उत्तर दिया कि, “हमारे नगरमें श्रीदत्त केवली आये थे । मैंने उन्हें अपना पूर्व भव पूछा था, उस पर उन्होंने बताया कि, “जितारि नामक भदिलपुरका राजा था । हंसी और सारसी नामक उसकी दो रानियां थीं, और सिंह नामक मंत्री था । वह राजा कठिन अभिग्रह लेकर तीर्थ यात्राको निकला । काश्मीर देशके अंदर यक्षके स्थापित किये हुए श्रीविमलाचलतीर्थ पर उसने जिन-भगवानको वन्दना की । विमलपुरकी स्थापना कर बहुत समय तक वहां रहा और कालक्रमसे मृत्युको प्राप्त हुआ । तत्पश्चात् सिंह मंत्री सर्व राज्य परिवार तथा नगरवासियोंको लेकर भदिलपुरकी ओर चला । सत्य है कि—

जननी जन्मभूमिश्च, निद्रा पश्चिमरात्रिजा ।

इष्टयोगः सुगोष्ठी च दुर्मोचाः पंच देहिभिः ॥१॥७१५॥

जननी, जन्मभूमि, पिछली रात्रिकी नींद, इष्ट वस्तुका संयोग तथा मनोहर कहानी इन पांच बातोंका त्याग करना

बहुत ही कठिन है। आधा मार्ग चलनेके बाद मंत्रीको स्मरण आया कि “अपनी एक श्रेष्ठ वस्तु वहां रह गई है, तब मंत्रीने एक दूतसे कहा कि, “तू शीघ्र विमलपुर जा और अमुक वस्तु ले आ।” दूतने उत्तर दिया कि, “शून्य नगरमें मैं अकेला कैसे जाऊं ?” इस पर मंत्रीने रोषमें आकर जबरदस्तीसे उसे भेजा। उस दूतने विमलपुरमें आकर भी किसी भिन्नके इष्ट वस्तुको लेकर चले जानेके कारण कुछ न पाया। जब वह खाली हाथ लौटकर आया तो मंत्रीने और भी क्रोधित हो कर उसे खूब मारा तथा मूर्छितावस्थामें ही मार्गमें छोड़ आगेको प्रस्थान किया। लोभसे मनुष्यको कितनी मूर्खता प्राप्त होती है? धिक्कार है ऐसे लोभको। क्रमशः मंत्री सपरिवार भदिलपुरमें पहुंचा। इधर शीतल पवनके लगनेसे उस दूत को भी चैतन्यता हुई। स्वार्थरत सब साथियोंको गये जान कर वह मनमें विचार करने लगा कि। “प्रभुताके अहंकारसे उन्मत्त इस अधम मंत्रीको धिक्कार है! कहा है कि—

चौर--चिल्लाकाइं गंधिअ भट्टा य विज्जपाहुणया ।

बेसा धूअ नरिंदा परस्स पीडं न याणंति ॥१७२३॥

चौर, बालक किरानेकी दूकानवाला (अत्तार), रण-योद्धा, वैद्य, पाहुना, वेश्या, कन्या तथा राजा ये नौ व्यक्ति परदुःखको नहीं समझती हैं। इस भांति व्याकुल होकर मार्ग न जानेसे वह वनमें भटकते २ क्षुधा तथा तृषासे बहुत पीड़ित

हुआ और मनमें आर्त्त रौद्रध्यान करके मृत्युको प्राप्त हुआ। उसी दूतका जीव भदिलपुरके जंगलमें एक भयानक सर्प हुआ। एक समय उसी सर्पने वनमें भ्रमण करते हुए सिंहमंत्रीको काटा जिससे वह मरगया, सर्प भी मर कर नर्कमें गया। तथा नर्कसे निकल कर तूं वीरांग राजाका पुत्र हुआ है। मंत्रीका जीव विमलाचल पर्वत पर जलकी बावडीमें हंसका बच्चा हुआ, उसे विमलाचलके दर्शनसे जातिस्मरण ज्ञान उत्पन्न हुआ। उसने पूर्व भवमें मैंने सम्यक् रीतिसे जिनभगवानकी आराधना नहीं की इससे मुझे तिर्यच योनि मिली है, यह विचार कर कि चोंचमें फूल ला २ कर जिन महाराजकी पूजा करना शुरू की, दोनों पंखोंमें जल भर कर उसने भगवानको स्नान कराया इत्यादि आराधनासे वह मृत्युको पा सौधर्म-देवलोकमें देवता हुआ तथा वहांसे च्यव कर इस समय राजा मृगध्वजके यहां हंसराज नामका पुत्र हुआ है। श्रीदत्त मुनिके मुखसे यह वृत्तान्त सुन कर मुझे जातिस्मरण की भांति पूर्वभवके संपूर्ण बैरका स्मरण हुआ और अहंकारसे “हंसराजको अभी मार डालूँ” ऐसी कल्पना करता हुआ यहां आया। आते समय मेरे पिताने मुझे बहुत मना किया परन्तु मैंने नहीं माना। यहां आने पर हंसराजने मुझे युद्धमें जीता। देव-योगसे प्राप्त इसी वैराग्यसे मैं श्रीदत्त मुनिके पास जा दीक्षा लूंगा “दुष्कर्मरूप अंधकारको नाश करनेके लिये सूर्यके समान शूने इतना कह अपने स्थान पर आकर शीघ्र ही दीक्षा ग्रहण

कर ली, वास्तवमें धर्म कार्यमें शीघ्रता करनी ही प्रशंसाके योग्य है ।

प्राञ्जाजीदविलंबं च, धर्मे श्लाघ्या त्वरैव हि ॥७३४॥

यह नियम है कि किसी वस्तुका इच्छुक मनुष्य यदि उसी वस्तुके ऊपर किसी अन्य व्यक्तिको आसक्त हुआ देखे तो उसे बहुत ही उत्सुकता होती है । इस नियमके अनुसार राजा मृगध्वज भी दीक्षा लेनेके लिये अत्यन्त उत्सुक हो मनमें विचार करने लगा कि, “शाश्वत आनन्दका दाता वैराग्य रंग अभी तक क्यों मेरे चित्तमें उत्पन्न नहीं होता है ? अथवा केवली भगवानने उस समय कहा है कि जब तू चन्द्रावतीके पुत्रको देखेगा तब तुझे योग्यताकी प्राप्ति होकर उत्तम वैराग्य होगा, परन्तु वंध्याकी भांति चन्द्रावतीको तो अभी तक पुत्र नहीं होता अतएव क्या करूं ?” इस भांति विचार निमग्न हो राजा मृगध्वज एकान्तमें बैठा था इतनेमें तरुणावस्थासे अत्यन्त शोभायमान एक पुरुषने आकर राजाको नमस्कार किया । राजाने उसे पूछा कि, “तू कौन है ?” वह व्यक्ति राजाको उत्तर देती ही थी कि इतने ही में दिव्य आकाशवाणी हुई कि--“हे राजन् यह आगन्तुक पुरुष चन्द्रावतीका पुत्र है । इस बातमें यदि तुझे संशय हो तो यहाँसे ईशान कोणकी ओर पांच योजन दूर दो पर्वतोंके मध्यमें कदलीवन है, वहाँ यशोमति नामक एक योगिनी रहती है उसके पास जाकर पूछ । वह तुझे सर्व वृत्तांत कहेगी.”

इस आकाशवाणीसे राजाको बहुत आश्चर्य हुआ तथा उक्त-पुरुषको साथ लेकर उस योगिनीके पास गया । योगिनीने राजाको प्रीतिपूर्वक कहा कि "हे राजन् ! तूने जो दिव्य वचन सुना वह सत्य है । संसाररूपी भयंकर जंगलमें आया हुआ मार्ग बहुत ही विषम है, जिसमें तेरे समान तत्त्वज्ञानी पुरुष भी घबरा जाते हैं यह बड़े ही आश्चर्यका विषय है । हे राजन् ! इस पुरुषका आरंभसे सर्व वृत्तान्त कहती हूं; सुन ।

चन्द्रपुर नगरमें चन्द्रमाके समान आल्हादकारी यशवाला सोमचन्द्र नामक राजा तथा भानुमति नाम उसकी रानी थी । उसके गर्भमें हेमवन्त-क्षेत्रसे सौधर्म-देवलोकका सुख भोग कर एक युगल (जोड़ला) ने अवतार लिया । अनुक्रमसे भानुमतिसे ज्ञातीवर्गको आनन्ददायक एक पुत्र व एक पुत्रीका प्रसव हुआ । उनमें पुत्रका नाम चन्द्रशेखर व पुत्रीका नाम चन्द्रवती रखा गया । साथ साथ वृद्धि पाते हुए एकसे एक अधिक दोनों को जातिस्मरण ज्ञान हुआ । इतनेमें राजा सोमचन्द्रने चन्द्रवती-को तेरे साथ विवाह दी, तथा यशोमती नामक एक राजकन्या-से चन्द्रशेखरका विवाह किया । पूर्वभवेके अभ्याससे चंद्रशेखर व चंद्रवती इन दोनोंका परस्पर बहुत अनुराग होगया तथा काम-वासनासे पूर्वभवेके अनुसार सम्बन्ध करनेकी इच्छा करने लगे, धिकार है ऐसे सम्बन्ध को ! इस संसारमें जीवोंको कैसी२ नीच वासनाएं उत्पन्न होती हैं कि जिनका मुंहसे उच्चारण भी नहीं

किया जा सकता। जिसमें चंद्रशेखर व चन्द्रवतीके समान उत्तम पुरुषोंको भी ऐसा कुमार्ग सझता है। हे राजन् ! जिस समय तू एकाएक गांगलिकृषिके आश्रमको चला गया, उस समय अपना इष्ट मनोरथ पूर्ण करनेके लिये चन्द्रवतीने हर्षसे चन्द्रशेखरको बुलवाया। वह तेरा राज्य हस्तगत करने ही के लिये आया था परन्तु उत्तमक (मणिविशेष) से जैसे अग्नि दाह नहीं कर सकती वैसे ही तेरे पुण्यसे वह अपना स्वार्थ सिद्ध नहीं कर सका। पश्चात् वे दोनों (चन्द्रवती व चन्द्रशेखर) व्यक्ति भोलकी भांति तुझे ठगनेके लिये नानाप्रकारके युक्ति-पूर्ण वचनोंसे तुझे समझाते रहे। एक समय चन्द्रशेखरने काम-देव नामक यक्षकी आराधना की। उसने प्रकट होकर कहा कि, “हे चन्द्रशेखर ! मैं तेरा कौनसा इष्ट कार्य करूं ?” चन्द्रशेखर बोला-“तू शीघ्र मुझे चन्द्रवती दे ” यह सुन यक्षने एक अंजन देकर उससे कहा कि, “मृगध्वज राजा चन्द्रवतीके पुत्रको प्रत्यक्ष नहीं देखेगा तब तक चन्द्रवतीके साथ विलास करते इस अदृश्यकरण अंजनसे तुझे कोई नहीं देख सकेगा। जब मृगध्वज चन्द्रवतीके पुत्रको देखेगा तब सब बात प्रकट हो जायगी ” यक्षकी यह बात सुन कर प्रसन्न हो चन्द्रशेखर चन्द्रवतीके महलमें गया। वहां अंजनयोगसे अदृश्य रहकर बहुत समय तक काम-क्रीडा करता रहा। उससे चन्द्रवतीको चन्द्राङ्क नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। यक्षके प्रभावसे यह हाल

किसीको ज्ञात न हो सका । तथा उस बालकको ले जाकर चन्द्रशेखरने अपनी स्त्री यशोमतीके सुपुर्द किया । यशोमती अपने ही गर्भसे उत्पन्न हुए पुत्रकी भांति उसका लालन-पालन करने लगी । स्त्रियोंमें स्नेह बहुत ही होता है । जब वह बालक चन्द्राङ्ग तरुणावस्थाको पहुँचा तो पतिवियोगसे पीडित यशोमती उसकी सुन्दर लवी देखकर विचार करने लगी कि, “जिसका पति हमेशा परदेशमें रहता है वह स्त्री जैसे पतिका मुंह नहीं देख सकती उसी भांति चन्द्रवतीमें आसक्त निज पति चन्द्रशेखरको मैं भी नहीं देख सकती, अतएव अपने हाथसे लगाये हुए वृक्षका फल जैसे स्वयं ही खाते हैं उसी भांति स्वयं पालन किये हुए इस सुन्दर तरुण पुत्रको ही पति मानकर पालन करनेका फल प्राप्त करूं.” यह विचार विवेक तथा चतुरताको कोनेमें पटक उसने पुत्रसे कहा कि, “हे भद्र! जो तू मुझे अंगीकार करेगा तो तुझे सम्पूर्ण राज्य मिलेगा और मैं भी तेरे वशमें रहूंगी” ऐसे वचन सुन कर अकस्मात् हुए भयंकर प्रहारसे पीडित मनुष्यकी भांति दुःखित होकर चन्द्राङ्ग कहने लगा, ‘हे माता ! तू ये कानसे सुने भी नहीं जा सकते तथा मुखसे बोले भी नहीं जा सकते ऐसे अयुक्त वचन क्यों बोलती है ?’ यशोमती कहने लगी कि, “हे सुन्दर ! मैं तेरी माता नहीं, बल्कि मृगध्वज राजाकी रानी चन्द्रवती तेरी माता है. यह सुन सत्य बात जाननेके लिये सत्यप्रिय चन्द्राङ्गका मन बहुत

ही आतुर हुआ । उसने यशोमतीके वचनका तिरस्कार किया । सच्चे मातापिताकी परीक्षा करने तथा उनको देखनेके लिये वहांसे निकला । वह आज तुझे आकर मिला । यशोमती बगुलेकी भांति पति तथा पुत्रसे भ्रष्ट हो गई । जिसमें उसे वैराग्य हुआ, दीक्षा लेनेका विचार किया, परन्तु जैन साध्वीका योग न मिलनेसे वह योगिनी हो गई, मैं वही यशोमती हूं । भवकी उत्तम भावनाओंका मनन करनेसे मुझे शीघ्र कितना ही ज्ञान प्राप्त हुआ, इससे मैं यह सब बात जानती हूं । उमी चतुर यक्षने आकाशवाणीके रूपमें मुझसे सर्व वर्णन कहा था सो यथावत् मैंने तुझे कह सुनाया ” यह अयुक्त बात सुनकर राजाको बहुत क्रोध उत्पन्न हुआ, साथही मनमें बहुत ही खेद हुआ, अपने घरका ऐसा हाल सुनकर कौन दुखी न हो ? पश्चात् सत्यवादिनी योगिनीने राजाको प्रतिबोध करनेके हेतु योगिनीकी भाषाकी रीतिके अनुसार मधुरवचनसे कहा--

कवण केरा पुत्त मित्ता, कवण केरी नारी ।

मुहिआ मोहिओ मेरी मेरी, मूढ भणइ अविचारी ॥ १ ॥

जोगिन जोगी हो हो, जोइन जोग विचारा ।

मेहिह अमारग आदरि मारग, जिम पामो भव पारा ॥२॥ जा०

अतिहि गहना अतिहि कूडा, अतिहि अथिर संसारा ।

भामु छँडी योगजु मांडी, कीजे जिनधर्म सारा ॥ ३ ॥

मोहे मुहिओ कोहे खोहिओ, रोहे वहिओ धाई ।

मुहिओ बिहु भवि अबर कारणि, मूरख दुखियो थाई ॥४॥जा०

एकने काजे जिन्हे खंचे, त्रणे संचे चार वारे ।

पांचे पाली छए टाली, आपे आप उतारे ॥५॥ जागिन० ॥७८०॥

योगिनीकी यह बात सुनकर राजा मृगध्वजका चित्त शान्त और विरागी होगया । पश्चात् योगिनीकी आज्ञा लेकर वह अपने पुत्र चन्द्राङ्कको साथ ले अपने नगरके उद्यानमें गया । चन्द्राङ्कको भेज कर शुकराज, हंसराज तथा मंत्री आदिको बुलवाया और संसारसे उद्विग्न तथा तत्त्वमें निमग्न होकर सर्व परिवारको कहा कि, “मैं अब तपस्या करूंगा, कारण कि दास तुल्य इस संसारसे मेरा बहुत ही पराभव हुआ । अब शुकराजको राज्य दे देना, अब मैं घर नहीं आऊंगा” मंत्री आदिक बोले-- “हे महाराज ! घर पधारिये । वहां चलनेमें क्या दोष है ? मनमें मोह न हो तो घर भी जंगल ही के समान है, और जो मोह होवे तो जंगल भी घरकी भांति (कर्म बंधन करने वाला) है. सारांश यह है कि, जीवको बन्धनमें डालनेवाला केवल मोह ही है ” इस प्रकार आग्रह करनेसे राजा परिवार सहित घर आया । उसे देखते ही चन्द्रशेखरको यक्षका बचन याद आया और शीघ्र वह वहांसे भाग कर अपने नगर को जा पहुंचा. राजा मृगध्वजने महोत्सवके साथ शुकराजको राज्याभिषेक किया और पुत्रके पाससे “दीक्षाकी सम्मति” यही मात्र मूल्य लिया । राज्याभिषेकके उत्सवके अनन्तर रात्रि हुई । युक्त ही है, राजा

(चन्द्र तथा पृथ्वीका पालक) जब नवीन उदयसे सुशोभित होता है तब रात्रि प्रफुल्लित हो इसमें आश्चर्य ही क्या है ? यद्यपि चारों तरफसे घोर अंधकार फैल रहा था तथापि ज्ञान-रूपी उद्योतके उज्ज्वल होनेसे जिसके चित्तमें लेश मात्र भी अन्धकार नहीं ऐसा मृगध्वज राजा मनमें विचार करने लगा कि, “कब प्रातःकाल होगा तथा मैं दीक्षा ग्रहण कर आनन्द पाऊंगा ? अतिचार रहित सुन्दर चारित्र्यकी चर्चासे मैं कब चल्छूंगा ? तथा सकलकर्मोंका क्षय कब करूंगा ? ” इस भांति उत्कर्षकी अन्तिम सीमा पर पहुँचे हुए और शुभध्यानमें तल्लीन राजा मृगध्वजने ऐसी शुभभावनाओंका ध्यान किया कि जिससे प्रातःकाल होते ही रात्रिके साथ साथ घनघाती कर्मोंका भी अत्यन्त क्षय हो गया और उनके (कर्म) साथ कदाचित् स्पर्धा होने ही से अनायास ही उसे केवलज्ञान भी उत्पन्न हो गया । सांसारिक कृत्य करनेके लिये चाहे कितना ही प्रयत्न किया जाय वह भी निष्फल होता है परन्तु आश्चर्यकी बात है कि दीक्षाके समान धर्मकृत्यकी तो केवल शुभभावना करने ही से मृगध्वज राजाकी भांति केवलज्ञान उत्पन्न होता है । सर्वज्ञ तथा निर्ग्रन्थ मुनिराजोंमें शिरोमणि हुए उस मृगध्वज राजाको तुरन्त साधुवेष देनेवाले देवताओंने भारी उत्सव किया । उस समय चकित तथा आनन्दित होकर शुकराज इत्यादि लोग वहाँ आये, राजर्षिने भी अमृतके समान इस प्रकार उपदेश दियाः--

‘हे भव्य प्राणियों ! साधुधर्म तथा श्रावकधर्म ये दो संसाररूपी समुद्रमें सेतुबंध (पाल) हैं । जिसमें पहिला सीधा किन्तु कठिन मार्ग है और दूसरा टेढा किन्तु सुखपूर्वक जाने योग्य मार्ग है- इसमें जिस मार्गसे जानेकी इच्छा हो उस मार्ग से जाओ।’

यह उपदेश सुन कमलमाला, सद्धर्मरूप समुद्रमें हंसके समान हंसराज और चन्द्राङ्क इन तीनों व्यक्तियोंको प्रतिबोध हुआ और दीक्षा लेकर क्रमशः सिद्ध हो गये । शुकराज आदि सर्व लोगोंने साधुधर्म पर श्रद्धा रख करके शक्तिके अनुसार दृढ समकित पूर्वक बारहव्रत ग्रहण किये । राजर्षि मृगध्वज तथा चन्द्राङ्कने विरागी होनेसे असती चन्द्रवतीका कुकर्म कहीं भी प्रकट नहीं किया- दृढ वैराग्य होने पर परदोष प्रकट करनेसे प्रयोजन ही क्या है ? भवाभिनन्दी जीव ही केवल परनिन्दा करनेमें निपुण होते हैं । स्वयं अपनी स्तुति करना तथा पर-निन्दा करना यह निर्गुणी मनुष्यका लक्षण है व अपनी निन्दा करना तथा परस्तुति करना ये गुणी मनुष्योंके लक्षण हैं, केवल-ज्ञानसे सूर्य समान राजर्षि मृगध्वज अपने चरणोंसे पृथ्वीको पवित्र करने लगे औ। इन्द्र समान पराक्रमी शुकराज राज्यकार-भार चलाने लगा ।

महान् अन्यायी चन्द्रशेखर पुनः चन्द्रवती पर स्नेह तथा शुकराज पर द्वेष रखने लगा । अतिशय क्रोध होनेसे एकबार

उसने राज्यकी अधिष्ठात्रि गोत्रदेवीकी बहुत समय तक आराधना की। विषयान्ध पुरुषके कदाग्रहको धिक्कार है ! अधिष्ठायिका-देवीने प्रकट होकर चन्द्रशेखरसे कहा कि, “हे वत्स! वर मांग” चन्द्रशेखरने कहा “हे देवि! शुकराजका राज्य मुझे दे” देवीने कहा “जैसे सिंहके सन्मुख हरिणीका कुछ भी पराक्रम नहीं चलता वैसे ही दृढसम्यक्त्वधारी शुकराजके साम्हने मेरा पराक्रम नहीं चल सकता.” चन्द्रशेखर बोला “जो तू प्रसन्न हुई हो और मुझे वर देती हो तो बलसे अथवा छलसे भी मेरा उपरोक्त कार्य कर।”

चन्द्रशेखरकी भक्ति तथा उक्तिसे संतुष्ट हो कर देवीने कहा कि, “यहां तो छल ही का कार्य है, बलका नहीं. कोई समय जब शुकराज बाहर गांव जावे तब तूने शीघ्र उसके राजमहलमें जाना, मेरे प्रभावसे तेरा स्वरूप ठीक शुकराजके सदृश हो जावेगा, उससे तू यथेष्ट भांतिसे शुकराजका राज्य भोग सकेगा” यह कह देवी अदृश्य होगई। चन्द्रशेखरने बड़े संतोषसे चन्द्रवतीको यह वृत्तान्त कह सुनाया।

एक समय तीर्थयात्रा करनेको मन उत्सुक होनेसे शुकराजने अपनी दोनों रानियोंसे कहा कि “हे प्रियाओ! मैं विमलाचल तीर्थको वंदन करनेके हेतु उस आश्रम पर जानेका विचार करता हूं” उन्होने कहा कि, “हम भी साथ चलेंगी, ताकि हमको भी अपने मातापिताका मिलाप हो जावेगा,

तदनंतर शुक्रराज अपनी दोनों स्त्रियोंको साथ लेकर किसीको भी न कहते देवताकी भांति विमानमें बैठकर विदा हुआ, यह हाल किसीको भी ज्ञात न हुआ । चन्द्रवतीका तो चित्त इसी और लगा हुआ था, अतः मालूम होते ही उसने चन्द्रशेखरको खबर दी, वह भी शीघ्र ही वहां आया और आते ही उसका स्वरूप शुक्रराजके समान होगया, रूपधारी सुग्रीवके भांति उस दांभिकको सब मनुष्य शुक्रराज ही समझने लगे । रात्रिके समय वह चिल्लाकर उठा तथा कहने लगा कि, “अरे दोड़ो, दोड़ो ! यह विद्याधर मेरी दोनों स्त्रियोंको हरण कर ले जाता है,” यह सुन मंत्री आदि सब लोग हाहाकार करते वहां आये तथा कहने लगे कि, “हे प्रभो ! आपकी वे सर्व विद्याएं कहां गईं ?” चन्द्रशेखरने दुःखी मनुष्यकी भांति मुख मुद्रा करके कहा कि “मैं क्या करूं ? उस दुष्ट विद्याधरने जैसे यम प्राण हरण करता है वैसेही मेरी सर्वविद्याएं भी हरण करली, तब लोगोंने कहा—“हे महाराज ! वे विद्याएं तथा स्त्रियां भलेही चली जावें, आपका शरीर कुशल है इसीसे हम तो संतुष्ट हैं, ”

इस भांति पूर्णकपटसे सब राजकुलको ठगकर चन्द्रवती पर प्रीति रखता हुआ चन्द्रशेखर राज्य करने लगा ।

उधर शुक्रराज विमलाचलतीर्थको वन्दना करके श्वसुरके नगरको गया, तथा कुछ दिन वहां रहकर अपने नगरके उद्यानमें आया । अपने कुकर्मसे शंकित चन्द्रशेखर झरोखेमें बैठा था

इतनेही में शुकराजको आता हुआ देखकर आकुल व्याकुल हुआ और हाहाकार कर मंत्रीको कहने लगा कि, “जिसने मेरी दोनों स्त्रियां व विद्याएं हरण करी वही दुष्ट विद्याधर मेरा रूप करके मुझपर उपद्रव करनेको आ रहा है अतः मधुर वचनसे किसी भी प्रकार उसे वहींसे वापस करो। बलवान पुरुषके सम्मुख शान्तिसे वर्ताव करना यही अपना भारी बल समझना चाहिये।”

“दक्ष पुरुषोंकी सहायतासे दुस्साध्य कार्य भी सुस्साध्य हो जाता है” यह विचारकर मंत्री बहुतसी योग्य व्यक्तियोंको साथ लेकर वहां गया। इन लोगोंको अपने स्वागतके लिये आये हुए समझकर शुकराज अत्यन्त प्रसन्न हुआ तथा विमानसे उतरकर आम्रवृक्षके नीचे आया। विवेकी मंत्री भी वहां गया तथा प्रणामकर कहने लगा कि, “हे विद्याधरेन्द्र ! आपकी शक्ति अपार है। कारण कि, आपने हमारे स्वामीकी दोनों स्त्रियां तथा सब विद्याएं हरण करली है। अब शीघ्र प्रसन्न हो आप वेगसे अपने स्थानको पधारिये।”

मंत्रीकी यह बात सुनकर शुकराज आश्चर्य कर चिन्तने लगा कि, “इसे चित्तभ्रम हुआ, मस्तिष्क फिर गया, त्रिदोष हुआ कि भूत लगा है? तथा बोला कि, “तूने यह क्या कहा? मैं शुकराज हूं !” मंत्रीने कहा; हे विद्याधर ! क्या शुकराजकी तरह तू मुझे भी ठगना चाहता है ? मृगध्वजराजाके वंश रूप

आम्रवृक्षोंमें शुकके समान हमारा स्वामी शुकराज तो राजमहल-में है, तू तो कोई वेषधारी विद्याधर है. अधिक क्या कहूँ ? जैसे चूहा बिलाडके दर्शनमात्रसे डरता है वैसे ही हमारा स्वामी शुकराज तेरे दर्शन मात्र से कांपता है तथा बहुत डरता है, इसलिये तू शीघ्र यहांसे चला जा."

खिन्न चित्त हो कर शुकराज विचार करने लगा कि, "निश्चय किसी कपटीने छलभेदसे मेरा स्वरूप करके मेरा राज्य ले लिया है, कहा है कि—

राज्यं भोज्यं च शय्या च, वरवेश्म वरांगना ।

धनं चैतानि शून्यत्वेऽधिष्ठीयन्ते ध्रुवं परैः ॥ ८३५ ॥

१ राज्य, २ भक्षण करने योग्य वस्तु, ३ शय्या, ४ रमणीय घर, ५ रूपवती स्त्री तथा ६ धन इन छः वस्तुओंको मालिककी अनुपस्थितिमें अन्य लोग हरण करलेते हैं. अब क्या करना चाहिये ? जो मैं इसे मारकर अपना राज्य लेऊं तो संसारमें मेरा भारी अपवाद होगा कि, "कोई महा-पापी ठगने मगरमच्छकी भांति बलपूर्वक राजा मृगध्वजके पुत्र शुकराजका वधकर उसका राज्य हस्तगत कर लिया है." पश्चात् उसने तथा उसकी दोनों स्त्रियोंने अपना परिचय देनेके हेतु बहुतसी निशानियां बताई, पर किसीने विश्वास न किया, धिक्कार है ऐसे कपटमय कृत्यको! तत्पश्चात् अपना अपमान दृष्ट्वा समझ कर वह सच्चा शुकराज विमानमें बैठकर आकाशमार्ग-

में गया, मंत्रीने हर्षित हो कर वेषधारी शुकराजके पास आकर सारा वृत्तान्त कह सुनाया, तब वह पाखंडी स्त्री-लंपट भी प्रसन्न हुआ। वास्तविक शुकराज तोतेकी भांति शीघ्रता से आकाश-में जाने लगा, तब उसकी दोनों स्त्रियोंने अपने पीहर (पिताके घर) चलनेको कहा, परन्तु शर्मके कारण वह वहां नहीं गया। अपने पदसे भ्रष्ट हुए पुरुषने परिचित तथा नाते-दारोंके घर नहीं जाना चाहिये, तथा श्वसुर-गृहको तो कदापि नहीं जाना चाहिये, कारण कि वहां तो आडम्बरसे ही जाना योग्य है। कहा है कि—

सभायां व्यवहारे च, वैरिषु श्वशुरौकासि ।

आडम्बरणि पूज्यते, खांपु राजकुलेषु च ॥ १ ॥ ८४३ ॥

सभामें, व्यापारमें, शत्रुके सन्मुख, ससुर के घर, स्त्रीके पास और राज्यदरबारमें आडम्बरही की पूजा होती है। विद्याचलसे संपूर्ण और ऐश्वर्य परिपूर्ण होते-हुए भी राज्य जानेकी चिन्तासे दुःखित वास्तविक शुकराजने शून्यस्थलमें निवास करके छः मास व्यतीत किये। बड़े खेदकी बात है कि बड़े २ मनुष्योंको भी ऐसा दुस्सह उपद्रव भोगना पडता है। अथवा सब दिन किसको समान सुखके दाता होते हैं? कहा है कि-

कस्य वक्तव्यता नास्ति ?, को न जायो मरिष्यति ? ।

केन न व्यसनं प्राप्तं ?, कस्य सौख्यं निरंतरम् ? ॥ १४ = ४६ ॥

कौन दोषका पात्र नहीं ? जन्म पाकर कौन मृत्युको प्राप्त नहीं होता ? संकट किस पर नहीं आया ? तथा किसे निरन्तर सुख मिलता है ?

एक समय सौराष्ट्रदेशमें भ्रमण करते हुए शुकराजका विमान पर्वतसे रुके हुए नदीके पूरकी भांति आकाश ही में रुक गया । व्याकुल चित्त ऐसा शुकराजको यह बात ऐसी दुखदायी प्रतीत हुई कि जैसे जले हुए अंगपर विस्फोटक (धाव) हुआ हो, गिरे हुए मनुष्य पर और भी प्रहार हुआ है, अथवा धाव पर नमक पड़ा हो । क्षणमात्रमें वह विमानसे उतर कर एकाएक रुक जानेका कारण देखने लगा, इतने ही में उसने केवलज्ञान पाये हुए अपने पिता राजर्षि मृगध्वजको देखा । मेरु-पर्वत पर जैसे मंदार कल्पवृक्ष शोभता है वैसे ही वे राजर्षि सुवर्ण-कमलपर सुशोभित थे, तथा देवता उनकी सेवामें उपस्थित थे । शुकराजने सत्य भक्तिपूर्वक उनको वन्दना करके संतोष पाया, तथा सजलनेत्र होकर शीघ्र उनको अपने राज्यहरणका संपूर्ण वृत्तान्त कह सुनाया ।

पित्रादेः प्रियमित्रस्य स्वामिनः स्वाश्रितस्य वा ।

निवेद्यापि निजं दुःखं, स्यात्सुखीव सकृज्जनः ॥१॥८५२॥

मनुष्य अपने पितादिक, प्रियमित्र, स्वामी अथवा आश्रित इनमेंसे चाहे किसीके भी सन्मुख अपनी दुःख कहानी कह कर क्षणभर अपने जीवको सुखी मानता है ।

राजर्षि मृगध्वजने कहा-“यह तो पूर्वकर्म का विपाक है” तब शुकराजने पूछा-“मैंने पूर्वभवमें ऐसा कौनसा कर्म उपार्जन किया था ?”

केवली राजर्षि बोले-“जितारि राजाके भवसे पूर्वभवमें तू स्वभावसे भद्रक तथा न्यायनिष्ठ, श्रीग्रामनामकगांवमें ठाकुर था। पिता द्वारा हिस्से करके दिये हुए एक गांवको भोगने वाला तेरा एक सौतेला भाई था, वह स्वभाव ही से बहुत कायर था। एक समय वह श्रीग्रामको आकर वापस अपने गांवको जाता था, इतने ही में तूने हंसीसे उसे बंदीवान-के समान अपने आधीन करके कहा कि “तू सुखपूर्वक यहीं रह, तुझे गांवकी चिन्ता करके क्या करना है ? बड़े भाईके होते हुए छोटेभाईको व्यर्थ चिन्ता करनेकी क्या आवश्यकता है ?”

वह एक तो सौतेला भाई था दूसरा स्वभाव ही से कायर था ऐसा संयोग मिल जानेसे विचार करने लगा कि, “हाय २ ! निश्चय ही मेरा राज्य गया, मैं क्यों यहां आया ? अब क्या करना चाहिये ? ” इस तरह विचार करके वह बहुत घबराया। कुछ समयके बाद जब तूने उसे छोड़ा तब उसके जीवमें जीव आया। उस समय हंसीमें भी तूने बहुत दारुण कर्म संचित किया। उसीके उदयसे अभी तुझे भी दुःसह राज्य-वियोग हुआ है।

गर्हिता इव कुर्वति, जीवाः सांसारिकीं क्रियाम् ।

तद्विपाके तु दीनाः स्युः, फालभ्रष्टवृत्तवत् ॥१॥८६१॥

मनुष्य अहंकारसे संसार सम्बन्धी क्रियाएं तो करते हैं, किन्तु उससे संचित कर्मका उदय जब होता है तब कूदते २ छलांग चूक कर गिरजाने वाले बन्दरकी भांति अंतमें दीन होते हैं."

राजर्षि मृगध्वज यद्यपि चन्द्रशेखरका संपूर्ण हाल जानते थे किन्तु उस सम्बन्धमें एक भी शब्द नहीं बोले । कारण कि, शुकराजने वह बात पूछीही नहीं थी. केवली महाराज पूछे बिना ऐसी बात कभी नहीं कहते हैं । जगत्में सर्व जगद् उदासीनता रखना यही केवलज्ञानका फल है.

तदनन्तर शुकराजने बालककी भांति पिताके पांवमें गिरकर पूछा कि "हे तात! आपका दर्शन होजाने परभी मेरा राज्य जावे यह कैसी बात है ? साक्षात् धन्वन्तरि वैद्यके प्राप्त होने पर भी यह रोगका कैसा उपद्रव ? प्रत्यक्ष कल्पवृक्षके पास होते हुए यह कैसी दरिद्रता ? सूर्यके उदय होजाने पर यह कसा अंधकार ? इसलिये हे प्रभो ! मुझे ऐसा कोई उपाय बताइये कि किसी भी अंतरायके बिना शीघ्र वह राज्य वापस मुझे मिल जाय." इत्यादि वचनोंसे शुकराजने बहुत आग्रह किया तब राजर्षि मृगध्वज बोले, "दुःसाध्य कार्य भी धर्मकृत्यसे सुसाध्य होता है. तीर्थ शिरोमणि ऐसा विमलाचल यहांसे पास ही है. वहां

जाकर श्रीआदिनाथभगवानकी भक्तिसे वन्दनापूर्वक स्तुति कर. तथा इस पर्वतकी गुफामें छः मास तक परमेष्ठीमंत्रका जप करे तो वह मंत्र स्वतंत्रतासे सर्व भांतिकी सिद्धियों का देनेवाला होता है । चाहे कैसाही शत्रु हो तो वह भी भयभीत सियालकी भांति देखते ही अपना जीव लेकर भाग जाता है और उसके सर्व कष्ट निष्फल हो जाते हैं । जिस समय गुफामें प्रकाश होवे तब तू समझ लेना कि 'कार्यसिद्धि' होगई । मनमें यह निश्चय करले कि कैसाही दुर्जय शत्रु हो, तो भी यह उसके जीतने का उपाय है."

केवलीके ये वचन सुनकर शुकराजको ऐसा आनन्द हुआ जैसा कि किसी पुत्रहीन पुरुषको पुत्रप्राप्तिकी बात सुनकर होता है । तत्पश्चात् वह विमानमें बैठकर विमलाचल पर गया । वहां योगीन्द्रकी भांति निश्चय रह कर उसने परमेष्ठीमंत्रका जप किया. केवलीके वचनानुसार छः मासके अनन्तर चारों ओर उसने प्रकाश देखा, मानो उस समय उसका प्रताप उदय हुआ हो । उसी समय चन्द्रशेखर पर प्रसन्न हुई गोत्रदेवी निःप्रभाव हो उससे कहने लगी कि "हे चन्द्रशेखर ! तेरा शुक-स्वरूप चला गया इसलिये अब तू शीघ्र अपने स्थानको चला जा " यह कह कर गोत्रदेवी अदृश्य होगई. चन्द्रशेखर अपने मूलस्वरूपमें होगया । किसी पुरुषकी सर्व लक्ष्मी चली गई हो उस प्रकार उद्विग्न, चिन्ताक्रान्त और हर्ष रहित होकर चौरकी भांति चुप-

चाप बाहर निकलने लगा इतनेही में वास्तविक शुकुराज वहां आया, मंत्री आदि सर्वलोगोंने उसका पूर्ण सत्कार किया. सर्वलोगोंको केवल इतना ही ज्ञात हुआ कि कोई दुष्ट राज-मंदिरमें घुसा था परन्तु वह अभी भाग गया. इससे विशेष वृत्तान्त किसीने न जाना। इसके बाद विमलाचल तीर्थका प्रत्यक्ष फल देखने वाला शुकुराज नये तथा देदीप्यमान नाना-प्रकारके विमान तथा अन्यबहुतसे आडम्बरसे सर्व मांडलिक राजा, स्वजनवर्ग विद्याधर आदिके साथ अनुपम उत्सव करता विमलाचलकी यात्राको चला। अपना कुकर्म कोई नहीं जानता है यह विचार कर शीलवान पुरुषकी भांति लेश मात्रभी शंका न रखते राजा चंद्रशेखर भी उत्सुकतासे उसके साथ आया।

वहां पहुंच कर शुकुराजने जिनेश्वर भगवानकी पूजा, स्तुति तथा महोत्सव करके सबको सुनाकर कहा कि. “ इस तीर्थमें मंत्र साधन करनेसे मैंने शत्रुपर जय प्राप्त किया इसलिये सर्व बुद्धिमान लोगोंने इस तीर्थका नाम ‘शत्रुंजय’ प्रगट करना चाहिये ” इस भांति इस तीर्थका नाम ‘शत्रुंजय’ पडा और यह जगत्में अत्यंत प्रसिद्ध हो गया.

जिनेश्वर भगवानके दर्शन करके अपने दुष्कर्मकी निंदा करते चंद्रशेखरको पश्चात्ताप हुआ। दुष्कर्मके क्षयसे अपने महान उदयकी इच्छा कर शुद्ध चित्त हो उसने महोदय नामक मुनिसे पूछा कि, “ हे मुनिराज ! क्या किसी प्रकार मेरी शुद्धि हो

सकती है ? मुनिराजने उत्तर दिया— “ जो तू सम्यक् रीतिसे पापकी आलोचना करके इस तीर्थमें तीव्र तपस्या करेगा तो तेरी शुद्धि हो जावेगी, कहा है कि—

जन्मकोटिकृतमेकहेलया, कर्म तीव्रतपसा विलीयते ।

किं न दाहयति ब्रह्मपि क्षणादुच्छिखेन शिखिनाऽत्र दह्यते?॥१॥८८९॥

तीव्र तपस्या करोड़ों जन्मके किये हुए कर्मोंका क्षणमात्रमें विनाश कर देती है। क्या प्रदीप्त अग्नि चाहे कितने ही काष्ठको थोड़ेही समयमें नहीं जला सकता है ? ” यह सुन चंद्रशेखरने प्रथम उन्हींके पास आलोचना की व दीक्षा ग्रहण की, तथा मासस्वमण आदि तपस्या करके वहीं वह मोक्षको गया ।

शुक्रराज शत्रुरहित राज्यको भोगता हुआ जिनप्रणीत धर्मावलंबी, सम्यग्दृष्टि राजाओंमें एक दृष्टान्तरूप होगया। उसने अष्टाईयात्रा, रथयात्रा, तीर्थयात्रा ये तीनों प्रकारकी यात्रा, अशन, पान, खादिम, स्वादिम इन चारों प्रकारसे चतुर्विध-संघकी भक्ति तथा जिनेश्वरभगवानकी विविध प्रकारकी पूजा इत्यादि धर्मकृत्य बारंबार किये । पट्टरानी पद्मावती, वायु-वेगा अन्य बहुतसी राजपुत्रियां तथा विद्याधरकी पुत्री इतनी उसकी रानियां थीं। रानी पद्मावतीको साक्षात् लक्ष्मीके निवास-स्थान पद्मसरोवरके समान पद्माकर नामक पुत्र हुआ तथा वायु-वेगा रानीको नामानुसार गुणधारक वायुसार नामक प्रसिद्ध पुत्र हुआ । पूर्वकालमें हुए कृष्णके पुत्र शंख और प्रद्युम्नकी

भांति दोनोंने 'यथा पिता तथा पुत्रः' इस कहावतको अपने अनु-
पम गुणोंसे सत्य कर दिखाया । शुकराजने अनुक्रमसे प्रसन्नता-
पूर्वक बड़े पुत्र पद्माकरकुमारको राज्य व दूसरे पुत्र वायुसार-
को युवराज पद पर स्थापित किया और कर्मशत्रुको जीतनेके
निमित्त स्त्रियोंके साथ दीक्षा लेकर स्थिरतासे शत्रुंजयतीर्थ-
को चला गया । पर्वत पर शुकध्यानसे चढ़ते ही उसे शीघ्र
केवलज्ञान उत्पन्न हुआ । महात्मा पुरुषोंकी लब्धि अद्भुत
होती है ! पश्चात् चिरकाल तक पृथ्वीपर विहार करता और
भव्यजीवोंके मोहान्धकारको दूर करता हुआ राजर्षि शुकराज
दोनों स्त्रियोंके साथ मोक्षको गया ।

हे भव्यप्राणियो ! प्रथम भद्रकपन इत्यादि गुणोंसे
क्रमशः उत्तम समकितकी प्राप्ति, पश्चात् उसका निर्वाह इत्यादि
शुकराजको मिला हुआ अपूर्व फल श्रवण कर तुमभी उन गुणों-
को उपार्जन करनेका आदर पूर्वक उद्यम करो ।

इति भद्रकपनादिक ऊपर शुकराजकी कथा.

श्रावकका स्वरूप.

(मूलगाथा)

नामाईचङ्गभेओ,

सङ्गो भावेण इत्थ अहिगारो ॥

तिविहो अ भावसङ्गो,

दंसण—वय—उत्तरगुणेहिं ॥ ४ ॥

भावार्थः—१ नाम, २ स्थापना, ३ द्रव्य तथा ४ भाव, ऐसे चार प्रकारका श्रावक होता है। जिसमें शास्त्रमें कहे अनुसार श्रावकके लक्षण नहीं अथवा जैसे कोई ईश्वरदास नाम धारण करे पर हो दरिद्रीका दास, वैसे ही जो केवल 'श्रावक' नामसे जाना जाता है वह नामश्रावक १। चित्रित की हुई अथवा काष्ठ पषाणादिककी जो श्रावककी मूर्ति हो वह स्थापनाश्रावक २। चन्द्रप्रद्योतनराजाकी आज्ञासे अभयकुमारको पकड़नेके लिये कपटपूर्वक श्राविकाका वेप करनेवाली गणिकाकी भांति अन्दरसे भावशून्य और बाहरसे श्रावकके कार्य करे, वह द्रव्यश्रावक ३। जो भावसे श्रावककी धर्मक्रिया करनेमें तत्पर होवे, वह भावश्रावक ४।

केवल नामधारी, चित्रवत् अथवा जिसमें गायके लक्षण नहीं, वह गाय जैसे अपना काम नहीं कर सकती, वैसे ही १ नाम, २ स्थापना तथा ३ द्रव्यश्रावकभी अपना इष्ट धर्मकार्य नहीं कर सकता है, इसलिये यहां केवल भावश्रावकका अधिकार समझना चाहिये। भावश्रावकके तीन भेद हैंः— १ दर्शनश्रावक, २ व्रतश्रावक ३ उत्तरगुणश्रावक

श्रेणिकादिककी भांति केवल सम्यक्त्वधारी हो, वह १ दर्शनश्रावक, सुरसुन्दरकुमारकी स्त्रियोंकी भांति सम्यक्त्वमूल पंच अणुव्रतका धारक हो वह २ व्रतश्रावक। सुरसुन्दरकुमारकी स्त्रियोंकी संक्षिप्तकथा इस प्रकार हैः—

“ एक समय कोई मुनिराज सुरसुन्दरकी स्त्रियोंको पंच अणुव्रतका उपदेश करते थे। उस समय चुपचाप एकान्तमें खड़े होकर देखते हुए सुरसुन्दरके मनमें मुनिराजके ऊपर ईर्ष्या उत्पन्न हुई। उसने मनमें सोचा कि, “ इस मुनिके शरीरपर मैं पांच प्रहार करूंगा। ” मुनिराजने प्रथम प्राणातिपातविरमण नामक अणुव्रत दृष्टांत सहित कहा, तो उन स्त्रियोंने अंगीकार किया। इससे सुरसुन्दरने विचार किया कि, ये स्त्रियां कुपित होजावेंगी तोभी व्रत ग्रहण किया है इससे मुझे मारेंगी नहीं ” यह सोच प्रसन्नतासे पांचमेंसे एक प्रहार कम किया। और इसी तरह एक २ व्रतके साथ एक २ प्रहार कम किया। उन स्त्रियोंने पांचों अणुव्रत लिये “ तब मुझे धिक्कार है ! मैंने नीच विचार किया ” इस भांति सुरसुन्दर अत्यन्त पश्चात्ताप कर, मुनिराजसे क्षमा मांग, व्रत लेकर क्रमशः स्त्रियों सहित स्वर्गको गया। ”

सुदर्शनश्रेष्ठिआदिक श्रावककी भांति जो सम्यक्त्वमूल पांच अणुव्रत तथा उत्तरगुण अर्थात् तीन गुणव्रत व चार शिक्षा व्रत ऐसे बारह व्रत धारण करे, वह ३ उत्तरगुणश्रावक है। अथवा सम्यक्त्वमूल बारहव्रतको धारण करे, वह व्रतश्रावक है। तथा आनन्द, कामदेव, कार्तिकश्रेष्ठि इत्यादिककी भांति जो सम्यक्त्वमूल बारहव्रत तथा सर्वसच्चित्त परिहार, एकाशन पचचखान, चौथाव्रत, भूमिशयन, श्रावकप्रतिमादिक और

दूसरे विशेष अभिग्रहको धारण करता हो तो वह भावसे ३ उत्तरगुण श्रावक है । वारहव्रतमें एक, दो इत्यादि व्रत अंगीकार करे तोभी भावसे व्रतश्रावकपन होता है । यहां वारहव्रतके एकेक, द्विक, त्रिक, चतुष्क इत्यादिसंयोगसे द्विविध त्रिविध इत्यादि भंग तथा उत्तरगुण और अविरति रूप दो भेद मिलानेसे श्रावकव्रतके सब मिलकर तेरह सौ चौरासी करोड वारह लाख सत्यासी हजार दो सौ दो भंग होते हैं ।

शंकाः—श्रावकव्रतमें त्रिविधत्रिविध इत्यादि भंगोंका भेद क्यों नहीं सम्मिलित हुआ ?

समाधानः—श्रावक स्वयं पूर्व किया हुआ अथवा पुत्रादिकने किया हुआ आरंभिककार्यमें अनुमतिना निषेध नहीं कर सकता अतएव त्रिविध त्रिविध भंग नहीं लिया गया । प्रज्ञप्त्यादिग्रंथमें श्रावकको त्रिविधत्रिविध पञ्चस्नान भी कहा है, वह विशेषविधि हैं । यथाः—जो श्रावक दीक्षा लेने ही की इच्छा करता हो, परंतु केवल पुत्रादिसंततिका पालन करने ही के हेतु गृहवासमें अटक रहा हो वही त्रिविध २ प्रकारसे श्रावकप्रतिमाका अंगीकार करते वक्त पञ्चस्नान करे, अथवा कोई श्रावक स्वयंभूरमण समुद्रमें रहनेवाले मत्स्यके मांसादिकका किंवा मनुष्यक्षेत्रसे बाहर स्थूल-हिंसादिकका किसी अवस्थामें पञ्चस्नान करे तो वही त्रिविध २ भंगसे करे । इस प्रकार त्रिविधत्रिविधका विषय बहुत अल्प होनेसे वह यहां कहनेकी आवश्यकता न रखी । महाभाष्यमें भी कहा

है कि, बहुतसे कहते हैं कि, “श्रावकको त्रिविध २ पञ्चखान नहीं है” परंतु ऐसा नहीं, कारण कि, पन्नत्तिमें विशेष आश्रयसे त्रिविधत्रिविधका कथन किया है । कोई श्रावक विशेषअवस्थामें स्वयंभूरमणसमुद्रके अंदर रहनेवाले मत्स्यके मांसकी भांति मनुष्यक्षेत्रसे बाहर हस्तिदंत, सिंहचर्म, इत्यादि न मिलसके ऐसी वस्तुका अथवा कौवेका मांस आदि प्रयोजन रहित वस्तुका पञ्चखान त्रिविध २ प्रकारसे करे तो दोष नहीं । बहुतसे यह कहते हैं कि कोई पुरुष दीक्षा लेनेको तत्पर हो, तो भी केवल पुत्रादिसंततिका रक्षण करने ही के हेतुसे (दीक्षा न लेकर) ग्यारहमी श्रावकप्रतिमा प्राप्त करे तो उसे भी त्रिविधत्रिविध पञ्चखान होता है । ”

शंका:— आगममें अन्य प्रकारसे श्रावकके भेद सुननेमें आते हैं । श्रीठाणांगसूत्रमें कहा है कि श्रमणोपासक चार प्रकारके होते हैं, यथा-- १ मातपितासमान, २ बंधुसमान, ३ मित्र-समान और ४ सपत्नी (सौत) समान । (अथवा अन्यरीतिसे) १ आरिसा (दर्पण) समान, २ ध्वजासमान, ३ स्तंभ (खंभा)-समान और ४ खरंटक (विष्ठादिक) समान ।

समाधान:— ऊपर कहे हुए भेद श्रावकका साधुके साथ जो व्यवहार है उसके आश्रित है ।

शंका:— ऊपरके भेद आपके कहे हुए भेदमें से किस भेदमें सम्मिलित होते हैं ?

समाधानः— व्यवहारनयके मतसे ये भावश्रावक ही हैं , क्योंकि वैसा ही व्यवहार है । निश्चयनयके मतसे सपत्नी-समान और खरंटक समान ये दो प्रायः मिथ्यादृष्टि समान द्रव्यश्रावक और शेष सब भावश्रावक हैं । कहा है कि—

“ चित्तइ जइकज्जाइ, न दिट्ठखलिओवि होइ निन्नेहो ।

एगंतवच्छलो जइजणस्स जणणीसमो सड्डो ॥ १ ॥

हिअए ससिणेहो चिअ, मुणीण मंदायरो विणयकप्पे ।

भायसमो साहूणं, पराभवे होइ सुसहाओ ॥ २ ॥

भित्तसमाणो माणा ईसिं रुसइ अपुच्छिओ कज्जे ।

मन्नंतो अण्णं, मुणीण सयणाउ अब्भहिअं ॥ ३ ॥

थद्धो छिद्दपेही, पमायखलिआणि निच्चमुच्चरइ ।

सड्डो सबत्तिकप्पो साहूजणं तणसमं गणइ ॥ ४ ॥”

द्वितीयचतुष्के—“ गुरुभणिओ सुत्तथो, विविज्जइ अवितहो
मणे जस्स । सो आर्यंससमाणो, सुसावओ वन्निओ समए ॥ १ ॥

पवणेण पडागा इव, भाभिज्जइ जो जणेण मूढेण ।

अविणिच्छियगुरुवयणे, सो होइ पडाइआतुल्लो ॥ २ ॥

पडिवन्नसग्गाहं, न सुअइ गीअथसमणुसिट्ठोवि ।

थाणुसमाणो एसो, अपओसी मुणिजणे नवरं ॥ ३ ॥

उम्मग्गदेसओ निन्दवोसि मूढोसि मंदधम्मोसि ।

इअ संमंपि कहंतं खरंटए सो खरंटसमो ॥ ४ ॥

जह सिद्धिलमसुइदन्वं, छुपंतं पिहु नरं खरंटेइ ।

एवमणुसासंगं पिहु दूसंतो भन्नइ खरंटे ॥ ५ ॥

निच्छयओ मिच्छत्ती, खरंटतुल्लो सबत्तितुल्लोवि ।

ववहारओ उ रुद्धा, वयंति जं जिणगिहार्इसु ॥ ६ ॥

साधुके जो कुछ कार्य हों उनका मनमें विचार करे, यदि साधुका कोई प्रमाद स्वलित दृष्टिमें आवे तो भी साधुपरसे राग कम न करे और जैसे माता अपने पुत्र पर वैसे ही मुनिराज पर अतिशय हितके परिणाम रखे वह श्रावक मातापिताके समान है १ । जो श्रावक साधुके ऊपर मनमें तो बहुत राग रखे पर बाहरसे विनय करनेमें मंद आदर दिखावे, परन्तु यदि कोई साधुका पराभव करे तो उस समय शीघ्र वहां जाकर मुनिराजको सहायता करे वह श्रावक बंधुके समान है २ । जो श्रावक अपनेको मुनिके स्वजनसे भी अधिक समझे, तथा कोई कार्यमें मुनिराज इसकी सलाह न ले तो मनमें अहंकारसे रोष करे, वह श्रावक मित्रसमान है ३ । जो भारी अभिमानी श्रावक साधुके छिद्र देखा करे, प्रमाद वश हुई उनकी भूल हमेशा कहा करे तथा उनको तृणवत् समझे वह श्रावक सपत्नीसमान है ४ । दूसरे चार-प्रकारोंमें-गुरुका कहा हुआ सूत्रार्थ जैसा कहा हो वैसा ही उसके मनमें उतरे उस सुश्रावकको सिद्धांतमें आरिसा (दर्पण) समान कहा है १ । जो श्रावक गुरुके वचनोंका निर्णय न करनेसे पवन जैसे ध्वजाको इधर उधर करता है वैसे ही अज्ञानी पुरुष

उन्हें इधर उधर घुमावें वह ध्वजासमान है २। गीतार्थ मुनिराज चाहे कितना ही समझावें परन्तु जो अपना हठ न छोड़े और साथही मुनिराज पर द्वेष भाव न रखे वह श्रावक स्तंभके समान है ३। जो श्रावक सद्धर्मोपदेशक मुनिराज पर भी “ तू उन्मार्ग दिखानेवाला, मूर्ख, अज्ञानी तथा मंदधर्मी है । ” ऐसे निन्द्य वचन कहे, वह श्रावक खरंटक (विष्ठादिक) के समान है ४। जैसे पतला (विष्ठादि अशुचि) द्रव्य, स्पर्श करनेवाले मनुष्यको भी लग ही जाता है वैसे उत्तम उपदेश करनेवालेको भी जो दोष दे वह खरंटक (विष्ठादिक) के समान कहलाता है। निश्चयनय-मतसे सपत्नीसमान व खरंटकसमान इन दोनोंको मिथ्यात्वी (द्रव्यश्रावक) समझना चाहिये और व्यवहारनयमतसे श्रावक कहलाते हैं, कारण कि वे जिन मंदिरादिकमें जाते हैं ।

श्रावकशब्दका अर्थ.

खवंति यस्य पापानि, पूर्ववद्धान्यनेकशः ।

अवृत्तश्च व्रतैर्नित्यं, श्रावकः सोऽभिधीयते ॥ १ ॥

संपत्तदंसणार्हं, पइदिअहं जइजणा सुणेई अ ।

सामायारिं परमं, जो खलु तं सावगं निति ॥ २ ॥

श्रद्धालुतां श्रति पदार्थचित्तनाद्धनानि पात्रेषु वपत्यनारतम् ।

किरत्यपुण्यानि सुसाधुसेवनादतोऽपि तं श्रावकमाहुर्हत्तमाः ॥ ३ ॥

यद्वा—श्रद्धालुतां श्रति शृणोति शासनं, दानं वपत्याशु वृणोति दर्शनम् ।

कुंतत्यपुण्यानि करोति संयमं, तं श्रावकं प्राहुर्मही विचक्षणाः ॥ ४ ॥

श और स इन दोनोंको समान मानकर श्रावकशब्दका अर्थ इस प्रकार होता है—प्रथम सकार मानकर “स्रवति अष्ट-प्रकारं कर्मेति श्रावकः” अर्थात् दान, शील, तप, भावना इत्यादिबुभयोगसे आठप्रकारके कर्मका त्याग करे, वह श्रावक है। दूसरा शकार मानकर “शृणोति यातिभ्यः सम्यक् सामा-चारीमिति श्रावकः” अर्थात् साधुके पाससे सम्यक् प्रकारसे सामाचारी सुने वह श्रावक है। ये दोनों अर्थ भावश्रावककी अपेक्षा ही से हैं। कहा है कि-- जिसके पूर्व संचित अनेक पाप क्षय होते हैं, अर्थात् जीवप्रदेशसे बाहर निकल जाते हैं, और जो निरन्तरव्रतोंसे घिरा हुआ है, वही श्रावक कहलाता है।

जो पुरुष सम्यक्त्वादिक पाकर प्रतिदिन मुनिराजके पास उत्कृष्ट सामाचारी सुनता है, उसे चतुर मनुष्य श्रावक कहते हैं। जो पुरुष ‘श्रा’ अर्थात् सिद्धांतके पदका अर्थ सोचकर अपनी आगम ऊपरकी श्रद्धा परिपक्व करे, ‘व’ अर्थात् नित्य सुकार्यमें धनका व्यय करे, तथा ‘क’ अर्थात् श्रेष्ठमुनिराजकी सेवा करके अपने दुष्कर्मोंका नाश कर डाले याने खपावे, इसी हेतुसे श्रेष्ठपुरुष उसे श्रावक कहते हैं। अथवा जो पुरुष ‘श्रा’ अर्थात् पदका अर्थ मनन करके प्रवचन ऊपर श्रद्धा परिपक्व करे, तथा सिद्धांत श्रवण करे, ‘व’ अर्थात् सुपात्रमें धन व्यय करे, तथा दर्शन समकित ग्रहण करे

‘क’ अर्थात् दुष्कर्मका क्षय करे, तथा इन्द्रियादिकका संयम करे उसे श्रावक कहते हैं ।

श्राद्धशब्दका अर्थ.

जिसकी सद्वर्त्ममें श्रद्धा है, वह ‘श्राद्ध’ कहलाता है । (मूल शब्द श्रद्धा था उसमें “ प्रज्ञाश्रद्धार्चवृत्तेर्णः ” इस व्याकरण-सूत्रसे ‘ण’ प्रत्यय लगाया, तो प्रत्यय के णकारका लोप और आदि वृद्धि होनेसे ‘श्राद्ध’ यह रूप होता है) । श्रावक-शब्दकी भांति ‘श्राद्ध’ शब्दका उपरोक्त अर्थ भावश्रावक ही की अपेक्षासे है । इसीलिये गाथामें कहा है कि “ यद्वां भाव श्रावकका अधिकार है । ”

इस भांति चौथी गाथामें श्रावकका स्वरूप बताया । अब दिवसकृत्य, रात्रिकृत्य, आदि जो छः विषय हैं उसमेंसे प्रथम ‘दिवसकृत्य’ की विधि कहते हैं:—

(मूल गाथा.)

नवकारेण विबुद्धो,

सरेइ सो सकुलधम्मनियमाई ॥

पडिकमिअ सुई पूइअ,

गिहे जिणं कुणइ संवरणं ॥ ५ ॥

भावार्थ:— “ नमो अरिहंताणं ” इत्यादि नवकारकी गणना करके जागृत हुआ श्रावक अपने कुल-धर्म, नियम इत्यादिकका चिन्तन करे ।

गाथा पूर्वार्ध तात्पर्यार्थः—प्रथम श्रावकने निद्राका त्याग करना । पिछली रात्रिमें एक प्रहर रात्रि रहने पर उठना । ऐसा करनेमें इस लोक तथा परलोक संबंधी कार्यका यथावत् विचार होनेसे उस कार्यकी सिद्धि तथा अन्य भी अनेक गुण हैं और ऐसा न करनेमें इस लोक व परलोक सम्बन्धी कार्यकी हानि आदि बहुत दोष हैं । लोकमें भी कहा है किः—

“कस्मीणं धनं संपडइ, धस्मीणं परलोअ ॥

जिहिं सुत्तां रवि उग्गमइ, तिहिं नर आऊ न ओअ” ॥ १ ॥

अर्थः—मजदूर लोग जो जल्दी उठ कर कामसे लगे तो उनको धन मिलता है, धर्मीपुरुष जल्दी उठकर धर्मकार्य करें तो उनको परलोकका श्रेष्ठ फल मिलता है, परन्तु जो सूर्योदय होजाने पर भी नहीं उठते वे बल, बुद्धि, आयुष्य तथा धनको खो देते हैं ॥ १ ॥

निद्रावश होनेसे अथवा अन्य किसी कारणसे जो पूर्व कहे हुए समय पर न उठ सके तो पन्द्रह मूहूर्तकी रात्रिमें जघन्यसे चौदहवें ब्राह्ममूहूर्तमें (चार घड़ी रात्रि बाकी रहते) उठना । उठते ही द्रव्यसे, क्षेत्रसे, कालसे तथा भावसे उपयोग करना, यथाः—

“मैं श्रावक हूं, कि अन्य कोई हूं ?” ऐसा विचार करना वह द्रव्यसे उपयोग, “मैं अपने घरमें हूं कि दूसरे के घर ? मेडे पर हूं कि, भूमितले ?” ऐसा विचार करना वह क्षेत्रसे

उपयोग. “रात्रि है, कि दिन है ?” ऐसा विचार करना सो कालसे उपयोग. “कायाके, मनके अथवा वचनके दुःखसे म पीडित हूं कि नहीं ?” ऐसा विचार करना सो भावसे उपयोग ।

इस भांति चतुर्विध उपयोग दिये पश्चात् निद्रा बराबर न गई हो तो नासिका पकड़के श्वासोश्वास रोकें, जिससे निद्रा शीघ्र चली जावे, अनन्तर द्वार देख कर कार्य चिन्ता आदि करना । साधुकी अपेक्षासे ओघनिर्युक्तिमें कहा है कि—द्रव्यादि उपयोग व श्वासोश्वासका निरोध करना । रात्रिमें जो किसीको कुछ काम काज कहना हो तो वह मन्दस्वर ही से कहना, उच्चस्वरसे खांसी, खुंखार, हुंकार अथवा कोई भी शब्द न करना. कारण कि बैसा करनेसे छिपकली आदि हिंसक जीव जाग कर मक्खी आदि क्षुद्रजीवों पर उपद्रव करते हैं तथा पड़ोसके मनुष्य भी जागृत होकर अपना अपना काम आरंभ करने लगते हैं, जैसे:—पानी लाने वाली, रसोई बनाने वाली, व्यापारी, शोक करने वाला, मुसाफिर, कृषक, माली. रहेट चलाने वाला, घड़ा आदि यंत्र चलानेवाला, सिलावट, गांछी, घोड़ी, कुम्हार, लोहार, सुतार, जुआरी, शस्त्र बनानेवाला, कलाल, मांझी (धीमर), कसाई, पारधी, घातपात करनेवाला, परस्त्रीगामी. चोर, डाकू इत्यादि लोगोंको परंपरासे अपने अपने नीच व्यापारमें प्रवृत्ति करानेका तथा अन्य भी बहुतसे

निरर्थक दोष लगते हैं । श्रीभगवत्सूत्रमें कहा है कि--धर्मी पुरुष जागते तथा अधर्मी पुरुष सोते हों तो उत्तम है । इसी प्रकार श्रीमहावीरस्वामीने वत्सदेशके राजा शतानीककी बहिन जयन्तीको कहा है.

निद्रा जाती रहे तब स्वरशास्त्रके ज्ञाता पुरुषने पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु तथा आकाश इन पांच तत्त्वोंमें से कौनसा तत्त्व श्वासोश्वासमें चलता है सो ज्ञात करना. कहा है कि--पृथ्वीतत्त्व और जलतत्त्वमें निद्राका छेद हो तो वह कल्याण के लिए है, परंतु आकाश वायुके अग्नितत्त्व में तो वह दुःखदायक है । शुक्लपक्षके प्रातःकालमें वाम-(चंद्र) नाडी और कृष्णपक्षके प्रातःकालमें दक्षिण (सूर्य) नाडी उत्तम है । शुक्लपक्ष तथा कृष्णपक्षमें अनुक्रमसे तीन दिन (पडवा, बीज, तीज) तक प्रातःकालमें चन्द्रनाडी और सूर्यनाडी शुभ है । शुक्लप्रतिपदा (उजेली पडवा) से लेकर प्रथम तीन दिन (तीज) तक चन्द्रनाडीमें वायुतत्त्व रहता है, उसके पश्चात् तीन दिन (चौथ, पंचमी, छठ) तक सूर्यनाडीमें वायुतत्त्व रहता है, इसी प्रकार आगे चले तो शुभ है, परन्तु इससे उलटा अर्थात् पहिले तीन दिन सूर्यनाडीमें वायुतत्त्व और पिछले तीन दिन चन्द्रनाडीमें वायुतत्त्व इस अनुक्रमसे चले तो दुःखदायी है ।

चन्द्रनाडीमें वायुतत्त्व चलते हुए जो सूर्योदय होवे तो सूर्यनाडीमें अस्त होना शुभ है. तथा जो सूर्योदयके समय

सूर्यनाडी चलती होवे तो अस्तके समय चन्द्रनाडी शुभ है । किसी २ के मतमें वारके क्रमसे सूर्यचन्द्रनाडीके उदयके अनुसार फल कहा है, यथा:—रवि, मंगल, गुरु और शनि इन चार वारोंमें प्रातःकालमें सूर्यनाडी तथा सोम, बुध और शुक्र इन तीन वारोंमें प्रातःकालमें चन्द्रनाडी होवे वह शुभ है । किसी २ के मतमें संक्रांतिक्रमसे सूर्यचन्द्रनाडीका उदय कहा है, यथा:—मेषसंक्रान्तिमें प्रातःकालमें सूर्यनाडी और वृषभसंक्रांतिमें चन्द्रनाडी शुभ है इत्यादि । किसी २ के मतमें चन्द्रराशिके परावर्तनके क्रमसे नाडीका विचार है, कहा है कि—सूर्योदयसे लेकर प्रत्येक नाडी अढ़ाई घड़ी निरन्तर चलती है । रहेंके घडेकी भांति नाडियां भी अनुक्रमसे फिरती रहती हैं । लक्ष्मीस गुरुवर्ण (अक्षर) का उच्चारण करनेमें जितना समय लगता है उतना समय प्राणवायुको एक नाडीमेंसे दूसरी नाडीमें जाते लगता है । इस प्रकार पंच तत्त्वोंको स्वरूप जानो । अग्नितत्त्व ऊंचा, जलतत्त्व नीचा, वायुतत्त्व आडा, पृथ्वीतत्त्व नासिकापुटके अन्दर और आकाशतत्त्व चारों तरफ रहता है चलती हुई सूर्य और चन्द्रनाडीमें क्रमशः वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी तथा आकाश ये पांच तत्त्व बहते हैं, यह नित्यका अनुक्रम है । पृथ्वीतत्त्व पचास, जलतत्त्व चालीस, अग्नितत्त्व तीस, वायुतत्त्व बीस और आकाशतत्त्व दस पल बहता है । सौम्य (उत्तम) कार्यमें पृथ्वी व जलतत्त्वसे फलकी उन्नति

होती है, क्रूर तथा स्थिर कार्यमें अग्नि वायु और आकाश इन तीन तत्त्वोंसे शुभफल होता है । आयुष्य, जय, लाभ धान्यकी उत्पत्ति, वृष्टि, पुत्र, संग्रामका प्रश्न, जाना, आना । इतने कार्योंमें पृथ्वीतत्त्व और जलतत्त्व शुभ है, पर अग्नि-तत्त्व और वायुतत्त्व अशुभ हैं । पृथ्वीतत्त्व होवे तो कार्य सिद्धि धीरे २ और जलतत्त्व होवे तो शीघ्र होती है । पूजा, द्रव्यो-पार्जन, विवाह, किल्लादि अथवा नदीका उल्लंघन, जाना, आना जीवन, घर, क्षेत्र इत्यादिकका संग्रह, खरीदना, बेचना, वृष्टि, राजादिककी सेवा, कृषि, विष, जय, विद्या, पट्टाभिषेक इत्यादि शुभकार्यमें चन्द्रनाडी शुभ है । किसी कार्यका प्रश्न अथवा कार्यारम्भके समय वाम (डाबी) नासिका वायुसे पूर्ण होवे तथा उसके अन्दर वायुका आवागमन ठीक तरहसे चलता हो तो निश्चय कार्यसिद्धी होती है । बन्धनमें पड़े हुए, रोगी, अपने अधिकारसे भ्रष्ट ऐसे पुरुषोंका प्रश्न, संग्राम, शत्रुका मिलाप, आकस्मिक भय, स्नान, पान, भोजन, गई वस्तुकी शोध, पुत्रके निमित्त स्त्रीसंभोग, विवाद तथा कोई भी क्रूर कर्म इतनी वस्तुओंमें सूर्यनाडी शुभ है । किसी जगह ऐसा है कि, विद्यारंभ, दीक्षा, शस्त्राभ्यास, विवाद, राजाका दर्शन, गीत आदि, मंत्र यंत्रादिकका साधन, इतने कार्योंमें सूर्यनाडी शुभ है । दाहिनी अथवा डाबी जिस नासिकामें प्राणवायु एक सरीखा चलता होवे उस तरफका पैर आगे रखकर अपने घरमें-

से निकलना । सुख, लाभ और जय इसके चाहनेवाले पुरुषोंने अपने देनदार, शत्रु, चोर, विवाद करनेवाला इत्यादिको अपनी शून्य (श्वासोश्वास रहित) नासिकाके तरफ रखना । कार्यसिद्धिके इच्छुक पुरुषोंने, स्वजन, अपना स्वामी, गुरु तथा अन्य अपने हितचिन्तक इन सर्व लोगोंको अपनी चलती हुई नासिकाके तरफ रखना । पुरुषने विछौने परसे उठते समय जो नासिका पवनके प्रवेशसे परिपूर्ण होवे उस नासिकाके तरफका पैर प्रथम भूमि पर रखना ।

श्रावकने इस विधिसे निद्राका त्याग करके परममंगलके निमित्त आदरपूर्वक नवकारमंत्रका व्यक्तवर्ण सुननेमें न आवे इस प्रकार स्मरण करना । कहा है कि--

परमिष्टिचित्तं माणसं सिद्धायै कायव्र ।

सुप्ताऽविणयपवित्री निवारिआ होइ एवं तु ॥ १ ॥

विछौने पर बैठे हुए पुरुषने पंचपरमेष्ठिका चितवन मनमें ही करना । ऐसा करनेसे परम आराध्य श्रुतज्ञानके सम्बन्धमें अविनयकी प्रवृत्ति रुकती है । दूसरे आचार्य तो ऐसी कोई भी अवस्था नहीं कि, जिसमें नवकारमंत्र गिननेका अधिकार न हो--ऐसा मानकर “नवकारमंत्रको सब अवस्थामें गिनना” ऐसा कहते हैं । ये दोनों मत प्रथमपंचाशककी वृत्तिमें कहे हैं । श्राद्धदिनकृत्यमें तो ऐसा कहा है कि, शय्याका स्थान छोड़कर नीचे भूमिपर बैठना और भावबन्धु तथा जगत्के

नाथ ऐसे परमेष्ठिका नवकारको गिनना । यतिदिनचर्यामें तो इस प्रकार कहा है कि, रात्रिके पिछले प्रहरमें बाल, वृद्ध इत्यादि सब लोग जागते हैं, इसलिये उस समय मनुष्य प्रथम सात आठवार नवकारमंत्र कहते हैं । नवकार गिननेकी यह विधि है ।

निद्रा लेकर उठाहुआ पुरुष मनमें नवकार गिनता हुआ शय्यासे उठ कर पवित्र भूमिपर खड़ा रहे अथवा पद्मासनादि सुखासनसे बैठे । पूर्वदिशाको, उत्तरदिशाको अथवा जहां जिन-प्रतिमा होवे उस दिशाको मुख करे, और चित्तकी एकाग्रता आदि होनेके निमित्त कमलबंधसे अथवा हस्तजापसे नवकार-मंत्र गिने । उसमें कल्पित अष्टदलकमलकी कर्णिका ऊपर प्रथम पद स्थापन करना, पूर्व, दक्षिण, पश्चिम, तथा उत्तर दिशाके दलपर अनुक्रमसे दूसरा, तीसरा, चौथा और पांचवां पद स्थापन करना, और अग्नि, नैऋत्य, वायव्य और ईशान इन चार उपदिशाओंमें शेष चार पद अनुक्रमसे स्थापन करना । श्रीहेमचन्द्रसूरिजीने आठवें प्रकाशमें कहा है कि, आठ पखडियोंके श्वेतकमलकी कर्णिकामें चित्त स्थिर रखकर वहां पवित्र सात अक्षरके मंत्र-- (नमो अरिहंताणं) का चिन्तन करना । (पूर्वादि) चारदिशाकी चारपखडियोंमें क्रमशः सिद्धादि चारपदका और उपदिशाओंमें शेष चारपदका चिन्तन करना । मन, वचन कायाकी शुद्धिसे जो इस प्रकारसे एकसौ आठ बार मौन रखकर नवकारका चिन्तन करे, तो भोजन करने पर भी

अवश्य उपवासका फल पाता है । नंदावर्त्त, शंखावर्त्त, इत्यादि प्रकारसे हस्त जप करे, तो भी इष्टसिद्धि आदिक बहुतसे फल-की प्राप्ति होती है । कहा है कि—

“ करआवत्ते जो पंचमंगलं साहुपडिमसंखाए ।

नववारा आवत्तइ छलंति तं नो पिसायाई ॥ १ ॥

जो मनुष्य हस्तजपमें नंदावर्त्त बारह संख्याको नववार अर्थात् हाथ ऊपर फिरते हुए बारह स्थानोंमें नव फेरा याने एक सो आठ बार नवकार मंत्र जपे, उसको पिशाचादि व्यंतर उपद्रव नहीं करे । बन्धनादि संकट होवे तो नंदावर्त्तके बदले उससे विपरीत (उलटा) शंखावर्त्तसे अथवा मंत्रके अक्षर किंवा पदके विपरीत क्रमसे नवकार मंत्रका लक्षादि संख्या तक जप करनेसे भी क्लेशका नाश आदि शीघ्र होता है ।

ऊपर कहे अनुसार कमलबंध अथवा हस्तजप करनेकी शक्ति न होवे तो, सूत्र, रत्न, रुद्राक्ष इत्यादिककी जपमाला (नोकारवाली) अपने हृदयकी समश्रेणीमें पहिरे हुए वस्त्रको व पांवको स्पर्श न करे, इस प्रकार धारण करना, और मेरूका उल्लंघन न करते जप करना । कहा है कि—

“ अंगुल्यग्रेण यज्जपं, यज्जपं मेरुलंघने ।

व्यग्राचित्तं यज्जपं, तत्प्रायोऽल्पफलं भवेत् ॥ १ ॥

संकुलाद्विजने भव्यः सशब्दान्मौनवान् शुभः ।

मौनजान्मानसः श्रेष्ठो, जापः श्लाघ्यः परः परः ॥ २ ॥

अंगुलिके अग्रभागसे व्यग्रचित्तसे तथा मेरुके उल्लंघनसे किया हुआ जप प्रायः अल्पफलका देनेवाला होता है । लोक-समुदायमें जप करनेकी अपेक्षा एकांतमें, मंत्राक्षरका उच्चारण करनेकी अपेक्षा मौनसे तथा मौनसे करनेकी अपेक्षा भी मनके अंदर जप करना श्रेष्ठ है, इन तीनोंमें पहिलेसे दूसरा और दूसरेसे तीसरा जप श्रेष्ठ है । जप करते हुए थक जाय तो ध्यान करना तथा ध्यान करते थक जाय तो जप करना, वैसे ही दोनों ही-से थक जाय तो स्तोत्र कहना ऐसा गुरु महाराजने कहा है । श्रीपादलिप्तसूरिजीने निजरचित प्रतिष्ठापद्धतिमें भी कहा है कि, मानस, उपांशु और भाष्य इस प्रकार जपके तीन भेद है । केवल मनोवृत्तिसे उत्पन्न हुआ तथा मात्र स्वयं ही जान सके वह मानसजप, दूसरा न सुन सके इस भांति अंदर बोलना वह उपांशुजप तथा दूसरा सुन सके इस प्रकार किया हुआ भाष्यजप है । इनमें पहिलेका शान्तिआदि उत्तमकार्यमें, दूसरेका पुष्ट्यादि मध्यमकार्यमें तथा तीसरेका अभिचार जारण, मारण आदि अधमकार्यमें उपयोग करना । मानस-जप यत्नसाध्य है और भाष्यजप अधमफल देने वाला है, इसलिये साधारण होनेसे उपांशुजपका ही उपयोग करना । नवकारके पांच अथवा नव पद अनानुपूर्वी (विपरीतक्रम) से भी चित्तकी एकाग्रताके लिये गिनना । उसका (नवकारका) एक एक अक्षर, पद इत्यादि भी गिनना । आठवें प्रकाशमें

कहा है कि, पंचपरमेष्ठिके नामसे उत्पन्न हुई सोलह अक्षरकी विद्या है, उसका दोसौ जाप करे, तो उपवासका फल मिलता है । “ अरिहंतसिद्धआयरिअउवज्झायसाहु ” ये सोलह अक्षर हैं । इसी भांति मनुष्य तीनसौ बार छः अक्षरके मंत्रका चारसौ बार चार अक्षरके मंत्रका और पांचसौ बार “ अ ” इस वर्णका एकाग्रचित्तसे जप करे तो उपवासका फल पाता है । यहां “ अरिहंतसिद्ध ” यह छः अक्षरका तथा “ अरिहंत ” यह चार अक्षरका मंत्र जानो । ऊपर कहा हुआ फल केवल जीवकी प्रवृत्ति करने ही के लिये हैं । परमार्थसे तो नवकार मंत्रके जपका फल स्वर्ग तथा मोक्ष है । वैसे ही कहा है कि— नाभिकमलमें सर्वतोमुखि “अ” कार, शिरःकमले “सि” कार मुखकमले “आ” कार, हृदयकमले “उ” कार, कंठपंजरमें “सा” कार रहता है ऐसा ध्यान करना. तथा दूसरे भी सर्वकल्याणकारी मंत्रबीजोंका चितवन करना । इस लोक संबंधी फलकी इच्छा करनेवाले मनुष्योंने (नवकार) मंत्र ॐ सहित पठन करना और जो निर्वाणपदके इच्छुक हों उन्होंने ॐकार रहित पठन करना । इस भांति चित्त स्थिर होनेके लिये इस मंत्रके वर्ण और पद क्रमशः पृथक् करना । जपादिकका बहुत फल कहा है, यथा—करोड़ों पूजाके समान एक स्तोत्र है, करोड़ों स्तोत्रके समान एक जप है, करोड़ों जपके समान ध्यान है और करोड़ों ध्यानके समान लय (चित्तकी स्थिरता) है । चित्तकी

एकाग्रता होनेके निमित्त जिन-भगवानकी कल्याणकादि भूमि इत्यादि तीर्थका अथवा अन्य किसी चित्तको स्थिर करनेवाले पवित्र व एकांत स्थानका आश्रय करना। ध्यानशतकमें कहा है कि-

तरुण स्त्री, पशु, नपुंसक और कुशीलपुरुष- इनसे सर्वदा रहित ऐसा पवित्र एकांत स्थान मुनिराजका होता है। ध्यान करनेके समय ऐसा ही स्थान विशेष आवश्यकीय है। जिनके मन, वचन, कायाके योग स्थिरता पाये हों और इसीसे ध्यानमें निश्चल मन हुआ हो उन मुनिराजको तो मनुष्यकी भीड़वाले गांव तथा शून्यअरण्यमें कोई भी विशेषता नहीं। अतएव जहां मनवचनकायाके योग स्थिर रहें व किसी जीवको बाधा न होती हो वही स्थान ध्यान करनेवालेके लिये उचित है। जिस समय मनवचनकायाके योग उत्तम समाधिमें रहते हों, वही समय ध्यानके लिये उचित है। ध्यान करनेवालेको दिनका अथवा रात्री ही का समय चाहिये इत्यादि नियम (शास्त्रमें) नहीं कहा। देहकी अवस्था ध्यानके समय जीवको बाधा देनेवाली न होवे उसी अवस्थामें, चाहे बैठ कर, खड़े रह कर अथवा अन्य रीतिसे भी ध्यान करना। कारण कि साधुजन सर्वदेशोंमें, सर्वकालमें और सर्वप्रकारकी देहकी चेष्टामें पापकर्मका क्षय करके सर्वोत्कृष्ट केवलज्ञानको प्राप्त हुए। इसलिये ध्यानके संबंधमें देश, काल और देहकी अवस्थाका कोई भी नियम सिद्धांतमें नहीं कहा। जैसे मनवचनकायाके योग

समाधिमें रहे, वैसे ही ध्यान करनेका प्रयत्न करना । नवकारमंत्र इसलोकमें तथा परलोकमें अति ही गुणकारी है । महानिशीथ-सूत्रमें कहा है कि—

“ नासेइ चोरसावयविसहरजलजलणबंधणभयाइं ।

चित्तिज्जेतो रक्खसरणरायभयाइं भावेण ॥ १ ॥ ”

अन्यत्रापि-जाएवि जो पढिज्जइ, जेणं जायस्स होइ फलरिद्धी ।

अवसाणेवि पढिज्जइ, जेण मच्चो सुग्गइं जाइ ॥ १ ॥

आवइहिंवि पढिज्जइ, जेण य लेघेइ आवइसयाइं ।

रिद्धीएवि पढिज्जइ, जेण य सा जाइ वित्थारं ॥ २ ॥

नवकारइकअक्खर, पावं फेडेइ सत्त अयराणं ।

पन्नासं च पएणं, पंचसयाइं समग्गेणं ॥ ३ ॥

जो गुणइ लक्खमेगं, पूएइ विहीइ जिणनमुक्कारं ।

तित्थयरत्तामगोअं, सो बंधइ नत्थि संदेहो ॥ ४ ॥

अट्ठेव य अट्ठ सया अट्ठसहस्सं च अट्ठ कोडीओ ।

जो गुणइ अट्ठ लक्खे, सो तइअभवे लहइ सिद्धिं ॥ ५ ॥

नवकार मंत्रका भावसे चितवन किया होवे तो वह चोर, श्वापद (जंगली जानवर), सर्प, जल, अग्नि, बंधन, राक्षस, संग्राम तथा राजा इतने द्वारा उत्पन्न हुए भयका नाश करता है । अन्यस्थानमें भी कहा है कि, जीवके जन्म-समयमें भी नवकार गिनना, कारण कि उससे उत्पन्न होनेवाले बालकजीवको उत्तमफलकी प्राप्ति होती है । देहांतके समयमें

भी नवकार गिनना, कारण कि, उससे मरनेवाला जीव सुगतिको जाता है। आपत्तिके समय भी नवकार गिनना, कारण कि इससे सैकड़ों आपत्तियोंका नाश होता है। बहुतसी ऋद्धि हो तो भी गिनना, कारण कि इससे ऋद्धिकी वृद्धि होती है। नवकारका एक अक्षर गिने तो सात सागरोपमकी स्थिति वाला, एक पद गिने तो पचास सागरोपमकी स्थितिवाला और समग्र नवकार गिने तो पांचसौ सागरोपम स्थितिवाला पापकर्म नाशको प्राप्त होता है। जो मनुष्य एक लक्ष नवकार गिने और विधिपूर्वक जिननमस्कारकी पूजा करे वह तीर्थकर नामगोत्र संचित करे इसमें संशय नहीं। जो जीव आठ करोड, आठ लाख आठ हजार, आठ सौ आठ (८०८०८८०८) बार नवकार मंत्र गिने वह तीसरे भवमें मुक्ति पाता है। नवकार माहात्म्यके ऊपर इसलोकसंबंधमें श्रेष्ठिपुत्र शिवकुमारादिकका दृष्टांत है, श्रेष्ठिपुत्र शिवकुमार जूआआदि व्यसनमें आसक्त होनेसे उसके पिताने उसे शिक्षा दी कि, कोई संकट आ पड़े तो नवकार मंत्रकी गणना करना। कुछ कालमें पिताके मरजानेके बाद व्यसनसे निर्धन हुआ शिवकुमार धनके निमित्त किसी त्रिदंडीके कहनेसे उत्तर साधक हुआ। कृष्ण चतुर्दशीकी रात्रिमें स्मशानमें मृतकलेवरके पांव छुते भयभीत हुआ, जिससे उसने उसी समय तीन बार नवकारमंत्रकी गणना की। उससे खड़े हुए शवकी। कि उस पर नहीं चली तब शवने त्रिदंडीको मार डाला और उसी

त्रिदंडीका सुवर्णपुरुष (सोना पुरुष) हो गया। उससे अत्यन्त काद्वि-
शाली होकर शिवकुमारने इस लोकमें जिनमंदिरादि बंधाये।

परलोकके सम्बन्धमें बडमें रहनेवाली शबलिकादि दृष्टांत
जानों, जैसे:-वह (बटशबलिका) जब यवनके बाणसे विद्ध हुई तब
उसको मुनिराजने नवकारमंत्र दिया। जिससे वह सिंहलाधिपति
राजाकी मान्य पुत्री हुई। एक समय किसी श्रेष्ठि (सेठ) ने
छींक आते अपने आप ही नवकारका प्रथम पद कहा। वह
सुननेसे राजकन्याको जातिस्मरणज्ञान उत्पन्न हुआ। जिससे
उसने पचास नौका द्रव्यसे भरी हुई साथ ले भृगुकच्छमें आ कर
शबलिकाविहारका उद्धार कराया।

इसलिये निद्रासे जागते ही प्रथम नवकारमंत्रकी गणना
करना पश्चात् धर्मजागरिका करना। वह इस प्रकार है—

“कोऽहं? का मम जाति? किं च कुलं? देवया च? के गुरुणो?।

को मह धम्मो? के वा, अभिग्रहा? का अवस्था मे? ॥ १ ॥

किं मे कर्ड? किं च मे किञ्चसेसं?, किं सकण्डिज्जं न समायराभि?।

किं मे परो पासइ? किं च अप्पा?, किं वाहं खल्लिअं न विवज्जयामि? ॥ २ ॥

मैं कौन हूं? मेरी जाति क्या है? कुल क्या है? देव
कौन? गुरु कौन? धर्म कौनसा? अभिग्रह कौनसा? और
अवस्था कैसी? मैंने अपना कौन कर्त्तव्य किया? और मेरा कौन
कार्य शेष है? करनेकी शक्ति होते हुए मैं (प्रमादसे) करता नहीं
ऐसा क्या है? दूसरे मनुष्य मेरी ओर किस दृष्टिसे देखते हैं?

मैं स्वयं अपना क्या (अच्छा कि बुरा) दे जाता हूँ ? कौनसा दौष मैं नहीं छोड़ता ? वैसे ही आज क्या तिथि है ? अरिहंत-का कल्याणक कौनसा है ? तथा आज मुझे क्या करना चाहिये इत्यादि विचार करे । इस धर्मजागरिकामें भावसे अपने कुल, धर्म व्रत इत्यादिकका चिन्तन, द्रव्यसे सद्गुरुआदिका चिन्तन, क्षेत्रसे “ मैं किस देशमें ? पुरमें ? ग्राममें ? अथवा स्थानकमें हूँ ? ” यह विचार तथा कालसे “ अभी प्रभात काल है ? कि रात्रि बाकी है ? ” इत्यादि विचार करना ।

प्रस्तुत गाथाके “सकुलधम्मनियमाई” इस पदमें “आदि” शब्द है, इससे ऊपर कहे हुए सर्वविचारका यहां संग्रह किया । ऐसी धर्मजागरिका करनेसे अपना जीव सावधान रहता है और उससे विरुद्ध कर्मका तथा दोषादिकका त्याग, अपने किये हुए व्रतका निर्वाह, नये गुणका लाभ और धर्मकी उपार्जना इत्यादिक श्रेष्ठ परिणाम होते हैं । सुनते हैं कि, आनंद, कामदेव इत्यादिक धर्मी मनुष्य भी धर्मजागरिका करनेसे बोध पाये व श्रावक-प्रतिमादि विशेषधर्मका आचरण करने लगे । यहां तक प्रस्तुत गाथाके पूर्वार्द्धकी व्याख्या हुई ।

—*—

उत्तरार्द्धकी व्याख्या ।

धर्मजागरिका कर लेनेके अनन्तर प्रतिक्रमण करनेवाले श्रावकने रात्रिप्रतिक्रमण करके, तथा न करनेवालेने भी

रागादिमय कुस्वप्न, द्वेषादिमय दुःस्वप्न तथा बुरे फलका देनेवाला स्वप्न इन तीनोंमें से पहिलेके परिहारके निमित्त एक सौ आठ श्वासोश्वासका काउस्सग्ग करना । प्रतिक्रमण विधि आगे वर्णन करेंगे । व्यवहारभाष्यमें कहा है कि— प्राणातिपात (हिंसा), मृषावाद (असत्य वचन), अदत्तादान (चोरी), मैथुन (स्त्रीसंभोग), तथा परिग्रह (धन-धान्यादिकका संग्रह) ये पाँचों स्वप्नमें स्वयं किये, कराये अथवा अनुमोदन किया होवे तो पूरे सौ श्वासोश्वासका काउस्सग्ग करना । मैथुन (स्त्रीसंभोग) स्वयं किया होवे तो सत्ताइस श्लोक (एकसौ आठ श्वासोश्वास) का काउस्सग्ग करना । काउस्सग्गमें पच्चीस श्वासोश्वास प्रमाणवाला लोगस्स चार बार गिनना अथवा पच्चीसश्लोक प्रमाणवाले दशवैकालिकसूत्रके चौथे अध्ययनमें किये हुए पंचमहाव्रतका चिन्तन करना अथवा स्वाध्यायके रूपमें चाहे कोई पच्चीस श्लोक गिनना । इस भांति व्यवहारभाष्यकी वृत्तिमें कहा है । प्रथम पंचाशककी वृत्तिमें भी कहा है कि—किसी समय मोहिनीकर्मके उदयसे स्त्रीसेवारूप कुस्वप्न आवे तो उसी समय उठकर ईर्ष्याविहिपूर्वक प्रतिक्रमण कर एक सौ आठ श्वासोश्वासका काउस्सग्ग

१ स्वप्नमें स्त्रीको भोगना अथवा अन्य कोई कामचेष्टा करना उसे शास्त्रमें कुस्वप्न कहते हैं । २ स्वप्नमें किसीके साथ वैर मतत्तर करना अथवा किसी भी प्रकार द्वेषदिक प्रकट करना उसे दुःस्वप्न कहते हैं

करना । काउस्सग्न करनेके अनन्तर और रात्रिप्रतिक्रमणका समय हो तब तक अति निद्रा आदि प्रमाद होवे तो पुनः काउस्सग्न करना । किसी समय दिनमें निद्रा लेते कुस्वप्न आवे तो भी इसी प्रकारसे काउस्सग्न करना ऐसा ज्ञात होता है; परन्तु वह उसी समय करना ? कि संध्या समय प्रतिक्रमणके अवसर पर करना ? यह बहुश्रुत जाने ।

विवेकविलासादिग्रंथमें तो यह कहा है कि, उत्तम स्वप्न देखा हो तो पुनः सोना नहीं, और सूर्योदय होने पर वह स्वप्न गुरुको कहना । दुःस्वप्न देखनेमें आवे तो इससे प्रतिकूल करना, अर्थात् देखते ही पुनः सो जाना, और किसीके सन्मुख कहना भी नहीं । जिसके शरीरमें कफ, वात, पित्तका प्रकोप अथवा किसी जातिका रोग न होवे तथा जो शान्त, धार्मिक और जितेन्द्रिय हो उसी पुरुषके शुभ अथवा अशुभ स्वप्न सच्चे होते हैं । १ अनुभव की हुई बातसे २ सुनी हुई बातसे, ३ देखी हुई बातसे, ४ प्रकृतिके अजीर्णादि विकारसे, ५ स्वभावसे ६ निरन्तर चिन्तासे, ७ देवतादिकके उपदेशसे, ८ धर्मकार्यके प्रभावसे तथा ९ अतिशय पापसे, ऐसे नौकारणोंसे मनुष्यको नौप्रकारके स्वप्न आते हैं । पहिले छः कारणसे दिखे हुए शुभ अथवा अशुभ स्वप्न निष्कल होते हैं, और अन्तके तीन कारणोंसे दिखे हुए शुभ अथवा अशुभ स्वप्न अपना फल देनेवाले होते हैं । रात्रिके पहले, दूसरे, तीसरे और

चाँथे प्रहरमें दिखे हुए स्वप्न क्रमसे बारह, छः, तीन और एक मासमें अपना फल देते हैं। रात्रिकी अंतिम दो घड़ीमें देखे हुए स्वप्न दस दिनमें फल देते हैं, और सूर्योदयके समय देखा हुआ स्वप्न तो तत्काल फल देता है। एकके ऊपर एक आये हुए, दिनमें देखे हुए, मनकी चिंतासे, शरीरकी किसी व्याधिसे अथवा मलमूत्रादिकके रोकनेसे आये हुए स्वप्न निरर्थक हैं। पहिले अशुभ और पश्चात् शुभ आवें अथवा पहिले शुभ और पश्चात् अशुभ आवे, तो भी पीछेसे आवे वही स्वप्न फलका देनेवाला है। बुरा स्वप्न आवे तो उसकी शांति करना चाहिये। स्वप्नचिंतामणिशास्त्रमें भी कहा है कि, अनिष्ट स्वप्न देखते ही रात्रि हो तो पुनः सो जाना, वह स्वप्न कभी किसीको नहीं कहना। कारण कि, वैसा बुरा स्वप्न का बुरा फल कदाचित् नहीं भी होता है। जो पुरुष प्रातःकाल उठ कर जिनभगवानका ध्यान अथवा स्तुति करता है किंवा पाँच नवकार गिनता है उसका दुःस्वप्न निरर्थक हो जाता है। देवगुरुकी पूजा तथा शक्तिके अनुसार तपस्या करना। इस प्रकार जो मनुष्य धर्मकृत्यमें रत रहते हैं उनको आये हुए बुरे स्वप्न भी उत्तमफलको देनेवाले हो जाते हैं। देव गुरु उत्तम-तर्था तथा आचार्य इनका नाम लेकर तथा स्मरण करके जो मनुष्य निद्रा लेते हैं उनको कभी भी बुरा स्वप्न नहीं आता।

पश्चात् खुजली आदि हुई हो तो उस पर धूक लगा कर मलना, और शरीरके अवयव दृढ होनेके हेतु अंगमर्दन करना।

पुरुषने प्रातःकालमें प्रथम अपना दाहिना हाथ देखना तथा स्त्रीने बायां हाथ देखना । क्योंकि वह अपना पुण्य प्रकट बतलाता है । जो मनुष्य मातापिता इत्यादि वृद्धपुरुषोंको नमस्कार करता है उसे तर्थियात्राका फल प्राप्त होता है । इसलिये उनको नित्य नमस्कार करना चाहिये । जो मनुष्य वृद्धपुरुषोंकी सेवा नहीं करते उनसे धर्म दूर रहता है और जो मनुष्य राजा महाराजादिकी सेवा नहीं करते हैं उनसे लक्ष्मी दूर रहती है, और जो मनुष्य वेश्याके साथ मित्रता नहीं रखते उनसे विषय-वासनाकी तुमि दूर रहती है ।

रात्रि प्रतिक्रमण करनेवालेने पञ्चखानका उच्चारण करनेसे पहिले सचित्तादि चौदह नियम लेना चाहिये । प्रतिक्रमण न करे उसने भी सूर्योदयसे पहिले चौदह नियम ग्रहण करना, शक्तिके अनुसार नौकारसी, गंठिसहिअ, भियासन, एकासन इत्यादिक पञ्चखान करना । तथा सचित्त द्रव्यका और विगय आदिका जो नियम रखा हो, उसमें संक्षेप करके देशावकाशिक व्रत करना, विवेकी पुरुषने प्रथम सद्गुरुके पास यथाशक्ति

१ यहां वेश्याके साथ मित्रता करनेको कहा है, वह विषय-लंपटतासे नहीं समझना, बल्कि विषयका तुच्छ स्वरूप जाननेके हेतु वेश्याके साथ मित्रता रखना । ऐसा करनेसे वहांके कृत्य देखकर विषय ऊपर वैराग्य बुद्धि होती है । स्वप्नचिन्तामणिके मतसे वासना-के लिये भी होवे तब भी वह जैनको अनादरणीय ही है,

समकित मूल वारहव्रतरूपा श्रावकधर्मका ग्रहण अवश्य करना, कारण कि, ऐसा करनेसे सर्वविरति (चारित्र) के लाभ होनेका संभव रहता है । विरतिका फल बहुत ही बड़ा है । मनवचन-कायाके व्यापार न चलते हो तो भी अविरतिसे निगोद आदि (अत्यन्तसूक्ष्मकीटाणु) जिवकी भांति बहुत कर्मबंधन, तथा दूसरे महान् दोष होते हैं, कहा है कि— जो व्यक्ति भाव-से विरतिको (देशविरतिको अथवा सर्वविरतिको) अंगीकार करे उसकी विरति करनेमें असमर्थ ऐसे देवता बहुत प्रशंसा करते हैं । एकेन्द्रिय जीव कवलआहार विलकुल नहीं करते, तो भी उनको उपवासका फल नहीं मिलता, यह अविरतिका फल है । एकेन्द्रिय जीव, मनवचनकायासे सावध व्यापार नहीं करते, तो भी उनको उत्कृष्टसे अनन्तकाल तक उसी कायामें रहना पड़ता है, इसका कारण अविरति ही है । जो परभवमें विरति करी होती तो तिर्यच जीव इस भवमें चाबुक अंकुश, परोणी इत्यादिकका प्रहार तथा वध, बंधन, मारण आदि सैकड़ों दुःख न पाते । सद्गुरुका उपदेशआदि सर्व सामग्री होते हुए भी अविरति कर्मका उदय होते तो देवताकी भांति विरति स्वीकार करनेका परिणाम नहीं होता । इसीलिये श्रेणिक राजा क्षाधिक-सम्यग्दृष्टि होते हुए तथा वीरभगवानका वचन सुनना इत्यादि उत्कृष्ट योग होते हुए भी मात्र कौवेके सांस तककी भी बाधा न ले सका । अविरतिको विरतिसेही जीत सकते हैं और विरति

अभ्याससे साध्य होती है, अभ्यास ही से सर्व क्रियाओंमें निपुणता उत्पन्न होती है। लिखना, पढ़ना, गिनना, गाना, नाचना इत्यादि सर्व कलाकौशलमें यह बात मनुष्योंको अनुभव सिद्ध है। अभ्याससे सर्व क्रियाएं सिद्ध होती हैं, अभ्यास-हीसे सर्व कलाएं आती हैं और अभ्यासहीसे ध्यान, मौन, इत्यादि गुणोंकी प्राप्ति होती है। अतएव ऐसी कौनसी बात है जो अभ्याससे न हो सके ? जो निरन्तर विरतिके परिणाम रखनेका अभ्यास करे, तो परभवमें भी उस परिणामकी अनुवृत्ति होती है। कहा है कि--

भाविना भविना येन, स्वल्पापि विरतिः कृता ।

स्पृहयन्ति सुरास्तस्मै, स्वयं तां कर्तुमक्षमाः ॥ १ ॥

अभ्यासेन क्रियाः सर्वाः, अभ्यासात्तत्कलाः कलाः ।

अभ्यासाद् ध्यानमौनादि, किमभ्यासस्य दुष्करम् ? ॥२॥

जीव इसभवमें जिस किसी गुण अथवा दोषका अभ्यास करता है उस अभ्यासके योगहीसे वह वस्तु परभवमें पाता है। इसलिये जैसी इच्छा हो उसके अनुसार भी विवेकी पुरुषने बारह व्रत सम्बन्धी नियम ग्रहण करना चाहिये.

इस स्थानपर श्रावक तथा श्राविकाओंने अपनी इच्छासे कितना प्रमाण रखना, इसकी सविस्तार व्याख्या करना आवश्यक है। जिससे कि अच्छी भांति समझकर परिमाण रखकर नियम स्वीकार करे तो उसका भंग न हो। विचार करके उतना ही नियम लेना चाहिये जितना कि पल सके। सर्वनियमोंमें

सहस्रानाभोगादि चार आगार हैं, वे ध्यानमें रखना । इसलिये अनुपयोगसे अथवा सहसागारादिकसे नियममें रखी हुई वस्तु नियमसे अधिक लेनेमें आवे तो भी नियम भंग नहीं होता, परन्तु मात्र अतिचार होता है । समझ बूझकर यदि लेशमात्र भी नियमसे अधिक ग्रहण करे तो नियमभंग होता है । कोई समय पापकर्मवश जानते हुए नियमभंग होजाय तो भी धर्मार्थी जीवोंने आगेपर तो उस नियमका पालन अवश्य करना चाहिये । पडवा, पंचमी, और चौदश इत्यादि पर्वतिथिको जिसने उपवास करनेका नियम लिया है, उसको किसी समय तपस्याकी तिथिके दिन अन्यतिथिकी भ्रांति आदि होनेसे, जो सचित्त जलपान, ताम्बूलभक्षण, स्वल्प भोजन आदि होजाय और पश्चात् तपस्याका दिन ज्ञात हो तो मुखमें ग्रास हो उसे न निगलते निकालकर ग्रासुकजलसे मुखशुद्धि करना और तपस्याकी रीत्यानुसार रहना । जो कदाचित् भ्रांतिवश तपस्याके दिन पूरा २ भोजन कर लिया जाय तो दंडके निमित्त दूसरे-दिन तपस्या करना और समाप्तिके अवसरपर वह तप वर्द्धमान जितने दिन कम होगये हों, उतनेकी वृद्धि करके करना । ऐसा करनेसे अतिचार मात्र लगता है परन्तु नियम भंग नहीं होता । “आज तपस्याका दिन है,” यह जान लेनेपर यदि एक दानाभी

१ अन्नस्थणभोगेणं २ सहसागारेणं ३ महत्तरागारेणं ४ सव्यस-
माहिवात्तियागारेणं ।

निगल जावे, तो नियमभंग होनेसे नर्कगतिका कारण होता है । “ आज तपस्याका दिन है कि नहीं ? अथवा यह वस्तु लेना है कि नहीं ? ” ऐसा मनम सशय आवे, और वह (वस्तु) ले तो नियमभंगादि दोष लगता है । बहुतही रोगी, भूतपिशा-चादिकका उपद्रव होनेसे विवशता तथा सर्पदंशादिकसे मूर्छित होनेसे तप न होसके तो भी चौथे आगार (सव्वसमाहिवत्तिया-गारेणं) का उच्चारण किया है अतः नियमका भंग नहीं होता । इस भांति सर्वनियमोंका विचार करना चाहिये । कहा है कि—

“ वयमंगे गुरुदोसो थोवत्सवि पालणा गुणकरी अ ।

गुरुलाघवं च नेअं, धम्ममि अओ अ आगारा ॥ १ ॥ ”

नियमभंग होनेसे बड़ा दोष लगता है इसलिये थोडा ही नियम लेकर उसका यथोचित पालन करना उत्तम है । धर्मके सम्बन्धमें तारतम्य अवश्य जानना चाहिये । इसीलिये (पच्च-खानमें) आगार रखे हैं ।

यद्यपि कमलश्रेष्ठिने “ पडौसमें रहनेवाले कुम्हारके सिरकी टाल (गंज) देखे बिना मैं भोजन नहीं करूंगा. ” ऐसा नियम कौतुकवश लिया था तथापि उससे उसे अर्ध निधानकी प्राप्ति हुई, और उसीसे नियम सफल हुआ । तो पुण्यके निमित्त जो नियम लिया जावे उसका कितना फल होवे ? कहा है कि—
पुण्यके इच्छुक व्यक्तिने कुछ भी नियम अवश्य ग्रहण करना चाहिये, वह (नियम) अल्पमात्र हो तोभी कमलश्रेष्ठिकी भांति बहुत

लाभदायक होता है । परिग्रहपरिमाणव्रतमें दृढता रखने पर रत्नसार श्रेष्ठिका दृष्टान्त आगे वर्णन किया जावेगा । नियम इस प्रकार लेना चाहिये--

प्रथम मिथ्यात्वका त्याग करदेना । पश्चात् नित्य शक्तिके अनुसार दिनमें तीन, दो अथवा एक बार भगवानकी पूजा, देवदर्शन, संपूर्ण देववन्दन अथवा चैत्यवन्दन करनेका नियम लेना । ऐसे ही सामग्री (योग) होवे तो सद्गुरुको बड़ी अथवा छोटी वन्दना करना । योग न हो तो सद्गुरुका नाम ग्रहण करके नित्य वन्दना करना, नित्य वर्षाकालके चातुर्मासमें अथवा पंचपर्वी इत्यादिकमें अष्टप्रकारी पूजा करना । जीवन पर्यन्त नया आयाहुआ अन्न, पक्वान्न अथवा फलादिक भगवानको अर्पण किये बिना नहीं लेना । नित्य नैवेद्य, सुपारी आदि भगवानके सन्मुख रखना । नित्य तीनों चातुर्मासमें अथवा वार्षिक (संवत्सरी) तथा दीपोत्सवादिक (दीवाली आदिक) पर अष्ट मंगलिक रखना । नित्य पर्वतिथिको अथवा वर्षमें कभी कभी खाद्य, स्वाद्य आदि सर्व वस्तु देव तथा गुरुको अर्पण करके शेष अपने उपभोगमें लेना । प्रतिमास अथवा प्रतिवर्ष ध्वजा चढ़ा कर विस्तारसे स्नात्रमहोत्सवपूर्वक पूजा तथा रात्रि जागरण आदि करना । नित्य अथवा महीनेमें अथवा वर्षमें कभी चैत्यशालाको प्रमार्जन करना व समारना इत्यादि । प्रतिमास अथवा प्रतिवर्ष

१ बीज, पंचमी, अष्टमी, ग्यारस, चौदश,

मंदिरमें अंगलूहणा, दीपकके लिये रूई, दीपकके लिये तैल, चंदन, केशर इत्यादिक देना, तथा पौषधशालामें मुंहपत्ति, नवकारवाली, कटासन, चरवला इत्यादिके लिये कुछ वस्त्र, सूत्र, कम्बल, ऊन इत्यादि रखना । वर्षाकालमें श्रावक आदि लोगोंके बैठनेके लिये पाट आदि कराना । प्रतिवर्ष सूत्रादिकसे भी संघकी पूजा करना तथा साधर्मियोंका वात्सल्य करना । प्रतिदिन कुछ कायोत्सर्ग करना, तथा तीनसौ गाथाकी सज्झाय इत्यादि करना । नित्य दिनमें नवकारसी आदि तथा रात्रिमें दिवसचरम पञ्चखान करना, नित्य दोवार प्रतिक्रमण करना, इत्यादि नियम श्रावकने प्रथम लेना चाहिये । पश्चात् यथाशक्ति बारह व्रत ग्रहण करना । उसमें सातवें (भोगोपभोगपरिमाण) व्रतमें सचित्त, अचित्त व मिश्रवस्तु प्रकट कही है उसे भलीभांति जानना । जैसे--

प्रायः सर्वधान्य, धनिया, जीरा, अजवान, सौंफ, सुवा, राई, खसखस इत्यादि सर्वकण, सर्वफल व पत्र, नमक, खारी, खारा (नमकविशेष) सैधव, संचल आदि अकृत्रिम क्षार, मट्टी, खडिया, गेरू वैसे ही हरे दांतौन आदि व्यवहारसे सचित्त हैं । पानीमें भिगोये हुए चने तथा गेहूं आदि धान्य तथा चने, मूंग आदिकी दाल पानीमें भिगोई हुई हो तो भी किसी जगह अंकुरकी संभावनासे वह मिश्र है । प्रथम लवणादिकका हाथ अथवा वाफ़ दिये बिना किंवा रेतीमें डाले बिना सेके हुए चने,

गेहूँ, ज्वार इत्यादिककी धानियाँ, क्षारादिक दिये बिना तिल, चनेके छोड गेहूँकी बालें, पोहे, सेकीहुई फली, पपड़ी आदि, मिर्च, राई आदिका बघार (छाँक) मात्र दिये हुए चिभडे आदि तथा जिसके अंदर बीज सचित्त हैं ऐसे सर्व पकेहुए फल मिश्र (कुछ सचित्त कुछ अचित्त) हैं । जिसदिन तिलपापड़ी की हो, उसदिन वह मिश्र होती है, अन्न अथवा रोटी आदिमें डाली होवे तो वह दोघडीके उपरान्त अचित्त होती है, दक्षिण, मालवा इत्यादि देशोंमें बहुतसा गुड डालनेसे तत्काल करीहुई तिल-पापड़ी उसी दिन भी अचित्त माननेका व्यवहार है । वृक्ष परसे तत्काल लियाहुआ गोंद, लाख, छाल आदि तथा तत्काल निकाला हुआ निम्बू, नीम, नारियल, आम, सांटा आदिका रस वैसही तत्काल निकाला हुआ तिलादिकका तैल, तत्काल तोडा हुआ व निर्बीज किया हुआ नारियल, सिंघाडा, सुपारी आदि निर्बीज किये हुए पके फल, विशेष कूटकर कण रहित किया हुआ जीरा, अजमान आदि दो घडी तक मिश्र और पश्चात् अचित्त ऐसा व्यवहार है ।

दूसरीभी जो वस्तु प्रबल अग्निके संयोगसे अचित्त करी हुई हो वह, दो घडी तक मिश्र और पश्चात् अचित्त हो जाती है, ऐसा व्यवहार है । वैसे ही कच्चे फल, कच्चे धान्य, बहुत बारीक पिसा हुआ नमक इत्यादि वस्तुएं कच्चे पानीकी भांति अग्नि आदि प्रबलशस्त्रके बिना अचित्त नहीं होती । श्रीभग-

वतीसव्रके उन्नीसवें शतकके तीसरे उद्देशमें कहा है कि- वज्र-
 संधी शिला पर अल्प पृथ्वीकाय रखकर उसको वज्रमय पत्थर
 ही से जो इक्कीस बार चूर्ण किया जाय तो उस पृथ्वीकायमें
 कितने ही ऐसे जीव रहते हैं कि जिनको पत्थरका स्पर्श भी
 नहीं हुआ। हरडे, खारिक, किसमिस, दाख, खजूर, मिर्च,
 पीपल, जायफल, बादाम, वायम, अखरोट, निमजां, अंजीर,
 चिलगोंजा, पिस्ता, कवावचीनी, स्फटिकके समान सैधव आदि
 सज्जीक्षार, बिड नमक आदि कृत्रिम (बनावटा) खार, कुद्धार
 आदि लोगोंने तैयार की हुई मट्टी आदि, इलायची, लौंग,
 जावित्री, नागरमोथा, कोकन आदि देशमें पके हुए केले,
 उकाले हुए सिंघाडे; सुपारी आदि वस्तु सौ योजन ऊपरसे
 आई हुई होवे तो, अचित्त माननेका व्यवहार है। श्रीकल्पमें कहा
 है कि, लवण आदि वस्तु सौ योजन जानेके उपरान्त (उत्पत्ति
 स्थानमें मिलता था वह) आहार न मिलनेसे, एक पात्रसे
 दूसरे पात्रमें डालनेसे अथवा एक कोठेमेंसे दूसरे कोठेमें डालने
 से, पवनसे, अग्निसे, तथा धुंएसे अचित्त हो जाती है (इसी
 बातको विस्तारसे कहते हैं) लवण आदिक वस्तु अपने उत्पत्ति
 स्थानसे परदेश जाते हुए प्रतिदिन प्रथम थोड़ी, पश्चात् उससे
 अधिक, तत्पश्चात् उससे भी अधिक, इस प्रकार क्रमशः अचित्त
 होते हुए सौ योजन पर पहुंचती है तब तो वे सर्वथा अचित्त
 होजाती हैं।

शंकाः—शस्त्रका सम्बन्ध न होते केवल सौ योजन पर जाने ही से लवणादिक, वस्तु अचित्त किस प्रकार होजाती है ?

समाधान—जो वस्तु जिस देशमें उत्पन्न होती है उसको वह देश, वहांका जल वायु आदि अनुकूल रहते हैं, उसी वस्तुको वहांसे परदेश लेजावें तो उसको पूर्व उस देशमें जलवायु आदिका जो पौष्टिक आहार मिलता था, उसका विच्छेद होनेसे वह वस्तु अचित्त होजाती है । एकपात्रसे दूसरे पात्रमें अथवा एक कोठेमें से दूसरे कोठेमें इस तरह बारम्बार फिरानेसे लवणादि वस्तु अचित्त होजाती है । वैसेही पवनसे, अग्निसे तथा रसोई आदिके स्थानमें धुआं लगनेसे भी लवणादि वस्तु अचित्त होजाती हैं. “लवणादि” इस पदमें “आदि” शब्द ग्रहण किया है इससे हरताल, मनशिल, पीपल, खजूर, दाख, हरडा यह वस्तुएं भी सौ यांजन ऊपर जानेसे अचित्त होजाती हैं, ऐसा समझना चाहिये । पर इसमें कितनेक आचीर्ण (वापरने योग्य) और कितनेक अनाचीर्ण (न वापरने योग्य) हैं । पीपल, हरडा इत्यादि आचीर्ण हैं तथा खजूर दाख आदि अनाचीर्ण हैं ।

अब सब वस्तुओंके परिणाम होनेका साधारण (जो वस्तु साधारणको लागू पड़े) कारण कहते हैं— गाड़ीमें अथवा बैल-आदिकी पीठपर बारम्बार चढ़ाने उतारनेसे, गाड़ीमें अथवा बैलपर लादे हुए लवणादि वस्तुके बोझमें मनुष्यके बैठनेसे, बैल तथा मनुष्यके शरीरकी उष्णता लगनेसे, जिस वस्तुका जो

आहार है वह न मिलनेसे और उपक्रमसे लवणादि वस्तुका परिणाम होता है अर्थात् वे अचित्त होजाती हैं । उपक्रम याने शस्त्र, वह (शस्त्र) १ स्वकाय, २ परकाय और ३ उभयकाय ऐसे तीन भेदसे तीन प्रकारका है । लवणजल (खारा पानी) पीठे जलका शस्त्र है, यह स्वकाय शस्त्र है, अथवा कृष्णभूमि (काली जमीन) पांडुभूमि (शफेदभूमि) का स्वकाय शस्त्र है । जलका अग्नि तथा अग्निका जल जो शस्त्र है वह परकाय शस्त्र है । मिट्टीसे मिश्र हुआ जल शुद्धजलका शस्त्र है, इसे उभयकाय शस्त्र कहते हैं । सचित्त वस्तुके परिणाम (अचित्त) होनेके इत्यादिक कारण हैं । उत्पल (कमल विशेष) और पद्म (कमल विशेष) जलयोनि होनेसे धूपमें रखे जाय तो एक प्रहरभर भी सचित्त नहीं रहते अर्थात् प्रहर पूरा होनेके पहिले ही अचित्त होजाते हैं । मोगरा, चमेली, तथा जुहीके फूल उष्णयोनि होनेसे उष्ण प्रदेशमें रखे जाय तो बहुत काल तक सचित्त रहते हैं । मगदन्तिका के फूल पानीमें रखें तो एक प्रहरभर भी सचित्त नहीं रहते । उत्पलकमल तथा पद्मकमल पानीमें रखें तो बहुत समय तक सचित्त रहते हैं । पत्ते, फूल, बीज न पड़े हुए फल तथा वत्थुला (शाकविशेष) आदि हरितकाय अथवा सामान्यतः तृण तथा बनस्पतिका गट्टा अथवा मूल नाल (जड़) सूखने पर अचित्त हुए समझना चाहिये । इसप्रकार कल्पवृत्तिमें कहा है । श्रीभगवत्सूत्रके छठे शतकके सातवें उद्देशमें शालि

(साल) आदि धान्यका सचित्त अचित्त विभाग इस प्रकार कहा है—

प्रश्न— हे भगवंत ! शालि (साल चावलकी जाति), व्रीहि (सर्व जातिकी सामान्य साल), गोधूम (गेहूँ), जव, जव-जव (एक जातके जव), ये धान्य कोठीमें, बांससे बनाये हुए टोकनेमें, थोड़ेसे उंचे ऐसे मंचोंमें और ज्यादाह उंचे ऐसे मालेमें ढकनके पास गोबर आदिसे लिपे हुए अथवा सब तरफ गोबरसे लिपे हुए, मुद्रित (मुंह परसे बंद किये हुए), ऐसेमें रख दिये जाय तो उनकी योनि कितने समय तक रहती है ?

उत्तर— हे गौतम ! जघन्यसे अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्टसे तीन वर्ष (योनि रहती है). तदनंतर योनि सूख जावे तब वे (धान्य) अचित्त होजाते हैं, और बीज अबीज होजाते हैं ।

प्रश्न— हे भगवन्त ! बटला, मसूर, तिल, मूंग, उडद, बाल, कुलर्था, चवला, तूवर, काले चने इत्यादि धान्य शालके समान कोठीमें रखेंतो उनकी योनि कितने समय तक रहती है ?

उत्तर— हे गौतम ! जघन्यसे अंतर्मुहूर्त और उत्कृष्टसे पांच वर्ष तक (योनि रहती है.) तदनंतर योनि सूखने पर (वे धान्य) अचित्त होते हैं और बीज अबीज होते हैं ।

प्रश्नः—हे भगवंत ! अलसी, कुसुंभक, कोदों, कांगणी, बंटी, रालक, कोहूसग (कोदों की एक जाति), सन, सरसों, मूलबीज इत्यादि धान्य शालके समान रखें तो उनकी योनि कितने समय तक रहती है ?

सचित्तअचित्तविभाग.

उत्तरः—हे गौतम ! जघन्यसे अंतर्मुहूर्त और उत्कृष्टसे सात वर्ष (योनि रहता है.) तदनंतर योनि सुख जावे तब (वे धान्य) अचित्त होजाते हैं, और बीज हैं वे अभीज होजाते हैं ।

इस विषयमें पूर्वाचार्योंने इसप्रकार गाथाएं रची हैं, यथाः—
जवजवजवगोहुमसा-लिबीहिधण्णाण कुट्टमाईसु ।
खिविआए उक्कोसं, वरिसतिगं होइ सजिअत्तं ॥१॥
तिलमुग्गमसूरकला-यमासचवलयकुलत्थतुवरीणं ।
तह वट्टचणयवल्ला-ण वरिसपणगं सजीवत्तं ॥ २ ॥
अयसी लट्ठा कंगू, कोइसगसणवरट्टसिद्धत्था ।
कुहवरालय मूलग-बीआणं सत्त वरिसाणि ॥ ३ ॥

(इन तीनों गाथाओंका अर्थ ऊपरके प्रश्नोंत्तरोंमें आगया है.)
कपास तीसरे वर्षमें अचित्त होता है । श्रीकल्पबृहद्भाष्यमें कहा है कि, कपास तीसरे वर्ष लेते हैं. अर्थात् कपास तीसरे वर्षका अचित्त हुआ लेना मानते हैं ।

आटेका अचित्त, मिश्र इत्यादि प्रकार पूर्वाचार्योंने इस प्रकार कहे हैं— आटा छाना हुआ न होय तो श्रावण तथा भादौ मासमें पांच दिन, आश्विन मासमें चार दिन, कार्तिक, मार्गशीर्ष और पौष मासमें तीन दिन, माह और फाल्गुण मासमें पांच प्रहर, चैत्र तथा वैशाख मासमें चार प्रहर और ज्येष्ठ तथा आषाढ मासमें तीन प्रहर मिश्र (कुछ सचित्त कुछ अचित्त)

होता है तदनंतर अचित्त होजाता है । छाना हुआ आटा तो दोघडीके बाद अचित्त होजाता है ।

शंका—अचित्त भोजन करनेवालेको अचित्त हुआ आटा आदि कितने दिन तक ग्राह्य है ? ।

समाधान— सिद्धान्तमें इस विषयके सम्बन्धमें कोई दिनका नियम सुना नहीं । परन्तु द्रव्यसे धान्यके नये जूने-पनके ऊपरसे, क्षेत्रसे सरस निरस खेतके ऊपरसे, कालसे वर्षा-काल, शीतकाल तथा उष्णकाल इत्यादिके ऊपरसे और भावसे कही हुई वस्तुके अमुक २ परिणाम परसे पक्षः मास इत्यादिक अवधि जहांतक वर्ण, गंध, रसादिकमें फेरफार न हो, और इली आदि जीवकी उत्पत्ति न हो वहांतक कहना । साधुको लक्षकर सत्तु-सेके हुए धान्यके आटे की यतना कल्पवृत्तिके चौथे खंडमें इस भांति कही है—

जिस देश, नगर इत्यादिमें सत्तुके अंदर जीवकी उत्पत्ति होती हो, वहां उसे न लेना । लिये बिना निर्वाह न होता होवे तो उसी दिन किया हुआ लेना । ऐसा करने पर भी निर्वाह न होवे तो दो तीन दिनका किया हुआ पृथक् २ लेना । चारपांच इत्यादि दिनका किया हुआ होवे तो इकट्ठा लेना वह लेनेकी विधि इस प्रकार है—

रजस्त्राण नीचे बिछाकर उसपर पात्र कंबल रख उसपर सत्तुको बिखेरना, पश्चात् ऊपरके मुखसे पात्रको बांधकर, एक

बाजू जाकर जो इली (जीवविशेष) आदि कहीं लगी हो तो निकाल कर ठीकरेमें रखना । इस तरह नौ बार प्रतिलेखन करने पर भी जो जीव न नजर आवे तो, वह सत्तु भक्षण करना । और जो जीव दीखे तो पुनः नौबार प्रतिलेखन करना, फिर भी जीव दीखे तो पुनः नौबार प्रतिलेखन करना. इस भांति शुद्ध हो तो भक्षण करना और न हो तो परठ देना, परन्तु जो खाये बिना निर्वाह न होता हो तो, शुद्ध हो तबतक प्रतिलेखन करके शुद्ध होने पर भक्षण करना । निकाली हुई इल्ली घट्टे आदिके पास फोतरेका बहुतसा ढेर हो, वहां लेजाकर यत्नसे रखना । पासमे घट्टा न हो तो ठीकरे आदिके ऊपर थोडा सत्तु बिखेर कर जहां अबाधा न हो ऐसे स्थानमें रखना । पक्वान्न इत्यादिके उद्देश्यसे इस प्रकार कहा है—

वासासु पनरादिवसं सीउण्हकालेसु मास दिणवीसं ।

ओगाहिमं जईणं, कप्पइ आरब्भ पढमादिणा ॥ १ ॥

घृतपक्वादि पक्वान्न साधु मुनिराजको वर्षाकालमें, किये हुए दिनसे लेकर पन्द्रह दिन तक, शीतकालमें एक मास तक और उष्णकालमें बीस दिन तक लेना ग्राह्य है । कोई २ आचार्य ऐसा कहते हैं कि यह गाथा मूल कौनसे ग्रंथमें है ? सो ज्ञात नहीं होता, इसलिये जबतक वर्ण, गंध, रसादिक न पलटे तब तक घृतपक्वादि वस्तु शुद्ध जानना चाहिये ।

जइ मुग्गमासपभिई, विदलं कच्चंभि गोरसे पडइ ।

ता तसजीवुप्पत्तिं, भणंति दहिणवि दुदिणुवरिं ॥ १ ॥

जंमि उ पीलिज्जंते, नेहो नहु होइ बिति तं विदलं ।

विदलेवि-हु उप्पन्नं, नेहजुअं होइ नो विदलं ॥ २ ॥”

जो मूंग, उडद आदि विदल कच्चे गौरसमें पड़े तो उसमें और दो दिन उपरान्त रहे हुए दहीमें भी त्रसजीवकी उत्पत्ति हो जाती है ऐसा पूर्वाचार्य कहते हैं। इस गाथामें “दुदिणुवरि” (दो दिनके उपरान्त) के बदले “तिदिणुवरि” (तीन दिवसके उपरान्त) ऐसा भी पाठ कहीं है, परन्तु वह ठीक नहीं ऐसा मालूम होता है, कारण कि “दध्यहर्द्वितयातीतम्” ऐसा हेमचन्द्राचार्य महाराजका वचन है। घानीमें पीलने पर जिसमेंसे तैल नहीं निकलता उसे “विदल” कहते हैं। विदलजातिमें उत्पन्न हुआ हो तो भी जिसमें तैल निकलता होवे उसे विदलमें नहीं गिनना। विदलकी पूषिका (आटेका पदार्थ विशेष) आदि, केवल पानीमें पकाया हुआ भात तथा ऐसीही अन्य वस्तुएं बामी होवे तो, वैसेही सड़ा हुआ अन्न, फूला हुआ भात और पक्वान्न अभक्ष्य होनेसे श्रावकने उपयोग न करना। बावीस अभक्ष्यका तथा बत्तीस अनन्तकायका प्रकट स्वरूप ‘स्वकृत-श्राद्धप्रतिक्रमणसूत्रवृत्ति’से जान लेना। विवेकी पुरुषने जैसे अभक्ष्यका उपयोग न करना, वैसेही बैंगन, कायमां, टेमरु, जामुन, विल्व फल, हरे पीलू, पके हुए करौंदे, गोँदे, पिचु,

महुआ, मकुर, वालहउली, बडे वेर, कच्चा कोठिबडा, खसखस तिल, सचित्त लवण इत्यादिक वस्तु बहुबीज तथा जीवाकुल होनेसे त्यागना। लालिमा आदि होनेसे जिसपर बराबर तेज नहीं ऐसे गिलोडे, करेले, फणस आदि वस्तु जिस देश, नगर इत्यादिमें कडवा तुम्बा, भूरा कुम्हडा आदि लोक विरुद्ध होवे तो वे भी श्रावकने त्यागना, कारण कि, वैसान करनेसे जैनधर्मकी निंदा आदि होनेकी संभावना होती है। बावीस अभक्ष्य तथा बत्तीस अनन्तकाय दूसरेके घर अचित्त किये हुए हों तो भी ग्रहण नहीं करना। कारण कि, उससे अपनी क्रूरता प्रकट होती है, तथा “अपनेको अचित्त अनन्तकाय आदि लेना है” ऐसा जान कर वे लोग विशेष अनन्तकायादिकका आरंभ करें, इत्यादि दोष होना संभव है। उकाला हुआ पकाया हुआ अद्रक, खरन, बैंगन इत्यादिक सर्व अचित्त हो तो भी त्यागना चाहिये। कदाचित् कुछ दोष होजावे वह टालनेके निमित्त मूलके पंचांग (मूल, पत्र, फूल, फल तथा काडी) त्यागना। सोंठ आदि तो नाम तथा स्वादमें भेद होजानेसे ग्रहण करते हैं।

उसिणोद्गमणुवत्ते, दंडे वासे अ पडिअमित्तमि ।

मुत्तूणादेसतिगं, चाउलउदगं बहु पसन्नं ॥ १ ॥”

गर्म जल तो तीन उकाली आवे तब तक मिश्र होता है। पिंडनिर्युक्तिमें कहा है कि, तीन उकाली न आई होवे तबतक गर्म पानी मिश्र होता है। उसके उपरान्त अचित्त होता है। वैसेही

वृष्टि पडते ही ग्राम, नगर इत्यादिकमें जहां मनुष्यका अधिक प्रचार होता है, उस स्थानमें पडा हुआ जल जब तक बहता नहीं तब तक मिश्र होता है। अरण्यमें तो जो प्रथम वृष्टिका जल पडता है, वह सब मिश्र और पीछेसे पडे वह सचित्त होता है।

तंडुलोदक (चावलका पानी) तो तीन आदेश छोडकर बहुत स्वच्छ न हो तो मिश्र और बहुत स्वच्छ होवे तो अचित्त है। तीन आदेश इस प्रकार है—

कोई कोई कहते हैं कि, तंडुलोदक- जिस पात्रमें चावल धोये हो, उस पात्रमें से दूसरे पात्रमें निकाल लेने पर धारासे टूट कर आसपास लगे हुए बिन्दु जब तक टिके रहें, तब तक मिश्र होता है। दूसरे यह कहते हैं कि, तंडुलोदक दूसरे पात्रमें निकालते वक्त आये हुए पर्पोटे जब तक रहें, तब तक मिश्र होता है। तीसरे यह कहते हैं कि, जब तक धोये हुए चावल पकाये न होवें, तब तक मिश्र होता है। ये तीनों आदेश बराबर नहीं है, इसलिये अनादेश समझना चाहिये। कारण कि पात्र रुक्ष (सूखा) होवे अथवा पवन या अग्निका स्पर्श होवे तो बिन्दु थोड़ी ही देर तक स्थित रहता है, और पात्र स्निग्ध (चिकना) हो तथा पवन या अग्निका स्पर्श न होय तो बहुत देर तक स्थित रहते हैं। तात्पर्य यह है कि, इन तीनों आदेशमें काल-नियमका अभाव है, अतएव अतिशय स्वच्छ होवे वही तंडुलोदक अचित्त मानना चाहिये।

नीत्रोदक धुएँसे कुछ धूम्रवर्ण तथा सूर्यकिरणके सम्बन्धसे कुछ २ गरम होता है, इससे अचित्त है, इसलिये लेनेमें (संयमकी) कुछ भी विराधना नहीं। कोई कोई कहते हैं कि, उसे अपने पात्रमें ग्रहण करना। यहां आचार्य कहते हैं कि, नीत्रोदक अशुचि हानस अपने पात्रमें लेनेकी मनाई है, इसलिये गृहस्थकी कुंडी आदि ही में लेना। वृष्टि हो रही हो उस समय वह मिश्र होता है। इसलिये वृष्टि बंद होनेके दो घड़ी पश्चात् लेना। शुद्धजल तीन उकाले आने पर अचित्त होता है, तो भी तीन प्रहर के अनन्तर वह पुनः सचित्त होजाता है, इसलिये उसमें राख डालना जिससे वह जल स्वच्छ भी रहता है। ऐसा पिंड-निर्युक्तिकी वृत्तिमें कहा है।

तंडुलोदक पहिला, दूसरा और तीसरा तत्कालका निकाला हुआ होवे तो मिश्र और निकालनेके पश्चात् बहुत समय तक रहा हो तो अचित्त होता है। चौथा, पांचवां इत्यादि तंडुलोदक बहुत समय रहने पर भी सचित्त होता है। प्रवचनसारोद्धार-दिक ग्रंथोंमें अचित्त जलादिकका कालमान इस प्रकार कहा है:-

“ उसिणोदयं तिदंडुकलिअं फासुअजलं जईकप्पं ।

नवरि गिलाणाइकए पहरतिगोवरिवि धरियव्वं ॥ १ ॥

जायइ सचित्तया से, गिन्हासु पहरपंचगस्सुवरिं ।

चउपहरवरिं सिसिरे, वात्तासु जलं तिपहरवरिं ॥ २ ॥”

गर्म पानी त्रिदंड (तीन उकाले आया हुआ) उकाला हुआ होवे तो अचित्त होनेसे साधुको ग्राह्य है, परंतु ग्लानादिक-के निमित्त तीन प्रहर उपरान्त भी रखना । अचित्त जल ग्रीष्म-ऋतुमें पांच प्रहर उपरांत, शीतऋतुमें चार प्रहर उपरांत और वर्षाऋतुमें तीन प्रहर उपरांत सचित्त होता है । ग्रीष्मऋतुमें काल अत्यन्त शुष्क होनेसे जलमें जीवकी उत्पत्ति होनेमें बहुत समय (पांच प्रहर) लगता है । शीतऋतुमें काल स्निग्ध होनेसे ग्रीष्मकी अपेक्षा थोड़ा समय (चार प्रहर) लगता है, और वर्षाऋतुमें काल अतिशय स्निग्ध होनेसे शीतऋतुकी अपेक्षा भी थोड़ा समय (तीन प्रहर) लगता है । जो उपरोक्त कालसे अधिक रखना होवे तो, उसमें राख डालना, जिससे पुनः सचित्त न हो । ऐसा १३६ वें द्वारमें कहा है । जो अष्का-यादिक (जलआदि) अग्नि आदिक बाह्य शस्त्रका सम्बन्ध हुए बिना स्वभाव ही से अचित्त होगया हो, उसे केवली, मनः-पर्यवज्ञानी, अवधिज्ञानी तथा श्रुतज्ञानी अचित्त है, ऐसा मानते हैं तो भी मर्यादा भंगके प्रसंगसे उसका सेवन नहीं करते । सुनते हैं कि कई तथा त्रस जीवसे रहित और स्वभावसे अचित्त हुए पानीसे भरा हुआ भारी द्रव पास होने पर भी भगवान् श्री-वर्द्धमान स्वामीने अनवस्था-दोष टालनेके निमित्त और श्रुत-ज्ञान प्रमाणभूत है ऐसा दिखानेके लिये तृषासे अत्यन्त पीडित तथा उसीसे प्राणांत संकटमें पड़े हुए अपने शिष्योंको

उसका पानी पीने की आज्ञा नहीं दी । वैसे ही क्षुधासे पीडित शिष्योंको अचित्त तिलसे भरी हुई गाड़ी तथा वैसे ही बड़ी नीति (दीर्घशंका) की संज्ञासे पीडित शिष्योंको अचित्त ऐसी संडासकी भूमि उपयोगमें लेने की भी आज्ञा नहीं दी । इसका खुलासा इस प्रकार है कि, श्रुतज्ञानी साधु बाह्यशस्त्रका सम्बन्ध हुए बिना जलादिक वस्तुको अचित्त नहीं मानते । इसलिये बाह्यसम्बन्ध होनेसे जिसके वर्ण, गंध, रस आदि बदल गये हों ऐसा ही जलादिक ग्रहण करना ।

हरडे,.....इत्यादि वस्तु अचेतन हो तो भी अविनिष्ट (नाश न पाई) योनिके रक्षण निमित्त तथा क्रूरता आदि टालनेके हेतु दांत आदिसे नहीं तोड़ना । श्रीओघनिर्युक्तिमें पंचहत्तरवीं गाथाकी वृत्तिमें कहा है किः--

शंका-- अचित्त वनस्पतिकायकी यतना रखनेका प्रयोजन क्या है ?

समाधान-- वनस्पतिकाय अचित्त हो, तो भी गिलोय कंकडुक मूंग, इत्यादि कितनी ही वनस्पतिकी योनि नष्ट नहीं होती । जैसे गिलोय सूखी हो तो भी जल छींटनेसे अपने स्वरूपको पाती दिखाई देती है । ऐसे कंकडुक मूंग भी जानो । इसलिये योनिका रक्षण करनेके हेतु अचित्त वनस्पतिकायकी भी यतना रखनी यह न्यायकी बात है ।

इस भांति सचित्त अचित्त वस्तुका स्वरूप जान कर सचि-
त्तादिक सर्व भोग्य वस्तु नाम ले निश्चय कर, तथा अन्य भी
सर्व बात ध्यानमें रख सातवां व्रत जैसे आनन्द कामदेव आदि-
ने अंगीकार किया वैसे ही श्रावकने अंगीकार करना चाहिये ।
इस प्रकार सातवां व्रत लेनेकी शक्ति न होय तो साधारणतः
एक, दो इत्यादि सचित्त वस्तु, दस बारह आदि द्रव्य, एक
दो इत्यादि विगय आदिका नियम सदैव करना, परन्तु प्रति-
दिन नाम न लेते साधारणतः अभिग्रहमें एक सचित्त वस्तु रखे
और नित्य पृथक् पृथक् एक सचित्त वस्तु ले तो फेरफार से
एक एक वस्तु लेते सर्व सचित्त वस्तुका भी ग्रहण हो जाता है,
ऐसा करनेसे विशेष विरति नहीं होती, इसलिये नाम देकर
सचित्तवस्तुका नियम किया हो तो नियममें रखी हुई से अन्य
सर्व सचित्तवस्तुसे यावज्जीव विरति होती है, यह अधिक
फल स्पष्ट दीखता है । कहा है कि—

“ पुष्पफलाणं च रसं, सुराई मंसाण महिलिआणं च ।

जाणंता जे विरया, ते दुष्करकारण वंदे ॥ १ ॥ ”

पुष्प, फल, मद्यादिक, मांस और स्त्रीका, रस जानते हुए
भी जो उससे विरति पाये, उन दुष्करकारक भव्यजीवोंको
वन्दना करता हूँ ।

सब सचित्त वस्तुओंमें नागरबेलके पान छोड़ना बहुत
कठिन है, कारण कि, बाकी सर्व सचित्त वस्तु उसमें भी विशेष

करके आम आदिक अचित्त होजाय तो भी उसमें प्रायः मीठास स्वाद आदि रहता है, परन्तु नागरबेलके पानमें तो बिल्कुल नहीं रहता इससे वे सचित्त ही प्रायः खाते हैं। सचित्त नागरबेलके पानमें जलकी आर्द्रताआदि नित्य रहनेसे नीली (लीलफूल) तथा कुंथुआ आदि जीवोंकी उत्पत्ति होनेसे बहुत विराधना होती है, इसीलिये पापभीरू पुरुष रात्रिके समय तो उस (पान) का उपयोग करते, ही नहीं और जो व्यवहारमें लाते हैं, वे भी रात्रिमें खानेके पान दिनमें भली भांति देखकर रखे हुए ही वापरते हैं। ब्रह्मचारी (चतुर्थव्रत-धारी) श्रावकने तो कामोत्तेजक होनेसे नागरबेलके पान अवश्य छोड़ना चाहिये। ये (नागरबेलके पान) प्रत्येक वनस्पति हैं अवश्य, पर प्रत्येक पान, फूल, फल इत्यादिक हरएक वनस्पतिमें उसकी निश्रासे रहे हुए असंख्यजीवकी विराधना होने का संभव है। कहा है कि—

“ जं भणिअं पज्जत्तगनिस्साए वुक्कपंतऽपज्जत्ता ।

जत्थेगो पज्जत्तो, तत्थ असंखा अपज्जत्ता ॥ १ ॥”

पर्याप्तजीवकी निश्रासे अपर्याप्त जीवोंकी उत्पत्ति होती है। जहां एक पर्याप्त जीव, वहां असंख्य अपर्याप्त जीव जानो। वादर एकेन्द्रियोंके विषयमें यह कहा। सूक्ष्ममें तो जहां एक अपर्याप्त, वहां उसकी निश्रासे असंख्यों पर्याप्त होते हैं। यह बात आचारांगसूत्रवृत्ति आदि ग्रंथोंमें कही है। इस भांति एक

भी पत्र, फल इत्यादिकमें असंख्याता जीवकी विराधना होती है। जल लवण इत्यादि वस्तु असंख्यात जीवरूप हैं। पूर्वाचार्योंका ऐसा वचन है कि, तीर्थकरोंने एक जलबिन्दुमें जो जीव कहे हैं, वे जीव सरसोंके बराबर होजायें तो जंबूद्वीपमें न समावें। हरे आमलेके समान पृथ्वीकायपिंडमें जो जीव होते हैं वे कबूतरके बराबर होजायें तो जंबूद्वीपमें न समावें। सर्व सचित्तका त्याग करनेके ऊपर अंबडपरिव्राजकके सातसौ शिष्योंका दृष्टान्त है।

श्रावक धर्म अंगीकार कर अचित्त तथा किसीके न दिये हुए अन्न जलका भोग नहीं करने वाले वे (अंबडके शिष्य) एक समय एक बनमेंसे दूसरे बनमें फिरते ग्रीष्मऋतुमें अत्यन्त तृषातुर हो गंगानदीके किनारे आये। वहां “गंगानदीका जल सचित्त तथा अदत्त (किसीका न दिया हुआ) होनेसे, चाहे जो हो हम नहीं ग्रहण करेंगे” ऐसे दृढनिश्चयसे अनशन कर वे सबही पांचवें ब्रह्मदेवलोकमें इन्द्र समान देवता हुए। इस प्रकार सचित्त वस्तुके त्यागमें यत्न रखना चाहिये।

सचित्तादि १४ का नियम.

जिसने पूर्वमें चौदह नियम लिये हों, उन्होंने उन नियमोंमें प्रतिदिन संक्षेप करना, और अन्य भी नये नियम यथाशक्ति ग्रहण करना। चौदह नियम इस प्रकार हैं:— १ सचित्त २ द्रव्य, ३ विगय, ४ उपानह (जूते), ५ तांबूल (खाने का

पान आदि) ६ वस्त्र, ७ फूल (सुश्रवो) ८ वाहन ९ शयन (खाट आदि) १० विलेपन, ११ ब्रह्मचर्य, १२ दिशापरिमाण, १३ स्नान (नहाना), १४ भक्त (खाना) ।

१ सुश्रावकने मुख्यमार्गसे तो सचित्तका सर्वथा त्याग करना चाहिये, वैसा करनेकी शक्ति न हो तो नाम लेकर अथवा साधारणतः एक, दो इत्यादि सचित्त वस्तुका नियम करना । कहा है कि—

सचित्त--द्वय--विगई--वाणह--तंबोल--वत्थ--कुसुमेसु ।

वाहण--सयण--विलेवण--बंभ--दिसि ण्हाण--भत्तेसु ॥ १ ॥”

निरवज्जाहारेणं, निज्जीवेणं परित्तमीसेणं ।

अत्ताणुसंधणपरा सुमावगा एरिसा हुंति ॥ २ ॥

सचित्तनिमित्तेणं मच्छा गच्छंति सत्तमिं पुढविं ।

सच्चित्तो आहारो, न खमो मणसावि पत्थेउं ॥ ३ ॥”

श्रावक पेस्तर विरवद्याहार लेनेवाले हों, ऐसा न हो तो अचित्ताहार लेवे, ऐसा भी न हो तो प्रत्येक वनस्पतिका मिश्राहार लेवे और आत्माका श्रेयः करना यही साध्य रखे, वे उत्कृष्ट श्रावक गिने जाते हैं. सचित्त आहारके कारण मत्स्य सप्तमनरक चले जाते हैं इससे मनमें भी सचित्त आहारकी इच्छा करनी नहीं चाहिए । २ सचित्त और विगय छोड़कर जो कोई शेष वस्तु मुखमें डाली जाती है, वह सर्व द्रव्य है । खिचड़ी, रोटी, लड्डू, लापशी, पापड.

चूरमा, दही भात, खीर इत्यादिक वस्तु बहुतसे धान्यादिकसे बनी हुई होती हैं, तो भी रसादिकका अन्य परिणाम होनेसे एक ही मानी जाती हैं। पोली (फलका), जाड़ी रोटी, मांडी, बाटी, घूघरी, टोकला, थूली, खाकरा, कणक आदि वस्तु एक धान्यकी बनी हुई होती हैं तो भी प्रत्येकका पृथक् नाम पड़नेसे तथा स्वादमें भी अंतर होनेसे पृथक् २ द्रव्य माने जाते हैं। फला, फलिका इत्यादिकमें नाम एक ही है, तो भी स्वाद भिन्न है, उससे तथा रसादिकका परिणाम भी अन्य होनेसे वे बहुतसे द्रव्य माने जाते हैं। अथवा अपने अभिप्राय तथा संप्रदायके ऊपरसे किसी अन्य रीतिसे भी द्रव्य जानना। धातुकी शलाका (सलाई) तथा हाथकी अंगुली आदि द्रव्य-में नहीं गिने जाते। ३ भक्षण करनेके योग्य विगय छ हैं, यथा:— १ दूध, २ दही, ३ घी, ४ तैल ५ गुड तथा ६ घी अथवा तैलमें तली हुई वस्तु. ये छः विगय हैं। ४ उपानह याने जूते अथवा मौजे, खड़ाऊं (पावाडियां) आदि तो जीवकी अतिशय विराधनाकी हेतु होनेसे श्रावकको तो पहरना योग्य नहीं। ५ ताम्बूल अर्थात् नागरबेलका पान, सुपारी, कत्था, चूना आदिसे बनी हुई स्वादिम वस्तु जानना। ६ वस्त्र अर्थात् पंचागादि वेष जानना। धोती, पोती तथा रात्रिको पहिरनेके लिये रखा हुआ वस्त्र आदि वेषमें नहीं गिने जाते हैं। ७ फूल याने सिर पर तथा गलेमें पहिरनेके और गूथकर शय्या पर

अथवा तक्षिथे पर बिछानेके लायक लेना । फूलका नियम किया होवे तो भी भगवानकी पूजा बगैरह में पुष्प कल्प सक्ते हैं । ८ ब्राह्मन याने रथ, घोड़ा, बैल, पालकी आदि समझना । ९ शयन याने खाट आदि । १० विलेपन याने चौपडनेके लिये तैयार किया हुआ चूआ, चंदन, जवासादि, कस्तूरी इत्यादिक वस्तु लेना । विलेपनका नियम लिया हो तो भी भगवानकी पूजा आदि कार्यमें तिलक, हस्तकंकण, धूप आदि करना ग्राह्य है । ११ ब्रह्मचर्य (चतुर्थव्रत) याने दिनमें सर्वथा तथा रात्रिमें अपनी स्त्री आदि अपेक्षासे जानों । १२ दिशापरिमाण याने चारों तरफ अथवा अमुक दिशाको इतने गांव तक अथवा इतने योजन तक जाना ऐसी मर्यादा करना । १३ स्नान याने तेल लगाकर अथवा बिना तैल नहाना । १४ भक्त याने पकाया हुआ अन्न तथा सुखडी आदि लेना । इस भक्तके नियममें सब मिलकर तीन चार सेर अथवा इससे अधिक अन्न यथासंभव रखना । खरबूजा आदि लेने से तो बहुत सेर हो जाता है । इन चौदह वस्तुका नियम करना । जिसमें दो, तीन अथवा इससे अधिक सचित्तवस्तुका नाम लेकर अथवा सामान्यतः नियम करनेको जैसे ऊपर कहा है, वैसे द्रव्यादिक चौदा वस्तुका नियम वस्तुका नाम देकर अथवा साधारणतः यथाशक्ति धुक्तिपूर्वक करना । उपरोक्त चौदह नियम यह एक नियमकी दिशा बताई है । इसीके अनुसार अन्य भी शाक, फल, धान्य

आदि वस्तुके प्रमाणका तथा आरम्भका निश्चय आदि कर यथा-
शक्ति नियम ग्रहण करना चाहिये ।

पचचखान लेनेकी विधि.

इस प्रकारसे नियम लेनेके अनन्तर यथाशक्ति पचचखान करना । उसमें नवकारसी, पोरसी आदि कालपचचखान, जो सूर्योदयके पहिले किया होय, तो शुद्ध होता है, अन्यथा नहीं । शेष पचचखान तो सूर्योदयके अनन्तर भी किये जाते हैं । नवकारसी पचचखान जो सूर्योदयके पहिले किया होवे तो उसके पूर्ण होने पर भी अपनी २ कालमर्यादामें पोरसी आदि सब कालपचचखान किये जा सकते हैं । नवकारसी पचचखान पहिले नहीं किया होवे, तो सूर्योदय होनेके बाद दूसरे कालपचचखान शुद्ध नहीं होते । जो सूर्योदयके पूर्व नवकारसी पचचखान बिना पोरसी आदि पचचखान किया होवे तो, वह पूरा होनेके अनन्तर दूसरा कालपचचखान शुद्ध नहीं होता, परन्तु सूर्योदयके पूर्व किये हुए पचचखानके पूर्ण होनेके पहिले दूसरा कालपचचखान ले तो शुद्ध होता है । ऐसा बृद्ध पुरुषोंका व्यवहार है । नवकारसी पचचखानका दो घडी वक्त है, इतना समय उसके थोड़े आगार ऊपरसे ही प्रकट ज्ञात होता है । नवकारसी पचचखान करनेके अनन्तर दो घडी उपरान्त भी नवकारका पाठ किये बिना भोजन करे तो पचचखानका भंग होजाता है, कारण कि, पचचखान दंडकमें “नमुकारसहिअं” ऐसा कहा है ।

गंठसी पचखानका लाभ.

जिसे प्रमाद छोड़नेकी इच्छा हो उसने क्षणमात्र भी पचखान बिना रहना उचित नहीं । नवकारसी आदि कालपचखान पूरा होने के समय, 'गंठिसहिअं' आदि करना । जिसको बारम्बार औषधि लेना पड़ती हो, ऐसे बालक, रोगी इत्यादिक-से भी ग्रंथिसहित पचखान सरलतासे होवे ऐसा है । इससे हमेशा प्रमादरहितपना रहता है, अतएव इसका विशेष फल है । एक सालवी मद्य, मांस आदि व्यसनोंमें बहुत आसक्त था, वह केवल एकही बार ग्रंथिसहित पचखान करनेसे कपटी यक्ष हुआ । कहा है कि—

“ जे निच्चमप्पमत्ता, गंठि बंधति गंठिसहिअस्स ।

सग्गापवग्गमुक्खं, तेहि निबद्धं संगंठिभि ॥ १ ॥

जो पुरुष प्रमाद रहित होकर ग्रंथिसहित पचखानकी ग्रंथि (गांठ) बांधते हैं, उन्होंने मानो स्वर्गका और मोक्षका सुख अपनी गांठमें बांधलिया है । जो धन्य पुरुष न भूलते नवकारकी गणना करके ग्रंथिसहित पचखानकी ग्रंथि छोड़ते हैं वे अपने कर्मोंकी गांठ छोड़ते हैं । जो मुक्ति पानेकी इच्छा हो तो इस प्रकार पचखान कर प्रमाद छोड़नेका अभ्यास करना चाहिये । सिद्धान्तज्ञानी पुरुष इसका पुण्य उपवासके समान कहते हैं । जो पुरुष रात्रिमें चौविहार पचखान और दिनमें ग्रंथिसहित पचखान ले एकस्थान पर बैठ एकबार

भोजन तथा तांबूल आदि भक्षण करना, और पञ्चत् विधि-पूर्वक मुख शुद्धि करना, इस भांति एकाशन कर, उसे एक-मासमें उन्तीस चौविहार उपवास करनेका फल प्राप्त होता है।

“ भुञ्जइ अणंतरेण, दुञ्जि उ वेशउ जो नियोगेण ।

सो पावइ उववासा, अट्ठावीस तु मासेण ॥ १ ॥

वैसे ही उपरोक्त विधिके अनुसार रात्रिमें चौविहार पञ्चखान और दिनमें वियासना करे तो उसे एक मासमें अट्ठावीस चौविहार उपवास करनेका फल प्राप्त होता है। ऐसा बृद्ध लोग कहते हैं। भोजन, तांबूल, पानी आदि वापरते नित्य दो दो घड़ी लगना संभव है, इस प्रकार गिनते एकाशन करनेवालेकी साठ घड़ी और वियासणा करने वालेकी एक सौ बीस घड़ी एक महीनेके अन्दर खाने-पीनेमें जाती है। वह निकाल कर शेष क्रमशः उन्तीस, अट्ठावीस दिन चौविहार उपवासमें गिनी जाना स्पष्ट है। पञ्चचरित्रमें कहा है कि जो मनुष्य लगातार वियासणेका पञ्चखान लेकर प्रतिदिन दो बार भोजन करे, वह एक मासमें अट्ठावीस उपवासका फल पाता है। जो मनुष्य दो घड़ी तक प्रतिदिन चौविहार पञ्चखान करे वह एक मासमें एक उपवासका फल पाता है, और उस (फल)-को देवलोकमें भोगता है। किसी अन्य देवताकी भक्ति करने वाला जीव तपस्यासे जो देवलोकमें दशहजार वर्षकी स्थिति पावे, तो जिनधर्मी जीव जिनमहाराजकी कही हुई उतनी ही

तपस्यासे करोड पल्योपमकी स्थिति पाता है। इस भांति यथा-शक्ति दो २ घड़ी चौविहार बढावे, और उसी अनुसार नित्य करे तो उसे एकमासमें पच्चखानके काल-मानकी वृद्धिके प्रमाणसे उपवास, छट्ट, अट्टम इत्यादिक शास्त्रोक्त फल होता है। इस युक्तिसे ग्रंथिसहित पच्चखानका उपरोक्त फल विचार लेना चाहिये। ग्रहण किये हुए सर्व पच्चखानका बारम्बार स्मरण करना। पच्चखानकी अपनी अपनी काल मर्यादा पूरी होते ही मेरा अमुक पच्चखान पूर्ण हुआ, ऐसा विचार करना। भोजनके समय भी पच्चखानका स्मरण करना। ऐसा न करनेसे कदाचित् पच्चखानआदिका भंग होना संभव है।

अशनादि चारका विभाग.

अशन, पान, खादिम, स्वादिम, इत्यादिका विभाग इस प्रकार है। अन्न खाजा, मक्खन बडा आदि पक्वान्न, मांड़ी, सत्तू आदि सर्व जो कुछ क्षुधाका शीघ्र उपशमन करते हैं, उन्हें अशन कहते हैं. (१). छाँछ, पानी, मद्य, कांजी आदि सर्व पान हैं (२). सब जातिके फल, सांटा, पोहे, सुखडी (पंचमेल मिठाई) आदि खाद्य हैं. (३). तथा सोंठ, हरडे, पीपल, मिर्च, जीरा, अजवान, जायफल, जावित्री, कसेरू, कत्था, खदिर-बटिका, मुल्हेटी, तज, तमालफत्र, इलायची, लौंग, बायबिडंग, बिडनमक, अजमोद, कुलिंजन, पीपलामूल, कवाचचीनी, कचूर, मोथा, कपूर, संचल, हरड, बहेडा, धमासा, खेर, खेजडा-

आदिकी छाल, नागरबेलके पान, सुपारी, हिंम्वष्टक, हिंमु-
तेवीसा, पंचकोल, पुष्करमूल, जवासा, बावची, तुलसी, कपूरी-
कंद इत्यादिक स्वादिम हैं (४) भाष्य और प्रवचनसारोद्धार
इन दो ग्रंथोंके अभिप्रायसे जीरा स्वाद्य है, और कल्पवृत्तिके
अभिप्रायसे खाद्य है। अजमान भी खाद्य है, ऐसा बहुतसे
कहते हैं। सर्व खाद्य वस्तु और इलायची कपूर इत्यादिकका
जल दुविहार पंचखाणमें ग्राह्य है। बेसन, सौंफ, सुवा, कोठ-
वडी, आमला, आंचागोली, कोठपत्र, नीम्बूपत्र, इत्यादि
खाद्य होनेसे दुविहार पंचखाणमें अग्राह्य है। तिबिहारमें
तो केवल जल ग्राह्य है। फूंकजल तथा सीकरी, कपूर, इलायचा
कत्था, खादिर चूर्ण, कसेरू, पाटल, इत्यादिकका जल निथरा
हुआ अथवा छाना हुआ होवे तभी ग्राह्य है, अन्यथा नहीं।

शास्त्रमें शहद, गुड, शक्कर, मिश्री, आदि खाद्यमें और
द्राक्ष, मिश्री इत्यादिकका जल तथा छांछ आदि पानमें कहा
है। परन्तु ये दुविहार आदिमें ग्राह्य नहीं हैं। नागपुरीयगच्छके
पंचखाणभाष्यमें कहा है कि, जो भी शास्त्रमें द्राक्षपानका-
दिक पानमें और गुडआदि स्वादिममें कहा है, तो भी वे
तृप्तिकारक होनेसे तिबिहारादिकमें अनाचरित हैं, इसीलिये
पूर्वाचार्योंने नहीं लिया। स्त्रीसंभोग करनेसे चौविहारका भंग
नहीं होता, परन्तु बालादिकके ओष्ठ, गाल इत्यादिका चुम्बन
करनेसे भंग होजाता है। दुविहारमें तो स्त्रीसंभोग तथा बाला-

दिकका चुम्बन भी ग्राह्य है. चौविहारादि पञ्चखान तो कवल-
आहार ही का है. लोमादिक आहारका नहीं. ऐसा न हो तो
शरीरमें तैल लगानेसे तथा फोडे, फुंसी ऊपर पुलिटस बांधनेसे
भी अनुक्रमसे आंचिल तथा उपवासका भंग होनेका प्रसंग आवे,
ऐसा माननेका व्यवहार भी नहीं है । कदाचित् कोई ऐसा माने
तो, लोमाहार निरन्तर चलनेका संभव होनेसे पञ्चखानके
अभावका प्रसंग आजाता है ।

अनाहार वस्तु.

अनाहार वस्तुएं व्यवहारमें ली गई हैं, वे इस प्रकार:-
नीम पंचांग (जड़, छाल, पत्र, फूल, फल), मूत्र, गिलोय,
कुटकी, चिरायता, अतिविष, कूडा, चित्रक, चंदन, रक्षा (राख)
हलदी, रेहिणी, उपलेट, वच, त्रिफला, अबूलकी छाल, धमासा,
नाय, असगंध, रिंगणी, एलुवा, गुग्गुल, हरेडदल, वउणी, बोर,
छालमूल, कथेरीमूल, केरडामूल, पंवाड, बोडथेरी, चीड, आठी,
मजीठ, बोल, बीउ, धीकुंवार, कुंदरू, इत्यादिक अनिष्ट स्वाद-
की वस्तु रोगादि संकट होवे तो चौविहारमें भी ग्राह्य है ।

एकांगिक आहारादि.

श्रीकल्पमें तथा उसकी वृत्तिमें चौथे खंडमें शिष्य पूछता
है कि, आहार और अनाहार वस्तुका लक्षण क्या है ? आचार्य
कहते हैं-- ओदन (मात) आदि शुद्ध अकेला ही क्षुधाका शमन
करे, उसे आहार कहते हैं । वह अशन, पान, खादिम तथा

स्वादिम इन भेदोंमें चार प्रकारका है। तथा इस आहारमें दूसरी जो वस्तुएं पड़ती हैं, वे भी आहार ही कहलाती हैं। अब एकांगिक चतुर्विध आहारकी व्याख्या करते हैं। ओदन (भात) एकांगिक अर्थात् शुद्ध अकेला ही क्षुधाका नाश करता है, इसलिये यह अशन आहाररूप प्रथम भेद जानों (१). छांछ, जल, मद्यादिक वस्तु भी एकांगिक अर्थात् शुद्ध अकेली क्षुधाका नाश करती है, अतएव यह पानआहाररूप दूसरा भेद है (२). फल, मांस इत्यादिक वस्तु एकांगिक अर्थात् शुद्ध अकेली ही क्षुधाका नाश करती है, इसलिये यह स्वादिम आहाररूप तीसरा भेद है (३). शहद, फाणित (अग्नि पर पका कर गाढ़ा किया हुआ सांठका रस, राव) इत्यादि वस्तु एकांगिक अर्थात् शुद्ध अकेली ही क्षुधाका नाश कर सकती है, इसलिये यह स्वादिम आहाररूप चौथा भेद जानो (४). आहारमें जो दूसरी वस्तु पड़ती है, वह भी आहार कहलाता है, ऐसा जो कहा, उसकी व्याख्या इस प्रकार है:— जो लवणादिक एकांगिक वस्तु क्षुधाकी शान्ति करनेको समर्थ न हो, परन्तु चतुर्विध आहारमें काम आती हो, वह वस्तु चाहे आहारमें मिश्रित हो अथवा पृथक् हो, तो भी आहार ही में गिनी जाती है। ओदन (भात) आदि अशनमें लवण, हींग, जीरा इत्यादिक वस्तु आती है, पानी आदि पानमें कपूर आदि वस्तु आती है, आम आदिके फलरूप स्वादिममें नीमक

आदि वस्तु आती है तथा मूंगफली तथा सौंठ आदि खादिममें गुड इत्यादि वस्तु आती है। ये अंदर आने वाली कपूरादि वस्तुएं स्वयं क्षुधाका शमन नहीं कर सकतीं, तथापि क्षुधाका शमन करनेवाले आहारको मदद करती हैं, इसलिये इनको भी आहार ही में गिना है। इस चतुर्विध आहारको छोड़कर शेष सब वस्तुएं अनाहार कहलाती हैं। अथवा क्षुधापीडित जीव जो कुछ पेटमें डालता है, वह सर्व आहार है। औषधिआदि-का विकल्प है, याने औषधिमें कुछ तो आहार है और कुछ अनाहार है। उसमें मिश्री और गुड आदि औषधि आहारमें गिनी जाती हैं और सर्पके काटे हुए मनुष्यको माटी आदि औषधी दी जाती है वे अनाहार हैं। अथवा जो वस्तु क्षुधासे पीडित मनुष्यको खानेमें स्वादु जान पड़े वे सर्व आहार हैं। और “मैं यह वस्तु भक्षण करूं” ऐसी किसीको खानेकी इच्छा न हो, तथा जो जिन्हाको भी स्वादमें बुरी लगे, वे सर्व वस्तुएं अनाहार हैं। यथा:— कायिकी, निम्ब आदिकी छाल, पंचमूलादिक, आमला हरडा बहेडा इत्यादिक फल ये सब अनाहार हैं। निशीथचूर्णिमें तो ऐसा कहा है कि:—नीम आदि वृक्षोंकी छाल, उनके निम्बोली आदि फल, उन्हींका मूल इत्यादि सर्व अनाहार हैं।

पञ्चकखानके स्थान.

अब पञ्चकखानके उच्चारणमें पांच स्थान हैं, उनका वर्णन करते हैं। प्रथम स्थानमें नवकारसी, पोरसी आदि तेरह

कालपञ्चक्खानका उच्चारण किया जाता है। कालपञ्चक्खान यह प्रायः सर्व चौविहार (चतुर्विध आहार त्यागरूप) होता है। दूसरे स्थानमें विगय, नीवी और आंवल इनका पाठ आता है। विगयका पञ्चक्खान विगयका नियम रखनेवाले और न रखनेवाले इन सबको भी होता है, कारण कि श्रावकमात्रको प्रायः चार अभक्ष्य विगयका त्याग होता ही है। तीसरे स्थानमें एकाशन, वियासना और एकलठानेका पाठ आता है, इसमें दुविहार, तिविहार तथा चौविहार आते हैं। चौथे स्थानमें “पाणस्स लेवेण” इत्यादि अचित्त पानीके छः आगारका पाठ आता है। पांचवें स्थानमें पूर्व ग्रहण किये हुए सचित्त द्रव्य इत्यादि चौदह नियममें संक्षेप करनेरूप देशावकाशिक व्रतोंका प्रातः सायं पाठ आता है।

पञ्चक्खानमें तिविहार चौविहारका नियम.

उपवास, आंवल और नीवी ये तीनों पञ्चक्खान प्रायः तिविहार अथवा चौविहार होते हैं; परन्तु अपवादसे तो नीवी पोरिसी इत्यादिक पञ्चक्खान दुविहार भी होते हैं, कहा है कि:-

“साहूणं रयणीए, नवकारसहिअं चउव्विहाहारं।

भवचरिमं उववासो, अंवल तिह चउव्विहाहारं ॥ १ ॥

सेसा पञ्चक्खाणा, दुहतिहचउहावि हुंति आहारे।

इअ पञ्चक्खाणेसु, आहारविगप्पणा नेआ ॥ २ ॥”

साधुओंको रात्रिमें और नमस्कार सहित चौविहार ही होता

है, और भवचरिम उपवास तथा आंचिल ये तीनों पच्चक्खान तिविहार तथा चौविहार होते हैं। शेष पच्चक्खान दुविहार, तिविहार तथा चौविहार भी होते हैं। इस प्रकार पच्चक्खानमें आहारके भेद जानों।

नीची. आंचिल इत्यादिकमें कौनसी वस्तु ग्राह्य है, अथवा कौनसी अग्राह्य है ? इस बातका निर्णय अपनी अपनी सामा-चारीके ऊपरसे जानना। अनाभोग, सहसात्कार इत्यादिक आगारका पच्चक्खानभाष्यादिकमें कहा हुआ प्रकट स्वरूप सिद्धांतके अनुसार भली भांति मनमें रखना, ऐसा न करे तो पच्चक्खान शुद्ध होनेका संभव नहीं।

पवित्र होने की विधि.

मूलगाथाके उतरार्द्धमें आये हुए “ पडिकमिअ ” इस पदकी इस प्रकार विस्तृत व्याख्या हुई। अब “ सुई पूइअ ” इत्यादि पदकी व्याख्या करते हैं। मल मूत्रका त्याग, दांतन करना, जीभ घिसना, कुल्ला करना, सर्वस्नान अथवा देश स्नान इत्यादिक करके पवित्र हुआ। यहां पवित्र होना यह लोक-प्रसिद्ध बातका अनुवाद मात्र है। कारण कि मलमूत्र त्याग आदि प्रकार लोकप्रसिद्ध होनेसे शास्त्र उसे करनेका उपदेश नहीं करता। जो वस्तु लोकसंज्ञासे नहीं प्राप्त होती, उसी वस्तुका उपदेश करना यह अपना कर्तव्य है ऐसा शास्त्र सम-झता है। मलमलीन शरीर होवे तो नहाना, भूख लगे तो

खाना, ऐसी बातोंमें शास्त्रोपदेशकी बिलकुल आवश्यकता नहीं। लोकसंज्ञासे अप्राप्त ऐसे इहलोक परलोक हितकारी धर्ममार्गका उपदेश करने ही से शास्त्रकी सफलता होती है। शास्त्रोपदेश करनेवालेने सावद्य आरंभकी वचनसे अनुमोदन करना यह भी अयोग्य है। कहा है कि—

सावज्जनवज्जाणं, वयणाणं जो न जाणइ विसेसं।

वोत्तुं पि तस्स न खमं, किमंग पुण देसणं काउं ? ॥ १ ॥ ”

जो सावद्य और अनवद्य वचन के भेद विशेषतः जानता नहीं, वह मुंहमेंसे एक वचन भी बोलनेके योग्य नहीं है, फिर भला उपदेश करनेकी तो बात ही कौनसी !

मलमूत्रादिक त्याग की विधि.

मल मूत्रका त्याग तो मौनकर तथा योग्य स्थान देखना आदि की विधि ही से करना उचित है। कहा है कि—

मूत्रोत्सर्गं मलोत्सर्गं, मैथुनं स्नानभोजने।

संध्यादिकर्म पूजां च, कुर्याज्जापं च मौनवान् ॥ १ ॥ ”

मल मूत्रका त्याग, स्त्रीसंभोग, स्नान, भोजन, संध्यादि कर्म, देवपूजा और जप इतने कार्य मौन रखकर ही करना चाहिये। विवेकविलासमें भी कहा है कि— ग्रातःकाल, सायंकाल तथा दिनमें भी उत्तरदिशाको और रात्रिमें दक्षिणदिशाको मुख कर मौन रख तथा वस्त्र ओढ़ कर मल मूत्रका त्याग करना। संपूर्ण नक्षत्रोंके निस्तेज होने पर सूर्यविम्बका आधा उदय होवे तब

तक प्रभातसंध्याका समय कहलाता है । सूर्यबिम्बके आधे अस्तसे लेकर दो तीन नक्षत्र आकाशमें न दीखें, तब तक सायं-संध्याका समय है । मल मूत्रका त्याग करना होवे तो जहां राख, गोबर, गायोंका रहेठाण, राफडा, विष्ठा आदि हो, वह स्थान तथा उत्तम वृक्ष, अग्नि, मार्ग, तालाब इत्यादिक, स्मशान, नदीतट तथा स्त्रियों तथा अपने बडीलोंकी जहां दृष्टि पडती होवे, ऐसे स्थान छोडना । ये नियम उतावल न हो तो पालना, उतावल होने पर सर्व नियम पालना ही चाहिये ऐसा नहीं ।

श्रीओषनिर्युक्तिआदिग्रंथोंमें भी साधुओंके उद्देश्यसे कहा है कि— जहां किसी मनुष्यका आवागमन नहीं, तथा जिस स्थान पर किसीकी दृष्टि भी नहीं पडती, जहां किसीको अप्रीति उपजनेसे शासनके उड्डाहका कारण और ताडनादिक होनेका संभव नहीं, समभूमि होनेसे गिरनेकी शंका नहीं, जो तृण आदिसे ढका हुआ नहीं, जहां बिच्छू, कीडी आदिका उपद्रव नहीं, जहांकी भूमि अग्निआदिके तापसे थोडे समयकी अचित्त की हुई है, जिसके नीचे कमसे कम चार अंगुल भूमि अचित्त है, जो वाडी, बंगला आदिके समीपभागमें नहीं है, कमसे कम एक ही हाथ विस्तार वाला, चूहे कीडी आदिके बिल, ब्रस-जीव तथा जहां बीज (सचित्त धान्यके दाने आदि) नहीं ऐसे स्थानमें मल मूत्रका त्याग करना । ऊपर तृण आदिसे ढंका

हुआ स्थान न हो, ऐसा कहनेका कारण यह है कि, ढंका हुआ स्थान होवे तो वहां विच्छु आदिका काटना संभव है, तथा मल आदिसे चींटी आदि चली जावें, इसीलिये तृणादिकसे ढंका हुआ नहीं चाहिये । वैसे ही जहां की भूमि थोड़े समयकी अचित्त की हुई हो, ऐसा कहनेका कारण यह है कि, अग्नि-का तापआदि करके अचित्त की हुई भूमि, दो मास तक अचित्त रहती है, पश्चात् मिश्र हो जाती है । जिस भूमि पर चौमासेमें गांव बसा हो वह भूमि बारह वर्ष तक शुद्धस्थंडिल-रूप होती है । और भी कहा है कि— दिशा विचार कर बैठना, पवन, ग्राम तथा सूर्य इनकी तरफ पीठ करके नहीं बैठना, छायामें तीन बार पूंज कर, “अणुजाणह जस्सुग्गहो” कह, अपने शरीरकी शुद्धि हो वैसे मल मूत्रका त्याग करना । उत्तर व पूर्वदिशाकी ओर मुख करना ठीक है । रात्रिमें दक्षिणदिशामें पीठकरके करे तो राक्षस, पिशाचादिक आ पडते पीडाकरते हैं, पवनके सन्मुख मुख करे तो नाकमें अर्शआदिको पीडा हो, सूर्य और ग्रामके सन्मुख पीठ करे तो निंदा हो । जो संज्ञा जीव उत्पत्ति वाली होवे तो वहांसे अलग जाकर किसी वृक्षादिकी छायामें त्याग करना, छाया न हो तो धूप ही में अपनी छायामें त्याग करना । त्याग करके एक मुहूर्त (दो घड़ी) तक वहां बैठना ।

अणावायमसंलोप, परस्सणुवचाइए ।

समे अणुभिरे वावि, अचिरकालकयमि अ ॥ १ ॥

विच्छिन्ने दूरमोगाढे, नासन्ने विलवड्डिए।

तसपाणवीअरहिए, उच्चाराईणि वोसिरे ॥ २ ॥ ”

मुत्तानिगेहे चक्खू, वच्चनिरोहे अ जीवियं चयइ।

उड्डुनिरोहे कुड्डं, गेल्लं वा भवे तिसुवि ॥ ३ ॥ ”

लघुनीति (मूत्र) रोकनेसे नेत्र पीडा होती है, और बड़ी नीति (मल) रोके तो प्राणहानि है, ऊर्ध्ववायु (डकार) रोके तो कुष्ठरोग होता है, अथवा तीनोंके रोकनेसे उन्माद (पागलपन) होता है। बड़ीनीति, लघुनीति, सलेखम (नाकमें का मल) आदि-का त्याग करनेसे पहिले “अणुजाणह जस्सुग्गहो” ऐसा कहना, तथा त्याग करनेके अनन्तर तुरत “वोसिरे ” ऐसा तीन बार मनमें चिन्तवन करना। सलेखम इत्यादिको धूलसे ढांकनेकी भी यतना करना, न करनेसे उसमें असंख्यों संमूर्च्छिम मनुष्यकी उत्पत्ति होती है तथा उनकी विराधना आदि दोष लगता है। श्रीपञ्चवणासूत्रके प्रथमपदमें कहा है कि—

प्रश्न—हे भगवंत! संमूर्च्छिम मनुष्य किस प्रकार उत्पन्न होते हैं?

उत्तर—हे गौतम ! पिसतालीश लाख योजन वाले मनुष्य-क्षेत्रमें अट्ठाई द्वीप समुद्रके अंदर, पंद्रह कर्मभूमिमें तथा छप्पन अंतर्द्वीपमें, गर्भज मनुष्यकी विष्टा, मूत्र, बलखा, नासिकाका मल, वमन, पित्त, वीर्य, पुरुषवीर्यमें मिश्रित स्त्रीवीर्य (रक्त), बाहर निकाले हुए पुरुष वीर्यके पुद्गल, जीव रहित कलेवर, स्त्री-

पुरुषका संयोग, नगरकी खाल तथा सब अशुचि स्थान इनमें सम्मूच्छिम मनुष्य उत्पन्न होते हैं। अंगुलके असंख्यातवें भाग समान अवगाहना वाले, असंज्ञी, मिथ्यादृष्टि, अज्ञानी, सर्व-पर्याप्तिके अपर्याप्त और अंतर्मुहूर्त आयुष्य वाले ऐसे वे सम्मूच्छिम मनुष्य (अंतर्मुहूर्तमें) काल करते हैं। ऊपर “ सर्व अशुचि स्थान ” कहा है याने जो कोई स्थान मनुष्यके संसर्गसे अशुचि होते हैं वे सर्व स्थान लेना, ऐसा पन्नवणाकी वृत्तिमें कहा है।

दांतन की विधि.

दांतन आदि करना होवे तो दोष रहित (अचित्त) स्थानमें ज्ञातवृक्षके अचित्त और कोमल दंतकाष्ठसे अथवा दांतकी दृढता करने वाली अंगूठेकी पासकी तर्जनी अंगुलीसे घिस कर करना। दांत तथा नाकका मल डाला हो, उसपर धूल ढांकना आदि यतना अवश्य रखना। व्यवहारशास्त्रमें तो इस प्रकार कहा है कि:—

दांतकी दृढताके निमित्त प्रथम तर्जनी अंगुलीसे दांतकी दाढ़ें घिसना पश्चात् यत्नपूर्वक दांतन करना। जो पानीके प्रथम-कुछमेंसे एक बिन्दु कंठमें चला जावे तो समझना कि आज भोजन अच्छा मिलेगा। सरल, गांठ बिना, अच्छी कूची बन जावे ऐसा, पतली नोकवाला, दश अंगुल लम्बा, दशली कनिष्ठा अंगुली की नोकके बराबर जाड़ा, ऐसा ज्ञातवृक्षके दांतनको कनिष्ठिका और

उसकी पासकी अनामिका अंगुलीके बीचमें लेकर दातन करना । उस समय दाहिनी अथवा डाबी दाढ़के नीचे घिसना, दांतके मसूड़ोंको कष्ट न देना । स्वस्थ होकर घिसने ही में मन रखना । उत्तर अथवा पूर्व दिशाकी ओर मुख करके बैठना, बैठनेका आसन स्थिर रखना, और घिसते समय मौन रहना । दुर्गंध युक्त, पोला सूखा मीठा, खट्टा और खाटा ऐसा दातन त्यागना । व्यतिपात, रविवार, सूर्यसंक्रान्ति, चन्द्र सूर्यका ग्रहण, नवमी, अष्टमी, पडवा, चौदश, पूर्णिमा और अमावस्या इन छः दिनोंमें दातन नहीं करना । दातन न मिले तो बारह कुल्ले करके मुख शुद्धि करना, और जीभके ऊपरका मल तो नित्य उतारना । जीभ साफ करनेकी पट्टीसे अथवा दातनकी फाड़से धीरे २ जीभ घिसकर दातन फेंक देना । दातन अपने सन्मुख अथवा शान्त दिशामें पड़े किंवा ऊंचा रहे तो सुखके हेतु जानना, और इससे विपरीत किसी प्रकार पड़े तो दुखदायी समझना । क्षण-मात्र ऊंचा रहकर जो पड़जावे तो, उस दिन मिष्ठान्नका लाभ मिलता है, ऐसा शास्त्रज्ञ मनुष्य कहते हैं । खांसी, श्वास, ज्वर, अजीर्ण, शोक, तृषा (प्यास), मुखपाक (मुंह आना) ये जिसको हुए हों अथवा जिसको शिर, नेत्र, हृदय और कानका रोग हुआ हो, उस मनुष्यने दातन नहीं करना ।

पश्चात् स्थिर रह कर नित्य केश (बाल) समारना. अपने सिरके बाल स्वयं समकालमें दोनों हाथोंसे नहीं समारे । तिलक

देखनेके लिये अथवा मंगलके हेतु दर्पणमें मुख देखा जाता है। जो अपना शरीर दर्पणमें मस्तक रहित दृष्टि आवे तो पन्द्रह दिनके बाद अपनी मृत्यु होगी ऐसा समझना। उपवास, पोरिसो इत्यादि पचखान करनेवालेने तो दातन आदि किये बिना ही शुद्धि जानना, कारण कि, तपस्याका फल बहुत बड़ा है। लोकमें भी उपवासादिक होने पर दातन आदि किये बिना भी देवपूजादि की जाती है। लौकिक शास्त्रमें भी उपवासादिके दिन दातन आदिका निषेध किया है। विष्णुभक्तिचन्द्रोदयमें कहा है कि-

प्रतिपददर्शपष्टिषु मध्याह्ने नवमीतिथौ ।

संक्रांतिदिवसे प्राप्ते, न कुर्याद्दतधाननम् ॥ १ ॥

उपवासे तथा श्राद्धे, न कुर्याद्दतधावनम् ।

दंतानां काष्ठसंयोगो, हन्ति सप्त कुञ्जानि वै ॥ २ ॥

ब्रह्मचर्यमहिंसा च, सत्यमामिषवर्जनम् ।

व्रते चैतानि चत्वारि, चरितव्यानि नित्यशः ॥ ३ ॥

पडवा, अमावस्या, छट्ठी, और नवमी इन तिथियोंमें, मध्याह्नके समय, तथा संक्रान्तिका, उपवासका, और श्राद्धका दिन हो तो दातन नहीं करना, कारण कि, उपरोक्त दिनोंमें दातन करे तो सात कुलका नाश होता है। व्रतमें ब्रह्मचर्य, अहिंसा, सत्य, वचन और मांसका त्याग ये चार नियम नित्य पालन करना। बारम्बार पानी पीनेसे, एक वक्त भी तांबूल भक्षण करनेसे, दिनमें सोनेसे और स्त्रीसंग करनेसे उपवासको दोष लगता है।

स्नान की विधि.

जहां चींटियोंका समूह, लीलफूल, कुंथुआ इत्यादिक जीवोंकी उत्पत्ति न होय, तथा जहां ऊंचा नीचापन, पोलाई आदि दोष न हो ऐसे स्थान पर संपातिम भक्षिकादि जीवोंकी रक्षा आदि यत्न रख कर परिमित तथा वस्त्रसे छाने हुए पानीसे स्नान करना । दिनकृत्यमें कहा है कि, जहां व्रस आदि जीव नहीं, ऐसे शुद्ध भूमिभागमें अचित्त अथवा छाने हुए सचित्त-पानीसे विधिके अनुसार नहाकर इत्यादि । व्यवहारशास्त्रमें तो ऐसा कहा है कि— नग्न, रोगी, चल कर आया हुआ, उत्तम वस्त्र तथा अलंकार पहिरा हुआ, भोजन किया हुआ, अपने सम्बन्धियोंको बुलाकर आया हुआ और कुछ भी मांगलिक कार्य किया हुआ इतने मनुष्योंने स्नान नहीं करना चाहिये । अपरिचित, विषम मार्गवाला, चांडालादिक मलीन लोगोंसे छुया हुआ, वृक्षोंसे ढका हुआ, काईवाला ऐसे पानीमें नहाना योग्य नहीं । ठंडे पानीसे नहाकर तुरन्त उष्ण अन्न तथा गरम पानीसे नहा कर तुरंत ठंडा अन्न भक्षण नहीं करना । और चाहे जैसे पानीसे नहानेके अनंतर तैल कभी भी न लगाना. नहाये हुए पुरुषकी छाया जो छिन्न भिन्न और विद्रुप दीखे, परस्पर दांत घिसाय, और शरीरसे मृतशवके समान गंध आवे तो तीन दिनमें उसकी मृत्यु होती है । नहानेके बाद जो तुरन्त छाती और दोनों पग सूख जावें, तो छठे दिन मृत्यु होती है इसमें संशय

नहीं । स्त्रीसंग किया होवे, उलटी हुई होवे, स्पर्शानमें चिनाका धुआ लगा होवे, बुरा स्वप्न आया होवे और हजामत कराई होवे तो छाने हुए शुद्ध जलसे नहाना चाहिये ।

तैल मर्दन, स्नान और भोजन कर तथा आभूषण पहन लेनेके बाद, यात्रा तथा संग्रामके अवसर पर, विद्यारभमें रात्रिको, संध्याके समय, किसी पर्वके दिन तथा (एकवार हजामत कराने के बाद) नवमें दिन हजामत नहीं कराना चाहिये । पखवाडेमें एकवार दाढी, मूछ, सिरके बाल तथा नख निकलवाना, परन्तु श्रेष्ठ मनुष्योंको चाहिये कि अपने हाथमें अपने बाल तथा अपने दाँतसे अपने नख कभी न निकाले ।

जल स्नान (जलसे नहाना) शरीरको पवित्र कर, सुख उत्पन्न कर परम्परासे भावशुद्धिका कारण होता है. श्रीहिरिभद्रस्वरिजीने दूसरे अष्टकमें कहा है कि- प्रायः अन्य व्रम आदि जीवोंको उपद्रव न हो, उस भाँति शरीरके त्वचा (चर्म)-आदिभागकी क्षणमात्र शुद्धिके निमित्त जो पानीमें नहाया जाता है, उसे द्रव्यस्नान कहते हैं । सावद्य व्यापार करनेवाला गृहस्थ यह द्रव्यस्नान यथाविधि करके देव व साधुकी पूजा करे तो उसे यह स्नान भी शुद्धिकारक है । कारण कि, यह द्रव्यस्नान भावशुद्धिका कारण है और द्रव्यस्नानसे भावशुद्धि होती है यह बात अनुभव सिद्ध है । अत एव द्रव्यस्नानमें कुछ अप्रकायविराधनादि दोष है, तां भी अन्य समकितशुद्धि आदि अनेक

गुण होनेसे यह गृहस्थको शुभकारक है। कहा है कि पूजामें जीव हिंसा होती है, और वह निषिद्ध भी है, तो भी जिनेश्वर भगवानकी पूजा समकितशुद्धिका कारण है, अतएव शुद्धि (निरवघ) है। अतः यह सिद्ध हुआ कि, देवपूजादि कार्य करना हो तभी गृहस्थको द्रव्यस्नानकी अनुमोदना (सिद्धान्तमें अनुमति) कही है। इसलिये द्रव्यस्नान पुण्यके निमित्त है, ऐसा जो कोई २ कहते हैं, उस निकाल दिया, ऐसा जानो। तीर्थमें किये हुए स्नानसे देहकी कुछ शुद्धि होती है, परंतु जीवकी तो एक अंश-मात्र भी शुद्धि नहीं होती। स्कन्दपुराणमें काशीखंडके अंदर छठे अध्यायमें कहा है कि-

मृदो भारसहस्रेण जलं कुंभशतेन च ।

न शुध्यति दुराचाराः, स्नातास्तीर्थशतैरपि ॥ १ ॥

चित्तं शमादिभिः शुद्धं, वदनं सत्यभाषणैः ।

ब्रह्मचर्यादिभिः कायः, शुद्धो गंगां विनाप्यसौ ॥ ३ ॥

चित्तं रागादिभिः क्लिष्टमलीकवचनैर्मुखम् ।

जिवहिंसादिभिः कायो, गंगा तस्य परं दुःखी ॥ ४ ॥

परदारपरद्रव्यपरद्रोहपराङ्मुखः ।

गंगाप्याह कदाऽऽगत्य, मामयं पावयिष्यति? ॥ ५ ॥”

दुराचारी पुरुष हजारों भार (तोल विशेष) मट्टीसे, सैकड़ों घड़े पानीसे तथा सैकड़ों तीर्थोंके जलसे नहावे तो भी शुद्ध नहीं होते। जलचर जीव जल ही में उत्पन्न

होते हैं, और जल ही में मृत्युको प्राप्त होते हैं; परन्तु मनका मेल नहीं धुलनेसे वे स्वर्गमें भी नहीं जाते। जिनका चित्त शमदमादिकसे, मुख सत्यवचनसे और शरीर ब्रह्मचर्यसे शुद्ध है, वे गंगानदीको गये बिना भी शुद्ध ही हैं। जिनका चित्त रागादिकसे वचन असत्यवचनसे और शरीर जीवहिंसादिकसे मलीन हो, उन पुरुषोंसे गंगा नदी भी अलग रहती है। जो पुरुष परस्त्रीसे, परद्रव्यसे और दमर के परद्रोहसे दूर रहता है, उसको लक्ष करके गंगा नदी भी कहती है कि- ये महानुभाव कब आकर मुझे पवित्र करेंगे ?

इसके ऊपर एक कुलपुत्रका दृष्टान्त है, यथा:—

तुम्हें स्नान दृष्टान्त.

एक कुलपुत्र गंगादि तीर्थको जाता था। उसे उसकी माताने कहा कि, “हे बत्स! तू जहाँ नहावे, वहाँ मेरे इस तुम्हेको भी नहलाना।” यह कह उसकी माताने उसे एक तुम्हा दिया। कुलपुत्र भी गंगा आदि तीर्थमें जाकर माताकी आज्ञानुसार अपने साथ तुम्हेको नहला कर घर आया। तब माताने उस तुम्हेका शाक बनाके पुत्रको परोसा। पुत्रने कहा, “बहुतही कड़वा है।” माताने कहा—“जो सैकड़ों बार नहलानेसे भी इस तुम्हेका कड़वापन नहीं गया, तो स्नान करनेसे तेरा पाप किस प्रकार जाता रहा ? वह (पाप) तो तपस्वरूप क्रियानुष्ठान ही से जाना है।” माताके इन वचनोंसे कुलपुत्रको प्रतिबोध हुआ।

असंख्यात जीवमय जल, अनंत जीवमय कोई आदि और बिना छाना पानी हांवे तो उसमें रहने वाले पूरा आदि त्रयजीव, इनकी विराधना होनेसे स्नान दोषमय है। यह बात प्रसिद्ध है। जल जीवमय है, यह बात लौकिकमें भी कही है। उत्तरमीमांसामें कहा है कि—

लूतास्यतंतुगलिते, ये बिंदौ संति जंतवः ।

सूक्ष्मा भ्रमरमानास्ते, नैव भांति त्रिविष्टपे ॥ १ ॥

मकड़ीके मुखमेंसे निकले हुए तंतुके ऊपरसे छनकर पड़े हुये पानीके एकबिन्दुमें जो सूक्ष्म जीव हैं, वे जो भ्रमरके बराबर हो जावें तो तीनों जगत्में न समावें, इत्यादि।

अब भावस्नानकी व्याख्या करते हैं:— ध्यानरूप जलसे कर्मरूप मल दूर करनेसे जीवको जो सदाकाल शुद्धताका कारण होता है उसे भावस्नान कहते हैं। कोई पुरुषको द्रव्यस्नान करने पर भी जो फोड़े आदि बहते हों तो उसने अपने पासमें चंदन, केशर, पुष्प प्रमुख सामग्री देकर दूसरे मनुष्यके द्वारा भगवानकी अंगपूजा करवाना; और अग्रपूजा तथा भावपूजा स्वयं करना। शरीर अपवित्र होवे तो पूजाके बदले आशातना होना संभव है, इसलिये स्वयं अंगपूजा करनेका निषेध किया है। कहा है कि—

निःशूकत्वादशौचोऽपि, देवपूजां तनोति यः ।

पुष्पैर्भूषतिर्त्यश्च, भवतः श्वपचाविमौ ॥ १ ॥”

जो अपवित्र पुरुष संसारमें पड़नेका भय न रखते देवपूजा करते हैं, और जो पुरुष भूमि पर पड़े हुए फूलमें पूजा करते हैं, वे दोनों चांडाल होते हैं, यथा:—

अपवित्रता से पूजनमें दोष दिखानेवाला चांडाल दृष्टान्त.

कामरूप नगरमें एक चांडालको पुत्र हुआ। जन्मसे ही उसके पूर्वभवके वैरी किसी व्यंतरदेवताने उसे हरण कर जंगलमें डाल दिया। इतनेमें कामरूपनगरका राजा जो कि शिकार खेलने गया था उसने वनमें उस बालकको देखा। राजा पुत्रहीन था इससे उसने उसे ले लिया, पालन किया तथा उसका पुण्यसार नाम रखा। जब पुण्यसार तरुणावस्थाको प्राप्त हुआ तब राजाने उसको राज्याभिषेक कर स्वयं दीक्षा ले ली। कुछ कालके अनन्तर उक्त कामरूपके राजा केवली होकर वहां आये। पुण्यसार उनको वंदना करने गया। सर्व नगरवासी मनुष्य भी वन्दना करने आये तथा पुण्यसारकी माता वह चांडालिनी भी वहां आई। पुण्यसार राजाको देख उस चांडालिनीके स्तनमेंसे दूध झरने लगा। तब राजा (पुण्यसार) ने केवली भगवानसे इसका कारण पूछा। केवलीने कहा— “ हे राजन् ! यह तेरी माता है, तू वनमें पड़ा हुआ मेरे हाथ लगा.” पुण्यसारने पुनः प्रश्न किया, “ हे भगवान् ! मैं किस कर्मवश चांडाल हुआ ? ” केवलीने उत्तर दिया— “ पूर्वभवमें तू व्यवहारी था। एक समय भगवानकी पूजा करते “ भूमिपर पड़ा हुआ फूल नहीं चढ़ाना

चाहिये।" ऐसा जानते हुए भी तूने भूमि पर पड़ा हुआ फूल जगन्नाथसे भगवान्‌के ऊपर चढ़ाया। उससे तू चांडाल हुआ। कहा है कि-
वच्चिदं फलकुपुमं, नेविज्जं वा जिणस्स जो देइ।

सो नीअगोअकम्मं, बंधइ पायन्नजम्ममि ॥ १ ॥"

पुरुष ऐंठा (उच्छिष्ट) फल, फूल अथवा नैवेद्य भगवान्‌को अर्पण कर, वह प्रायः परभवमें नीचगोत्र कर्म बांधता है। तेरी माताने पूर्वभवमें रजस्वला होते हुए देवपूजा करी, उस कर्मसे यह चांडालिनी हुई।" केवलीके ऐसे वचन सुन वैराग्यसे पुण्यसार राजाने दीक्षा ली। इसलिये भूमि पर पड़ा हुआ फूल सुगंधित हो तो भी वह भगवान्‌को नहीं चढ़ाना चाहिये। तथा किंचित् मात्र भी अपवित्रता हो तो भी भगवान्‌ को नहीं छूना। विशेष कर स्त्रियोंने रजस्वला अवस्थामें प्रतिमा-को बिलकुल स्पर्श न करना चाहिये। कारण कि, भारी आशा-तनादि दोष लगता है।

पूजामें पहननेके वस्त्रकी विधि.

नहा लेनेके बाद पवित्र, कोमल और सुगंधित काषा-यिकादि वस्त्रसे अंग पोंछ, धोती उतार, दूसरा पवित्र वस्त्र पहरकर इत्यादियुक्तिसे धीरे २ चलते जलार्द्र-भूमिको स्पर्श न करते पवित्र स्थानमें आना। उत्तरदिशाको मुख करके चमक-दार, नया, पूर्ण, बे जोड़ और चौड़ा ऐसे दो श्वेत वस्त्रमें से एक पहिरना तथा दूसरा ओढ़ना। कहा है कि-

विशुद्धिं वपुषः कृत्वा, यथायोगं जलादिभिः ।

श्वेतवस्त्रे वसीत द्वे, विशुद्धे धूपधूपिते ॥ १२ ॥

अवसरके अनुसार जलादिकमें शरीर शुद्ध करके धोये हुए, धूप दे सुगंधित किये हुए और पवित्र ऐसे दो वस्त्र धारण करना। लोकमें भी कहा है कि हे राजन् ! देवपूजामें संधा हुआ, जला हुआ, और फटा हुआ वस्त्र न लेना, तथा दूसरेका वस्त्र भी धारण नहीं करना। एक बार पहिरा हुआ वस्त्र, जो वस्त्र पहिर कर मलोत्सर्ग, मूत्र तथा स्त्रीसंग किया हो, वह वस्त्र देवपूजामें उपयोगमें न लेना। एकही वस्त्र धारण करके जीमना नहीं, तथा पूजा नहीं करना। स्त्रियोंने भी कांचली बिना देवपूजा नहीं करना। इस परसे यह सिद्ध हुआ कि, पुरुषोंने दो वस्त्र बिना और स्त्रियोंने तीन वस्त्र बिना देवपूजादि न करना चाहिये। धुला हुआ वस्त्र मुख्यपक्षसे तो क्षीरोदक प्रमुख बहुत ऊंचा और वह श्वेतवर्ण रखना। उदायन राजाकी रानी प्रभावती आदिका भी श्वेत वस्त्र ही निश्चित्यादिक ग्रंथमें कहा है। दिनकृत्यादिक ग्रंथोंमें भी कहा है कि—“ सेअवत्थानिअंसणोत्ति ” (अर्थात् श्वेतवस्त्र पहिरने वाला आदि) क्षीरोदक आदि वस्त्र रखनेकी शक्ति न हो तो, दुकुल (रेशमी) आदि श्रेष्ठ वस्त्र ही रखना। पूजाषोडशकमें कहा है कि—“ सितशुभवस्त्रेणेति ” इसकी टीकामें भी कहा है कि—श्वेत और शुभ वस्त्र पहिर कर पूजा करना। यहां शुभवस्त्र पट्टयुग्मादिक लाल, पीला आदि लिया

जाता है । “एगसाडिअं उत्तरासंगं कोरेई” (अर्थात् एक साडी उत्तरासन करे) इत्यादिक सिद्धान्तके प्रमाणभूत वचन हैं इससे उत्तरीय वस्त्र अखंड ही रखना । दो या अधिक टुकड़े जुड़ा हुआ न रखना । “ दुकुल (रेशमी) वस्त्र पहिरकर भोजनादिक कर तो भी वह अपवित्र नहीं होता, ” यह लोकोक्ति इस (पूजाके) विषयमें प्रमाणभूत नहीं मानना । परन्तु अन्य वस्त्रकी भांति दुकुल वस्त्र भी भोजन, मल, मूत्र तथा अशुचि वस्तुका स्पर्श इत्यादिसे बचाकर रखना चाहिये । वापरने पर धोना, धूप देना इत्यादि संस्कार करके पुनः पवित्र करना, तथा पूजा सम्बन्धी वस्त्र थोड़े समय ही वापरना । पसीना, नाकका मल आदि इस वस्त्रसे नहीं पोंछना, कारण कि, उससे अपवित्रता होती है । पहिरे हुए अन्यवस्त्रोंसे इस वस्त्रको अलग रखना । प्रायः पूजाका वस्त्र दूसरेका नहीं लेना । विशेष कर बालक, वृद्ध, स्त्रियों आदिका तो कदापि नहीं लेना चाहिये । दूसरे का पहिना वस्त्र न पहिननेपर चाहक का दृष्टान्त.

सुनते हैं कि, कुमारपाल राजाका उत्तरीयवस्त्र बाहड मंत्रीके छोटे भाई चाहडने पहिरा, तब राजाने कहा कि, “मुझे नवीन वस्त्र दे ” चाहडने कहा— “ ऐसा नवीन वस्त्र सवालक्ष-देशकी बेबेरापुरी ही में मिलता है, और वह वहांसे वहांके राजाका पहिरा हुआ ही यहां आता है । ” पश्चात् कुमारपालने बेबेराके राजाके पाससे एक बिना वापरा दुकुल वस्त्र मांगा,

परन्तु उसने नहीं दिया । तब कुमारपाल राजाने रुष्ट हो चाहड को “ बहुत दान न करना ” ऐसा कहकर साथमें सैन्य देकर भेजा । तीसरे दिन चाहडने भंडारीके पाससे लक्ष द्रव्य मांगा, तो उसने नहीं दिया, अतः उसे निकाल दिया, और यथेच्छ दान देकर रात्रिको चौदह सौ ऊंटनी सवारके साथ जा बंधापुरको घेर लिया । उस दिन नगरमें सातसौ कन्याओंका विवाह था । उसमें विघ्न न आवे, इस हेतुसे वह रात्रि बीत जाने तक विलम्ब करके प्रातःकाल होते ही चाहडने दुर्ग (किल्ला) हस्तगत किया । तथा बंधेराके राजा के सात करोड़ स्वर्णमुद्रा व ग्यारहसौ घोड़े लिये तथा किल्लेको तोड़ कर चूर्ण चूर्ण कर दिया । उस देशमें अपने स्वामी कुमारपालकी आज्ञा प्रचलित की तथा सातसौ सालवियोंको साथ लेकर उत्सव सहित अपने नगरमें आया । कुमारपालने कहा— “ अति-उदारता यह तेरेमें एक दोष है । वही दोष तुझे दृष्टिदोषसे अपनी रक्षा करनेका एक मंत्र है ऐसा मैं जानता हूं, कारण कि तू मेरी अपेक्षा भी अधिक द्रव्य का व्यय करता है । ” चाहडने कहा “ मुझे मेरे स्वामीका बल है इससे मैं अधिक व्यय करता हूं । आप किसके बलसे अधिक व्यय करो ? ” चाहडके इस चतुरतापूर्ण उत्तरसे कुमारपाल बहुत प्रसन्न हुआ और उसको सन्मानपूर्वक “ राजधरद्व ” की पदवी दी । दूसरे-को पहिरा हुआ वस्त्र न लेना इस पर यह दृष्टांत है ।

पूजावसरमें सप्त प्रकारकी शुद्धि.

वैसे ही स्वयं उत्तम स्थानसे, अथवा स्वयं जिसके गुण-का ज्ञाता हो ऐसे अच्छे मनुष्यसे पात्र, ढक्कन, लानेवाली व्यक्ति, मार्ग आदि सर्वकी पवित्रताकी यतना रखना आदि युक्तिसे पानी, फूल इत्यादिक वस्तु लाना । फूल आदि देने वालेको यथोचित मूल्य आदि देकर प्रसन्न करना । वैसे ही, श्रेष्ठ मुखकोश बांध, पवित्र भूमि देख युक्तिसे जिसमें जीवकी उत्पत्ति न होवे ऐसी केशर, कर्पूर आदि वस्तुसे मिश्रित चंदन घिसना । चुने हुए तथा ऊंचे अखंड चावल, शोधित धूप व दीप, सरस स्वच्छ नैवेद्य तथा मनोहर फल इत्यादि सामग्री एकत्रित करना । यह द्रव्यशुद्धि है । राग द्वेष, कपाय ईर्ष्या, इस लोक तथा परलोककी इच्छा, कौतुक तथा चित्तकी चपलता इत्यादि दोष त्याग कर चित्तकी एकाग्रता रखना, सां भावशुद्धि है । कहा है कि—

मनोवक्त्रायवस्त्रोर्वीपूजोपकरणस्थितेः ।

शुद्धिः सप्तविधा कार्या, श्रीअर्हत्पूजनक्षणे ॥ १ ॥'

मन, वचन, काया वस्त्र, भूमि, पूजाके उपकरण और स्थिति (आसन आदि) इन सातोंकी शुद्धि भगवानकी पूजा करते समय रखना चाहिये ।

इस भांति द्रव्य तथा भावसे शुद्ध हुआ मनुष्य गृह चैत्य (घरमंदिर) में प्रवेश करे, कहा है कि— पुरुष दाहिना

पैर आगे रख कर दाहिनी ओर यतनासे प्रवेश करे, और स्त्री वाम पग आगे धरकर बाई ओर प्रवेश करे। पूर्व अथवा उत्तर-दिशाको मुख करके वाम नाडी चलते मौन कर सुगंधित और सधुर द्रव्यसे भगवानकी पूजा करना चाहिये। इत्यादि वचनसे कहे अनुसार निसीही कर, तीन प्रदक्षिणा करना तथा अन्य भी विधि सम्पूर्ण कर पवित्र पाटले आदि आसन पर पद्मासनादिक सुखकारक आसनसे बैठना। पश्चात् चन्दन-के पात्रमें से थोड़ा चन्दन अन्यपात्रमें अथवा हाथ पर ले ललाट (कपाल) पर तिलक कर तथा हाथको स्वर्णकंकण और चन्दनका लेप कर तथा भृष दे दोनों हाथोंसे जिनेश्वर भगवानकी अग्रपूजा, अंगपूजा तथा भावपूजा करना चाहिये। तत्पश्चात् पूर्वमें किया हुआ अथवा न किया हुआ पञ्चखान भगवानके सन्मुख उच्चारना।

(मूढगाथा,)

विहिणा जिणं जिणगिहे,

गंतुं अचेइ उच्चिअर्चितरओ ॥

उच्चरइ पच्चखानं,

दढपंचाचारगुरुपासे ॥ ६ ॥

भावार्थः— उपरोक्त गाथामें “ विधिना ” (विधिसे) यह पद है, उसे सब जगह मिलाना। यथा— पश्चात् विधिसे जिनमंदिरको जा, विधिसे उचित चिन्ता (विचार) करता हुआ, विधिसे भगवानकी पूजा करे। वह विधि इस प्रकार है:-

जो राजा प्रमुख भारी ऋद्धिशाली पुरुष होवे तो “सर्व ऋद्धिसे, सर्व दीप्तिसे, सर्व धुतिसे, सर्व बलसे, सर्व पराक्रमसे” इत्यादि आगमवचन है, इससे वह पुरुष जिनशासनकी प्रभावनाके निमित्त सर्वोत्कृष्ट ऋद्धिसे दशार्णभद्र राजाकी भांति जिनमंदिरको जावे।

सर्व ऋद्धिसे जिनवन्दनमें दशार्णभद्रका दृष्टान्त.

जैसे दशार्णभद्र राजा “ पूर्वमें किसीने वन्दन न किया ऐसी उच्च ऋद्धिसे मैं वीरभगवानको वन्दना करूं ” ऐसे अहंकारसे सर्वोपरि ऋद्धि सजा कर अपने अंतःपुरकी स्त्रियोंको सर्वांगमें शृंगार पहिरा, उत्तम हाथी, घोड़े, रथ, आदि चतुरंग सेना साथमें ले हाथीदांत की, चांदीकी तथा सोनेकी पांचसौ पालकियोंमें बिठा श्रीवीरभगवानको वन्दना करने आया। उसका मद दूर करनेके हेतु सौधमेंन्द्रन श्रीवीरभगवानको वंदना करनेको आते हुए दिव्यऋद्धिकी रचना करी। बृहत्-ऋषिमंडलस्तवमें कहा है कि- चौसठ हजार हाथी, प्रत्येक हाथीको पांचसौ बारह मुख, प्रत्येक मुखमें आठ दांत, प्रत्येक दांतमें आठ बावडियां, प्रत्येक बावडीमें लक्ष पखडीके आठ कमल, प्रत्येक पखडी ऊपर बत्तीसवद्ध दिव्यनाटक, प्रत्येक कर्णिकामें एक एक दिव्य प्रासाद, और प्रत्येक प्रासादमें अग्रमहिषीकी साथ इन्द्र श्रीवीर भगवानके गुण गाता है। ऐसी ऋद्धिसे ऐरावत हाथी ऊपर बैठकर आते हुए इन्द्रको देखकर जिसकी

प्रतिज्ञा पूर्ण न हुई ऐसे दशार्णभद्र राजाने दीक्षा ग्रहण की । इस विषयमें पूर्वाचार्योंकी की हुई हाथीके मुख आदि वस्तुकी गिन्ती बतानेवाली गाथाएं हैं । उनका अर्थ यह है:— एक हाथीको पांचसौ बारह मुख, चार हजार छियाब्बे दांत, बत्तीस हजार सातसौ अडसठ बावडियां, दो लाख बासठ हजार एकसौ चुम्मालीश कमल, कर्णिका प्रासादके अंदर आये हुए नाटककी संख्या कमल ही के समान, छब्बीस सौ करोड इक्कीस करोड और चौवालीस लाख इतनी एक हाथीके कमल दलकी संख्या शक्रेन्द्रकी जानो । अब चौसठ हजार हाथीके सबके मुख, दांत प्रमुख वस्तु संख्या इकट्ठी कहना चाहिये । सर्व हाथियोंके मुख तीन करोड सत्ताबीस लाख, अडसठ हजार । सबके दांतोंकी संख्या छब्बीस करोड, इक्कीस लाख, चौवालीस हजार । सर्व बावडियोंकी संख्या दो सौ करोड, नौ करोड, एकहत्तर लाख, बावन हजार । सर्व कमलोंकी संख्या एक हजार करोड, छः सौ करोड, सत्तहत्तर करोड, बहत्तर लाख, सोलह हजार । सर्व पखडियोंकी तथा नाटककी संख्या सोलह कोडाकोडी, सत्तहत्तर लाख करोड, बहत्तर हजार करोड, एक सौ साठ करोड । सर्व नाटकके रूपकी संख्या पांचसौ कौडाकोडी, छत्तीस कोडाकोडी, सत्यासी लाख करोड, नव हजार करोड, एक सौ करोड और बीस करोड । यह सर्व संख्याएं आवश्यकचूर्णिमें

कही हैं । प्रत्येक प्रासादमें आठ अग्रमहिषीके साथ इन्द्र भगवानके गुण गाता है, ऐसा कहा, वहाँ अग्रमहिषीकी संख्या कमलके समान जानना । इंद्राणीकी संख्या तो तेरह हजार करोड, चारसौ इक्कीस करोड, सतहत्तर लाख, अट्ठावीस हजार इतनी है । हरेक नाटकमें समान रूप, शृंगार और नाट्योपकरण युक्त एक सौ आठ दिव्यकुमार तथा उतनी ही देव-कन्याएं हैं । ऐसे ही १ शंख, २ शृंग, ३ शंखिका, ४ पेया, ५ परिपरिका, ६ पणव, ७ पडह,, ८ भंभा, ९ होरंभा, १० भेरी, ११ झल्लरी, १२ दुन्दुभी, १३ मुरज, १४ मृदंग, १५ नांदी-मृदंग, १६ आलिंग, १७ कुस्तुम्ब, १८ गौमुख, १९ मादल, २० विपंची, २१ बल्लकी, २२ भ्रामरी, २३ षड्भ्रामरी, २४ परिवादिनी, २५ बन्वीसा, २६ सुघोषा, २७ नंदिघोषा, २८ महती, २९ कच्छपी, ३० चित्रवीणा, ३१ आमोट, ३२ झांझ ३३ नकुल, ३४ तूणा, ३५ तुंववीणा, ३६ मुकुंद, ३७ हुडुक्का ३८ चिच्चिकी, ३९ करटीका, ४० डिंडिम, ४१ किणित, ४२ कडंबा, ४३ दर्दरक, ४४ ददरिका, ४५ कुस्तुंबर ४६ कलसिका, ४७ तल, ४८ ताल, ४९ कांस्यताल, ५० गिरिसिका, ५१ मकरिका, ५२ शिशुमारिका, ५३ वंश, ५४ वाली, ५५ वेणु, ५६ परिली, ५७ बंधूक इत्यादि विविध वाद्योंके बजाने वाले प्रत्येकमें एक सौ आठ जानो । ३ शंखिका याने तीक्ष्ण स्वरवाला छोटा शंख होता है और शंखका तो गंभीर स्वर होता है । ४ पेया यह बड़ी काहलाको कहते हैं । ५ परि-

परिका, याने मकड़ीके पडसे बंधा हुआ एक मुखवाजा है । ६ पणव, यह पडह विशेष अथवा भांडपडह जानो । ८ भंभा याने ढक्का, ९ होरंभा याने महाढक्का, १० भेरी यह ढक्केके आकारका वाद्यविशेष है । ११ झल्लरी यह चमडेसे मढ़ी हुई पहेली और बलयाकार होती है । १२ दुंदुभी, यह संकडे मुंहका तथा भेरीके आकारका देववाद्य होता है । १३ मुरज अर्थात् बड़ा मादल, १४ मृदंग याने छोटा मादल, १५ नांदीमृदंग, यह एक ओरसे संकड़ा व दूसरी ओरसे चौड़ा होता है । १६ आलिंग, यह मुरजकी एक जाति है । १७ कुस्तुम्भ, यह चमडेसे बंधा हुआ घडेके समान एक वाजा होता है । १९ मादल, यह दोनों ओरसे समान होता है, ३० विपंची, यह तीन तांतकी वीणा होती है । २१ वल्लकी अर्थात् सामान्य वीणा २४ परिवादिनी याने सात तांतकी वीणा २८ महती याने सौतारकी वीणा ३५ तुम्बवीणा, तुम्बे वाली वीणाको कहते हैं । ३६ मुकुन्द यह एकजातका मुरज है, जो प्रायः बहुत लीन होकर बजाया जाता है । ३७ हुडुका, यह प्रसिद्ध है । ४० डिंडिम, यह प्रस्तावना सूचक एक वाद्य है । ४२ कडंबा, ३९ करटिना और ४३ दर्दरक ये प्रसिद्ध हैं । ४४ दर्दरिका याने छोटा दर्दरक ४७ तल याने हस्तताल । ५४ वाली यह एक प्रकारका मुख वाजिन्त्र है ५७ बंधूक, यह भी तूण सदृश मुख वाजिन्त्र है । वाकीके भेद लोकमें प्रसिद्ध हों उसके अनुसार

जान लेना चाहिये । सब वाद्योंके भेद उनपचासजातिके वाद्योंमें समाते हैं । जैसे वंशमें वाली, वेणु, परिली और बन्धूक इनका समावेश होता है । शंख, शृंग शंखिका, खरमुखी, पेया, और परपरिका ये वाद्य बड़े भारी शब्दसे, फूंकने पर बजते हैं । पडह और पणव ये दो डंकोंसे बजते हैं । भंभा और होरंभा ये दो आस्फालन करनेसे बजते हैं । भेरी, झल्लरी और दुंदुभी ये तीन ठोकनेसे बजते हैं । मुरज, मृदंग, और नांदीमृदंग ये तीन आलाप करनेसे बजते हैं । आलिंग, कुस्तुम्ब, गौमुखी और मर्दल ये चार जोरसे ठोकने पर बजते हैं । विपंची, वीणा, और वल्लकी ये तीन मूच्छना करनेसे बजते हैं । भ्रामरी, षड्भ्रामरी और परिवादिनी ये तीन किंचित् हिलानेसे बजते हैं । बज्जीसा सुघोषा और नंदीघोषा ये तीन फिरानेसे बजते हैं । महती, कच्छपी और चित्रवीणा ये तीन कूटनेसे बजते हैं । आमोट झंझा और नकुल ये तीन मरोडनेसे बजते हैं । तूण और तुम्ब-वीणा ये दो स्पर्श करनेसे बजते हैं । मुकुंद, हुडुक और चिच्चिकी ये तीन मूच्छना करनेसे बजते हैं । करटी, डिंडिम, किणित और कदंबा ये चार बजानेसे बजते हैं । दर्दरक, दर्दरिका, कुस्तुंब और कलशिका ये चार बहुत पीटनेसे बजते हैं । तल, ताल, और कांस्यताल ये तीनों परस्पर लगनेसे बजते हैं । रिंगिसिका, लत्तिका, मकरिका और शिशुमारिका ये चार धिस-नेसे बजते हैं । वंश, वेणु, वाली, पिटली और बंधूक ये पांच फूंकनेसे बजते हैं ।

सर्वे दिव्य कन्या और कुमार साथ २ गायन और नृत्य करते हैं, इस प्रसंगमें बत्तीसवद्वनाटकके नाम इस प्रकार हैं:- स्वस्तिक, श्रीवत्स, नंद्यावर्त, वर्धमानक, भद्रामन, कलश, मत्स्ययुग्म, दर्पण, इन आठ मंगलिकोंकी विचित्र रचना यह मंगलभक्तिचित्र नामक प्रथमभेद [१] आवर्त, (दक्षिणावर्त) प्रत्यावर्त (वामावर्त), श्रेणी (समर्पक्ति) प्रश्रेणी (उलटी पंक्ति), स्वस्तिक, सौवस्तिक, पुष्पमान (लक्षणविशेष) वर्धमान, मत्स्यांडक (मत्स्यके अंडे) मकरांडक (मगरके अंडे), जारमार (मणिविशेष) पुष्पावली, पद्मपत्र, सागरतरंग, वासंतीलता, और पद्मलता, इनकी विचित्र रचना-रूप दूसरा भेद [२] इहामृग (वरुभेड़िया), ऋषभ (बैल) अश्व, मनुष्य, मगर, पक्षी, सर्प, किन्नर, रुरु (हरिणभेद), शरभ-अष्टापद, चमर (सुरागा-य) हस्ती, वनलता, पद्मलता इनकी विचित्र रचनारूप तीसरा भेद [३] एकतोयक (एक तरफ टेढ़ा) एकतःखड्ग (एक तरफ धारवाला), एकतःचक्रवाल (एक तरफ चक्राकार) द्विधा चक्रवाल (दोनों तरफ चक्राकार) चक्रार्द्धचक्रवाल ऐसी रचना रूप चौथा भेद [४] चन्द्रावलि (चंद्रकी पंक्ति) सूर्यावलि (सूर्यकी पंक्ति), वलयावली, तारावली, हंसावलि, एकावलि, मुक्तावलि, कनकावलि, रत्नावलि, यह आवलिप्रविभक्ति (पंक्ति-रचना) नामक पांचवां भेद [५] चंद्रोदयप्रविभक्ति (चंद्रोदयकी रचना) सूर्योदयप्रविभक्ति (सूर्योदयकी रचना) यह

उदयप्रविभक्तिनामक छद्मा भेद [६] चंद्रागमनप्रविभक्ति (चंद्रके आगमनकी रचना) सूर्यागमनप्रविभक्ति (सूर्यके आगमनकी रचना) यह गमना- गमनप्रविभक्तिनामक सातवां भेद [७] चंद्रावरणप्रविभक्ति (चंद्रके आवरणकी रचना,) सूर्यावरणप्रविभक्ति (सूर्यके आवरणकी रचना) यह आवरणप्रविभक्तिनामक आठवां भेद [८] चंद्रास्तमनप्रविभक्ति (अस्त होते चंद्रकी रचना) सूर्यास्तमनप्रविभक्ति (सूर्यास्तकी रचना,) यह अस्तमनप्रविभक्तिनामक नववां भेद [९] चंद्रमंडलप्रविभक्ति (चंद्रमंडलकी रचना), सूर्यमंडलप्रविभक्ति (सूर्यमंडलकी रचना), नागमंडलप्रविभक्ति, यक्षमंडलप्रविभक्ति, भूतमंडलप्रविभक्ति, राक्षसमहोरगगंधर्वमंडलप्रविभक्ति यह मंडलप्रविभक्ति (मंडलकी रचना) नामक दशवां भेद [१०] ऋषभललितविक्रान्त (बैलकी एकजातिकी गति) सिंहललितविक्रान्त (सिंहकी विशेषगति,) अश्वविलंबित (घोड़ेकी विशेषगति), गजविलंबित (हाथीकी विशेषगति), मत्तहयविलसित (मस्तघोड़ेकी चेष्टा) मत्तगयविलसित (मस्तहाथीकी चेष्टा) यह द्रुतविलंबित नामक ग्यारहवां भेद [११] शकटोपाधिप्रविभक्ति (गाड़ीके उपकरणकी रचना), सागरप्रविभक्ति (समुद्रकी रचना), नगरप्रविभक्ति (नगरकी रचना) यह सागरनगरप्रविभक्तिनामक बारहवां भेद [१२] नंदाप्रविभक्ति, चंपाप्रविभक्ति यह नंदाचंपाप्रविभक्तिनामक तेरहवां भेद [१३]

मत्स्याण्डप्रविभक्ति (मत्स्याके अंडेकी रचना), करमांडप्रविभक्ति, जारमारप्रविभक्ति यह मत्स्याण्डादिप्रविभक्तिनामक चौदहवां भेद है [१४] । कखगडप्रविभक्ति यह धन्द्रहवां भेद [१५] चछजझअप्रविभक्ति यह सोलहवां भेद [१६] टठडढणप्रविभक्ति यह सत्रहवां भेद, [१७] तथदधनप्रविभक्ति यह अड्डा-रहवां भेद [१८] पफचभमप्रविभक्ति यह उन्नीसवां [१९] अशोकपल्लवप्रविभक्ति (आसापालवकी रचना), आम्रपल्लव-प्रविभक्ति (आमके पत्तेकी रचना), जम्बूपल्लवप्रविभक्ति, कोशां-वपल्लवप्रविभक्ति, यह पल्लवप्रविभक्तिनामक बीसवां भेद [२०] पमलताप्रविभक्ति, नामलताप्रविभक्ति, अशोकलताप्रविभक्ति, चंपकलताप्रविभक्ति, आम्रलताप्रविभक्ति, वनलताप्रविभक्ति, कुंदलताप्रविभक्ति, अतिमुक्तलताप्रविभक्ति और श्यामलताप्र-विभक्ति यह लताप्रविभक्तिनामक एकवीसवां भेद [२१] द्रुतनृत्य (उतावला नाच) यह बावीसवां भेद [२२] विलं-बितनृत्य (धीरे नाचना) यह तेवीसवां भेद [२३] द्रुतविलं-बितनृत्य यह चौवीसवां भेद [२४] अंचितनृत्य नामक पच्चीसवां भेद [२५] रिभितनृत्यनामक छवीसवां भेद [२६] अंचितरिभिद-नृत्यनामक सत्तावीसवां भेद [२७] आरभटनृत्यनामक अड्डावीसवां भेद [२८] भसोलनृत्यनामक उन्तीसवां भेद [२९] आरभटभसोल-नृत्यनामक तीसवां भेद [३०] । उत्पात (ऊंचा चढना) निपात (नीचे पडना) प्रसक्त (अटकना), संकुचित (अंग-

संकोचना) प्रसारित (अंग प्रसारना), रेचक, आरचित, भ्रांत (बहकना) संभ्रांत (अत्यंत बहकना), यह उत्पाता-दिनृत्यनामक इकतीसवां भेद [३१] तीर्थकरादि महापुरुषोंके चरित्रका अभिनय करना यह बत्तीसवां भेद [३२] । इस प्रकार रायपसेणीयूत्रमें बत्तीसबद्धनाटकके भेद कहे हैं ।

इस भांति राजा आदि ऋद्धिशाली श्रावक जिनमंदिरको जावे । परन्तु जो साधारण ऋद्धिवन्त हो, उसने तो लोकपरिहास टालनेके निमित्त अहंकारका त्याग कर अपने कुल तथा द्रव्यके उचित आडंबर रख, भाई, मित्र, पुत्रादिक परिवारको साथ लेकर जिनमंदिरको जाना । वहां जानेमें (१) फूल, तांबूल, सरशव, दूर्वा (दूब), तथा छरी, पादुका, मुकुट, वाहन-प्रमुख सचित्त और अचित्तवस्तुका त्याग करे । यह प्रथम अभिगम है । (२) मुकुटको छोड़कर शेष अलंकार आदि अचित्तद्रव्यका त्याग न करे यह दूसरा अभिगम है (३) एक (बिना जोड़का) तथा चौड़े वस्त्रसे उत्तरासंग करे, यह तीसरा अभिगम है । (४) भगवानको देखने पर दोनों हाथ जोड़ “ णमो जिणाणं ” यह कहता हुआ वंदना करे, यह चौथा अभिगम है । (५) मनको एकाग्र करे, यह पांचवां अभिगम है । ऐसे पांच अभिगम पूर्ण करे तथा निसीही करके जिनमंदिरमें प्रवेश करे । इस विषयमें पूर्वाचार्योंका वचन इस भांति है:— सचित्तद्रव्यका त्याग करनेसे (१), अचित्त-

द्रव्यका त्याग नहीं करनेसे (२), एकशाय (एकपनेका बिना जोड़) उत्तरासंग करनेसे (३), भगवानको देखते ही दोनों हाथ जोड़नेसे (४), और मनकी एकाग्रता करनेसे (५) इत्यादि, राजाआदिने तो जिनमंदिरमें प्रवेश कर उसी समय राज चिन्ह त्याग देना चाहिये । कहा है कि— खड्ग, छत्र, जूता, मुकुट और चंवर ये श्रेष्ठ राजचिन्ह त्याग कर... इत्यादि ।

मंदिरके प्रथमद्वारमें प्रवेश करते, मन, वचन, कायासे घर सम्बन्धी व्यापारका निषेध किया जाता है, ऐसा बतानेके हेतु तीन बार निसीही करी जाती है, परन्तु वह निसीही एक ही गिनी जाती है, कारण कि, एक घर सम्बन्धी व्यापार ही का उसमें निषेध किया है । पश्चात् मूलनायकजीको वन्दना कर “कल्याणके इच्छुक लोगोंने सर्व उत्कृष्ट वस्तुएं प्रायः दाहिनी ओर ही रखना,” ऐसी नीति है, अतएव मूलनायकजीको अपनी दाहिनी ओर करता ज्ञान, दर्शन और चारित्र्य इन तीनोंकी आराधना करनेके हेतु तीन प्रदक्षिणा दे । उसके अनन्तर भक्तिसे परिपूर्ण मनसे “ नमो जिष्णुः ” ऐसा प्रकट कहे और अर्धावनत (जिसमें आधा शरीर नमता है ऐसा) अथवा पंचांग प्रणाम करे, पश्चान् पूजाके उपकरण हाथमें ले भगवानके गुणगणसे रचे हुए स्तवनोंको अपने परिवारके साथ मधुर व गंभीर-स्वरमें गाता हुआ, हाथमें योगमुद्रा धारण

क्रिये हुए, पग पग पर जीवरक्षाका उपयोग रखता और एकाग्रमनसे भगवानके गुणगणका चिन्तन करता हुआ तीन प्रदक्षिणा दे। घरदेरासरमें इस भांति प्रदक्षिणा आदि क्रिया करना नहीं बनता। दूसरे बडेमंदिरमें भी कारणवश ये क्रिये न जावे, तो भी बुद्धिशाली मनुष्यने ये सर्व क्रियाएं निरन्तर करनेका परिणाम रखना चाहिये, भाव छोड़ना नहीं। सुश्रावक प्रदक्षिणा देनेके अवसर पर समवसरणमें बैठे हुए चतुर्मुख भगवानका ध्यान करता हुआ मूलगभारेमें और भगवानकी पीठ तथा बायां और दाहिना भाग इन तीनों दिशाओंमें स्थित जिनचिम्बको वन्दना करे। इसी हेतुसे सब जिनमंदिर समवसरणके स्थानपर होनेसे मूलगभारेके बाहरके भागमें तीनों दिशाओंमें मूलनायकजीके नामसे जिनचिम्ब कराये जाते हैं, “ अरिहंतकी पीठ छोड़ना ” ऐसा कहा है, जिससे चारों दिशाओंको अरिहंतकी पीठ रहनेसे पीठकी ओर रहनेका दोष टलता है।

पश्चात् जिनमंदिरका पूजन, खुदने सीलक आदिका नामा लिखना इत्यादि आगे कहा जायगा उसके अनुसार यथायोग्य चैत्य चिन्ता तथा पूजाकी संपूर्ण सामग्री प्रथम ही से तैयार करके मुख्यमंडपादिकमें चैत्यव्यापारनिषेधरूप दूसरी निसीही करे। और मूलनायकजीको तीन बार वन्दना कर पूजा करे। भाष्यमें कहा है कि— उसके अनंतर प्रथम निसीही कर, मुख्यमंडपमें प्रवेश कर, जिनभगवानके सन्मुख

घुटने और हाथ भूमिको लगा यथाविधि तीन बार वन्दना करे । पश्चात् आनन्दसे प्रफुल्लित हो सुश्रावक मुखकोश करके जिनेन्द्रप्रतिमा परका रात्रिका बासी फूल आदि निर्माल्य मोरपंखीसे उतारे । तत्पश्चात् स्वयं जिनेश्वरके मन्दिरको पूजे, अथवा दूसरेसे पुंजावे । तदुपरान्त सुविधाके अनुसार जिन-त्रिम्बकी पूजा करे । मुखकोश आठ पडका वस्त्रके टुकड़ेसे मुख तथा नासिकाका निश्वास रोकनेके निमित्त बांधना । बरसात-के समय निर्माल्यमें कुंथुआआदि जीवोंकी उत्पत्ति भी हो जाती है, इसलिये वैसे समयमें निर्माल्य तथा स्नात्रका जल जहां प्रमादी मनुष्यकी हालचाल न हो ऐसे पवित्रस्थानमें डालना । ऐसा करनेसे जीवकी रक्षा होती है और आशातना भी टलती है । घरदेरासरमें तो प्रतिमाको ऊंचे स्थान पर भोजनादिकृत्योंमें व्यवहारमें न आने वाले पवित्रपात्रमें स्थापन कर दोनों हाथोंसे पकड़ें हुए पवित्र कलशादिकके जलसे अभिषेक करना । उस समय—

बालत्तर्णम्मि सामिअ !, सुमेरुमिहरम्मि कणयकलमेहिं ।

तिअसीसरेहि ण्हविओ, ते धन्ना जेहिं दिट्ठोमि ॥ १ ॥

हे स्वामिन ! चौसठ इन्द्रोंने वात्यावस्थामें मेरुपर्वत पर सुवर्ण-कलशसे आपको स्नान कराया, उस समय जिन्होंने आपको देखा, वे जीव धन्य हैं ॥ १ ॥ २ “ तिअसासुरेहिं ” इति पाठान्तरे ।

इत्यादिका मनमें चिन्तवन करना । पश्चात् यतना पूर्वक बालाकूचीसे जिनबिम्ब ऊपरके चन्दनादिक उतार पुनः प्रक्षाल करके दो अंगलूहणोंसे (अंगपूछनेका वस्त्र) जिनबिम्ब ऊपरका सर्व पानी पोंछ लेना पश्चात् पाँचके दो अंगूठे, दो घुटने, हाथकी दो कलाई, दो कंधे और मस्तक इतने स्थानकी अनुक्रमसे पूजा करना, ऐसा कहा है अतः आगे वर्णन किया जायगा उसके अनुसार सीधे क्रमसे नवों अंगोंमें चंदन, केशर आदि वस्तुओंसे पूजा करे । कोई २ आचार्य कहते हैं कि प्रथम कपाल पर तिलक कर पश्चात् नवाङ्गकी पूजा करना । श्रीजिन-प्रभसूरिने करी हुई पूजाकी विधिमें तो सरस और सुगन्धित चंदनसे भगवानका दाहिना घुटना, दाहिना कंधा, कपाल बाँया कन्धा और बाँया घुटना इन पाँच अथवा हृदय सहित छः अंगमें पूजा कर ताजा फल और वासशेष इन दो द्रव्योंसे पूजा करे, ऐसा कहा है । जो पहिले किसीने पूजा करी होवे, और अपने पास पहिली पूजासे श्रेष्ठ पूजा करनेकी सामग्री न होवे तो वह पूजा दूर नहीं करना, कारण कि, उस (सुंदर) पूजाके दर्शनसे भव्यजीवोंको होने वाले पुण्यानुबंधिपुण्यके अनुबंधको अन्तराय करनेका प्रसंग आता है । अतएव पहिली पूजा न उतार कर अपने पासकी सामग्रीसे उसे बढ़ाना । बृहद्भाष्यमें कहा है कि— जो प्रथम किसीने बहुतसा द्रव्यव्यय करके पूजा करी होवे, तो वही पूजा जिस तरह विशेष शोभा-

यमान होवे उसी प्रकार अपनी पूजा सामग्री वापर कर पूजा करना । ऐसा करनेसे प्रथम पूजा निर्माल्य भी नहीं मानी जाती, कारण कि. उसमें निर्माल्यका लक्षण नहीं आता । गीतार्थ आचार्य उपभोग लेनेसे निरुपयोगी हुई वस्तुको निर्माल्य कहते हैं । इसीलिये वस्त्र, आभूषण, दोनों कुंडल इत्यादि बहुतसी वस्तुएं एक बार उतारी हुई पुनः जिनविम्ब पर चढ़ाते हैं । ऐसा न होवे तो एक गंधकापायिकावस्त्रसे एक सौ आठ जिनप्रतिमाकी अंगनूहणा करने वाले विजयादिक देवताका जो वर्णन सिद्धान्तमें किया है, वह कैसे घटित हो ? । जिनविम्ब पर चढ़ाई हुई जो वस्तु फीकी, दुर्गन्धित, देखने वालेको भली न लगे तथा भव्यजीवके मनको हर्षित न करे ऐसी होगई हो, उसीको श्रुतज्ञानी पुरुष निर्माल्य कहते हैं ऐसा संघाचारशुक्तिमें कहा है । प्रद्यम्नसूरिरचित विचारसार-प्रकरणमें तो इस प्रकार कहा है कि चैत्यद्रव्य (देवद्रव्य) दो प्रकारका है-- एक पूजाद्रव्य और दूसरा निर्माल्यद्रव्य । पूजाके निमित्त लाकर जो द्रव्य एकत्रित किया हो वह पूजाद्रव्य है, और अक्षत, फल, बलि (मिठाई आदि), वस्त्र आदि संबंधी जो द्रव्य, वह निर्माल्यद्रव्य कहलाता है । उमका जिन-मंदिरमें उपयोग जानो । इस वचनमें प्रतिमाके सन्मुख धरे हुए अक्षतआदि द्रव्यको भी निर्माल्य कहा है, परन्तु अन्य-स्थानमें आगममें, प्रकरणमें अथवा चरित्रादिकमें कहीं भी यह

ज्ञात दृष्टिमें नहीं आती । स्थविरके संप्रदायादिकसे भी कोई गच्छ-
में यह रीति नहीं पाई जाती । साथ ही जो देहातादिकमें
द्रव्यप्राप्तिका उपाय नहीं होता, वहां प्रतिमाके सन्मुख
धरे हुए अक्षतआदि वस्तुके द्रव्य ही से प्रतिमा पूजा
जाती है । जो अक्षतादि निर्माल्य होते तो उससे प्रतिमाकी
पूजा भी कैसे होती ? अतः उपभोग करनेसे निरुपयोगी हुई
वस्तु ही को निर्माल्य कहना वही युक्ति संगत है । और “भोग-
विणष्टं द्रव्यं, निम्मलं विंतिगीअत्था” यह आगमवचन
भी इस बातको आधारभूत है । तत्त्व तो केवली जाने । चंदन-
फूल आदि वस्तुसे पूजा इस प्रकार करना कि, जिससे प्रतिमा-
के नेत्र तथा मुख न ढकने पावे, व पूर्वकी अपेक्षा विशेष
शोभा होवे, कारण कि, वैसा करने ही से दर्शकको हर्ष, पुण्य-
की वृद्धि इत्यादि होना संभव है ।

अंगपूजा, अग्रपूजा और भावपूजा ऐसे पूजाके तीन
प्रकार हैं । जिसमें प्रथम अंगपूजामें कौन २ सी वस्तु आवे
उसका वर्णन करते हैं । निर्माल्य उतारना, पूजनीसे पूजना,
अंग प्रक्षालन करना, बालाकूंचीसे केशर आदि द्रव्य उतारना,
केशरादिक द्रव्यसे पूजा करना, पुष्प चढ़ाना, पंचामृत स्नात्र
करना, शुद्धजलसे अभिषेक करना, धूप दिये हुए निर्मल तथा
कोमल ऐसे गंधकाषायिकादि वस्त्रसे अंग लोहना (पोंछना),
कपूर, कुंकुम प्रमुख वस्तुसे मिश्र किये हुए गोशीर्षचन्दनसे

विलेपन करना, आंगीआदिकी रचना करना, मोरोचन, कस्तूरीआदि द्रव्यसे तिलक तथा पत्रवल्ली (पील) आदिकी रचना करना, सर्वोत्कृष्ट रत्नजडित स्वर्ण तथा मोतीके आभूषण और सोने चांदीके फूल आदि चढाना । जैसे कि श्रीवस्तु-पालमंत्रीने अपने बनवाये हुए सवालाख जिनविम्ब पर तथा श्रीसिद्धाचलजी ऊपर आई हुई सर्व प्रतिमाओं पर रत्नजडित सुवर्णके आभरण चढाये, तथा जैसे दमयंतीने पूर्वभवनमें अष्टा-पद तीर्थ पर आई हुई चौबीस प्रतिमाओं पर रत्नके तिलक चढाये, वैसे ही सुश्रावकने जिस प्रकारसे अन्य भव्यप्राणियों-के भाव वृद्धिको प्राप्त हों उस प्रकारसे आभरण चढाना । कहा है कि—

पवरेहिं साहेणहिं, पायं भावोवि ज यए पवरो ।

न य अन्नो उवओगो, एएसिं सयाण लट्टयरो ॥ १ ॥

प्रशंसनीय साधनोंसे प्रायः प्रशंसनीय भाव उत्पन्न होते हैं । प्रशंसनीय साधनोंका इसके अतिरिक्त अन्य उत्तम उपयोग नहीं । तथा पहेरावणी, चन्द्रोदय आदि नानाविधि दुकूलादि वस्त्र चढाना, श्रेष्ठ ताजा और शास्त्रोक्त विधिके अनुसार लाये हुए शतपत्र (कमलकी जाति), सहस्रपत्र (कमलविशेष)-जाड़, केतकी, चंपा आदि फूलोंकी गुंथी हुई, धिरी हुई, पूरी हुई तथा एकत्रित की हुई ऐसी चार प्रकारकी माला, मुकुट, शिखर, फूलघर आदिकी रचना करना, जिनेश्वर भगवानके

हाथमें सोनेके थिजोरे, नारियल, सुपारी, नागरवेलके पान, सुवर्णमुद्रा, अंगूठियाँ, मोदक आदि रखना, धूप उखेवना, सुगन्धित वासक्षेप करना इत्यादि सर्व उपचार अंगपूजामें होते हैं। बृहद्भाष्यमें कहा है कि—

पद्माणविलेपनआहरणवत्थफलगंधधूपपुष्केहि ।

कीरइ जिणंगपूआ, तत्थ विही एम नायव्वो ॥ १ ॥

वत्थेण बंधिरुणं. नासं अहवा जहासमाहीए ।

वज्जेअव्वं तु तया देहंभिवि कंडुअणमाई ॥ २ ॥

स्नात्र, विलेपन, आभरण, वस्त्र, फल, सुगन्धित चूर्ण (वासक्षेप) : धूप तथा पुष्प इतने उपचारोंसे, जिनेश्वर भगवानकी अंगपूजा करी जाती है। उसकी विधि इस प्रकार है—

वस्त्रसे नासिका बांध कर अथवा जिस प्रकार चित्तकी समाधि रहे वैसा करके पूजा करना। उस समय शरीरमें खुजाना आदि क्रिया अवश्य त्याग देना। अन्य स्थान पर भी कहा है कि— जगतबंधु श्रीजिनेश्वरभगवानकी पूजा करते समय शरीरमें खुजाना, खंखार डालना और स्तुति स्तोत्र बोलना ये तीन बातें वर्जित हैं। देवपूजाके समय मौन करना ही श्रेष्ठ मार्ग है, कदाचित् वैसा न किया जा सके तो सावद्यवचन तो सर्वथा छोड़ना। कारण कि निसीहि करनेमें गृहव्यापारका निषेध किया है। उसीके लिये हस्त, मुख, नेत्र प्रमुख अवयवसे पापहेतु संज्ञा भी न करना, करनेसे अनु-

चिनपनका प्रसंग आता है। यहां जिणहा श्रेष्ठिका दृष्टान्त कहते हैं—

धोलका नगरमें जिणहा नामक अतिदरिद्री श्रेष्ठी रहता था। वह धीके मटके, कपासकी गांठे आदि बोझ उठाकर अपना निर्वाह करता था। भक्तामरप्रमुखस्तोत्रके स्मरणसे प्रसन्न हुई चक्रेश्वरीदेवीने उसको एक वशीकरण रत्न दिया। उस रत्नके प्रभावसे जिणहाने मार्गमें रहने वाले तीन प्रसिद्ध दुष्टचोरोंको मार डाला। वह आश्चर्यकारी वृत्तान्त सुन पाटणके भीमदेव-राजाने आदर सहित उसे बुलाकर देशकी रक्षाके लिये एक खड्ग दिया, तब शत्रुशल्य नामक सेनापतिने डाहवश कहा कि—

ग्वान्डो नासु समप्पिइ, जसु ग्वान्डे अभ्यास ।

जिणहा इक्कुं समप्पिइ, तुल चेलउ कप्पास ॥ १ ॥

खड्ग उसीको देना चाहिये कि जिसे उसका अभ्यास होवे। जिणहाको तो धी तेलके मटके वस्त्र और कपास ये ही देना चाहिये ॥ १ ॥

यह सुन जिणहाने उत्तर दिया कि—

असिधर धणुधर कुंतधर, सत्तिघरा अ बहू य ।

सत्तुसलरणि जे शूर नर, जणणी ति विरल पसूअ ॥ २ ॥

अश्वः शस्त्रं दास्त्रं वाणी वीणा नरश्च नारी च ।

पुरुषविशेषं प्रप्ता भवन्त्ययोग्यश्च योग्याश्च ॥ २ ॥

तलवार, धनुष्य और भालेको पकड़नेवाली तो संसारमें बहुत व्यक्ति हैं, परन्तु शत्रुओंके शल्यरूप ऐसे हे सेनानि रणभूमिमें शूरवीर पुरुषोंको प्रसव करनेवाली तो कोई कोई ही माता होती है ।

अश्व, शस्त्र, शास्त्र, वीणा, वाणी, नर और स्त्री इतनी वस्तुएं योग्यपुरुषके हाथमें जायें तो श्रेष्ठ योग्यता पाती हैं, और अयोग्यपुरुषोंके हाथमें जावे तो योग्यता नहीं पाती। जिणहाके ऐसे वचनसे भीमदेव राजाने हर्षित हो उसे कोतवालका अधिकार दिया। इसके बाद जिणहाने गुजरातदेशमें चोरका नाममात्र भी न रहने दिया।

एक दिन सोरठ देशके किसी चारणने जिणहाकी परीक्षा करनेके हेतु ऊंटकी चोरी करी। जिणहाके सिपाही उसे पकड़कर देवपूजाके समय प्रातःकालमें उसके सन्मुख लाये। उसने (जिणहाने) फूलका बीट तोड़कर सूचना दी कि “ इसे मार डालो ” तब चारणने कहा—

जिणहाओ नइ जिणवरह, न मिले तारो तार।

जिण कर जिणवर पूजिए, ते किम मारणहार? ॥१॥

चारणका यह वचन सुन शर्मित हो जिणहाने “ फिरसे चोरी न करना ” यह कह उसे छोड़ दिया। चारण बोला—

इका चोरी सा किया, जा खोलडे न माय।

बीजी चोरी किम करे?, चारण चोर न थाय ॥४॥

चारणकी इस प्रकार चतुरतापूर्ण उक्ति सुनकर जिणहाने उसे पहिरावणी (सिरोपाव) दी। पश्चात् जिणहाने तीर्थयात्राएं करी, जिनमंदिर बंधाये, पुस्तकें लिखाई, तथा अन्य-भी बहुतसा पुण्य किया। जिणहाने पोटली ऊपरका डाण (कर,

महसूल) छुड़ाया आदि बातें अभी तक लोकमें प्रचलित हैं। यह जिणहाका प्रबंध हुआ।

मूलनायकजीकी सविस्तार पूजा कर लेनेके बाद क्रमशः सामग्रीके अनुसार सब जिनबिम्बकी पूजा करना। द्वारपरके समयसरणके जिनबिम्बकी पूजा भी गभारेमें से बाहिर निकलते समय करना उचित है, परन्तु प्रथम नहीं। कारण कि, मूल-नायकजी ही की प्रथम पूजा करना उचित है। द्वारपरका बिम्ब द्वारमें प्रवेश करते समय प्रथम पास आता है, इससे उसकी प्रथम पूजा करना, ऐसा जो कदापि कहें तो बड़े जिनमंदिरमें प्रवेश करते तो बहुतसे जिनबिम्ब प्रथम आते हैं, जिनमें उनकी भी प्रथम पूजा करनेका प्रसंग आवे, और वैसा किया जाय तो पूष्पादिक सामग्री थोड़ी हो तो मूलनायकजी तक पहुंचते सामग्री पूरी होजानेसे मूलनायकजीकी पूजा भी न होसके। वैसे ही श्रीसिद्धाचलजी, गिरनार आदि तीर्थोंमें प्रवेश करते मार्गमें समीप बहुतसे चैत्य आते हैं, उनके अंदर रही हुई प्रतिमाओंका प्रथम पूजन करे तो अंतिम किनारे मूलनायकजीके मंदिरमें जाना होसके, यह बात योग्य नहीं। अगर यह योग्य भी माने तो उपाश्रयमें प्रवेश करते गुरुको वंदन करनेके पहिले समीपस्थ साधुओंको प्रथम वंदना करनेका प्रसंग आता है। समीपस्थ-प्रतिमाओंको मूलनायकजीकी पूजा करनेसे पहिले मात्र प्रणाम करना योग्य है। संघाचारमें तीसरे उपांगको मिलती विजय-

देवताकी वक्तव्यतामें भी द्वार और समवसरणके जिनचिबकी पूजा मूलनायकजीकी पूजा कर लेनेके अनंतर कही है । यथा:—

पश्चात् सुधर्मसभाको जाकर जिनेश्वर भगवानकी दाढ़ देखते ही वंदना करे, खोलकर मोरपंखकी पूंजणीसे प्रमार्जन करे, सुगंधित जलसे एकवीस बार प्रक्षालन कर गौशीर्षचंदनका लेप करे और पश्चात् सुगंधित पुष्पआदि द्रव्यसे पूजा करे । तदुपरान्त पांचों सभाओंमें पूर्वानुसार द्वार प्रतिमाकी पूजा करे, द्वारकी पूजा आदि बाकी रहा वह तीसरे उपांगमें से समझ लेना । इसलिये मूलनायकजीकी पूजा अन्य सर्व प्रतिमाओंसे प्रथम और विशेष शोभासे करना । कहा है कि—

उचिअत्तं पूआणं, विसेसकरणं तु मूलचिबरस ।

जं पडइ तत्थ पदमं, जणस्स दिट्ठी सहमणेण ॥ १ ॥

मूलनायकजीकी पूजामें विशेष शोभा करना उचित है; कारण कि, मूलनायकजी ही में भव्यजीवोंकी दृष्टि और मन प्रथम आकर पड़ता है ।

शिष्य पूछता है कि, “ पूजा, वन्दन आदि क्रिया एकको करके पश्चात् बाकीके अन्य सबको करनेमें आवे, तो उससे तीर्थकरोंमें स्वामीसेवकभाव किया हुआ प्रकट दृष्टिमें आता है । एक प्रतिमाकी अत्यादरसे विशिष्ट पूजा करना और दूसरी प्रतिमाओंकी सामग्रीके अनुसार थोड़ा करना, यह भी भारी अवज्ञा होती है, यह बात निपुणबुद्धि पुरुषोंके ध्यानमें आवेगी.”

आचार्य समाधान करते हैं कि— “ सर्व जिन- प्रतिमाओंका प्रातिहार्यआदि परिवार समान ही है, उमे प्रत्यक्ष देखनेवाले ज्ञानी पुरुषोंके मनमें तीर्थंकरोंमें परस्पर स्वामीसेवकभाव है ऐसी बुद्धि उत्पन्न नहीं होती । मूलनायकजीकी प्रतिष्ठा प्रथम हुई इसलिये उनकी पूजा प्रथम करना यह व्यवहार है, इससे बाकी रही तीर्थंकरकी प्रतिमाओंका नायकपन नहीं जाता । उचित प्रवृत्ति करनेवाला पुरुष एक प्रतिमाको बंदना पूजा तथा बलि अर्पण करे तो, उससे दूसरी प्रतिमाओंकी आशातना देखनेमें आती नहीं । जैसे मिट्टीकी प्रतिमाकी पूजा, अक्षत आदि वस्तु ही से करना उचित है. और सुवर्णआदि धातुकी प्रतिमाको तो स्नान, विलेपन इत्यादिक उपचार भी करना उचित है । कल्याणक इत्यादिकका महोत्सव हांमे तो एक ही प्रतिमाकी विशेष पूजा करे तो जैसे धर्मज्ञानी पुरुषोंके मनमें शेष प्रतिमाओंमें अवज्ञा परिणाम नहीं आते, इस प्रकार उचितप्रवृत्ति करनेवाले पुरुषका मूलनायकजीकी प्रथम और विस्तारसे पूजा करने में भी शेष प्रतिमाओंकी अवज्ञा और आशातना नहीं होती.

जिन-मंदिरमें जिन-प्रतिमाकी पूजा की जाती है, वह जिनेश्वर भगवानके हेतु नहीं परन्तु बोध पाये हुए पुरुषोंको शुभ भावना उत्पन्न करने तथा बोध न पाये हुए पुरुषोंको बोध प्राप्त करनेके हेतु की जाती है । कोई २ भव्य जीव चैत्य-

के दर्शनसे, कोई २ प्रशान्त जिनघिम्व देखनेसे, कोई २ पूजाका अतिशय देखनेसे और कोई २ जीव जिनेश्वर महाराजके दर्शन हेतु आए हुए मुनि महाराजके उपदेशसे प्रतिबोधको प्राप्त होते हैं। अतः बड़े मंदिर व घरदेरासर तथा उनमेंकी सर्व प्रतिमाएं तथा विशेष कर मूलनायकजीकी प्रतिमा ये सब अपने सामर्थ्य, देश तथा काल इनके अनुसार सर्वोत्कृष्ट बनवाना। घरदेरासर तो पीतल, तांबा आदि धातुका अभी भी बन सकनेके योग्य है। धातुका करानेकी शक्ति न हो तो हस्तिदन्त आदि वस्तुका करवाना, अथवा हस्तीदन्तकी भमरी-आदिकी रचनासे शोभित पीतलकी पट्टीसे व हिंगूलक रंगसे सुन्दर देखाव वाला तथा श्रेष्ठ चित्रकारीसे रमणीय ऐसा काष्ठादिकका घरदेरासर करवाना। बड़े जिनमंदिरमें तथा घरदेरासरमें भी प्रतिदिन चारों तरफसे पूंजना, वैसे ही बांधकाममें आई हुई लकड़ियां उज्ज्वल करनेके हेतु उन पर तैल लगाना, दीवारें चूनेसे पोतना, जिनेश्वर भगवानका चरित्र दिखावे ऐसी चित्रकारी करना, पूजाकी समस्त सामग्री बराबर संचित कर रखना, पडदे तथा चन्दुए बांधना आदि मंदिरके काम इस प्रकार करना कि जिससे मंदिर तथा प्रतिमाकी विशेष शोभा बढे। घरदेरासरके ऊपर धोतियां, पछेडी आदि वस्तुएं भी न डालना, कारण कि, बड़े चैत्यकी भांति उसकी (घर देरासरकी) भी चौरासी आशातना ढालना आवश्यकीय है।

पीतल, पाषाण आदिकी प्रतिमा होंवे तो उसको नहला लेने के अनन्तर नित्य एक अंगलूहणेसे सर्व अवयव जल रहित करना और उसके बाद दूसरे कोमल और उज्ज्वल अंगलूहणेसे बारम्बार प्रतिमाके सर्वाङ्गको स्पर्श करना । ऐसा करनेसे प्रतिमाएं उज्ज्वल रहती हैं । जहां जलकी जरा भी आर्द्रता रहती है वहीं दाघ पड़जाता है इसलिये जलकी आर्द्रता सर्वथा दूर करना । विशेष केशर युक्त चन्दनका लेप करनेसे भी प्रतिमाएं अधिकाधिक उज्ज्वल होती हैं । पंचतीर्थी, चतुर्विंशति-पट्ट इत्यादि स्थलमें स्नात्रजलका परस्पर स्पर्श होता है, इससे कोई आशातना की भी शंका मनमें न लाना ।

श्रीरायपसेणीसूत्रमें सौधर्मदेवलोकमें सूर्याभदेवताके अधिकारमें तथा जीवाभिगममें भी विजयापुरी राजधानीमें विजय देवताके अधिकारमें भृंगार (नालवाला कलश), मोरपंख, अंगलोहणा, धूपदान आदि जिनप्रतिमाके तथा जिनेश्वर भगवानकी दाढ़की पूजाका उपकरण एक एक ही होता है । निर्वाण पाये हुए जिनेश्वर भगवानकी दाढ़ें देवलोककी डिब्बियामें तथा तीनों लोकमें हैं, वे परस्पर एक दूसरीसे लगी हुई हैं, इसीसे उनके स्नानका जल भी परस्पर स्पर्श करता है । पूर्वधर आचार्योंके समयमें बनवाई हुई प्रतिमाएं आदि किसी नगरमें अभी हैं । उनमें कितनी ही प्रतिमाएं एकही भगवानकी होनेसे व्यक्ता नामकी हैं, कितनी ही

चौबीसी होनेसे क्षेत्रानामकी हैं तथा कितनी ही १७० भगवान की होनेसे महानामकी हैं । और दूसरी भी ग्रंथोक्त प्रतिमाएं हैं । अरिहंतकी एक ही पाट पर एक ही प्रतिमा होवे तो उसे व्यक्ता कहते हैं, एक ही पाट आदि पर चौबीस प्रतिमाएं होवें तो उन्हें क्षेत्रा कहते हैं और एक ही पाट आदि पर सत्तर प्रतिमाएं होवें तो उनको महा कहते हैं । फूलकी वृष्टि करते हुए मालाधर देवताओंकी जो प्रतिमाएं जिनबिम्बके मिर पर होती हैं उनका स्पर्श किया हुआ जल भी जिनबिम्बको स्पर्श करता है, तथा जिनबिम्बके चित्रवाली पुस्तकें भी एक दूसरेके ऊपर रहती हैं तथा एक दूसरीको स्पर्श करती हैं । इसलिये चौबीसपट्ट आदि प्रतिमाओंके स्नानका जल परस्पर स्पर्श करे उसमें कुछभी दोष ज्ञात नहीं होता । कारण कि, ग्रंथोंमें उस विषयका पाठ है और आचरणाकी युक्तियां भी है । बृहद्भाष्यमें भी कहा है कि कोई भक्तिमान श्रावक जिनेश्वरभगवानकी ऋद्धि दिखानेके हेतु देवताओंका आगमन तथा अष्ट प्रातिहार्य सहित एकही प्रतिमा कराता है, कोई दर्शन, ज्ञान व चारित्र इन तीनोंकी आराधनाके हेतु तीन प्रतिमाएं कराता है, कोई पंचपरमेष्ठीनमस्कारके उजमणेमें पंचतीर्थी (पांच प्रतिमा) कराता है, कोई भरत-क्षेत्रमें चौबीस तीर्थकर होते हैं अतः बहुमानसे कल्याणकतप-के उजमणेमें चौबीस प्रतिमाएं कराता है, कोई धनाढ्य श्रावक मनुष्य क्षेत्रमें उत्कृष्ट एक सौ सत्तर तीर्थकर विचरते हैं, इस-

लिये भक्तिसे एक सौ सत्तर प्रतिमाएं कराता है। अतएव त्रि-
तीर्थी (तीन प्रतिमाएं), पंचतीर्थी (पांच प्रतिमाएं), चतु-
र्विंशतिपट्ट (चौबीस प्रतिमाएं) आदि करना न्याययुक्त है।
इनि अंगपूजा।

अब अग्रपूजाका वर्णन करते हैं।

विविध प्रकारका ओदन (भात) आदि अशन, मिश्री
गुड आदिका पान, पक्वान्न मिठाई तथा फल आदि स्वाद्य और
ताम्बूल आदि स्वाद्य, ऐसा चार प्रकारका नैवेद्य भगवानके
सन्मुख रखना। जैसे श्रेणिक राजा प्रतिदिन सोनेके एकसौ आठ
जवसे मंगलिक आलिखता था, वैसे ही सोने अथवा चांदीके
चांचल, सफेद सरशव, चांचल इत्यादिक वस्तुमें अष्टमंगलिक आ-
लिखना, अथवा ज्ञान, दर्शन, चारित्रकी आराधनाके हेतु पाटले
आदि वस्तुमें श्रेष्ठ अखंड चांचलके क्रमशः तीन पुंज (टिगलियां)
करके डालना। गोशीर्षचंदनके रमसे पांचों अंगुलियों सहित
हथेलीसे मंडल रचना आदि, तथा पुष्पांजलि आरती आदि सर्व
अग्रपूजामें आते हैं। भाष्यमें कहा है कि-गायन, नृत्य, वाजित्र,
नमक उतारना, जल तथा आरती दीप आदि जो कुछ किया
जाता है, उस सबका अग्रपूजामें समावेश होता है। नैवेद्यपूजा
तो नित्य सुखपूर्वक की जा सके ऐसी है, तथा उसका फल
भी बहुत ही बड़ा है। कारण कि, साधारण धान्य तथा विशेष
कर पकाया हुआ धान्य जगत्का जीवन होनेसे सर्वोत्कृष्ट रत्न

कहा जाता है, इसीलिये वनवाससे आनेपर रामचन्द्रजीने महाजनसे अन्नकी कुशल पूछी थी। कलहका अभाव और प्रीति-आदि परस्पर भोजन करानेसे दृढ़ होते हैं। विशेष कर देवता भी नैवेद्य ही से प्रसन्न होते हैं। सुनते हैं कि- अग्निवैताल सोमूढा धान्यके नैवेद्यआदि ही से विक्रमराजाके वशमें हुआ था। भूत, प्रेत, पिशाच आदि भी खीर, खिचड़ी, बड़ां इत्यादि अन्न ही का उतारा आदि मांगते हैं। वैसेही दिक्पालका तथा तर्थाकरका उपदेश होनेके अनन्तर जो बलि कराया जाता है वह भी अन्न ही से कराते हैं।

एक निर्धन कृषक साधुके वचनसे समीपस्थ जिनमंदिरमें प्रतिदिन नैवेद्य धरता था। एक दिन देर होजानेसे अधिष्ठायक यक्षने सिंहके रूपसे तीन भिक्षु बताकर उसकी परीक्षा करी। परीक्षामें निश्चल रहा इससे संतुष्ट यक्षके वचनसे सातवें दिन स्वयंवरमें कन्या, राजजय और राज्य ये तीनों वस्तुएं उसे मिलीं। लोकमें भी कहा है कि-

धूपो दहति पापानि, दीपो मृत्युविनाशनः ।

नैवेद्ये विपुलं राज्यं, सिद्धिद्वारी प्रदक्षिणा ॥ १ ॥

धूप पापोंको भस्म कर देता है, दीप मृत्युको नाश करता है, नैवेद्य देनेसे विपुल राज्य मिलता है और प्रदक्षिणास कार्यसिद्धि होती है। अन्नआदि सर्व वस्तुएं निपजनको कारण होनेसे जल अन्नादिकसे भी अधिक श्रेष्ठ है। इसलिये वह भी

भगवानके सम्मुख धरना । नैवेद्य, आरती आदि आगममें भी कहा है । आवश्यकनिर्युक्तिमें कहा है कि- ' कीरइ बली ' याने ' बलि करी जाती है.' इत्यादि, निशीथमें भी कहा है कि- उसके अनन्तर प्रभावती रानीने बलिआदि सर्व करके कहा कि "देवाधिदेव वर्द्धमानस्वामीकी प्रतिमा हो तो प्रकट होओ." ऐसा कहकर (पेटी ऊपर) कुल्हाड़ा पटका । जिसमें (पेटीके) दो भाग हुए और उसके अन्दर सर्व अलंकारोंमें सुशोभित भगवन्तकी प्रतिमा देखनेमें आई । निशीथपीठिकांमें भी कहा है कि- बलि अर्थात् उपद्रव शमनके हेतु क्रूर (अन्न) किया जाता है । निशीथचूर्णिमें भी कहा है कि- संप्रति राजा रथयात्रा करनेमें पहिले विविध प्रकारके फल, मिठाई, शालि, दालि, कोडा, वस्त्र आदि भेंट करे । कल्पमें भी कहा है कि-

साहसिओ न सत्यं, तस्स कयं तेण करइ न्हणं ।

जं पुण पडिमाण कए, तस्स कहा का अजीवत्ता? ॥ १ ॥

तीर्थकर भगवान् लिंगमें साधर्मिक नहीं है इससे उनके लिये किया हुआ साधु लेसक्ते हैं तो पीछे अजीव प्रतिमाके लिए जो किया गया है वह लेनेमें क्या हरज है ? इससे जिने-श्वरका बली पका हुआ ही समझना.

श्रीपादलिसूत्रिने प्रतिष्ठाप्राभृतमेंसे उद्धृत ऐसी प्रतिष्ठा-पद्धतिमें कहा है कि- ' आगममें कहा है कि, आरती उतार, मंगलदीप कर, पश्चात् चार स्त्रियोंने मिलकर निम्मंछण गीतगान

आदि विधिके अनुसार करना । महानिशीथमें तीसरे अध्ययन-में कहा है कि- अरिहंत भगवंतकी गंध, माल्य, दीप, संमार्जन (पुंजना), विलेपन, विविध प्रकारका बलि, वस्त्र, धूप आदि उपचारसे आदर पूर्वक प्रतिदिन पूजा करते हुए तीर्थकी उन्नति करना चाहिये.” ॥ इति अग्रपूजा ॥

अब भावपूजा कहते हैं-

जिसके अंदर जिनेश्वर भगवानकी पूजा सम्बन्धी व्यापार-का निषेध आता है ऐसी तीसरी निसीही कर पुरुषने भगवान-की दाहिनी ओर और स्त्रीने बाई ओर आशातना टालनेके हेतु व्यवस्था हो तो जघन्यसे भी नव हाथ, घरदेरासर होवे तो एक हाथ अथवा आधा हाथ और उत्कृष्टसे तो साठ हाथ अव-ग्रहसे बाहर रहकर चैत्यवन्दन, श्रेष्ठस्तुतियां इत्यादि बोलनेसे भावपूजा होती है । कहा है कि- चैत्यवंदन करनेके उचित स्थान पर बैठ अपनी शक्तिके अनुसार विविध आश्चर्यकारी गुणवर्णनरूप स्तुति स्तोत्रआदि कहकर देववन्दन करे वह तीसरी भावपूजा कहलाती है । निशीथ चूर्णमें भी कहा है कि- वह गंधारश्रावक स्तव स्तुतिसे भगवानकी स्तवना करता हुआ वैताद्व्यगिरिकी गुफामें रात्रिमें रहा । वैसे ही वसुदेवहिंडिमें भी कहा है कि- वसुदेवराजाने प्रभातमें सम्यक्तत्त्वपूर्वक श्रावकके सामा-यिक प्रमुख व्रतको अंगीकार कर पञ्चखान ले करके कायोत्सर्ग स्तुति तथा वंदना करी । इस प्रकार बहुतसे स्थानोंमें “ श्रावक-

आदि मनुष्योंने कायोत्सर्ग, स्तुति आदि करके चैत्यवन्दन किया ” ऐसा कहा है, चैत्यवन्दन जघन्यादिभेदसे तीन प्रकारका है । भाष्यमें कहा है कि—

नमुकारेण जहन्ना, चिद्वन्दनं मज्झ दंडथुइजुअला ।

पणदंडथुइचउक्कग-थयपणिहाणेहि उक्कोसा ॥ १ ॥

अर्थ- नमस्कार अर्थात् हाथ जोड़कर सिर नमाना इत्यादिलक्षणवाला प्रणाममात्र करनेसे, अथवा “ नमो अरिहंताणं ” ऐसा कह नमस्कार करनेसे, किंवा श्लोकादिरूप एक अथवा बहुतसे नमस्कारसे, किंवा प्रणिपातदंडकनामक शक्रस्तव (नमुत्थुणं) एकवार कहनेसे जघन्य चैत्यवन्दन होता है, चैत्यस्तवदंडक अर्थात् “ अरिहंतचेइयाणं ” कहकर अंतमें प्रथम एकही स्तुति (थुइ) बोले तो मध्यमचैत्यवन्दन होता है, पांच दंडक अर्थात् १ शक्रस्तव, २ चैत्यस्तव (अरिहंतचेइयाणं), ३ नामस्तव (लोगस्स), ४ श्रुतस्तव (पुक्खरवरदी), ५ सिद्धस्तव (सिद्धाणं बुद्धाणं) ये पांच दंडक कहकर अंतमें प्रणिधान अर्थात् जयवीयराय कहनेसे उत्कृष्ट चैत्यवन्दन होता है ।

दूसरे आचार्य ऐसा कहते हैं कि- एक शक्रस्तवसे जघन्य, दो अथवा तीन शक्रस्तवसे मध्यम और चार अथवा पांच शक्रस्तवसे उत्कृष्ट चैत्यवन्दन होता है । इरियावहीके प्रथम अथवा प्रणिधान (जयवीयराय) के अंतमें शक्रस्तव कहना, और द्विगुण चैत्यवन्दनके अन्तमें भी शक्रस्तव कहनेसे तीन शक्र-

स्तव होते हैं । एकवार वन्दनामें और पूर्वमें तथा अंतमें शक्र-
स्तव कहनेसे चार शक्रस्तव होते हैं अथवा द्विगुण चैत्यवन्दनमें
और प्रथम तथा अंतमें शक्रस्तव बोलनेसे चार शक्रस्तव होते
हैं, शक्रस्तव इरिषावही और द्विगुणचैत्यवन्दनमें तीन शक्रस्तव,
स्तुति, प्रणिधान और शक्रस्तव मिलकर पांच शक्रस्तव होते हैं ।

महानिशीथसूत्रमें साधुको प्रतिदिन सात चैत्यवन्दन कहे
हैं, तथा श्रावकको भी उत्कृष्टसे सात ही कहे हैं । भाष्यमें
कहा है कि- रात्रिप्रतिक्रमणमें १, जिनमंदिरमें २, आहार-
पानीके समय ३, दिवसचरिमपञ्चखानके समय ४, दैवसिक-
प्रतिक्रमणमें ५, सोनेके पहिले ६, तथा जागनेके बाद ७ इस
प्रकार साधुओंको रात्रिदिनमें मिलकर सात बार चैत्यवन्दन
होता है । प्रतिक्रमण करनेवाले श्रावकको प्रतिदिन सात बार
चैत्यवन्दन होता है, यह उत्कृष्ट मार्ग है । प्रतिक्रमण न करने-
वालेको पांचवार होता है, यह मध्यम मार्ग है । त्रिकाल पूजामें
प्रत्येकपूजाके अन्तमें एक एक मिलकर तीनवार चैत्यवन्दन करे
वह जघन्य मार्ग है । सात चैत्यवन्दन इस प्रकार हैं—
दो प्रतिक्रमणके समय दो, सोते व जागते मिलकर दो,
त्रिकालपूजामें प्रत्येकपूजाके अंतमें एक एक मिल कर तीन ।
इस भांति रातदिनमें सब मिलकर सात चैत्यवन्दन श्रावक
आश्रयी हुए । एक बार प्रतिक्रमण करता होवे तो छः होते हैं,
सोते समय आदि न करे तो पांच, चार आदि भी होते हैं ।

जिनमंदिर बहुतसे हों तो प्रतिदिन सातसे भी अधिक चैत्य-
 वंदन होते हैं । श्रावकने, कदाचित् तीन समय पूजा करना न
 बने तो तीन समय देववंदन अवश्य करना चाहिये । आगम-
 में कहा है कि— देवानुप्रिय ! आजमे लेकर यावज्जीव तक
 तीनों समय विक्षेप रहित और एकाग्रचित्तसे देववंदन करना,
 हे देवानुप्रिय ! अपवित्र, अशाश्वत और क्षणभंगुर ऐसे
 मनुष्यत्वसे यही सार लेने योग्य है । प्रभातके प्रथम जब
 तक साधु तथा देवको वंदना न की जाय, तबतक पानी नहीं
 पीना । मध्यान्हके समय जबतक देव व साधुकी वन्दना न की
 जाय, तबतक भोजन न करना । वैसे ही पिछले प्रहर देवको
 वन्दना किये बिना सज्जातले (विछौने पर) न जाया जाय ।
 ऐसा करना, कहा है कि—

सुपभाए समणोवासगस्म पाणंभि कप्पइ न पाउं ।

नो जाव चेइआइं, साहूवि अ वंदिआ विहिणा ॥ १ ॥

मज्झण्हे पुणरवि वंदिऊण नियमेण कप्पण सुत्तुं ।

पुण वंदिऊण ताइं, पओससमयंमि तो सुअइ ॥ २ ॥

प्रातःकाल जबतक श्रावकने देव तथा साधुको विधिपूर्वक
 वन्दन न किया हो तबतक पानी भी पीना योग्य नहीं, मध्यान्ह
 समय पुनः वन्दना करके निश्चयसे भोजन करना ग्राह्य है.
 संध्या समय भी पुनः देव तथा साधुको वन्दन करके पश्चात्
 सो रहना उचित है ।

गीत, नाटक आदि जो अग्रपूजामें कहा है वह भावपूजामें भी आता है. वे (गीत, नाटक) महान फलके कारण होनेसे मुख्यमार्गसे तो उदायनराजाकी रानी प्रभावतीकी भांति स्वयं ही करना । निशीथचूर्णिमें कहा है कि—प्रभावती रानी स्नान कर, कौतुक मंगल कर, उज्ज्वल वस्त्र पहिर यावत् अष्टमी तथा चतुर्दशीको भक्तिरागसे स्वयं ही रात्रिमें भगवानका नाटकरूप उपचार, करती थी और राजा (उदायन) भी रानीकी अनुवृत्तिसे स्वयं मृदंग बजाता था ।

पूजा करनेके समय अरिहंतकी छद्मस्थ, केवली और सिद्ध इन तीन अवस्थाओंकी भावना करना । भाष्यमें कहा है कि—
 ण्हवणच्चगेहिं छउमत्थवत्थ पढिहारगेहिं केवलिअं ।

पलिअंकुस्सरगेहि अ, जिणस्स भाविज्ज सिद्धत्तं ॥१॥

अर्थः—प्रतिमाके ऊपर भगवानको स्नान करानेवाले परिवारमें रचे हुए जो हाथमें कलश ले हाथी ऊपर चढ़े हुए ऐसे देवता, तथा उसी परिवारमें रचे हुए जो फूलकी माला धारण करनेवाले पूजक देवता, उनका मनमें चिंतवन कर भगवानकी छद्मस्थ अवस्थाकी भावना करना । छद्मस्थ अवस्था तीन प्रकारकी है । एक जन्मावस्था, दूसरी राज्यावस्था और तीसरी श्रामण्यावस्था—उसमें परिवारमें रचित स्नान करानेवाले देवताके ऊपरसे भगवानकी जन्मावस्थाकी भावना करना । परिवारमें रचे हुए ही मालाधारक देवताके ऊपरसे भगवानकी

राज्यावस्थाकी भावना करना, तथा भगवानके भस्तक व मुखका लोच किया हुआ देखनेसे भगवानकी श्रामण्यावस्था (दीक्षा ली उस समयकी अवस्था) तो सुखसे ज्ञात हो सके ऐसी है । ऐसेही परिवारकी रचनामें पत्रवेलकी रचना आती है, वह देखकर अशोकवृक्ष, मालाधारी देवता देखकर पुष्पवृष्टि और दोनों ओर वीणा तथा बांसुरी धारण करनेवाले देवता देखकर दिव्यध्वनिकी कल्पना करना । शेष चामर, आसन आदि प्रातिहार्य तो प्रकट ज्ञात होते हैं । ऐसे आठ प्रातिहार्य ऊपरसे भगवानकी केवली अवस्थाकी भावना करना । पद्मासनसे बैठे हुए अथवा काउ-स्सग्ग कर खड़े हुए भगवानका ध्यान कर सिद्धावस्थाकी भावना करना । इति भावपूजा ॥

बृहद्भाष्यमें कहा है कि - पांच प्रकारी, अष्टप्रकारी तथा विशेष क्राद्धि होनेपर सर्वप्रकारी पूजा भी करना । उसमें फूल, अक्षत, गंध, धूप, दीप, इन पांच वस्तुओंसे पांचप्रकारी पूजा होती है । फूल, अक्षत, गंध, दीप, धूप, नैवेद्य, फल व जल इन आठ वस्तुओंसे आठ कर्मोंका क्षय करनेवाली अष्टप्रकारी पूजा होती है । स्नात्र, अर्चन, वस्त्र, आभूषण, फल, नैवेद्य, दीप, नाटक, गीत, आरती आदि उपचारसे सर्वप्रकारी पूजा होती है । इस भांति बृहद्भाष्यादिग्रंथोंमें कहे हुए पूजाके तीन प्रकार हैं तथा फल, फूल आदि पूजाकी सामग्री स्वयं लावे वह प्रथम प्रकार, दूसरेके पाससे मंगावे वह दूसरा प्रकार और मनमें सर्व-

सामग्रीकी कल्पना करना यह तीसरा प्रकार । इस रीतिसे मन, वचन, कायाके योगसे करना, कराना तथा अनुमोदनासे कहे हुए तीन प्रकार, वैसेही पुष्प, आमिष (अशनादि प्रधान भोग्य वस्तु), स्तुति और प्रतिपत्ति (भगवानकी आज्ञा पालना) इस रीतिसे चार प्रकारकी पूजा है वह यथाशक्ति करना । ललित-विस्तरादिकग्रंथोंमें तो पुष्पपूजा, आमिषपूजा, स्तोत्रपूजा और प्रतिपत्तिपूजा इन चारों पूजाओंमें उत्तरोत्तर एकसे एक पूजा श्रेष्ठ है ऐसा कहा है । आमिषशब्दसे श्रेष्ठ अशनादिक भोग्य वस्तु ही लेना । गौडकोशमें कहा है कि—

“उत्कोचे पलले न स्त्री, आमिषं भोग्यवस्तुनि”

अर्थात्—स्त्रीलिंग नहीं हो ऐसे आमिष शब्दके लांच, मांस और भोग्यवरतु ऐसे तीन अर्थ होते हैं । प्रतिपत्तिशब्दका अर्थ ‘तीर्थकर भगवानकी आज्ञा सर्व प्रकारसे पालना’ ऐसा है । इस भांति पूजाके आगममें कहे हुए चार प्रकार है । वैसे ही जिनेन्द्र-भगवानकी पूजा द्रव्यसे और भावसे इस रीतिसे दो प्रकारकी है । जिसमें फूल, अक्षत आदि द्रव्यसे जो पूजा की जाती है वह द्रव्यपूजा और भगवानकी आज्ञा पालना वह भावपूजा है इस तरह कही हुई दो प्रकारकी पूजा वैसे ही फूल चढ़ाना, चन्दन चढ़ाना इत्यादिक उपचारसे कही हुई सत्रह प्रकारी पूजा, तथा स्नात्र, विलेपन आदि उपचारसे कही हुई इक्कीस प्रकारकी पूजा, इन सर्व पूजाके प्रकारोंका अंगपूजा, अग्रपूजा और भाव-

पूजा इन सर्वव्यापक पूजाके तीन प्रकारोंमें समावेश हो जाता है ।
सबहप्रकारी पूजाके भेद इस प्रकार है---

१ स्नात्र व विलेपन करना, २ वासपूजामें दो नेत्र चढ़ाना, ३ फूल चढ़ाना, ४ फूलकी माला चढ़ाना, ५ वर्णक (गंध विशेष) चढ़ाना, ६ जिनेश्वर भगवानकी चूर्ण चढ़ाना, ७ मुकुट आदि आभरण चढ़ाना, ८ फूलघर करना, ९ फूलका ढेर करना १० आरती तथा मंगलदीप करना ११ दीप करना, १२ धूप खेना, १३ नैवेद्य धरना, १४ उत्तम फल धरना, १५ गायन करना, १६ नाटक करना, १७ वाजित्र (वाजे) बजाना । इकवीसप्रकारीपूजाकी विधि भी इसी तरह कही है, यथा:---

पश्चिमदिशाको मुख करके दातन करना, पूर्वदिशाको मुख करके स्नान करना, उत्तरदिशाको मुख करके उज्ज्वल वस्त्र पहिरना, और पूर्व अथवा उत्तरदिशाको मुख करके भगवानकी पूजा करना । घरमें प्रवेश करते शल्य वर्जित वायें भागमें डेढ़ हाथ ऊंची भूमि पर घर देरासर करना । जो नीचे भूमिसे लगता हुआ देरासर करे तो उसका वंश क्रमशः नीचे जाता है अर्थात् धीमे २ नष्ट हो जाता है । पूजा करनेवाला मनुष्य पूर्व अथवा उत्तर दिशाकी तरफ मुख करके बैठे, परंतु दक्षिणदिशाको तथा चारों उपदिशाओंको मुख करके न बैठे । जो पश्चिमदिशाको मुख करके भगवानकी पूजा करे तो मनुष्यकी चौथी पीढ़ीमें उसका क्षय होता है; और दक्षिणदिशाको

मुख करे तो उस मनुष्यकी संतति वृद्धि नहीं पाती । अग्निकोण तरफ मुख करके पूजा करे, उस मनुष्यकी दिन प्रतिदिन धन-हानि होती है । वायव्यकोण तरफ मुख करे, तो संतति नहीं होती । नैऋत्यकोण तरफ मुख करे, तो कुल क्षय होता है और ईशान-कोण तरफ मुख करे तो बिलकुल संतति नहीं होती है । प्रति-माके दो पग, दो घुटने, दो हाथ, दो कंधे और मस्तक इन नौ अंगोंकी अनुक्रमसे पूजा करना । श्रीचंदन बिना किसी समय भी पूजा न करना, कपाल, कंठ, हृदय, कंधे और पेट (उदर) इतनी जगह तिलक करना । नव तिलकसे हमेशा पूजा करना । ज्ञानीपुरुषोंने प्रभातकालमें प्रथम वासपूजा करना, मध्याह्न-समयमें फूलसे पूजा करना और संध्यासमयमें धूपदीपसे करना । धूप भगवानकी बाई ओर रखना । अग्रपूजामें रखते हैं वे सब वस्तुएं भगवानके सन्मुख रखना । भगवानकी दाहिनी ओर दीप रखना । ध्यान तथा चैत्यवंदन भगवानकी दाहिनी ओर करना । हाथसे गिरा हुआ, वृक्षपरसे भूमि पर पड़ा हुआ, किसी तरह पांवको लगा हुआ, सिरपर उठाकर लाया हुआ, खराब वस्त्रमें रखा हुआ, नाभिसे नीचे पहिरे हुए वस्त्र आदिमें रखा हुआ, दुष्टमनुष्योंका स्पर्श किया हुआ बहुत लोगों द्वारा उठा धरीसे खराब किया हुआ और कीड़ियोंका काटा हुआ ऐसा फल, फूल तथा पत्र भक्तिसे जिनभगवानकी प्रीतिके धारण करणेके निमित्त नहीं चढ़ाना । एकफूलके दो भाग नहीं करना ।

कली भी तोड़ना नहीं । चंपा और कमल इनके दो भाग करनेसे बहुत दोष लगता है । गंध, धूप, दीप, अक्षत, मालाएं, वलि, नैवेद्य, जल और श्रेष्ठ फल इतनी वस्तुओंसे श्रीजिनभगवानकी पूजा करना । शांतिके निमित्त लेना हो तो पुष्प फल आदि श्वेत लेना, लाभके हेतु पीला लेना, शत्रुको जीतनेके लिये श्यामवर्ण, मंगलिकके लिये लाल और सिद्धिके हेतु पंचवर्ण लेना । पंचा-मृतका स्नात्र आदि करना, और शांतिके निमित्त घी गुड़ सहित दीपक करना । शांति तथा पुष्टिके निमित्त अग्निमें नमक डालना उत्तम है । खंडित, जुड़ा हुआ, फटा हुआ, लाल तथा भयंकर ऐसा वस्त्र पहिर कर किया हुआ दान, पूजा, तपस्या, होम, आवश्यक आदि अनुष्ठान सर्व निष्फल हैं । पुरुष पद्मासनमें बैठ, नासिकाके अग्रभाग पर दृष्टि राख, मौन कर, वस्त्रमें मुख-कोश बांध कर जिनेश्वरभगवानकी पूजा करें । १ स्नात्र, २ विलेपन ३ आभूषण, ४ फूल, ५ वास, ६ धूप, ७ दीप, ८ फल, ९ अक्षत १० पत्र, ११ सुपारी, १२ नैवेद्य, १३ जल, १४ वस्त्र, १५ चामर १६ छत्र, १७ वाजिन्त्र, १८ गीत, १९ नाटक, २० स्तुति, २१ भंडारकी वृद्धि । इन इकवीस उपचारोंसे इकवीस प्रकारी पूजा होती है । सर्वजातिके देवता ऐसी भगवानकी इकवीस प्रकारकी प्रसिद्ध पूजा निरंतर करते हैं; परंतु कलिकालके दोषसे कुमतिजीवोंने खंडित करी । इस पूजामें अपनेको जो वस्तु प्रिय हो, वह वस्तु भगवानको अर्पण करना, इकवीस प्रकारी पूजाका यह प्रकरण उमास्वातीवाचकजीने किया ऐसी प्रसिद्धि है ।

“ ईशान कोणमें देवमंदिर करना । ” ऐसा विवेक-विलासमें कहा है । वैसे ही धिपम आसन पर बैठ कर, पग पर पग चटाकर, खड़े पगसे बैठकर अथवा बायां पग ऊंचा रख कर पूजा करना नहीं । तथा बायें हाथसे भी पूजा न करना । खूबे, भूमिपर पड़े हुए, सड़ी हुई पखड़ीवाले, नीचलोगोंके स्पर्श किये हुए, खराब व बिना खिले हुए, कीड़ीसे खाये हुए बालसे भरे हुए, सड़े हुए, बासी, मकड़ीके जालेवाले, दुर्गन्धित, सुगंध रहित, खड़ी गंधके, *मलमूत्रके संपर्कसे अपवित्र हुए ऐसे फूल पूजामें न लेना ।

सविस्तार पूजा करनेके समय, प्रतिदिन तथा विशेषकर पर्वके दिन तीन, पांच अथवा सात पुष्पांजली चटाकर भगवानको स्नात्र करना । उसकी विधि इस प्रकार हैः—प्रभात-समय प्रथम निर्माल्य उतारना, प्रक्षालन करना, संक्षेपसे पूजा आरती, और मंगल दीप करना । पश्चात् स्नात्र आदि सविस्तार अन्य पूजा करना । पूजाके आरंभमें प्रथम भगवानके सन्मुख कुंकुमजलसे भरा हुआ कलश स्थापन करना । पश्चात्—

मुक्तालंकारविकारसारसौम्यत्वकांतिकमनीयम् ।

सहजनिजरूपनिर्जितजगन्नयं पातु जिनबिम्बम् ॥ १ ॥

यह मंत्र कह कर अलंकार उतारना ।

* बड़ी नीति लघुनीति करते समय पासमें रखे हुए ।

१ अलंकारके सम्बंध रहित और क्रोधादि रहित परंतु सार-भूत सौम्यकांतिसे रमणीय और अपने स्वाभाविक सुंदररूपसे जग-न्नयको जीतनेवाला जिनबिम्ब तुम्हारी रक्षा करे ।

अवणिअकुसुमाहरणं, पयइपइडिअमणोहरच्छायं ।

जिणरूवं मज्जणपीढसंठिअं वो सिवं दिसउ ॥ १ ॥

ऐसा कहकर निर्माल्य उतारना. पश्चात् पूर्वोक्त कलश ढोलना और संक्षेपसे पूजा करना. तदनंतर धोये हुए व सुगंधित धूप दिये हुए कलशोंमें स्नात्र योग्य सुगंधित जल भरना और उन सर्वकलशोंको एकपंक्तिमें स्थापन कर उनके ऊपर शुद्ध, उज्ज्वल वस्त्र ढांकना पश्चात् सर्व श्रावक अपने चंदन धूप-आदि सामग्रीसे तिलक कर, हाथमें सुवर्णकंकण पहिर, हाथको धूप दे तथा ऐसी ही अन्य क्रियाएं करके पंक्तिबद्ध खड़े रहें और कुसुमांजलिका पाठ बोलें । यथा:—

सयैवत्तकुंदमालइ- बहुविह कुसुमाइ पंचवत्ताइ ।

जिणनाहण्डवणकाले, दिति सुरा कुसुमंजली दिट्ठा ॥ १ ॥

ऐसा कहकर भगवानके मस्तक पर फूल चढाना ।

१ फूल तथा आभरणसे रहित, परन्तु स्वभावसिद्ध रही हुई मनोहरकांतिले शोभित और स्नात्रपीठ ऊपर रहा हुआ ऐसा जिनबिम्ब तुमको शिवसुख दे ।

२ देवता कमल, मोगरेके पुष्प, मालति आदि पांचवर्णके बहुतसी जातिके फूलकी पुष्पांजलि जिनभगवानको स्नात्रमें देते हैं ।

गंधायद्धि भ्रमहुय रमणहर भंकार सद्संगीता ।

जिणचलणे वरि मुक्का, हरउ तुम्ह कुसुमांजली दुरिअं ॥१॥

इत्यादि पाठ कहना. गाथादिकका पाठ होजाय, तब हरेक वस्त्र भगवानके चरण ऊपर एक २ श्रावकने कुसुमांजलिके फूल चढाना. अत्येक पुष्पांजलिका पाठ होनेपर तिलक, फूल, पत्र, धूप आदि पूजाका विस्तार जानना. पश्चात् ऊंचे व गंभीर स्वरसे प्रस्तुत जिन-भगवानकी स्नात्रपीठ ऊपर स्थापना होवे उनका जन्माभिषेककलशका पाठ बोलना. पश्चात् घी, सांटेका रस, दूध, दही और सुगन्धित जल मिलाए पंचामृतसे स्नात्र करना. स्नात्र करते बीचमें भी धूप देना, तथा स्नात्र चलता होवे तब भी जिनविंशके मस्तक पर पुष्प अवश्य रखना ।

वादिवेतालश्रीशांतिस्वरिजीने कहा है कि:— स्नात्र पूरा हो तब तक भगवानका मस्तक फूलसे ढका हुआ रखना. श्रेष्ठ सुगन्धित फूल उसपर इस भांति रखना कि, जिससे ऊपर पड़ती जलधारा दृष्टि न आवे. स्नात्र चलता हो तब शक्तिके अनुसार एक सरीखा चामर, संगीत, वाजिन्त्र आदि आडंबर करना. सर्वलोगोंके स्नात्र कर लेने पर शुद्धजलकी धारा देना. उसका पाठ यह है:—

३ सुगन्धीसे आकर्षित भ्रमरोके मनोहर गुंजारवरूप संगीतसे युक्त ऐसी भगवानके चरणोंपर रखी हुई. पुष्पांजलि तुम्हारा पाप हरण करे ।

अभिषेकनोपधारा, धारैव ध्यानमंडलाग्रस्य ।

भवभवनभित्तिभागान् , सूर्योऽपि भित्तु भागवती ॥ १ ॥

पश्चात् अंगलूहणा कर विलेपन आदि पूजा, पहिलेकी अपेक्षा अधिक करना. सर्वजातिके धान्यके पक्वान्न, शाक, घी, गुड आदि विगय तथा श्रेष्ठ फल आदि बलि भगवान्‌के सन्मुख धरना. ज्ञान, दर्शन, और चारित्र्य इन तीन रत्नोंके मालिक ऐसे तीनों लोकके स्वामी भगवान्‌के सन्मुख छोटे बड़ेके क्रमसे प्रथमश्रावकोंने तीन पुंज (ढिगली) करके उचित स्नात्र पूजादिक करना. पश्चात् श्राविकाओंने भी अनुक्रमसे करना. भगवान्‌के जन्माभिषेकके अवसर पर भी प्रथम अच्युत-इन्द्र अपने देवपरिवारयुक्त स्नात्रादि करता है, और उसके अनन्तर क्रमशः दूसरे इन्द्र करते हैं. शेषा (चढाई हुई पुष्प-माला) की भांति स्नात्र जल सिर पर छीटा होवे तो 'उसमें कोई दोष लगेगा' ऐसी कल्पना नहीं करना. हेमचन्द्रकृत वीरचरित्रमें कहा है कि-- सुर, असुर, मनुष्य और नागकुमार इन्होंने उस स्नात्र-जलको बारम्बार वंदन किया, और अपने सर्वाङ्ग पर छीटा. श्रीपद्मचरित्रमें भी उन्नीसवें उद्देशमें आपाद शुद्धि अष्टमीसे लेकर दशरथ राजाने कराये हुए अट्ठाई महोत्सवके चैत्य-स्नात्रोत्सवके अधिकारमें कहा है कि--दशरथ राजाने वह

१ ध्यानरूप मंडलकी धाराके समान भगवान्‌के अभिषेककी जलधारा संसाररूप महलकी भीतोंको बारम्बार तोड़ डाले ।

शान्तिकारक न्हवण-जल अपनी स्त्रियोंकी तरफ भेजा. तरुणदासियोंने शीघ्र जाकर दूसरी रानियोंके सिर पर उसे (न्हवण-जल छीटा, परन्तु बड़ी रानीको पहुंचानेका जल कंचुकी (अन्तःपुर-रक्षक) के हाथमें आया वृद्धावस्था होनेके कारण उसे पहुंचानेमें विलम्ब हुआ, तब बड़ी रानीको शोक तथा कोप हुआ. पश्चात् कंचुकीने आकर क्रोधित रानी पर उस न्हवण-जलका अभिषेक किया, तब उसका चित्त और शरीर शीतल हुए तथा कंचुकी पर हृदय प्रसन्न हुआ ।

बृहच्छांतिस्तवमें भी कहा है कि-- स्नात्र-जल मस्तकको चढ़ाना. सुनते हैं कि- श्रीनेमिनाथ भगवानके वचनसे कृष्णजीने नागेन्द्रकी आराधना करके पातालमेंसे श्रीपार्श्वनाथजीकी प्रतिमा शंखेश्वरपुरमें ला उसके न्हवण-जलसे अपना सैन्य जो कि जरा-संधकी की हुई जरासे पीड़ित हुआ था उसे आरोग्य किया. आगममें भी कहा है कि- जिनेश्वर भगवानकी देशनाके स्थान पर राजा आदि लोगोंने उछाला हुआ अन्नका बलि पीछा भूमि पर पड़नेके पहिले ही देवता उसका आधा भाग लेते हैं. आधेका आधा भाग राजा लेता है और शेष भाग अन्य लोग लेते हैं. उसका एक दानामात्र भी शिरपर रखनेसे रोग नष्ट होता है तथा छःमास तक अन्य रोग नहीं होता । पश्चात् सद्गुरुने स्थापन किया हुआ भारी महोत्सवसे लाया हुआ, और दुकूलादि श्रेष्ठ वस्त्रसे सुशोभित ऐसा महाध्वज तीन प्रदक्षिणा तथा बलि-

दान आदि विधि करके चढाना. वहाँ सर्व लोगोंने शक्तिके अनुसार पहिरामणी रखना. पश्चात् भगवान्‌के सन्मुख मंगल-दीप सहित आरतीका उद्योत करना. उसके पास अग्निपात्र (सिगडी) रखना. उसमें नमक व जल डाला जावेगा ।

उवणेउ मंगलं वो, जिगण मुहलालिजालसंवलिया ।

तिस्थपवत्तणसमए, तिअसविमुक्का कुसुमवुट्ठी ॥ १ ॥

यह मंत्र कहकर प्रथम पुष्पवृष्टि करना. पश्चात्--

डेअह पडिभग्गपसरं, पयहिणं मुणिवइं करेऊणं ।

पडइ सलोणत्तणलज्जिअं व लोणं हुअवहंमि ॥ १ ॥

इत्यादि पाठ कहकर जिनेश्वर भगवान्‌के ऊपरसे तीन फूल सहित लवण जल उतारना आदि करना. तत्पश्चात् आरती करना. वह इस प्रकारः-- आरतीके समय धूप खेना, दोनों दिशाओंमें ऊंची और अखंड कलशजलकी धारा देना. श्रावकोंने फूल बिखेरना. श्रेष्ठपात्रमें आरती रखकर,—

१ तीर्थंकरकी तीर्थप्रवृत्तिके अवसर पर शब्द करते भ्रमरोंके समुदायसे युक्त ऐसी देवताकी करीहुई पुष्पवृष्टि तुम्हारा मंगल करे ।

२ देखो, लवण मानो अपने लवणपनसे लज्जित हुआ और कोई उपाय न रहनेसे भगवान्‌को तीन प्रदक्षिणा देकर अग्निमें पड़ता है ।

मैरगयमणिघडियविसालथालमाणिककमंडिअपईवं ।

पहवणयरकरुकिखत्तं, भमउ जिगारासिअं तुम्ह ॥ १ ॥

इत्यादि पाठ कहकर प्रधानपात्रमें रखी हुई आरती तीन बार उतारना. त्रिषष्ठीय-चरित्रादि ग्रंथमें कहा है कि- पश्चात् इन्द्रने कृतकृत्यपुरुषकी भांति कुछ पीछे सरकके पुनः आगे आकर भगवान्की आरती ग्रहण करी. जलते हुए दीपोंकी कान्तिसे शोभायमान आरती हाथमें होनेसे, देदीप्यमान औषाधिके समुदायसे चमकते हुए शिखरसे सुशोभित इन्द्र मेरुपर्वतके समान दृष्टि आया. श्रद्धालुदेवताओंके पुष्प कृष्टि करते हुए इन्द्रने भगवान्के ऊपरसे तीन बार आरती उतारी. मंगलदीप भी आरतीकी भांति पूजा जाता है ।

कोसंबिसंठिअरस व, पयाहिणं कुणइ मउलिअपईवो ।

जिणसोम! दंसणे दिणयरुव्व तुह मंगलपईवो ॥ १ ॥

माभिज्जंतो सुरसुंदरीहिं तुह नाह ! मंगलपईवो ।

कणयायलस नउज्जइ, भाणुव्व पयाहिणं दिंतो ॥ २ ॥

१ मरकत और मणियोंका बड़े थालमें माणिक्य जैसा दीपक जिसमें है वैसी ओर स्तात्रकारने हाथमें लीहुई आरती हे जिनेश्वर ! आपके आगे फिरो ।

२ सौम्य दृष्टिवांत ऐसे हैं जिनचन्द्र ! जैसे कोशाश्विमें रहे हुए आपके दर्शनमें सूर्यने आकर प्रदक्षिणा की थी वैसेही कलिका समान दीपवाला यह मंगलदीप आपको प्रदक्षिणा करता है ।

३ हे नाथ ! देवियोंका घुमाया हुआ आपका मंगलदीप मेरुको प्रदक्षिणा करते सूर्यके समान दीखता है ।

इसका पाठ कह कर मंगलदीप आरतीके अनुसार उतार कर देदीप्यमान ऐसाही जिन भगवान्‌के सन्मुख रखना । आरती तो बुझा दी जाती है । उसमें दोष नहीं । मंगल दीप तथा आरती आदि मुख्यतः तो घी, गुड, कपूर आदि वस्तुमें किये जाते हैं । कारणकि, ऐसा करनेमें विशेष फल है । लोकमें भी कहा है कि— भक्तिमान् पुरुष देवाधिदेवके सन्मुख कर्पूरका दीप प्रज्वलित करके अश्वमेधका पुण्य पाता है तथा कुलका भी उद्धार करता है । यहां “मुक्तालंकार” इत्यादि गाथाएं हरिभद्रस्वरिजीकी रची हुई होंगी ऐसा अनुमान किया जाता है, कारणकि, उनके रचे हुए समरादित्यचरित्रके आरंभमें “उवणेउ मंगलं वो ” ऐसा नमस्कार दृष्टि आता है । ये गाथाएं तपापक्षआदि गच्छमें प्रसिद्ध हैं, इसलिये मूलपुस्तकमें सब नहीं लिखी गई । स्नात्रआदि धर्मानुष्ठानमें सामाचारीके भेदसे नानाविध विधि दीखती हैं, तो भी उससे भव्यजीवने मनमें व्यामोह (अमुझाना, घबराना) नहीं करना । कारण कि सबको अरिहंतकी भक्तिरूप धर्म ही का साधन करना है । गणधरोंकी सामाचारीमें भी बहुत भेद होते हैं, इसलिये जिस २ आचरणसे धर्मादिकको विरोध न आवे, और अरिहंतकी भक्तिकी पुष्टि होवे वह आचरणा किसीको भी अस्वीकार नहीं । यही न्याय सर्व धर्मकृत्योंमें जानो । इस पूजाके अधिकारमें लवण, आरती आदिका उतारना संप्रदायसे सब गच्छमें तथा परदर्शनमें भी

सृष्टि ही से कराता दृष्टि आ रहा है। श्रीजिनप्रभस्वरिरचित पूजाविधिमें तो इस प्रकार है कि— पादलिप्तस्वरि आदि पूर्वाचार्योंने लवणादिकका उतारना संहारसे करनेकी अनुज्ञा दी है, तो भी सांप्रत सृष्टि ही से किया जाता है।

स्नात्र करनेमें सर्वप्रकारकी सविस्तार पूजा तथा ऐसी प्रभावना इत्यादि होनेका संभव है, कि जिससे परलोकमें उत्कृष्ट फल प्रकट है। तथा जिनेश्वरभगवान्के जन्म-कल्याणकके समय स्नात्र करनेवाले चौसठ इन्द्र तथा उनके सामानिक देवता आदिका अनुकरण यहां मनुष्य करते हैं, यह इस लोकमें भी फल दायक है॥ इति स्नात्रविधि. ॥

प्रतिमाएं विविध भांतिकी हैं, उनकी पूजा करनेकी विधि में सम्यक्त्वप्रकरणग्रंथमें इस प्रकार कहा है कि—

गुरुकारिआइ केई, अन्ने सयकारिआइ तं त्रिति ।

विहिकारिआइ अन्ने, पडिमाए पूअणविहाणं ॥ १ ॥

अर्थात्-बहुतसे आचार्य गुरु अर्थात् मा, बाप, दादा आदि लोगोंने कराईहुई प्रतिमाकी, तथा दूसरे बहुतसे आचार्य स्वयं कराई हुई प्रतिमाकी तथा दूसरे आचार्य विधि पूर्वक की हुई प्रतिमाकी पूजा करना ऐसा कहते हैं। परन्तु अंतिमपक्षमें यह निर्णय है कि, बाप, दादाने कराई हुई यह बात निरर्थक है इसलिये ममत्व तथा कदाग्रहको त्याग कर सर्व प्रतिमाओंको समानबुद्धिसे पूजना। कारण कि, सर्व-

प्रतिमाओंमें तीर्थकरका आकार है, जिससे “ यह तीर्थकर है ” ऐसी बुद्धि उत्पन्न होती है । ऐसा न करते अपने कदाग्रहेमें अरिहंतकी प्रतिमाकी भी अवज्ञा करते हैं तो बलात्कार दुरंत संसाररूप दंड भोगना पड़ता है, जो ऐसा करे तो अविधिमें करी हुई प्रतिमाकी भी पूजन करनेका प्रसंग आता है, जिससे अविधिकृत प्रतिमामें अनुमति देनेसे भगवान्की आज्ञाभंग करनेका दोष आता है ऐसा कुतर्क नहीं करना, कारण कि सभी प्रतिमाको माननेका आगममें प्रमाण है । श्रीकल्पभाष्यमें कहा है कि-

निरसकङ्गमनिस्सकडे, चेइए सव्वहिं थुई तिज्जि ।

वेलं च चेइआणि अ, नाउं इक्किआ वावि ॥ १ ॥

अर्थः—निश्चाकृत अर्थात् गच्छप्रतिबद्ध और अनिश्चाकृत अर्थात् गच्छप्रतिबन्ध रहित ऐसे चैत्यमें सब जगह तीन स्तुति कहना । यदि सब जगह तीन स्तुति कहते समय जाता रहता होवे तो, अथवा वहां चैत्य बहुत हों तो समय और चैत्य इन दोनोंका विचार करके प्रत्येक चैत्यमें एक २ स्तुति भी कहना ।

चैत्यमें जो मकड़ीके जाले आदि हो जायें तो उन्हें निकासनेकी विधी कहते हैं ।

सुल्लेह मंखफळए, इयरे चोइंति तंतुमाईसु ।

अभिजोइंति सवित्तिसु, अणिच्छ फेडंसु तिसेता ॥ १ ॥

अर्थः—साधु, मंदिरमें मकड़ीके जाले आदि होवें तो मंदिरकी सम्हाल करनेवाले अन्य गृहस्थी लोगोंको प्रेरणा करे,

काम, कायासे बन सके ऐसा हो तो सामायिक पाल (छोड़) कर करे ।

शंकाः--सामायिक छोड़कर द्रव्यस्तव करना किस प्रकार उचित हो सकता है ?

समाधान - ऋद्धि रहित श्रावकसे सामायिक करना अपने हाथमे होनेसे चाहे उसी वक्त बन सकता है; परंतु मंदिरका कार्य तो समुदायके आधीन होनेसे किसी २ समय ही करनेका प्रसंग आता है, अतएव प्रसंग आने पर उसे करनेसे विशेष पुण्यका लाभ होता है । आगममे कहा है कि—

“ जंबाण बोहिलाभो, समदिट्ठीण होइ पिअकरणं ।

आणा जिणिं भत्ती, तिथस्स पभावणा चेव ॥ १ ॥ ”

(द्रव्यस्तवसे) भव्यजीवोंको बोधिलाभ होता है, सम्पद्गृष्टिजीवों का प्रिय किया ऐसा होता है, भगवान्की आज्ञाका पालन होता है, जिनेश्वरभगवानकी भक्ति होती है और शासनकी प्रभावना होती है, इस तरह द्रव्यस्तवमें अनेक गुण हैं, अतएव वही करना चाहिये । दिनकृत्यसूत्रमें भी कहा है किः— इस प्रकार यह सर्व विधि ऋद्धिवन्त श्रावककी कही । सामान्य श्रावक तो अपने घर ही पर सामायिक लेकर जो किसीका देना न होवे, और किसीके साथ विवाद न होवे तो साधुकी भांति उपयोगसे जिनमंदिरको जावे ।

काम, कायासे बन सके ऐसा हो तो सामायिक पाल (छोड़) कर करे ।

शंका:-सामायिक छोड़कर द्रव्यस्तव करना किस प्रकार उचित हो सकता है ?

समाधान - ऋद्धि रहित श्रावकसे सामायिक करना अपने हाथमे होनेसे चाहे उसी वक्त बन सकता है; परंतु मंदिरका कार्य तो समुदायके आधीन होनेसे किसी २ समय ही करनेका प्रसंग आता है, अतएव प्रसंग आने पर उसे करनेसे विशेष पुण्यका लाभ होता है । आगममे कहा है कि—

“ जीवाण बोहिलाभो, समहिद्वीण होइ पिअकरणं ।

आणा जिणि रभत्ती, तिस्थस्स पभावणा चेव ॥ १ ॥ ”

(द्रव्यस्तवसे) भव्यजीवोंको बोधिलाभ होता है, सम्यग्दृष्टिजीवों का प्रिय किया ऐसा होता है, भगवान्की आज्ञाका पालन होता है, जिनेश्वरभगवानकी भक्ति होती है और शासनकी प्रभावना होती है, इस तरह द्रव्यस्तवमें अनेक गुण हैं, अतएव वही करना चाहिये । दिनकृत्यसूत्रमें भी कहा है कि:- इस प्रकार यह सर्व विधि ऋद्धिवन्त श्रावककी कही । सामान्य श्रावक तो अपने घर ही पर सामायिक लेकर जो किसीका देना न होवे, और किसीके साथ विवाद न होवे तो साधुकी भांति उपयोगसे जिनमंदिरको जावे ।

काएणं अत्थि जइ किंचि, कायञ्चं जिणमंदिरे ।

तओ सामाइअं मोत्तं, करे अं कणिज्जयं ॥ १ ॥

जो जिनमंदिरमें कायासे बन सके ऐसा कोई कार्य हो तो सामायिक पार कर जो कार्य हो वह करे । सूत्रगाथामें “ विधिना ” ऐसा पद है, उससे भाष्यादि ग्रंथमें चौबीस मूल द्वारसे और दो हजार चौहत्तर प्रतिद्वारसे कही हुई, दशत्रिक तथा पांच अभिगम आदि सर्व विधि इस स्थान पर लेना । यथा— १ तीन निसीही. २ तीन प्रदक्षिणा, ३ तीन प्रणाम,

१ तीन निसीही इस प्रकार:— देरासरके मूलद्वारमें प्रवेश करते अपने घर संबंधी व्यापारका त्याग करनारूप प्रथम निसीही है १ गभारेके अन्दर घुसते देरासरको पूंजने समारनेके कार्यको त्याग करनारूप दूसरी निसीही है । २ चैत्यबंदन करते समय द्रव्यपूजाका त्याग करनारूप तीसरी निसीही है ३ ।

२ जिनप्रतिमाकी दाहिनी ओरसे ज्ञान, दर्शन और चारित्रकी आराधनारूप तीन प्रदक्षिणा देना ।

३ तीन प्रकारके प्रणाम इस प्रकार:— जिनप्रतिमाको देख दोनों हाथ जोड़ कपालको लगाकर प्रणाम करना, यह प्रथम अंजली-बद्ध प्रणाम १ कमरके ऊपरका भाग कुछ नमाकर प्रणाम करना यह दूसरा अर्धावनतप्रणाम २ दोनों घुटने, दोनों हाथ और मस्तक ये पंचांग नमा कर खमासमण देना यह तीसरा पंचांग प्रणाम ३ ।

४ त्रिविध पूजा, ५ अरिहंतकी तीन अवस्थाकी भावना, ६ तीन दिशादेखनेसे विमुख रहना, ७ पैगके नीचेकी भूमि तीन बार पूजना, ८ तीन वर्णादिक, ९ तीन मुद्रा और

४ तीनप्रकारकी पूजा-भगवानके अंग पर केशर, चंदन, पुष्प आदि चढ़ाना वह प्रथम अंगपूजा १ धूप, दीप और नैवेद्यादि भगवानके सन्मुख रखना वह दूसरी अंगपूजा २ भगवानके सन्मुख स्तुति, स्तोत्र, गीतगान नाटक आदि करना वह तीसरी भावपूजा ३.

५ तीन अवस्थाः—पिंडस्थ अर्थात् छद्मस्थावस्था १ पदस्थ अर्थात् केवलीअवस्था २ रूपस्थ अर्थात् सिद्धावस्था ३ । ६ जिस दिशाको जिनप्रतिमा होवे उसे छोड़ अन्य तीन दिशाओंको न देखना । ७ चैत्यवन्दनादिक करते पैग रखनेकी भूमि तीन बार पूजना । ८ नमुस्थुण आदि कहते सूत्र शुद्ध बोलना १ उसके अर्थ विचारना २ जिनप्रतिमाका स्वरूप—आलंबन धारना ३ ।

९ दोनों हाथोंकी दशों अंगुलियां परस्पर मिलाकर कमलके दोडेके आकारसे हाथ जोड़ पेट पर कोहनी रखना यह प्रथम योग-मुद्रा १ दोनों पैरकी अंगुलियोंके बीचमें आगेसे चार अंगुलका और पीछेसे कुछ कम अन्तर रख काउस्सग करना, यह दूसरी जिनमुद्रा २, दोनों हाथ मिलाकर कपालको लगाना, यह तीसरी मुक्ताशुक्ति-मुद्रा ३।

१० त्रिविधे प्रणिधान, ये दश त्रिक हैं । इत्यादि विधिपूर्वक किया हुआ देवपूजा, देववन्दन आदि धर्मानुष्ठान महान् फलदायी हैं । और विधिपूर्वक न करे तो अल्प फल होता है, वैसे ही अतिचार लगे तो प्रायः श्रेष्ठफलके बदले उलटा अनर्थ उत्पन्न होता है, कहा है कि—

“ धर्मानुष्ठानचैतद्व्यात्, प्रत्ययायो महान् भवेत् ।

रौद्रदुःखौघजननो, दुष्प्रयुक्तादिवौषधान् ॥ १ ॥

जैसे औषधि अविधिसे दी जाय तो उलटा अनर्थ हो जाता है, वैसे ही धर्मानुष्ठानमें अविधि होवे तो नरकादिकके दुःखसमुदाय उत्पन्न करने वाला भारी अनर्थ होता है । चैत्यवन्दनआदि धर्मानुष्ठानमें अविधि होवे तो सिद्धांतमें उसका प्रायश्चित्त भी कहा है । महानिशीथसूत्रके सातवें अध्ययनमें कहा है कि—जो अविधिसे चैत्यवन्दन करे, तो उसे प्रायश्चित्त लगता; कारण कि, अविधिसे चैत्यवन्दन करनेवाला पुरुष अन्यसाधर्मियोंको अश्रद्धा उत्पन्न करता है । देवता, विद्या और मंत्रकी आराधना भी विधिसे

१० तीन प्रणिधानः—‘जावंति चैद्याइ’ इस गाथासे चैत्यवन्दन करनारूप प्रथम प्रणिधान १ ‘जावंत केवि साहू’ इस गाथासे गुरुको वन्दन करनारूप दूसरा प्रणिधान २ ‘जय वीरराय’ कहनारूप तीसरा प्रणिधान ३ अथवा मन वचन और कायाका एकाग्र करना ये तीन प्रणिधान जानो ।

करने ही से फल सिद्ध होती है, अन्यथा तत्काल अनर्थादि होते हैं। यथा:—

अयोध्या नगरीमें सुरप्रिय नामक यक्ष था। वह प्रतिवर्ष यात्राके दिन जो रंगाया जाता था तो रंगनेवाले चित्रकारकों मार डालता था, और न रंगाया जाता था तो नगरवासियोंको मारता था। उस भयसे चित्रकार नगरसे भागने लगे। तब राजाने परस्पर जमानत आदि लेकर सब चित्रकारोंको मानो बंदीकी भांति नगरमें रखे। पश्चात् यह नियम किया कि एक घड़ेमें सबके नामकी चिट्ठी डालें उसमें से जिसके नामकी चिट्ठी निकले, वही यक्षको रंगे। एक वक्त किमी वृद्धस्त्रीके पुत्रके नामकी चिट्ठी निकली। इतनेमें कुछ दिनसे कोशावी-नगरीसे आया हुआ एक चित्रकारका पुत्र था, उसने “ निश्चय अविधिसं यक्ष रंगा जाता है ” ऐसा विचार कर वृद्धस्त्रीको दृढ़तासे कहा कि—“ मैं यक्षको रंगूंगा ” तदनंतर उसने छठ किया, शरीर, वस्त्र भांति भांतिके रंग, कलमें (ब्रश) आदि सर्व वस्तुएं पवित्र देख कर ली, मुख पर आठपटका मुस्ककाप बांधा और अन्य भी उपयोग करके विधिपूर्वक उस यक्षको रंगा, और पांव छूकर खमाया। इससे सुरप्रिय यक्ष बड़ाही प्रसन्न हुआ और वरदान मागनेको कहा, तब उसने कहा कि “ हे यक्ष! मारनेका उपद्रव न करना अर्थात् अब किसीको मत मारना। ” यक्षने यह बात स्वीकार की तथा प्रसन्नतासे चित्रकार पुत्रको कोई भी

वस्तुके अवयवका अंशमात्र देखनेसे वस्तुका पूर्ण आकार चित्रित किया जा सके ऐसी अद्भुत चित्रकला दी ।

एक वक्त कोशाम्बीनगरीमें राजसभामें गये हुए उस चित्रकार पुत्रने झरोखेमेंसे मृगावती रानीका अंगूठा देख, उसके ऊपरसे रानीका यथास्थितरूप चित्रित किया । राजाने मृगावतीकी जांघ पर तिल था वह भी चित्रमे निकाला हुआ देखा, अनाचार शंकासे क्रुद्ध होकर चित्रकारपुत्रको मार डालनेकी आज्ञा की । दूसरे सर्वचित्रकारोंने राजासे यक्षके वरदानकी बात कही । तब राजाने परीक्षाके हेतु एक कुब्जादासीका मुख मात्र दिखा कर चित्र निकालनेको कहा । वह भी चित्रकार पुत्रने बराबर चित्रित किया देखकर क्रोध शमने परभी राजाने उसका दाहिना हाथ काट डाला । तब चित्रकारपुत्रने अयोग्य-शिक्षासे रुष्ट हो पुनः यक्षकी आराधना कर वरदान प्राप्त कर मृगावतीका रूप फिरसे बांये हाथसे चित्रित किया और वह चंडप्रद्योतराजाको बताया । राजाचंडप्रद्योतने मृगावतीकी मांगणी करनेके लिये कोशांबी नगरीको दूत भेजा । उसका तिरस्कार हुआ देखकर उसने अपनी सैन्य द्वारा चारों ओरसे कोशांबीनगरीको घेर ली । शतानीक राजा मरगया, तब चंडप्रद्योतने मृगावतीके कहलानेसे “ उज्जयिनीसे ईंटे मंगा कर कोट कराया और नगरमें अन्न तथा घास बहुत सा भर रखा । ” चंडप्रद्योतने वैसा किया इतनेमें वीरभग-

वानका समवसरण हुआ । भिल्लके पूछनेसे भगवानका कहा हुआ “या सा सा सा का” सम्बन्ध सुन कर मृगावती रानी तथा चंडप्रद्योतकी अंगारवती आदि आठ पत्नियोंने दीक्षा ली । इस प्रकार विधि अविधिके ऊपर दृष्टांत कहा ।

इसके ऊपरसे “अविधिसे करनेकी अपेक्षा न करना उत्तम है” ऐसे विरुद्धपक्षकी कल्पना न करना । कहा है कि-

“अविहिकया वरमकयं, असूयवयणं भणंति समथन् ।

पायच्छित्तं अकए, गुरुअं वितहं कए लहुअं ॥ ४ ॥ ”

अविधिसे करना, उसकी अपेक्षा न करना यही ठीक है, यह वचन गुणको भी दोष कहने वाला है ऐसा सिद्धांत ज्ञाता आचार्य कहते हैं । कारण कि, न करनेसे बहुत प्रायश्चित्त लगता है, और अविधिसे करनेमें थोड़ा लगता है, इसलिये धर्मानुष्ठान नित्य करना ही चाहिये । पर उसमें पूर्णशक्तिसे विधी सम्हाल-नेकी यतना रखना यही श्रद्धावन्त जीवोंका लक्षण है । कहा है कि-श्रद्धावंत और शक्तिमान् पुरुष विधि ही से सर्व धर्म क्रियाएं करता है, और कदाचित् द्रव्यादि दोष लगे तो भी वह “विधि ही से करना” ऐसा विधि ही के विषयमें पक्षपात रखता है ।

धन्नाणं विहिजोगे, विहिपक्खाराहगा सया धन्ना ।

विहिबहुमाणी धन्ना, विहिपक्खअदूसगा धन्ना ॥ १ ॥

आसन्नसिद्धिआणं, विहिपरिणामो उ होई सयकालं ।

विहिचाओ अविहिभत्ती, अभव्वजिअदूरभव्वणं ॥ २ ॥

जिनका विधि पूर्वक धर्मक्रिया करनेका परिणाम हरदम होता है वे पुरुष तथा विधिपक्षकी आराधना करनेवाले, विधि-पक्षका सत्कार करने वाले और विधिपक्षको दोष न देनेवाले पुरुष भी धन्य हैं । आसन्नसिद्धिजीवों ही को विधिसे धर्मानुष्ठान करनेका सदाय परिणाम होता है । तथा अभव्य और दूरभव्य होवे उसको तो विधिका त्याग और अविधिकी सेवा करनेका ही परिणाम होता है । खेती, व्यापार, सेवा आदि तथा भोजन, शयन, बैठना, आना, जाना चोलना इत्यादि क्रिया भी द्रव्य, क्षेत्र, काल आदि विधिसे करी होवे तो फलदायक होती है अन्यथा अल्प फलवाली होती है ।

इस बात पर दृष्टांत सुनते हैं कि — दो मनुष्योंने द्रव्यके निमित्त देशांतरको जा एक सिद्धपुरुषकी बहुत सेवा की । जिससे प्रसन्न हो उस सिद्धपुरुषने उनको अद्भुत प्रभावशाली तुम्बी-फलके बीज दिये । उनकी सर्व आम्नाय भी कही । यथा-- सौ बार जोते हुए खेतमें धूप न होवे तथा अमुक बार नक्षत्रका योग होवे, तब ये बीज बो देना । बेल हो तो कुछ बीज लेकर पत्र, पुष्प, फल सहित बेलडीको उसी खेतमें जला देना । उसकी भस्म एक मापा भर ले चौंसठ मापा भर ताँबेमें डाल देना उससे जात्य (सो टचका) सोना हो जाता है । ऐसी सिद्ध-पुरुषकी शिक्षा लेकर वे दोनों व्यक्ति घर आई । उनमेंसे एकको तो बराबर विधिके अनुसार क्रिया करनेसे जात्यमुवर्ण होगया,

दूसरे विधिमें कुछ कसर की जिससे चांदी हुई। इसलिये सर्व कार्योंमें विधि भली भांति जानना चाहिये व अपनी सर्व-शक्तिसे उसे (विधि) को निबाहना चाहिये।

पूजाआदि पुण्यक्रिया करनेके अनंतर सर्वकाल विधिकी कोई आशातना हुई होवे, उसके लिये मिथ्यादुष्कृत देना। पूर्वाचार्य अंगपूजादि तीन पूजाओंका फल इस रीतिसे कहते हैं— प्रथम अंगपूजा विघ्नकी शान्ति करनेवाली है, दूसरी अग्रपूजा अभ्युदय करनेवाली है और तीसरी भावपूजा निर्वाणकी साधक है। इस भांति तीनों पूजाएं नामके अनुसार फल देनेवाली हैं। यहां पूर्वोक्त अंगपूजा तथा अग्रपूजा और चैत्य कराना, उनमें जिनबिंबकी स्थापना कराना, तीर्थ यात्रा करना इत्यादि सर्व द्रव्यस्तव है। कहा है कि—

जिणभवणाबिंबवणाजत्तापूआइ सुत्त ओ विहिणा ।

द्ववत्थओत्ति नेअं भावत्थयकारणत्तेण ॥ १ ॥

जिनमंदिरकी और जिनबिंबकी प्रतिष्ठा, यात्रा, पूजा आदि धर्मानुष्ठान सूत्रोंमें कही हुई विधिके अनुसार करना। ये सर्व यात्रा आदि द्रव्यस्तव हैं ऐसा जानना, कारण कि, ये भावस्तवके कारण हैं। यद्यपि संपूर्ण पूजा प्रतिदिन परिपूर्णतया नहीं की जा सकती, तथापि अश्वत् दीप इत्यादि देकर नित्य पूजा करना। जलका एकबिंदु महासमुद्रमें डालनेसे वह जैसे अक्षय हो जाता है, वैसे ही वीतरागमें पूजा अर्पण करें

तो वह अक्षय हो जाती है । सर्व भव्यजीव इस पूजारूप बीजसे इस संसाररूप वनमें दुःख न पाते अत्यंत उदार भोग भोग कर सिद्धि (मोक्ष) पाते हैं ।

पूजाय मणसंती, मणसंती एय उत्तमं भाणं ।

सुहृद्भाणेण य सुक्खो मुक्खे सुक्खं निरावाहं ॥ १ ॥

पुष्पाद्यर्चा तदाज्ञा च, तद्द्रव्यम् परिरक्षणं ।

उत्सवास्तीर्थयात्रा च, भक्तिः पंचविधा जिने ॥ २ ॥

पूजामें मनको शांति होती है, मनकी शांतिसे शुभ ध्यान होता है, शुभ ध्यानसे मुक्ति प्राप्त होती है और मुक्ति पानेसे निरावाध सुख होता है । जिनभक्ति पांच प्रकारकी होती है । एक फूलआदि वस्तुसे पूजा करना, दूसरी भगवानकी आज्ञा पालना, तीसरी देवद्रव्यकी भली भांति रक्षा करना, चौथी जिनमंदिरमें उत्सव करना, पांचवी तीर्थयात्रा करना । द्रव्यस्तव आभोगसे और अनाभोगसे दो प्रकारका है । कहा है कि-भगवान्के गुणका ज्ञाता पुरुष वीतराग पर बहुत भाव रख कर विधिसे पूजाकरे, उसे आभोग द्रव्यस्तव कहते हैं । इस आभोग द्रव्यपूजासे सकल कर्मका निदलन कर सके ऐसे चारित्रका लाभ शीघ्र होता है । अतः सम्यग्दृष्टिजीवोंने इस पूजामें भली भांति प्रवृत्त होना चाहिये । पूजाकी विधि बराबर न हो, जिनभगवान्के गुणोंका भी ज्ञान न हो, और केवलमात्र शुभपरिणामसे करी हुई जो पूजा वह अनाभोग द्रव्यपूजा कहलाती

है । इस रीतिसे करी हुई यह अनाभोग द्रव्यपूजा भी गुणस्थानका स्थानक होनेसे गुणकारी ही है, कारण कि इससे क्रमशः शुभ शुभतर परिणाम होता है, और सम्यक्त्वका लाभ होता है ।

असुहृक्खण धणिअं, धन्नाणं आगमेसिभद्दणं ।

अमुणिअगुणेऽवि नूणं, विसए पीई समुच्छलइ ॥ १० ॥

भावीकालमें कल्याण पानेवाले धन्य जीवों ही को ' गुण नहीं जानने पर भी पूजादिमें जैसे अरिहंतके बिंबमें तोतेके जोड़ेको उत्पन्न हुई, ' वैसे ही अशुभ कर्मके क्षयसे ही प्रीति उत्पन्न होती है । भारेकर्मी और भवाभिनंदी जीवों ही को पूजादिविषयमें जैसे निश्चयसे मृत्यु समीप आने पर रोगी मनुष्यको पथ्यमें द्वेष उत्पन्न होता है, वैसे ही द्वेष उत्पन्न होता है । इस लिये तत्त्वज्ञ पुरुष जिनबिंबमें अथवा जिनेंद्रप्रणीतधर्ममें अशुभपरिणामका अभ्यास होनेके भयसे लेश मात्र द्वेषसे भी दूर रहता है । दूसरेके प्रति जिनपूजाका द्वेष करने पर कुंतलारानीका दृष्टांत इस प्रकार है:-

अवनिपुरमें जितशत्रु राजाकी अत्यंत धर्मनिष्ठ कुंतला नामक पट्टरानी थी । वह दूसरोंको धर्ममें प्रवृत्त करने वाली थी, अत एव उसके वचनसे उसकी सर्व सपत्नियां (सौते) धर्मनिष्ठ होगई तथा कुंतलाको बहुत मानने लगीं । एक समय सर्व रानियोंने अपने २ पृथक् सर्व अंगोपांगयुक्त नये जिनमंदिर तैयार करवाये । जिससे कुंतला रानीके मनमें बहुत ही मत्सर उत्पन्न हुआ । वह अपने मंदिर ही में उत्तम पूजा, गीत नाटक आदि

कराती और अन्य रानियोंकी पूजा आदिसे द्वेष करने लगी ।
बड़े खेदकी बात है कि, मत्सर कैसा दुस्तर है ? कहा है कि—

‘पोता अपि निसञ्जंति, मत्सरे मकराकरे ।

तत्तत्र मञ्जनेऽन्येषां, दृषदामिव किं नवम ? ॥ १ ॥

विद्यावाणिज्यविज्ञानवृद्धिऋद्धिगुणादिषु ।

जातौ ख्यातौ प्रोज्ञतौ च, धिग् धिग् धर्मेऽपि मत्सरः ॥ २ ॥

मत्सररूप सागरमें ज्ञानीपुरुषरूप नौका भी डूब जाती है ।
तो फिर पत्थरके समान अन्य जीव डूब जावें इसमें क्या विशेषता है ? विद्या, व्यापार, कलाकौशल, वृद्धि, ऋद्धि, गुण, जाति, ख्याति, उन्नति इत्यादिकमें मनुष्य, मत्सर (अदेखाई) करें वह बात अलग है, परंतु धर्ममें भी मत्सर करते हैं ! उन्हें धिक्कार है !!! । सपत्नियां सरल स्वभाव होनेसे वे सदैव कुंतला रानीके पूजादि शुभकर्मको अनुमोदना देती थीं, मत्सरसे भरी-हुई कुंतला रानी तो दुर्दैववश असाध्यरोगसे पीड़ित हुई, राजाने उसके पासकी आभरणादि सर्व मुख्य २ वस्तुएं ले ली, पश्चात् वह बड़ी असह्यवेदनासे मृत्युको प्राप्त हो सपत्नियोंकी पूजाका द्वेष करनेसे कुर्ती हुई, वह पूर्वभक्ते अभ्याससे अपने चैत्यके द्वारमें बैठ रहती थी. एक समय वहां केवलीका आगमन हुआ. रानियोंने केवलीसे पूछा कि, ‘कुंतला रानी मरकर किस गतिको गई ? केवलीने यथार्थ बात थी सो कह दी. जिससे रानियोंके मनमें बहुत वैराग्य उत्पन्न हुआ. वे नित्य

उस कुत्तीकों खाने-पीनेकों देतीं और स्नेहसे कहतीं कि, 'हा हा ! धर्मिष्ठ ! तूने क्यों ऐसा व्यर्थ द्वेष किया. जिससे तेरी यह अवस्था हुई.' ये वचन सुन तथा अपने चैत्यको देखकर उसे (कुत्तीको) जातिस्मरणज्ञान उत्पन्न हुआ. तब संवेग पा उसने सिद्धादिककी साक्षीसे अपने किये हुए दांष आदि अशुभ-कर्मोंकी आलोचना की, और अनशन कर मृत्युको प्राप्त होकर वैमानिक देवता हुई. द्वेषके ऐसे कड़वे फल हैं. इसलिये द्वेषको त्याग देना चाहिये। यह सब द्रव्यपूजाका अधिकार कहा। इस जगह सर्व भावपूजा और जिनेश्वरकी आज्ञा पालना इसे भावस्त्व जानना. जिनाज्ञा भी स्वीकाररूप तथा परिहाररूप ऐसी दो प्रकारकी है जिसमें शुभकर्मका सेवन करना वह स्वीकाररूप आज्ञा है और निषिद्धका त्याग करना वह परिहाररूप आज्ञा है. स्वीकाररूप आज्ञाकी अपेक्षा परिहाररूप आज्ञा श्रेष्ठ है. कारण कि, निषिद्ध प्राणातिपात आदि सेवन करनेवाला मनुष्य चाहे कितना ही शुभ कर्म करे, तो भी उससे विशेष गुण नहीं होता. जैसे रोगी मनुष्यके रोगकी चिकित्सा औषधिके स्वीकार व अपथ्यके परिहार इन दो रीतिसे की जाती है. रोगीका बहुतसी औषधि देते हुए भी जो वह अपथ्य करे तो उसे आरोग्यलाभ नहीं होता. कहा है कि- बिना औषधिके केवल पथ्य ही से व्याधि चली जाती है, परंतु पथ्य न करे तो सैकड़ों औषधियोंसे भी व्याधि नहीं जा सकती. इसी भाँति जिन-

भगवान्की भक्तिभी निषिद्ध आचरण करनेवालेको विशेष फल-
 दायक नहीं होती । जैसे पथ्य सेवन करनेवालेको औषधिसे
 आरोग्य लाभ होता है, वैसे ही स्वीकाररूप और परिहाररूप
 दोनों आज्ञाओंका योग होवे तो फल सिद्धि होती है । श्रीहेम-
 चन्द्रसरिने भी कहा है कि, हे वीतरागभगवान् ! आपकी सेवा
 पूजा करनेसेभी आपकी आज्ञा का पालन ही श्रेष्ठ है कारण,
 कि आज्ञाका आराधन और विराधन ये दोनों क्रमसे मोक्ष और
 संसारको देते हैं याने आपकी सेवा होवे तबही मोक्ष होवे
 अन्यथा न होवे ऐसा नहीं है लेकिन आज्ञाके विषयमें तो
 आज्ञाकी आराधना से ही मोक्ष है अन्यथा संसारभ्रमण होवे
 यह निश्चित है । हे वीतराग ! आपकी आज्ञा सर्वदा त्याज्य
 वस्तुके त्यागरूप और ग्रह्यवस्तुके आदररूप होती है ।
 आश्रय सर्वथा त्याज्य है, और संवर सर्वथा आदरने योग्य है ।
 पूर्वाचार्योंने द्रव्यस्तव तथा भावस्तवका फल इसप्रकार कहा है:-
 द्रव्यस्तवकी उत्कृष्टतासे आराधना की होवे तो प्राणी बारहवें
 अच्युत देवलोक तक जाता है, और भावस्तवकी उत्कृष्टतासे
 आराधना करी होवे तो अंतर्मुहूर्तमें निर्वाणको प्राप्त होता है ।
 द्रव्यस्तव करते यद्यपि कुछ षड्कायजीवोंकी उपरमदनादिकसे
 विराधना होती है, तथापि कुण्ठे दृष्टान्तसे गृहस्थजीवको वह
 (द्रव्यस्तव) करना उचित है । कारण कि, उससे कर्त्ता (द्रव्यस्तव
 करने वाला), द्रष्टा (द्रव्यस्तवको देखनेवाला), और श्रोता

(द्रव्यस्तवका सुननेवाला इन तीनोंको अगणित पुण्यानुबंधि-
पुण्यका लाभ होता है ।

कुएँका दृष्टान्त इस प्रकार है—एक नये गाँवमें लोगोंने
कुआ खोदना शुरू किया, तब उनको तृषा, थकावट, कीचड़से
मलिनता आदि हुआ । परन्तु जब कुएँमें से जल निकला,
तब केवल उन्हींकी तृषादिक तथा शरीर और वस्त्र आदि वस्तु
पर चढ़ा हुआ मेल दूर हुआ, इतना ही नहीं, बल्कि अन्य
सर्वलोगोंका भी तृषादिक और मल दूर होगया, और नित्यके
लिये सर्व प्रकार सुख होगया । ऐसाही द्रव्यस्तवकी बातमें भी
जानो । आवश्यकनिर्युक्तिमें कहा है कि—सर्वविरति न पाये
हुए देशविरति जीवोंको संसारको कम करने वाला यह द्रव्यस्तव
कुएँके दृष्टान्तानुसार उत्तम है । अन्य स्थान पर भी कहा है
कि— आरंभमें लिपटे हुए, षट्कायजीवोंकी विराधनासे विरति
न पाये हुए और इसीसे संसार वनमें पड़े हुए जीवोंको
द्रव्यस्तव ही एक बड़ा भारी अवलम्बन है ।

स्थेयो वायुचलेन निवृत्तिकरं निर्वाणनिर्घातिना ।

स्वायत्तं बहुपायकेन सुबहु स्वल्पेन सारं परम् ।

निस्सारेण धनेन पुण्यममलं कृत्वा जिनाभ्यर्चनं ।

यो गृह्णाति वणिक् स एव निपुणो वाणिज्यकर्मण्यलम् ॥ २ ॥

यास्याम्दायतनं जिनस्य लभते ध्यायंश्चतुर्थं फलं,

पष्टं चोत्थित उद्यतोऽष्टममथो गंतुं प्रवृत्तोऽध्वनि ।

श्रद्धालुर्दशमं बहिर्जिनगृहात्पात्रस्ततो द्वादशं,
मध्ये पाक्षिकर्माक्षिते जिनपत्नी मासोपवासं फलम् ॥ ३ ॥

जो वाणिक् वायुके समान चंचल, निर्वाणको अंतराय करनेवाले, बहुतसे नायकोंके आधीन रहे हुए, स्वल्प व असार ऐसे धनसे स्थिर, मोक्षको देनेवाला स्वतंत्र अत्यंत व सारभूत ऐसी जिनेश्वरभगवान्की पूजा करके निर्मल पुण्य उपाजित करता है, वही वाणिक् वाणिज्यकर्ममें अतिनिपुण है ।

श्रद्धावन्त मनुष्य “जिनमंदिरको जाऊंगा” ऐसा विचार करनेसे एक उपवासका, जानेके लिये उठते छट्ठका, जानेका निश्चय करते अट्ठमका, मार्गमें जाते चार उपवासका, जिनमंदिरके बाहर भागमें जाते पांच उपवासका मंदिरके अन्दर जाते पंद्रह उपवासका और जिनप्रतिमाका दर्शन करते एकमासके उपवासका फल आता है । पद्मचरित्रमें तो इस प्रकार कहा है किः-- (तीर्थादिमें श्रद्धावन्त श्रावक “जिनमंदिरको जाऊंगा” ऐसा मनमें विचारनेसे एक उपवासका, मार्गको जाने लगनेसे तीन उपवासका, जानेसे चार उपवासका, थोड़ा मार्ग उल्लंघन करनेसे पांच उपवासका, आधा मार्ग जानेसे पंद्रह उपवासका, जिनभवनका दर्शन करनेसे एक मासके उपवासका, जिनमंदिरके अंगनेमें प्रवेश करनेसे छः मासके उपवासका, मंदिरके बाहर जाते बारह मासके उपवासका, प्रदाक्षिणा देनेसे सौ वर्षके उपवासका, जिनप्रतिमाकी पूजा करनेसे हजार वर्षके उपवासका फल पाता है,

और भगवानकी स्तुति करनेसे अनन्त पुण्य पाता है । प्रसा-
 जेन करते सौ उपवासका, विलेपन करने सहस्र उपवासका,
 माला पहिराते लक्ष उपवासका, और गीत, वादित्र पूजा करते
 अनन्त उपवासका फल पाता है । पूजा प्रतिदिन तीन बार
 करनी चाहिये । कहा है कि —

प्रातःकालमें की हुई जिनपूजा रात्रिमें किये हुए पापोंका
 नाश करती है, मध्याह्नसमयमें की हुई जिनपूजा जन्मसे ले-
 कर किये हुए पापोंको नष्ट करती है, और सन्ध्यासमय की
 हुई जिनपूजा सात जन्मके किये हुए पापोंको दूर करती है ।
 जलपान, आहार, औषध, निद्रा, विद्या, दान, कृषि ये सात
 वस्तुएं अपने अपने समय पर होवें तो श्रेष्ठ फल देती हैं; वैसे
 ही जिनपूजा भी अवसर पर ही करी होवे तो सफल देती है ।
 त्रिकाल जिनपूजा करनेवाला भव्यजीव समकितको शोभित
 करता है, और श्रेणिकराजाकी भांति तार्थकर नामगोत्रकर्म
 उपार्जन करता है । जो पुरुष दोष रहित जिन-भगवान्की त्रि-
 कालपूजा करता है, वह तीसरे अथवा सानवें आठवें भवमें सिद्धि
 सुख पाता है । चौसठ इन्द्र परम आदरसे पूजा करते हैं, तो भी
 भगवान् यथार्थ नहीं पूजे जाते । कारण कि भगवान्के गुण
 अनन्त हैं । हे भगवन् ! हम आपको नेत्रसे देख सकते नहीं,
 और उत्तमोत्तम पूजासे परिपूर्णतः आपकी आराधना भी नहीं
 कर सकते; परन्तु गुरुभक्ति रागवश व आपकी आज्ञा पालनेके

हेतुसे पूजादिकमें प्रवृत्ति करते हैं । देवपूजादि शुभ कृत्यमें प्रीति बहुमान और सम्यग् विधिविधान इन दोनोंमें खरे खोटे रुपयेके दृष्टान्तके अनुसार चार शाखाएं हैं, यथा:—

खरी चांदी और खरा सिका यह प्रथम शाखा, खरी चांदी और खांटी मुद्रा (सिका) यह दूसरी शाखा, खरा सिका और खोटा चांदी यह तीसरी शाखा तथा खोटी ही चांदी व खोटा ही सिका यह चौथी शाखा है । इसी भांति देवपूजादिकृत्योंमें भी उत्तम बहुमान व उत्तम विधि होवेतो प्रथम शाखा, उत्तम बहुमान होवे परन्तु विधि उत्तम न होवे तो दूसरी शाखा, विधि उत्तम होवे परन्तु बहुमान उत्तम न होवे तो तीसरी शाखा और बहुमान व विधि दोनों ही उत्तम न होवें तो चौथी शाखा जानो । बृहद्भाष्य में कहा है कि— इस वन्दनामें पुरुषके चित्तमें स्थित बहुमान चांदीके समान है, और संपूर्ण बाह्यक्रिया सिकेके समान है । बहुमान और बाह्यक्रिया इन दोनोंका योग मिल जावे तो खरे रुपयेकी भांति उत्तम वन्दना जानो । मनमें बहुमान होने पर भी प्रमादसे वन्दना करनेवालेकी वन्दना दूसरी शाखामें कहे हुए रुपयेके समान है । किसी वस्तुके लाभार्थ संपूर्ण बाह्य क्रिया उत्तम होने पर भी वह वन्दना तीसरी शाखामें कहे हुए रुपयेके समान है । मनमें बहुमान न हो और बाह्यक्रिया भी बराबर न होवेतो इस तत्त्वसे वन्दना नहीं ही के बराबर है । मनमें बहुमान रख-

नेपाले पुरुषने देशकालके अनुसार थोड़ी अथवा अधिक वन्दना विधि पूर्वक करना यह भावार्थ है । इस जिनमतमें धर्मानुष्ठान चार प्रकारका कहा है । एक प्रीतिअनुष्ठान, दूसरा भक्तिअनुष्ठान, तीसरा वचनअनुष्ठान और चौथा असंग-अनुष्ठान, वालादिककी जैसी रत्नमें प्रीति होती है, वैसे ही सरलप्रकृति पुरुषको जो पूजा-वंदनादि अनुष्ठान करते मनमें प्रीतिरस उत्पन्न होवे, वह प्रीतिअनुष्ठान है । शुद्ध विवेकी भव्य-जीवको बहुमानसे पूजा-वंदनादि अनुष्ठान करते जो प्रीतिरस उत्पन्न होवे तो वह भक्तिअनुष्ठान है । जैसे पुरुष अपनी माताका व स्त्रीका पालन पोषण समान ही करता है, तो भी माताका पालनादिक भक्तिसे (बहुमानसे) करता है, और स्त्रीका पालनादिक प्रीतिसे करता है । वैसे ही यहां प्रीतिअनुष्ठान और भक्तिअनुष्ठानमें भी भेद जानो । जिनेश्वर भगवानके गुणोंका ज्ञाता भव्यजीव सूत्रमें कही हुई विधिसे जो वंदना करे, वह वचनअनुष्ठान जानो । यह वचनानुष्ठान चारित्रवान पुरुषको नियमसे होता है । फलकी आशा न रखनेवाला भव्य-जीव श्रुतावलम्बन बिना केवल पूर्वाभ्यासके रस ही से जो अनुष्ठान करता है, वह असंगअनुष्ठान है । यह जिनकल्पिआदिको होता है । जैसे कुम्हारके चक्रका भ्रमण प्रथम दंडके संयोगसे होता है, वैसे वचनानुष्ठान आगमसे प्रवर्तता है । और जैसे दंड निकाल लेने पर भी पूर्वसंस्कारसे चक्र फिरता रहता है,

वैसे ही आगमके केवल संस्कारसे आगमकी अपेक्षा न रखते असंगअनुष्ठान होता है, इतना ही भेद वचनअनुष्ठानमें व असंगअनुष्ठानमें होता है। प्रथम चालादिकको लेशमात्र प्रीति ही से अनुष्ठान संभव होता है, परंतु उत्तरोत्तर निश्चयसे अधिक भक्ति आदि गुणकी प्राप्ति होती है। अतएव प्रीति, भक्ति प्रमुख चारों प्रकारका अनुष्ठान प्रथम शाखामें कहेहुई रूपयेके अनुसार निश्चयपूर्वक जानो। कारण कि, पूर्वाचार्योंने चारों प्रकारका अनुष्ठान मुक्तिके निमित्त कहा है। दूसरी शाखामें कहे हुए रूपयेके समान धर्मानुष्ठान भी सम्यग्-धर्मानुष्ठानका कारण होनेसे बिलकुल ही दूषित नहीं है। कारण कि पूर्वाचार्य कहते हैं कि, दंभकपटादि रहित भव्यजीवकी अशुद्ध धर्म-क्रिया भी शुद्ध धर्म-क्रिया आदिका कारण होती है, और उससे अंदर स्थित निर्मल सम्यक्त्वरूप रत्न कर्ममलका त्याग करता है। तीसरी शाखामें कहा हुआ धर्मानुष्ठान माया-मृषादिदोषयुक्त होनेसे छोटे रूपयेसे व्यवहार करनेकी भांति महान अनर्थ उत्पन्न करता है। यह (तीसरी शाखामें वर्णित रूपये समान) धर्मानुष्ठान प्रायः भवाभिनंदी जीवोंको अज्ञानसे अश्रद्धासे और भारेकर्मोपनेसे होता है। चौथी शाखामें कहे हुए रूपयेके समान धर्मानुष्ठान तो निश्चय आराधना तथा विराधनासे रहित है, वह अभ्यासके वशसे किसी समय एकाध जीवको शुभके अर्थ होता है। जैसे किसी श्रावकका पुत्र कुछ

भी पुण्यकर्म किये बिना केवल नित्य जिन-बिचको देखते २ मृत्युको प्राप्त हुआ, और मत्स्यके भवमें जाकर वहां प्रतिमा-कारमत्स्यके दर्शनसे सम्यक्त्व पाया। यह चौथी शाखाका दृष्टान्त है। इस प्रकार देवपूजादि धर्मकृत्योंमें एकांतसे प्रीति व बहुमान होवे तथा विधिपूर्वक क्रिया करे तो भव्यजीव यथोक्त फल पाता है, अतएव प्रीति, बहुमान और विधि विधान इन तीनोंका पूरा २ यत्न करना चाहिये. चालू विषय पर धर्मदत्त राजाका दृष्टान्त कहते हैं—

चांदीके जिन-मंदिरसे सुशोभित ऐसे राजपुरा नगरमें चन्द्रमाकी भांति शीतकर और कुंवलयविकासी राजधर नामक राजा था. देवांगनाओंकी रूपसंपदासे समान सौन्दर्यवान उस राजाके प्रीतिमती आदि पांचसौ विवाहित रानियां थीं। प्रीति-मती रानीके अतिरिक्त शेष सब रानियोंने जगन्को आनन्दकारी पुत्रलाभसे चित्तको संतोष पाया, पर पुत्र न होनेसे वन्ध्या समान प्रीतिमती रानी बहुत ही दुःखित

१ शीतकर पदका चंद्र तरफ “ ठंडी रात्रिकी धारण करने-वाला ” व राजाके तरफ “ लोगोंसे शान्तिसे कर लेने वाला ” ऐसा अर्थ होता है।

२ कुंवलय विकासी इस पदका चन्द्र तरफ “ कमलको खिलाने वाला ” और राजाके तरफ “ पृथ्वीको आनन्द देनेवाला ” ऐसा अर्थ समझो।

थी. पंक्तिभेद सहन करना कठिन है, और उसमें भी प्रमुख व्यक्तिको जो पंक्तिभेद होवे तो वह बिलकुल ही असह्य है. अथवा जो वस्तु दैवके आधीन है, उसके विषयमें मुख्य, अमुख्यका विचार करनेसे क्या लाभ हो सकता है? ऐसा होने पर भी उस बातसे मनमें दुःख धारण करनेवाले मूढहृदय लोगोंकी मूर्खताको धिक्कार है ! जब देवताओंकी करी हुई नानाप्रकारकी मानताएं भी सब निष्फल हुई, तब तो प्रीतिमतीका दुःख बहुत ही बढ़ गया. उपायके निष्फल होजाने पर, आशा सफल न होगी ऐसा जाना । एकसमय हंसका बच्चा घरमें बालककी भांति खेल रहा था, रानीने उसे हाथ पर ले लिया तो भी मनमें भय न रखते हंसने मनुष्य-वाणीसे रानीको कहा कि, - “ हे भद्रे ! मैं यहां यथेष्ट स्वतंत्रतासे खेल रहा था, तू मुझे चतुर होकर भी खिलानेके रससे क्यों पकड़ती है ? स्वतंत्र विहार करनेवाले जीवोंको बन्धनमें रहना निरन्तर मृत्युके समान है. स्वयं बंध्या होते हुए भी पुनः ऐसा अशुभ-कर्म क्यों करती है ? शुभकर्मसे धर्म होता है, और धर्मसे मन-वांछित सफल होता है ” प्रीतिमतीने चकित व भयभीत हो हंससे कहा कि, “ हे चतुर शिरोमणे ! तू मुझे ऐसा क्यों कहता है ? मैं तुझे थोड़ी देरमें छोड़ दूंगी, परन्तु उसके पहिले तुझे एक बात पूछती हूं कि, अनेक देवताओंकी पूजा, नाना-प्रकारके दान आदि बहुतसे शुभकर्म मैं हमेशा करती हूं, तो

भी शाप पाई हुई स्त्रीकी भांति मुझे संसारमें सारभूत पुत्र क्यों नहीं होता ?, पुत्रके लिये मैं दुःखी हूँ यह तू कैसे जानता है, और मनुष्यवाणीसे तू किस प्रकार बोलता है ? ” हंस बोला “ मेरी बात पूछनेका तुझे क्या प्रयोजन ? मैं तुझे हितकारी वचन कहता हूँ. धन, पुत्र, सुख आदि सर्व वस्तुकी प्राप्ति पूर्वभवंमें किये हुए कर्मके आधीन हैं, इस लोकमें किया हुआ शुभकर्म तो नीचमें आते हुए अंतरायको दूर करता है. बुद्धिमान मनुष्य जिस किसी देवताकी पूजा करते हैं. वह मिथ्या है, और उससे मिथ्यात्व लगता है. एक मात्र जिन-प्रणीत धर्म ही जीवोंको इस लोकमें तथा परलोकमें वांछित-वस्तुका दाता है. जो जिन-धर्मसे विघ्नकी शान्ति आदि न होय तो वह अन्य उपायसे कैसे हो सकती है ? जो अधिकार सूर्यसे दूर नहीं हो सकता वह क्या अन्यग्रहसे दूर हो सकता है ? अतएव तू कुपथ्य समान मिथ्यात्वको त्याग दे, और उत्तम पथ्य समान अर्हद्धर्मकी आराधना कर, जिससे इस लोकमें तथा परलोकमें भी तेरे मनोरथ पूर्ण होंगें. ”

यह कह पारेकी भांति शीघ्र ही हंस कहीं उड़ गया । चकित हुई प्रीतिमती रानी पुनः पुत्रकी आशा होनेसे प्रसन्न हुई । चित्तमें कुछ दुःख हुआ हो तो धर्म, गुरु, आदि पर अत्यन्त ही स्थिर आस्था रहती है । जीवका ऐसा स्वभाव होनेसे प्रीतिमती रानीने सद्गुरुके पापसे श्रावक-धर्म अंगीकार किया । सम्यक्त्व धारण करनेवाली और त्रिकाल जिन-पूजा

करनेवाली प्रीतिमती रानी अनुक्रमसे सुलसाश्राविकाके समान होगई। हंसकी वाणीका मानो यह कोई महान् चमत्कारिक गुण है। अस्तु; एक समय राजधर राजाके चित्तमें ऐसी चिन्ता उत्पन्न हुई कि, “अभी तक पट्टरानीको एक भी पुत्र नहीं हुआ, और अन्य रानियोंके तो सैकड़ों पुत्र हैं। इसमें राज्यके योग्य कौनसा पुत्र होगा ?” राजा इस चिन्तामें था, इतने ही में रात्रिको स्वप्नमें मानो साक्षात् ही हो ! ऐसे किसी दिव्य-पुरुषने आकर उसे कहा कि, “हे राजन् ! अपने राज्यके योग्य पुत्रकी तू कुछ भी चिन्ता न कर। जगत्में कल्पवृक्षके समान फलदायक ऐसे केवल जिनधर्म ही की तू आराधना कर। जिससे इसलोक परलोकमें तेरी इष्ट सिद्धि होगी।” ऐसा स्वप्न देखनेसे राजधर राजा पवित्र हो हर्षसे जिन-पूजाआदिसे जिनधर्मकी आराधना करने लगा। ऐसा स्वप्न देखनेपर भला कौन आलस्यमें रहे ? पश्चात् कोई उत्तम जीवने, हंस जैसे सरोवरमें अवतार लेता है, वैसे ही प्रथम अरिहंतकी प्रतिमा स्वप्नमें बताकर प्रीतिमतीके गर्भमें अवतार लिया। इससे सर्वलोगोंके मनमें अपार हर्ष हुआ। गर्भके प्रभावसे प्रीतिमती रानीको मणिरत्नमय जिन-मंदिर तथा जिन-प्रतिमा कराना तथा उसकी पूजा करना इत्यादि दोहला उत्पन्न हुआ। फूल फलके अनुसार ही उसमें क्या विशेषता है ?

१ गर्भवती स्त्रीको गर्भावस्थाके समय जो इच्छा उत्पन्न होती है उसे दोहला कहते हैं।

देवताओंकी कार्यसिद्धि मनमें सोचते ही हो जाती है। राजाओंकी कार्यसिद्धि मुखमेंसे वचन निकलते ही होती है, धनवान लोगोंकी कार्यसिद्धि धनसे तत्काल होती है, और शेष मनुष्योंकी कार्यसिद्धि वे स्वयं अंग परिश्रम करें तब होती है। अस्तु; प्रीतिमतीका दोहला दुःखसे पूरा किया जाय ऐसा था, किन्तु राजाने बड़े हर्षसे तत्काल उसे पूर्ण किया। जिस भांति मेरुपर्वतके ऊपरकी भूमि परिजातकल्पवृक्षका प्रसव करती है, वैसे ही प्रीतिमती रानीने प्रारंभ ही से शत्रुका नाश करनेवाला पुत्ररत्न प्रसव किया। अनुक्रमसे वह बहुत ही महिमावन्त हुआ।

पुत्र जन्म सुनकर राजाको अत्यन्त हर्ष हुआ। इससे उसने उस पुत्रका अपूर्व जन्ममहोत्सव किया। और उसका शब्दार्थको अनुसरता धर्मदत्त नाम रखा। एक दिन आनन्दसे बड़े उत्सवके साथ पुत्रको जिनमंदिरमें ले जा, अरिहंतकी प्रतिमाको नमस्कार करा कर भेटके समान भगवानके सन्मुख रख दिया। तब अत्यन्त हर्षित प्रीतिमती रानीने अपनी सखीको कहा कि, “ हे सखि ! उस चतुर हंसने चित्तमें चमत्कार उत्पन्न करे ऐसा मुझ पर बहुत ही उपकार किया है। हंसके वचनानुसार करनेसे निर्धन पुरुष जैसे दैवयोगसे अपनेसे कभी न छोड़ी जाय ऐसी निधि पावे, वैसे ही मैंने भी कभी न छोड़ा जा सके ऐसा जिन-धर्मरूप एक रत्न और दूसरा यह पुत्र रत्न

पाया । प्रीतिमती इतना कह ही रही थी कि इतनेमें रोगी मनुष्यकी भांति वह बालक अकस्मात् आई हुई मूर्छासे तत्काल बेहोश होगया और उसके साथ ही प्रीतिमती भी असह्यदुःखसे मूर्छित होगई । तुरन्त ही परिवार तथा समीपके लोगोंने 'दृष्टिदोष अथवा कोई देवताकी पीडा होगी' ऐसी कल्पना कर बड़े खेदसे ऊंचे स्वरसे पुकार किया कि, " हाय २ !! माता व पुत्र इन दोनोंको एकदम यह क्या होगया ? " क्षणमात्रमें राजा, प्रधान आदि लोगोंने वहां आकर दोनों माता-पुत्रको शीतल उपचार किये जिससे थोड़ी देर ही में बालक व उसके बाद उसकी माता भी सचेत हुई । पूर्वकर्मका योग बड़ा आश्चर्यकारी है । उसी समय सर्वत्र इस बातकी बधाई हुई, राजपुत्रको उत्सव सहित घर ले आये, उस दिन राजपुत्रकी तत्रियत ठीक रही, उसने बार बार दूध पान आदि किया, परंतु दूसरे दिन शरीरकी प्रकृति अच्छी होते अरुचिवाले मनुष्यकी भांति उसने दूध न पिया और चौबिहार पञ्चखान करनेवालेकी तरह औषध आदि भी नहीं लिया । जिससे राजा, रानी, मंत्री तथा नगरवासी आदि बड़े दुःखित हुए; सब किंकर्तव्यविमूढ होगये । इतनेमें मानो उस बालकके पुण्य ही से आकर्षित हुए हों ऐसे एक मुनिराज मध्यान्हके समय आकाशमेंसे उतरे । प्रथम परमप्रीतिसे बालकने, पश्चात् राजाआदि लोगोंने मुनिराजको वन्दना करी । राजाने बालकके दूध आदि त्याग देने-

का कारण पूछा । तो मुनिराजने स्पष्ट कहा कि, “ हे राजन् ! इस बालकको रोग आदि तथा अन्य कोई भी पीडा नहीं. इसको तुम जिन-प्रतिमाका दर्शन कराओ तब यह अभी दूध पानादि करेगा ” । मुनिराजके बचनानुसार बालकको जिनमंदिरमें ले जा दर्शन नमस्कार आदि कराया । पश्चात् वह पूर्वानुसार दूध पीने लगा, जिससे सब लोगोंको आश्चर्य व संतोष हुआ । राजाने पुनः मुनिराजसे पूछा कि, “ यह क्या चमत्कार है ? ” मुनिराजने कहा- हे राजन् ! तुझे यह बात इसके पूर्वजन्मसे लेकर कहता हूं, सुन !

जिसमें निधपुरुष थोड़े और उत्तमपुरुष बहुत ऐसी पुरिका नाम नगरीमें दीनजीव पर दया और शत्रु पर क्रूर-दृष्टि रखनेवाला कृप नामक राजा था. उसका बृहस्पतिके समान बुद्धिमान चित्रमति नामक मंत्री था; और कुबेरके समान समृद्धिशाली वसुमित्र नामक श्रेष्ठी उस मंत्रीका मित्र था. नाम ही से एक अक्षर कम, परन्तु ऋद्धिसे बराबर ऐसा सुमित्र नामक एक धनाढ्य वणिक्पुत्र वसुमित्रका मित्र था. वणिक्पुत्र भी अनुक्रमसे श्रेष्ठीकी बराबरीका अथवा उसकी अपेक्षा अधिक उच्च भी होता है. उत्तमकुलमें जन्म लेनेसे पुत्रके समान मान्य ऐसा एक धन्य नामक सुमित्रका सेवक था. वह धन्य एक दिन स्नान करनेके लिये सरोवर पर गया. उत्तम कमल, सुन्दर शोभा और निर्मल जल वाले उस सरोवरमें हाथीके

बच्चेकी भांति क्रीड़ा करते उसे दिव्यकमलके समान अत्यन्त सुगन्धित सहस्रपखड़ी वाला कमल मिला. उसे ले सरोवरमेंसे बाहर निकल हर्षसे धन्य चलता हुआ. मार्गमें फूल उतार कर जाती हुई मालीकी चार कन्याएं उसको मिलीं. पूर्व परिचित होनेसे उन कन्याओंने कमलके गुण जान कर धन्यको कहा कि " हे भद्र ! भद्रशाल वनके वृक्षका फूल जैसे यहां दुर्लभ है, वैसे ही यह कमल भी दुर्लभ है । यह श्रेष्ठ वस्तु श्रेष्ठपुरुषों ही के योग्य है, इसलिये इसका उपयोग ऐसे वैसे व्यक्ति पर मत करना " धन्यने कहा " इस कमलका उत्तम पुरुष ही पर मुकुटके समान उपयोग करूंगा । "

पश्चात् धन्यने विचार किया कि, " सुमित्र ही सर्व सज्जनोंमें श्रेष्ठ है, और इसीलिये वे मेरे पूज्य हैं । " जिसकी आजीविका जिस मनुष्यसे चलती हो उसे उस मनुष्यके अतिरिक्त क्या दूसरा कोई श्रेष्ठ लगता है ? अस्तु, सरलस्वभाव धन्यने ऐसा विचार कर जैसे किसी देवताको भेंट करना होवे, वैसे सुमित्रके पास जा विनय पूर्वक नमस्कार कर यथार्थ बात कह कर उक्त कमल भेंट किया । तब सुमित्रने कहा कि, " मेरे सेठ वसुमित्र सर्व लोगोंमें उत्कृष्ट हैं । उन्हींको यह उत्तम वस्तु वापरने योग्य है । उनके मुझ पर इतने उपकार हैं कि, मैं अहर्निश उनका दासत्व करूं तो भी उनके ऋणसे मुक्त नहीं हो सकता । " सुमित्रके ऐसा कहने पर धन्यने वह कमल वसुमित्र-

को भेट किया। तब वसुमित्रने भी कहा कि, “ इस लोकमें मेरे सर्व कार्य सफल करने वाला एक मात्र चित्रमति मंत्री सर्व श्रेष्ठ है। ” तदनुसार धन्यने वह कमल चित्रमति मंत्रीको भेट किया, तो चित्रमतिने भी कहा कि, “ मेरी अपेक्षा कृप राजा श्रेष्ठ है, कारण कि, पृथ्वी तथा प्रजाका अधिपती होनेसे उसकी दृष्टिका प्रभाव भी देवगतिकी भांति बहुत चमत्कारिक है। उसकी क्रूरदृष्टि जो किसी पर पड़े तो वह चाहे कितना ही धनी हो तो भी कंगालके समान हो जावे, और उसकी कृपादृष्टि जिस पर पड़े वह कंगाल हो तो भी धनी हो जाय। ” चित्रमतिके ये वचन सुन धन्यने वह कमल राजाको दिया। राजा कृप भी जिनेश्वर भगवान् तथा सद्गुरुकी सेवामें तत्पर था, इससे उसने कहा कि, “ जिसके चरण-कमलमें मेरे समान राजा भ्रमरके सदृश तल्लीन रहते हैं, वे सद्गुरु ही सर्व श्रेष्ठ हैं, पर उनका योग स्वातिनक्षत्रके जलकी भांति स्वल्प ही मिलता है। ” राजा यह कह ही रहा था कि, इतनेमें सब लोगोंको चकित करनेवाले कोई चारण-मुनि देवताकी भांति आकाशमेंसे उतरे। बड़े आश्चर्यकी बात है कि, आशारूप लता किस प्रकार सफल हो जाती है ! राजादि सर्वलोकोंने सादर मुनिराजको आसन दे, वन्दना आदि करी व अपने २ उचित स्थान पर बैठ गये। पश्चात् धन्यने विनयपूर्वक वह कमल मुनिराजको भेट किया। तब चारण-मुनिने कहा कि, “ जो तारतम्यतासे किसी भी मनुष्यमें

श्रेष्ठत्व आता हो तो उसका अन्त अरिहंत ही में आना योग्य है. कारण कि, अरिहंत त्रिलोकमें पूज्य हैं. अतएव तीनों लोकमें उत्तम ऐसे अरिहंत ही को यह कमल धारण करना योग्य है. इस लोक तथा परलोकमें वांछित वस्तुकी दाता वह अरिहंतकी पूजा एक नवीन उत्पन्न हुई कामधेनुके समान है. " भद्रक स्वभाव वाला धन्य, चारण-मुनिके वचनसे हर्षित हुआ, व पवित्र हो जिन-मंदिरको जा उसने वह कमल भावसे छत्रके समान भगवान्‌के मस्तक पर चढ़ाया. उस कमलसे भगवान्‌का मस्तक इस तरह सुशोभित होगया मानो मुकुट पहिराया हो. उससे धन्यको बहुत ही आनन्द उत्पन्न हुआ. पश्चात् वह स्वस्थ चित्त कर क्षणमात्र शुभभावनाका ध्यान करने लगा. इतनेमें मालीकी वे चारों कन्याएं फूल बेचनेके लिये वहां आई. उन्होंने धन्यका चढ़ाया हुआ कमल भगवान्‌के मस्तक पर देखा. इस शुभ-कर्मको अनुमोदना दे, उन चारोंने संपत्तिका मानो बीज ही हो ऐसा एक एक श्रेष्ठ फूल उसी समय प्रतिमा पर चढ़ाया. ठीक है, शुभ अथवा अशुभ कर्म करना, पढ़ना, गुणना, देना, लेना, कोईको मान देना, शरीर सम्बंधी अथवा घर सम्बंधी कोई कार्य करना, इत्यादि कृत्योंमें भव्य जीवकी प्रवृत्ति प्रथम भगवान्‌का दर्शन कर ही के होती है। तदनंतर अपने जीवको धन्य मानता धन्य और वे चारों कन्याएं अपने २ घर गये. उस दिनसे धन्य यथाशक्ति नित्य भगवान्‌को वन्दना

करने आवे, और ऐसी भावना भावे कि, “ जानवरकी भांति निशिदिन परतंत्रतामें रहनेसे जिसको नित्य भगवान्‌को वन्दना करनेका नियम भी नहीं लिया जाता, ऐसे मुझ अभागेको अधिकार है. ” अस्तु, कृपराजा, चित्रगति मंत्री, वसुमित्र श्रेष्ठी और सुमित्र वणिक्पुत्र इन चारों व्यक्तियोंने चारण-मुनिके उपदेशसे श्रावक-धर्म ग्रहण किया और क्रमशः वे सौधर्मदेव-लोकको गये। धन्य भी अरिहंत पर भक्ति रखनेसे सौधर्म-देवलोकमें महद्विक देवता हुआ और वे चारों मालीकी कन्याएं उसके (धन्यके) मित्र देवता हुईं. कृपराजाका जीव देवलोकसे पतित हो, जैसे स्वर्गमें देवराज इन्द्र है, वैसे वैताळ्य पर्वत पर स्थित गगनवल्लभ नगरमें चित्रगति नामक विद्याधरोंका राजा हुआ। मंत्रीका जीव देवलोकसे निकल कर चित्रगतिका पुत्र हुआ। उस पर मातापिता बहुत ही स्नेह करने लगे। बापसे भी अधिक तेजस्वी उस पुत्रका नाम विचित्रगति रखा। विचित्र-गतिने यौवनावस्थामें आकर एक समय राज्यके लोभवश अपने बापको मार डालनेके लिये मजबूत व गुप्त विचार किया। अधिकार है ऐसे पुत्रको ! जो लोभान्ध हो पिताका अनिष्ट चिंतयन करे ! सुदैव वश गोत्रदेवीने वह सर्व गुप्त विचार चित्र-गतिको कहा. अचानक भय आनेसे चित्रगतिको उसी समय उज्ज्वल वैराग्य प्राप्त हुआ और वह विचार करने लगा कि, हाय हाय ! अब मैं क्या करूं ? किसकी शरणमें जाऊं ? किसको

क्या कहूँ ? पूर्वभवमें पुण्य उपाजन नहीं किया, जिससे अपने ही पुत्रके द्वारा मेरे भाग्यमें पशुके समान मृत्यु और दुर्गति पानेका प्रसंग आया, तो अब भी मुझे चेत जाना चाहिये. ऐसा विचार कर मनके अध्यवसाय निर्मल होनेसे उसने उसी समय पंचमृष्टि लोच किया. देवताओंने आकर साधुका वेष दिया. तब बुद्धिमान चित्रगतिने पंच महाव्रत ग्रहण किये. पश्चात् विचित्रगतिने पश्चाताप करके चित्रगतिको खमाया व पुनः राज्यपर बैठनेकी बहुत प्रार्थना करी. चित्रगतिने चारित्र लेनेका सब कारण कह सुनाया, पश्चात् पवनकी भांति अग्रविशेष विहार किया. साधुकल्पके अनुसार विहार करते तथा महान कठिन तपस्या करते मुनिराज चित्रगतिको अवधिज्ञान व उसीके साथ मानो स्पर्धा ही से मनःपर्यवज्ञान भी उत्पन्न हुआ. (चित्रगति-मुनि राजाको कहते हैं कि) वही मैं ज्ञानसे लाभ हो ऐसा समझकर तुम्हारा मोह दूर करनेके लिये यहाँ आया हूँ। अब शेष समग्र वर्णन कहता हूँ. वसुमित्रका जीव देवलोकसे च्यवकर तू राजा हुआ, और सुमित्रका जीव तेरी प्रीतिमती नामक रानी हुआ. इस प्रकार तुम दोनोंकी प्रीति पूर्वभव ही से दृढ़ हुई है. अपना श्रेष्ठ श्रावकत्व बतानेके लिये सुमित्रने कभी कभी कपट किया इससे वह स्त्रीत्वको प्राप्त हुआ। बड़े खेदकी बात है कि चतुर मनुष्य भी अपने हिताहितको भूल जाता है। 'मेरेसे पहिले मेरे छोटे भाईको पुत्र न होवे.' ऐसा चिन्तन

किया, इसीसे इस भवमें इतने विलम्बसे पुत्र हुआ. एक बार किसीका बुरा चिन्तवन किया होवे तो भी वह अपनेको उसका कठिन फल दिये बिना नहीं रहता. धन्यके जीवने देवताके भवमें एक दिन सुविधिजिनेश्वरको पूछा कि, "मैं यहांसे च्यव कर कहाँ उत्पन्न होऊंगा ? तब भगवान् ने उसे तुम दोनोंका पुत्र होनेकी बात कही. तब धन्यके जीवने विचार किया कि, "मा बाप ही धर्म न पाये हों, तो पुत्रको धर्मकी सामग्री कहाँसे मिले ? मूल कुएँमें जो पानी होवे तभी समीपके प्याऊ (जिममें ढोर पानी पीते हैं) में सहजसे मिल सकता है." ऐसा विचार करके अपनेको बोधिवीजका लाभ होनेके लिये हंसका रूप धारण कर रानीको प्रस्तावोचित वचनसे तथा तुझे स्वप्न दिखा कर बोध किया. इस रीतिसे भव्यप्राणी देवताभवमें होते हुए भी परभवमें बोधिलाभ होनेके निमित्त उद्यम करते हैं। अन्य कितने ही पुरुष मनुष्यभवमें होते भी पूर्वसंचित चिंतामणि रत्न समान बोधिरत्न (सम्यक्त्व) को खो बैठते हैं।

वह सम्यक्त्वधारी देवता (धन्यका जीव) स्वर्गसे च्यव कर तुम दोनोंका पुत्र हुआ. इसकी माताको उत्तमोत्तम स्वप्न आये तथा श्रेष्ठ इच्छाएं (दोहले) उत्पन्न हुए, उसका यही कारण है कि, जैसे शरीरके साथ छाया, पतिके साथ पतिव्रता स्त्री, चन्द्रके साथ चन्द्रिका, सूर्यके साथ उसका प्रकाश व मेघके साथ बिजली जाती है वैसे ही इसके साथ पूर्वभवसे जिन-

भक्ति आई हुई है इसीसे स्वप्नादि उत्तम आये। कल इसे जिन-मंदिर लेगये, तब बार बार जिन प्रतिमाको देखनेसे तथा हंसके आगमनकी बात सुननेसे इसे मूर्छा आई और तत्काल जाति-स्मरणज्ञान उत्पन्न हुआ, जिससे पूर्वभवका सम्पूर्ण कृत्य इसे स्मरण हो आया। तब इसने आने मन ही से ऐसा नियम लिया कि “जिनेश्वर भगवानका दर्शन और वन्दना किये बिना मैं यावज्जीव सुखमें कुछ भी नहीं डालूंगा।” नियम रहित धर्मकी अपेक्षा नियम सहित धर्मका अनन्तगुणा अधिक फल है, कहा है कि- नियम सहित और नियम रहित ऐसा दो प्रकारका धर्म है, जिसमें प्रथम धर्म थोड़ा उपार्जन किया हो तो भी निश्चयसे दूसरेकी अपेक्षा अनन्तगुणा फल देता है, और दूसरा धर्म बहुत उपार्जन किया हो, तो भी परिमित व अनिश्चित फल देता है। कुछ भी ठैराव किये बिना किसीको बहुत समय तक व बहुतसा द्रव्य कर्ज दिया होवे, तो उससे किंचित मात्र भी ब्याज उत्पन्न नहीं होता, और जो कर्ज देते समय ठैराव किया होवे तो उस द्रव्यकी प्रतिदिन वृद्धि होती जाती है। ऐसे ही धर्मके विषयमें भी नियम करनेसे विशेष फल वृद्धि होता है। तत्त्वज्ञानी पुरुष होवे, तो भी अविरतिका उदय होने पर श्रेणिक राजाकी भांति उससे नियम नहीं लिया जा सकता और अविरतिका उदय न होवे तो लिया जाता है। तथापि कठिन समय आने पर दृढ़ता रखकर नियम भंग न करना, यह बात तो आसन्नसिद्धि जीव

ही से बन सकती है. इस धर्मदत्तने पूर्वभवसे आई हुई धर्मरुचिसे तथा भक्तिसे अपनी एकही मामकी उमरमें कल नियम ग्रहण किया. कल जिनदर्शन तथा वन्दना कर लिया था इसलिये इसने दूधआदि पिया. आज यद्यपि यह क्षुधा, तृषामे पीडित हुआ तथापि दर्शन व वन्दनका योग न मिलनेसे इसने मन दृढ़ रख कर दूध न पिया. मेरे वचनसे इसका अभिग्रह पूर्ण हुआ तब इसने दूधपानादि किया. पूर्वभवंमें जो शुभाशुभ कर्म किया हो, अथवा करनेका विचार किया हो, वह सर्व पर-भवंमें उसीके अनुसार मिल जाता है. इस महिमावन्त पुरुषको पूर्वभवंमें करी हुई जिनेश्वरभगवानकी अप्रकट भक्तिसे भी चित्तको चमत्कार उत्पन्न करनेवाली परिपूर्ण समृद्धि मिलेगी. मालीकी चारों कन्याओंके जीव स्वर्गसे च्यवकर पृथक् २ बड़े २ राजकुलोंमें उत्पन्न होकर इसकी रानियां होवेंगी। साथमें सुकृत करने.वालोंका योग भी साथ ही रहता है। ”

मुनिराजकी यह बात सुन तथा बालकके नियमकी बात प्रत्यक्ष देख राजा आदि लोगोंने नियम सहित धर्म अंगीकार किया. “पुत्रको प्रतिबोध करनेके लिये जाता हूं. ” यह कह वं मुनिराज गरुडकी भांति वैताळ्यपर्वतको उडगये. “ जगत्को आश्चर्य कारक अपनी रूपसंपत्तिसे कामदेवको भी लज्जित करनेवाला जातिस्मरण पाया हुआ धर्मदत्त, ग्रहण किये हुए नियमको मुनिराजकी भांति पालता हुआ कमशः बढ़ने लगा.

उसके सर्वोत्कृष्ट शरीरके साथही साथ उसके रूप, लावण्य आदि लोकोत्तर सद्गुणोंकी भी दिन प्रतिदिन वृद्धि होने लगी तथा धर्म करनेसे उसके सद्गुण विशेष सुशोभित हुए. कारण कि, इसने तीन वर्षकी उमर ही में “ जिनेश्वर भगवानकी पूजा किये बिना भोजन नहीं करना. ” ऐसा अभिग्रह लिया. निपुण धर्म-दत्तको लिखना, पढ़ना आदि बहत्तर कलाएं मानो पूर्व ही में लिखी पढ़ी हों, वैसे सहज मात्र लीला ही से शीघ्र आगई। पुण्य भी अपार चमत्कारी है. तत्पश्चात् उसने यह विचार कर कि “पुण्यानुबंधीपुण्यसे परभवमें भी पुण्यकी प्राप्ति सुखसे होती है, ” सद्गुरुके पाससे स्वयं श्रावक-धर्म स्वीकार किया.

“ धर्मकृत्य विधि बिना सफल नहीं होता. ” यह विचार कर उसने त्रिकाल देवपूजा आदि शुभकृत्य श्रावककी सामा-चारीके अनुसार करना शुरु किया. हमेशा धर्म पर उत्कृष्ट-भाव रखनेवाला वह धर्मदत्त, अनुक्रमसे माध्यमिक अवस्थाको पहुंचा. तब मोटे सांटेकी भांति उसमें लोकोत्तर मिठास आया. एक दिन किसी परदेशी पुरुषने धर्मदत्तके लिये इन्द्रके अश्व-समान एक अश्व राजाको भेंट किया. तब धर्मदत्त अपने समान यह अश्व भी स्वर्गमें दुर्लभ है ऐसा सोच योग्य वस्तुका योग करनेकी इच्छासे उसी समय पिताकी आज्ञा लेकर उस अश्व पर चढ़ा. बड़े खेदकी बात है कि, ज्ञानी मनुष्यको भी मोह वशमें कर लेता है ! अस्तु, धर्मदत्तके ऊपर चढ़तेही मानों

अपना अलौकिक वेग आकाशमें भी दिखानेके निमित्त अथवा इन्द्रके अश्वको मिलनेकी उत्सुकतासे ही वह अश्व एकदम आकाशमें उड़गया. व क्षणमात्रमें अदृश्य होगया तथा हजारों योजन पार कर, धर्मदत्तको एक विकट जंगलमें पटक वह कहीं भाग गया. सर्पके फूँकारसे, बन्दरकी वुत्कारसे (घुड़कीसे), खरकी धुत्कारसे चीतेकी चित्कारसे चमरी गायके भाँकारसे, रोज़के त्राट्कारसे व दूष्टशियालियोंके फेत्कारसे बहुत ही भयंकर वनमें भी स्वभाव ही से निडर धर्मदत्तको लेशमात्र भी भय न हुआ. सत्य है, सत्पुरुष विषत्तिकालमें बहुत ही धैर्य रखते हैं, व संपदा आनेपर बिलकुल अहंकार नहीं रखते, वह गजेन्द्रकी भाँति उस वनमें यथेच्छ फिरता हुआ, शून्यवनमें भी मनको शून्य न रखते, जैसे अपने राज-मंदिरमें रहता था, वैसे ही स्वस्थतासे वहाँ रहा. परन्तु जिन-प्रतिमाका योग मात्र न मिलनेसे वह दुःखी हुआ, तथापि शान्ति रख उस दिन फल-आदि वस्तु भी न खाकर उसने पापका नाश करनेवाला निर्जल उपवास (चौविहार उपवास) किया. शीतल जल व नाना भाँतिके फल होने पर भी क्षुधा, तृषासे अत्यन्त पीडित धर्मदत्तको इसी प्रकार तीन उपवास होगये । अपने ग्रहण किये हुए नियम सहित धर्ममें यह कैसी आश्चर्य कारक दृढ़ता है ! लू लगनेसे अत्यन्त मुरझाई हुई पुष्पमालाके समान धर्मदत्तका सर्वांग मुरझा गया था तथापि धर्ममें दृढ़ता होनेसे उसका मन बहुत

ही प्रसन्न था. इतनेमें एक देव प्रकट होकर उससे कहने लगा—

“अरे सत्पुरुष ! बहुत श्रेष्ठ ! बहुत श्रेष्ठ ! तूने असाध्य कार्य साधन किया. अहा, कितना धैर्य ! अपने जीवनकी अपेक्षा न रखते ग्रहण किये हुए नियम ही में तेरी दृढ़ता अनुपम है. शक्रेन्द्रने तेरी प्रकट प्रशंसा करी वह योग्य है. वह बात मुझसे सहन न हुई, इसीसे मैंने यहां वनमें लाकर तेरी धर्म मर्यादाकी परीक्षा की. ‘हे सुजान ! तेरी दृढ़तासे मैं प्रसन्न हुआ हूं, अतएव मुझमेंसे एक वचन निकाल कर इष्ट वरदान मांग.’ देवताका यह वचन सुन धर्मदत्तने विचार करके कहा कि, ‘हे देव ! मैं जब तेरा स्मरण करूं तब तू मेरा कार्य करना.

पश्चात् वह देव ‘यह धर्मदत्त अद्भुत भाग्यका निधि है. कारण कि, इसने मुझे इस तरह बिलकुल वशमें कर लिया.’ ऐसा सोचता हुआ धर्मदत्तका वचन अंगीकार कर उसी समय वहांसे चला गया. तदनन्तर धर्मदत्त ‘अब मुझे मेरा स्थानादि कैसे मिलेगा ?’ इस विचारमें था, कि इतनेमें उसने अपने आपको अपने ही महलमें देखा. तब उसने विचार किया कि अभी मैंने देवताका स्मरण नहीं किया था, तो भी उसने अपनी शक्तिसे मुझे अपने स्थानको पहुंचा दिया ! प्रसन्न हुए देवताको इतनासा कार्य करना क्या कठिन है ? ।

धर्मदत्तके मिलाप होनेसे उसके माता, पिता, कुटुम्बी, नौकर चाकर आदिको बहुत ही आनंद हुआ, पुण्यकी महिमा

अद्भुत है. पश्चात् उसने पारणिके निमित्त उत्सुकता न रख कर उस दिन भी विधिके अनुसार जिन-प्रतिमाकी पूजा करी और उसके बाद पारणा किया. धर्मनिष्ठ पुरुषोंका आचार अपार आश्चर्यकारी होता है.

उन चारों कन्याओंके जीव पूर्व, पश्चिम, दक्षिण व उत्तर इन चारों दिशाओंमें स्थित देशोंके चार राजाओंकी सबको बहुमान्य, बहुतसे पुत्रों पर कन्याएं हुई. उनमें पहिलीका नाम धर्मरति, दूसरीका धर्ममति, तीसरीका धर्मश्री और चौथीका धर्मिणी नाम था, नामके अनुसार उनमें गुण भी थे. जब वे चारों तरुण हुई तो ऐसी शोभा देने लगीं मानो लक्ष्मी देवी ही ने अपने चार रूप बनाये हों. एक दिन वे अनेक सुकृतकारी उत्सवके स्थानरूप जिन-मंदिरमें आई और अरिहंतकी प्रतिमा देख कर जातिस्मरणज्ञानको प्राप्त हुई. जिससे “ जिन प्रतिमाकी पूजा किये बिना हम भोजन न करेंगी ” ऐसा नियम लेकर हमेशा जिनभक्ति करती रहीं. तथा उन चारों कन्याओंने एक दिल हो ऐसा नियम किया था कि, “ अपन पूर्व भवका परिचित वर वेंगी. ” यह जान पूर्वदेशके राजाने अपनी पुत्री धर्मरतिके लिये स्वयंवर मंडप किया, व उसमें समग्र राजाओंको निमंत्रित किया. पुत्र सहित राजधर राजाको आमंत्रण आया था, तो भी धर्मदत्त वहां नहीं गया. कारण कि, उसने विचार कि “ जहां फल प्राप्ति होने न होनेका निश्चय नहीं ऐसे कार्यमें कौन दौड़ता

जावे ? ” इतने ही में विद्याधरेश विचित्रगति राजा चारित्रवंत हुए अपने पिताके उपदेशसे पंच महाव्रत ग्रहण करनेको तैयार हुआ. उसको एक कन्या थी. अतः उसने प्रज्ञप्ति विद्याको पूछा कि, “ मेरी पुत्रीसे विवाह कर मेरा राजा चलाने योग्य कौन पुरुष है ? प्रज्ञप्तिने कहा कि, “ तू तेरी पुत्री व राज्य सुपात्र धर्मदत्तको देना. ” विद्याके इन वचनोंसे विद्याधरको बहुत हर्ष हुआ. तथा धर्मदत्तको बुलानेके लिये राजपुर नगरको आया. वहां धर्मदत्तके मुखसे धर्मरति कन्याके स्वयंवरके समाचार सुन, विचित्रगति धर्मदत्तको साथ ले देवताकी भांति अदृश्य हो धर्मरतिके स्वयंम्बर मंडपमें आया. व उन दोनोंने वहां कन्या-ने किसीको भी अंगीकार न किया, इससे सब राजाओंको उदास व निस्तेज अवस्थामें देखा. सब लोग आकुल व्याकुल हो रहे थे कि “ अब क्या होगा ? ” इतने ही में प्रातःकालके सूर्यकी भांति विचित्रगति व धर्मदत्त प्रकट हुए. राजकन्या धर्मरति धर्मदत्तको देखते ही संतुष्ट हुई, और जैसे रोहिणीने वसुदेवको वरा वैसे ही उसने धर्मदत्तके गलेमें वरमाला डाल दी. पूर्वभवका प्रेम अथवा द्वेष ये दोनों अपने अपने उचित कर्मोंमें जीवको प्रेरणा करते हैं. बाकी तीनों दिशाओंके राजा वहां आये हुए थे. उन्होंने विद्याधरकी सहायतासे अपनी तीनों पुत्रियोंको विमानमें बिठाकर वहां बुलवाई और बड़े हर्षके साथ उसी समय धर्मदत्तको दीं । पश्चात् धर्मदत्तने विद्याधरके किये

हुए दिव्य उत्सवमें उन चारों कन्याओंका पाणिग्रहण किया. तदनन्तर विचित्रगति विद्याधर धर्मदत्त तथा अन्य सर्व राजाओंको लेकर वैताड्यपर्वत पर गया. वहाँ विविधप्रकारके उत्सव करके उसने अपनी कन्या और राज्य धर्मदत्तको अर्पण किया तथा उभी समय उसकी दी हुई एक सहस्र विद्याएं धर्मदत्तको सिद्ध हुई. इस प्रकार विचित्रगति आदि विद्याधरोंकी दी हुई पांचसौ कन्याओंका पाणिग्रहण करके धर्मदत्त अपने नगरको आया, और वहाँ भी अन्य राजाओंकी पांचसौ कन्याओंसे विवाह किया. पश्चात् राजधर राजाने भी अपनी समग्र राज्य-संपदा अपने सद्गुणी-पुत्र धर्मदत्तको सौंप, चित्रगति सद्गुरुके पास अपनी पट्टरानी प्रीतिमती सहित दीक्षा ली. विचित्रगतिये भी धर्मदत्तको पूछकर दीक्षा ग्रहण की. समय पाकर चित्रगति विचित्रगति, राजधर राजा और प्रीतिमति रानी ये चारों अनुक्रमसे मोक्षको गये ।

इधर धर्मदत्तने हजारों राजाओंको जीत लिये, और वह दस हजार रथ, दस हजार हाथी, एकलक्ष घोड़े और एक करोड़ पैदल सैन्यका अधिपति होगया. नाना प्रकारकी विद्याओंके मदको धारण करनेवाले सहस्रों विद्याधरोंके राजा धर्मदत्तकी मेवामें तत्पर होगये. इस तरह बहुत समय तक इन्द्रकी भांति उसने बहुतसा राज्य भोगा. उसने स्मरण करते ही आने वाले पूर्व प्रसन्न किये हुए देवकी सहायतासे अपने देशको देवकुरु-

क्षेत्रकी भांति महामारी, दुर्भिक्ष इत्यादिसे रहित कर दिया. पूर्वभवमें भगवान्की सहस्रदल कमलसे पूजा करी. उससे इतनी संपदा पाने पर भी वह यथाविधि त्रिकाल पूजा करनेमें नित्य तत्पर रहता था । “ अपने ऊपर उपकार करने वालेका पोषण अवश्य करना चाहिये ” ऐसा विचार कर धर्मदत्तने नये नये चैत्यमें प्रतिमा स्थापन करी तथा तीर्थयात्रा, स्नात्रगहो-त्सव आदि शुभकृत्य करके अपने ऊपर उपकार करनेवाली जिन-भक्तिका बहुतही पोषण किया. उसके राज्यमें अठ्ठारहों वर्ष “ यथा राजा तथा प्रजा ” इस लोकोक्तिके अनुसार जैन-धर्मी होगये. जैनधर्म ही से इसभव तथा परभवमें उदय होता है. धर्मदत्तने अवसर पा पुत्रको राज्य देकर रानियों सहित दीक्षा ली और मनकी एकाग्रतासे तथा अरिहंत पर दृढभक्तिसे तीर्थंकर नामगोत्र कर्म उपार्जन किया. यहां दो लाख पूर्वका आयुष्य भोगकर वह सहस्रारदेवलोकेमें देवता हुआ. तथा वे चारों रानियां जिनभक्तिसे गणधर कर्म संचित कर उसी देव-लोकको गई. पश्चात् उन पांचोंका जीव स्वर्गसे च्युत हुआ, धर्मदत्त-का जीव महाविदेहक्षेत्रमें तीर्थंकर हुआ और चारों रानियोंके जीव उसके गणधर हुए. पश्चात् धर्मदत्तका जीव तीर्थंकरनाम-गोत्रको वेदके क्रमसे गणधर सहित मुक्तिको गया. इन पांचोंका क्या ही आश्चर्यकारी संयोग है ? समझदार मनुष्योंने इस तरह जिनभक्तिका ऐश्वर्य जानकर धर्मदत्त राजाकी भांति जिन-

भक्ति तथा अन्य शुभ-कर्म करनेके हेतु सदैव तत्पर रहना चाहिये ॥ इति धर्मदत्तराजाकी कथा ॥

मूल गाथामें “ उचिअचितरओ ” अर्थात् “ उचित चिन्ता करनेको तत्पर ” ऐसा कहा है, इसलिये उचित चिन्ता वह क्या ? उसका वर्णन करते हैं । जिनमंदिरमें सफाई रखना; जिनमंदिर अथवा उसका भाग गिरता हो तो तुरंत सम्हालना; पूजाके उपकरण कम हों तो पूरे करना; भगवानकी तथा परिवारकी प्रतिमाएं निर्मल रखना, उत्कृष्ट पूजा तथा दीपादिककी उत्कृष्ट शोभा करना, चौरासी आशातनाएं टालना; अक्षत, फल, नैवेद्य आदिकी मिद्धता करना, चंदन, केशर, धूप, दीप, तैल इन वस्तुओंका संग्रह करना, चैत्यद्रव्यका नाश होता होवे तो आगे कहा जायगा उस दृष्टान्तके अनुसार उसकी रक्षा करना, दो चार अच्छे श्रावकोंको साक्षी रख कर देवद्रव्यकी उगाई (उगरानी, वसुली) करना, आया हुआ द्रव्य उत्तम स्थानमें यत्नसे रखना, देवद्रव्यके जमा खर्चका हिसाब स्वच्छ रखना, स्वयं देवद्रव्यकी वृद्धि करना तथा दूसरेसे कराना. मंदिरमें काम करनेवाले लोगोंको वेतन देना, उन लोगोंके कामकी देखरेख रखना इत्यादि अनेकप्रकारकी उचित चिन्ता है। द्रव्यवान् श्रावकसे मंदिरके कार्य द्रव्य अथवा नौकरों द्वारा बिना प्रयास ही होसकें ऐसे हैं, तथा अपनी अंग-मिहनतसे अथवा अपने कुटुम्बके मनुष्योंसे बन सके ऐसे कार्य निर्धन मनु-

ध्योंसे बिना द्रव्य ही के हो जावें ऐसे हैं । अतएव जिसकी जो करनेकी शक्ति होवे, उसे उस कार्यमें वैसी ही उचित चिन्ता करना । जो उचित चिन्ता थोड़े समयमें होसके ऐसी हो वह दूसरी निसिहीसे पहिले ही करना, इसके अनन्तर भी जैसा योग होवे वैसा करना ।

ऊपर जैसे मंदिरकी उचित चिन्ता कही, वैसे ही धर्मशाला गुरु, ज्ञान आदिकी भी उचित चिन्ता अपनी पूर्णशक्तिसे करना । कारण कि देव, गुरु आदिकी चिन्ता करने वाला श्रावक-के अतिरिक्त अन्य कोई नहीं है । जैसे एक गायके बहुतसे मालिक ब्राह्मण उसका दूध तो निकाल लेते हैं पर उसे घास पानी कोई नहीं देते, उस तरह देव, गुरु आदिकी उपेक्षा अथवा उनके काममें आलस्य न करना । कारण कि, ऐसा करनेसे समय पर सम्यक्त्वका भी नाश हो जाता है । आशातना आदि होते जो अपनेको अतिदुःख न हो तो वह कैसी अरिहंत आदिकी भक्ति ? लौकिकमें भी सुनते हैं कि, महादेवकी आंख उखड़ी हुई देखकर अत्यंत दुःखित हुए भीलने अपनी आंख महादेवको अर्पण की थी. इसलिये सदैव देवगुरुआदिके काम स्वजन संबन्धियोंके कामकी अपेक्षा भी आदर पूर्वक करना. हम यह कहते हैं कि- सर्व संसारी जीवोंकी देह, द्रव्य और कुटुम्ब पर जैसी प्रीति होती है, वैसी ही प्रीति मोक्षाभिलाषी जीवोंकी जिन-प्रतिमा, जिनमत और संघके ऊपर होती है । देव, गुरु

और ज्ञान इत्यादिककी आशातना जघन्य, मध्यम और उत्कृष्ट ऐसी तीन प्रकारकी है । जिसमें पुस्तक, पटली, टिप, जपमाला आदिको थूंक लगाना, कम अथवा अधिक अक्षर बोलना, ज्ञानोपकरण पास होते हुए वायु संचार करना इत्यादिक जघन्य आशातना है । अध्ययनका समय न होने पर पढ़ना, योग और उपधान तपस्या बिना सूत्रका अध्ययन करना, भांगिसे अर्थका अनर्थ करना, प्रमादवश पुस्तक आदि वस्तुको पग बगैरा लगाना, पुस्तक आदि भूमि पर पटक देना, ज्ञानोपकरण पास होते आहार अथवा लघुनीति करना, इत्यादिक मध्यम आशातना है । पाटली आदिके ऊपरके अक्षर थूंकसे घिस कर मिटा देना, ज्ञानोपकरणके ऊपर बैठना, सो रहना इत्यादि, ज्ञानोपकरण पास होते बड़ीनीति आदि करना, ज्ञानकी अथवा ज्ञानीकी निंदा, दुश्मनी, नुकसान आदि करना, तथा उत्सूत्र भाषण करना, यह उत्कृष्ट आशातना है ।

जिनप्रतिमाकी तीन प्रकारकी आशातना इस प्रकार है:—
 बालाकुंची इत्यादि पछाड़ना, जिन प्रतिमाको अपने निश्चासका स्पर्श कराना, अपने वस्त्र जिन-प्रतिमाको अडाना इत्यादिक जघन्य आशातना है । बिना धोये हुए धोतियेसे जिनप्रतिमाकी पूजा करना, जिनबिंबको भूमिपर डालना इत्यादिक मध्यम आशातना है । पग लगाना, जिनप्रतिमाको नाकका मल अथवा थूंक आदि लगाना, प्रतिमाका मंग करना, प्रतिमाको उठा

लेजाना तथा जिनेश्वर भगवानकी बड़ी आशातना करना इत्यादि उत्कृष्ट आशातना है, अथवा जिन-प्रतिमाकी जघन्यसे आशातना १०, मध्यमसे ४०, और उत्कृष्टसे चौरासी हैं. यथा:—

जिनमंदिरके अन्दर १ पान सुपारी खाना, २ पानी-आदि पीना, ३ भोजन करना, ४ जूते पहिरना. ५ स्त्री संभोग करना, ६ निद्रा लेना, ७ थूंक आदि डालना, ८ लघुनीति करना, ९ बड़ीनीति करना, तथा १० जुआं खेलना. इस प्रकार जिनमंदिरमें जघन्यसे १० आशातना अवश्य त्यागना चाहिये ।

जिनमंदिरमें १ लघुनीति करना, २ बड़ीनीति करना, ३ जूते पहिर कर जाना, ४ पानीआदि पीना, ५ भोजन करना, ६ निद्रा लेना, ७ स्त्रीसंभोग करना, ८ पान सुपारी खाना, ९ थूंक आदि डालना, १० जुआं खेलना, ११ द्यूतक्रीडा देखना, १२ विकथा करना, १३ पालखी मारकर बैठना, १४, चौड़े पग करके बैठना, १५ परस्पर विवाद करना, १६ हंसी करना १७ ईर्ष्या करना, १८ बैठनेके लिये सिंहासनादि उपभोग योग्य वस्तु काममें लेना, १९ केश व शरीरकी आभूषणादिसे शोभा करना, २० छत्र धारण करना, २१ खड्ग धारण करना, २२ मुकुट धारण करना, २३ चामर धारण करना, २४ धरना देकर बैठना, २५ स्त्रियोंके साथ विकार सहित हास्य करना, २६ जार पुरुषोंके साथ प्रसंग करना. २७ पूजाके समय मुख-

कोश न करना, २८ पूजाके अवसर पर शरीर तथा वस्त्र मलीन रखना, २९ पूजाके समय मनकी एकाग्रता न करना, ३० सचित्त द्रव्यका बाहर त्याग न करना, ३१ हार, मुद्रिका आदि अचित्त वस्तुका त्याग करना, ३२ एकसाडी उत्तरासंग न करना, ३३ जिनप्रतिमाका दर्शन होनेपर अंजलि न करना, ३४ जिनपूजाका दर्शन होनेपर पूजा न करना, ३५ खराब फूल आदि वस्तुसे पूजा करना, ३६ पूजादिकमें आदर पूर्वक प्रवृत्ति न रखना, ३७ जिनप्रतिमाके शत्रुका निवारण न करना, ३८ चैत्यद्रव्यका नाशादिकी उपेक्षा करना, ३९ शरीरमें शक्ति होते गाडी आदि वाहनमें बैठ कर जिनमंदिरको आना, ४० प्रथम ही चैत्यवन्दनादिक बोलना, इस प्रकार मध्यमसे ४०^१ आशातनाएं हैं ।

१ मंदिरमें खेल (खंखार) श्लेष्म (नाकका मल आदि) डालना, २ जूआ आदि खेलना, ३ कलह करना, ४ धनुर्वेदादि कला प्रकट करना, ५ कुल्ली करना, ६ पान सुपारी खाना, ७ पानके कूचे आदि डालना, ८ अपशब्द बोलना, ९ लघुनीति तथा बड़ीनीति आदि करना, १० शरीर धोना, ११ केस समारना, १२ नख समारना, १३ रुधिर आदि डालना, १४ सेके हुए धान्य, मिठाई आदि खाना, १५ फोडे फुंसी आदिकी चमडी डालना, १६ औषधादिकसे पित्तका वमन करना, १७ औषधादिकसे अन्नादिकका वमन करना, १८ औषधादिकसे

गिरे हुए दांत डालना, १९ पगआदिकी चंपी करवाना, २० हाथी, घोड़े आदि पशुओंको साधना, २१ दांतका, २२ आंख-का, २३ नखका, २४ गालका, २५ नासिकाका, २६ मस्तक-का, २७ कानका अथवा, २८ चमड़ीका मल जिनमंदिरमें डालना, २९ जारण, मारण, उच्चाटनके मंत्र अथवा राजकार्य आदिकी सलाह करना, ३० अपने घरके विवाहआदि कृत्यमें एकत्रित होनेका निश्चय करनेके लिये वृद्धपुरुषोंको मंदिरमें एकत्र करके बिठाना, ३१ हिसाबआदि लिखना, ३२ धन-आदिके हिस्से करना, ३३ अपना द्रव्य भंडार वहां स्थापित करना ३४ पग पर पग चढ़ाकर अथवा अविनय हो ऐसी किसी भी रीतिसे बैठना, ३५ कंडे, ३६ वस्त्र, ३७ दाल, ३८ पापड, ३९ बड़ी तथा चीबडे (डोचरे, ककड़ी) आदि वस्तु जिनमंदिरमें सुखानेके लिये धूप आदिमें रखना, ४० राजादिकके ऋण आदिके भयसे गभारे इत्यादिमें छिप रहना, ४१ स्त्री, पुत्र आदिके वियोगसे रुदन आक्रंद करना, ४२ स्त्री भोजनादिक अन्न, राजा और देश इन चारके सम्बन्धमें विकथा करना, ४३ बाण, धनुष्य, खड्ग आदि शस्त्र बनाना, ४४ गाय, बैल आदि जानवरोंको वहां रखना, ४५ शीतका उपद्रव दूर करनेके लिय अग्निसे तापना, ४६ अन्नादिक पकाना, ४७ नाणा (सिक्के) आदि परखना. ४८ यथाविधि निसिही न करना, ४९ छत्र, ५० जूते, ५१ शस्त्र तथा ५२ चामर इन चार वस्तुओंको मंदिरके बाहर न

रखना, ५३ मनकी एकाग्रता न करना, ५४ शरीरमें तेल आदि लगाना, ५५ सचित्त पुष्पादिकका त्याग न करना, ५६ अजीव हार, अंगूठी आदि अचित्त वस्तु बाहर उतारकर शोभाहीन हो मंदिरमें घुसना (ऐसा करनेसे अन्यदर्शनी लोग “ शोभाहीन हो मंदिरमें प्रवेश करना यह कैसा भिक्षुक लोगोंका धर्म है, ” ऐसी निन्दा करते हैं । इस लिये हार, मुद्रिकादि न उतार कर अंदर जाना ।), ५७ भगवान्को देखने पर हाथ न जोड़ना, ५८ एकसाड़ी उत्तरासंग न करना, ५९ मस्तक पर मुकुट धारण करना, ६० सिर पर मुकुट अथवा पगड़ी पर फेंटा आदिरखना, ६१ सिरमें रखे हुए फूलके तुर्रे, कलंगी आदि न उतारना, ६२ नारियल आदि वस्तुकी शर्त करना, ६३ गेंद खेलना, ६४ मा, चाप आदि स्वजनोंको जुहार करना, ६५ गाल, बगल (कांख) बजाना आदि भांडचेष्टा करना, ६६ रेकार, तूकार आदि तिरस्कारके वचन बोलना, ६७ लेना उधानेके लिये धरना देकर बैठना, ६८ किसीके साथ संग्राम करना, ६९ बाल छूटे करना, ७० पालखी बाल कर बैठना, ७१ लकड़ीकी पादुकाएं पगमें पहिरना, ७२ स्वेच्छासे पग लेंवे करके बैठना, ७३ सुखके लिये सीटी बजाना, ७४ अपना शरीर अथवा शरीरके अवयव धोना आदिसे कीचड़ करना, ७५ पगमें लगी हुई धूल जिनमंदिरमें झाड़ना, ७६ स्त्री संभोग करना, ७७ माथेकी अथवा वस्त्र आदिकी जूएं दिखवाना तथा वहां डालना,

७८ वहां भोजन करना, अथवा दृष्टियुद्ध, बाहुयुद्ध करना,
 ७९ शरीरके गुप्त अवयव खुले रखना, ८० वैद्यक करना, ८१
 क्रय विक्रय आदि करना कराना, ८२ बिस्तर चिलाके सो रहना, ८३
 जिनमंदिरमें पीनेका पानी रखना. वहां पानी पीना अथवा
 बारह मास पिया जावे इस हेतुसे मंदिरके हौजमें बरसातका
 पानी लेना, ८४ जिनमंदिरमें नहाना, धोना, इन उत्कृष्ट भेदोंसे
 ८४ आशातनाएं हैं ।

बृहद्भाग्यमें तो पांच ही आशातना कही हैं । यथा:—
 १ अवर्ण आशातना, २ अनादर आशातना, ३ भोग आशा-
 तना, ४ दुःप्रणिधान और ५ अनुचितवृत्ति आशातना। ऐसी
 जिनमंदिरमें पांच आशातना होती है । उसमें पालखी वालना,
 भगवान्‌के तरफ पीठ करना, बजाना, पग पसारना, तथा जिन-
 प्रतिमाके सन्मुख दुष्टआसनसे बैठना ये सब प्रथम अवर्णआशा-
 तना है । कैसे भी वस्त्र आदि पहरे कर, किसी भी समय जैसे वैसे
 शून्यमनसे जिनप्रतिमाकी पूजा करना, वह दूसरी अनादर-
 आशातना । जिनमंदिरमें पान सुपारी आदि भोग भोगना,
 वह तीसरी भोगआशातना है । यह आशातना करनेसे आत्माके
 ज्ञानआदि गुणोंको आवरण आता है, इस लिये यह आशा-
 तना जिनमंदिरमें अवश्य त्याज्य है । रागसे, द्वेषसे अथवा
 मोहसे मनकी वृत्ति दूषित हुई हो, तो वह चौथी दुःप्रणिधान-
 आशातना कहलाती है, वह जिनराजके लिये त्यागना चाहिये ।

लेन देनेके निमित्त धरना देना, वाद विवाद करना, रोना कूटना राजकथादि विकथा करना, जिनमंदिरमें अपने गाय, बैल आदि बांधना, विविध प्रकारके अन्न पकाना, इत्यादि घरके कार्य तथा किसीको अपशब्द बोलना आदि पांचवी अनुचितवृत्ति आशातना है। अत्यंत विषयासक्त व अविरति देवता भी जिनमंदिरमें आशातनाओंको सर्वथा त्याग देते हैं। कहा है कि—

देवहरयंमि देवा, विसयविसविमोहिआवि न कयावि ।

अच्छरसाहिंषि समं, हासकीडाइ न कुणंति ॥ १ ॥

कामविषयरूप विषसे लिपटे हुए देवता भी जिनमंदिरमें अप्सराओंके साथ हास्य-क्रीडादि कभी भी नहीं करते।

गुरुकी आशातनाएं तैंतीस हैं. यथा:—

१ कारण बिना गुरुसे आगे चलना. मार्ग दिखाना आदि-कारणके बिना गुरुके आगे चलना अयोग्य है, कारण कि उससे अधिनयरूप दोष होता है. इस लिये यह आशातना है।
२ गुरुके दोनों बाजू बराबरीसे चलना। (इससे भी अधिनय होता है, इस लिये यह आशातना है।)
३ गुरुकी पीठको लगते अथवा थोड़े अन्तरसे चलना. ऐसा करनेसे खांसी अथवा छींक आने पर खंखार, मल निकले तो गुरुके वस्त्र आदिको लगना संभव है, इसलिये यह आशातना है। दूसरी आशातनाके भी यही दोष जानो।)
४ गुरुके सन्मुख खड़े रहना, ५ बराबरीमें खड़े रहना, ६ पीठके समीप खड़ा रहना, ७ गुरुके मुख

सन्मुख बैठना, ८ बराबरीसे बैठना, ९ पीठके समीप बैठना, १० आहार आदि लेनेके समय गुरुसे पहिले ही आचमन करना, ११ गमनागमनकी आलोचना (इरियावहि) गुरुसे पहिले करना, १२ रात्रिको “ कौन सोया है ? ” ऐसा कह कर गुरु बुलावे तब गुरुका वचन सुनकर भी निद्रादिकका बहाना कर प्रत्युत्तर न देना, १३ गुरुआदिके कोई पास आवे तो उसे प्रसन्न रखनेके हेतु गुरुसे पहिले आप ही बोले, १४ आहारआदि प्रथम अन्य साधुओंके पास आलोच्य कर पश्चात् गुरुके पास आलोच्ये, १५ आहारआदि प्रथम अन्य साधुओंको बताकर पश्चात् गुरुको बतावे, १६ आहारआदि करनेके समय प्रथम अन्य साधुओंको बुलाकर पश्चात् गुरुको बुलावे, १७ गुरुको पुछे बिना ही स्निग्ध तथा मिष्ट अन्न दूसरे साधुओंको देना, १८ गुरुको जैसा वैसा देकर सरस व स्निग्ध आहार स्वयं वापरना । १९ गुरु बुलावे तब सुन कर भी अनसुनेकी भांति उत्तर न देना, २० गुरुके साथ कर्कश तथा उच्च स्वरसे बोलना, २१ गुरु बुलावे तब अपने आसन पर बैठे हुए ही उत्तर देना, २२ गुरु बुलावे तब “ कहो क्या है ? कौन बुलाता है ? ” ऐसे विनय रहित वचन बोलना २३ गुरु कोई काम करनेको कहे तब “ आप क्यों नहीं करते ? ” ऐसा उत्तर देना । २४ गुरु कहे कि “ तुम समर्थ हो, पर्यायसे (दीक्षासे) छोटे हो, इसलिये बृद्ध-ग्लानादिकका वैयावृत्य

करा। तब “ तुम स्वयं क्यों नहीं करते ? क्या आपके अन्य शिष्य लाभके अर्थी नहीं ? उनके पाससे कराओ ” इत्यादि प्रत्युत्तर देना। २५ गुरु धर्मकथा कहें तब अग्रसन्न होना, २६ गुरु सूत्रआदिका पाठ दे, तब “ इसका अर्थ आपको बराबर स्मरण नहीं, इसका ऐसा अर्थ नहीं, ऐसा ही है ”। ऐसे वचन बोलना, २७ गुरु कोई कथाआदि कहते होवें तो अपनी चतुरता बतानेके हेतु “ मैं बड़ू ” ऐसा बोलकर कथाभंग करना, २८ पर्षदा रसपूर्वक धर्मकथा सुनती हो, तब “ गोचरीका समग हुआ ” इत्यादि वचन कह कर पर्षदा भंग करना, २९ पर्षदा उठनेके पहिले अपनी चतुराई बतानेके हेतु गुरुने कही वही कथा विशेषविस्तारसे कहना, ३० गुरुकी शय्या, आसन, संथाराआदि वस्तुको पग लगाना, ३१ गुरुकी शय्याआदि पर बैठना, ३२ गुरुसे ऊँचे आसन पर बैठना, ३३ गुरुके समान आसन पर बैठना। आवश्यकचूर्णिआदि ग्रंथमें तो गुरु धर्मकथा कहते हों, तब बीचमें “ जी हां, यह ऐसा ही है ” ऐसा शिष्य कहे तो यह एक पृथक् आशातना मानी है, और गुरुसे ऊँचे अथवा समान आसन पर बैठना यह दोनों मिलाकर एक ही आशातना मानी है। इस प्रकार गुरुकी तैतीस आशातनाएँ हैं।

गुरुकी त्रिविध आशातना मानते हैं, वे इस प्रकारः—
१ गुरुको शिष्यके पग आदिसे स्पर्श होवे तो जघन्य आशा-

तना होती है । २ गुरुको शिष्यके खंखार (कफ) थूक आदि-
का स्पर्श होवे तो मध्यम आशातना होती है और ३ गुरुकी
आज्ञा न पालना, उससे उलटा करना, गुरुकी आज्ञा न सुनना
नथा कठोर वचन बोलना इत्यादिकसे उत्कृष्ट आशातना
होती है ।

स्थापनाचार्यजीकी आशातना तीन प्रकारकी है । यथाः--
१ स्थापनाचार्यजीको इधर उधर फिरावे, अथवा पग आदि ल-
गावे तो जघन्य आशातना होती है, २ भूमि पर रखे अथवा
अवज्ञा (तिरस्कार) से पटक दे तो मध्यम आशातना होती
है, और ३ खो देवे अथवा तोड़ डाले तो उत्कृष्ट आशातना
होती है । ज्ञानोपकरणकी भांति रजोहरण, मुहपत्ति, दांडा दांडी
आदि दर्शनके व चारित्रके उपकरणकी भी आशातना टालना ।
कारण कि, “ नाणाइतिअं ” ऐसे वचनसे ज्ञानोपकरणकी भांति
दर्शनोपकरण और चारित्रोपकरणकी भी गुरुके स्थान पर स्था-
पना होती है, इसलिये विधिसे वापरनेकी अपेक्षा अधिक वापर
कर उनकी आशातना न करना । श्रीमहानिशीथिसूत्रमें कहा है
कि अपना आसन, उत्तरासंग, रजोहरण, अथवा दांडा अविधि-
से वापरनेसे, एक उपवासकी आलोचना आती है । इसलिये
श्रावकोंने भी चरवला, मुहपत्ति आदि उपकरण विधिसे वापरना
और ठीक अपने २ स्थान पर रखना । ऐसा न करनेसे धर्मकी
अवज्ञाआदि दोष सिर पर आता है । इन आशातनाओंमें उत्स्र-

प्रवचन, अरिहंत अथवा गुरु आदिकी अवज्ञा आदि उत्कृष्ट आशा-
तनाएं सावद्य आचार्य, मरीचि, जमालि, कूलबालक आदिको
जैसे अनन्त-संसारी करने वाली हुई, वैसे ही अनन्तसंसारकी
करनेवाली जानो । कहा है कि—

उत्सुत्तभासगाणं, बोहीनासो अणंतसंसारो ।

पाणच्चणवि धीरा, उत्सुत्तं ता न भासंति ॥ २ ॥

तित्थयरपवयणसुअं, आथरिअं गणहरं महिद्धीअं ।

आसायंतो बहुसो, अणंतसंसारिओ होइ ॥ २ ॥

चेइअदब्बविणासे, इसिघाए पवयणस्स उड्डुहे ।

संजइचउत्थयंगे, मूलगी बोहिलाभस्स ॥ १ ॥

उत्सूत्रवचन बोलनेवालेके समकितका नाश होता है,
और वह अनन्त संसारी होता है । इसलिये धीरपुरुष प्राण-
न्याग होते भी उत्सूत्र वचन नहीं बोलते । तीर्थंकर भगवान्,
गणधर, प्रवचन, श्रुत आचार्य अथवा अन्य कोई महद्भिक साधु-
आदिकी आशातना करनेवाला अनंतसंसारी होता है ।

इसी तरह देवद्रव्य, ज्ञानद्रव्य, साधारणद्रव्य और वस्त्र-
पात्रादि गुरुद्रव्य इनका नाश करे, अथवा नाश होता हो तो
उपेक्षा आदि करे, तो भी भारी आशातना लगती है, कहा है कि

आयाणं जो भंजइ, पडिवन्नधणं न देइ देवस्स ।

नस्संतं समुबिक्खइ, सोऽवि हु परिभमइ संसारो ॥ ४ ॥

जिणपवयणवुड्ढिकरं, पभावगं नाणदंसणगुणाणं ।

भक्खंतो जिणदब्बं, अणंतसंसारिओ होइ ॥ ५ ॥

जिणपवयणवुद्धिकरं, पभावगं नाणदंसणगुणाणं ।

रक्खंतो जिणदब्बं, परित्तसंसारिओ होइ ॥ ६ ॥

जिणपवयणवुद्धिकरं, पभावगं नाणदंसणगुणाणं ।

वुद्धो जिणदब्बं, तित्थयरत्तं लहइ जीवो ॥ ७ ॥

चैत्यद्रव्यका भक्षणादिकसे नाश करना, चारित्र्यी मुनि-
राजका घात करना, प्रवचनका उड़ाह करना और साध्वीके च-
तुर्थव्रतका भंग करना इत्यादि कृत्य करनेवाला समकितके
लाभरूप वृक्षकी जड़में अग्नि डालता है । यहाँ विनाशशब्दसे
चैत्यद्रव्यका भक्षण व उपेक्षा समझना । श्रावकदिनकृत्य, द-
र्शनशुद्धि इत्यादि ग्रंथोंमें कहा है कि—जो मूढमति श्रावक
चैत्यद्रव्यका अथवा साधारणद्रव्यका भक्षणादिकसे विनाश करे,
उसे धर्मतत्त्वका ज्ञान नहीं होता, अथवा वह नरकगतिका आयुष्य
बांधता है । चैत्यद्रव्य प्रसिद्ध है । वैसे ही श्रीमान् श्रावकोंने
नया मंदिर कराना या पुराणा मंदिरका उद्धार करवाना,
पुस्तकें लिखवाना, दुर्दशमें आये हुए श्रावकोंको सहायता
करना इत्यादि साधारण धर्मकृत्य करनेके लिये दिया हुआ
द्रव्य, साधारणद्रव्य कहलाता है । नया (नकद आया हुआ)
द्रव्य और मंदिरके काममें लेकर पीछी उखाड़ कर रखी हुई
ईंटें, लकड़ियां, पत्थर आदि वस्तु ऐसे दो प्रकारके चैत्यद्रव्यका
नाश होता हो, और जो उसकी साधु उपेक्षा करे तो उसे भी

सिद्धान्तमें तीर्थकरादिकने अनन्तसंसारी कहा है। मूल और उत्तर भेदसे भी दो प्रकारका चैत्यद्रव्य कहा है। उसमें स्तंभ, कुंभी आदि मूलद्रव्य और छप्पर आदि उत्तरद्रव्य है। अथवा स्वपक्ष व परपक्ष इन दो भेदोंसे भी दो प्रकारका चैत्यद्रव्य जानना। उसमें श्रावकादिक स्वपक्ष और मिथ्यादृष्टिआदि परपक्ष हैं। सर्वसावधसे विरत साधु भी चैत्यद्रव्यकी उपेक्षा करनेसे यदि अनन्तसंसारी होता है, तो फिर श्रावक होवे इसमें तो आश्चर्य ही क्या है ?

शंका:— त्रिविधत्रिविध सर्वसावधका पञ्चखान करनेवाले साधुको चैत्यद्रव्यकी रक्षा करनेका अधिकार किस प्रकार आता है ?

समाधान:— जो साधु राजा, मंत्रीआदिके पाससे मांग कर घर दूकान, गांव इत्यादि मंदिर खाते दिलाकर इस दान कर्मसे चैत्यद्रव्यमें नया फैलाव करे तो उस साधुको दोष लगता है। कारण कि, ऐसे सावध काम करनेका साधुको अधिकार नहीं। परन्तु कोई भद्रकजीवका धर्मादिकके निमित्त पूर्वमें दिया हुआ अथवा दूसरा चैत्यद्रव्य विनष्ट होता हो तो उसका यदि साधु रक्षण करे, तो कोई दोष नहीं। इतना ही नहीं बल्कि ऐसा करनेमें जिनाज्ञाकी सम्यग्वृत्तिसे आराधना होनेसे साधु-धर्मको पुष्टि मिलती है। जैसे साधु नया जिनमंदिर न बनवावे, किन्तु पूर्वके बने हुए जिनमंदिरकी रक्षा करे,

तो उस साधुको कुछ भी प्रायश्चित्त नहीं लगता, अथवा सर्व-सावद्यविरतिरूप प्रतिज्ञाको भी बाधा नहीं आती। ऐसा ही चैत्यद्रव्यकी रक्षामें भी जानो। आगममें भी ऐसी ही व्यवस्था है। शंकाकार कहता है कि--“ जिनमंदिर संबंधी क्षेत्र, सुवर्ण, ग्राम, गाय इत्यादि वस्तुके सम्बन्धमें आनेवाले साधुकी त्रिकरण शुद्धि किस प्रकार होती है ? ” उत्तरमें सिद्धान्ती कहते हैं कि--“ यहां दो बातें हैं, जो साधु मंदिर सम्बन्धी वस्तु स्वयं मांगे, तो उसकी त्रिकरण शुद्धि नहीं होती, परन्तु जो कोई यह (चैत्यसंबन्धी) वस्तु हरण करे, और साधु उस विषयकी उपेक्षा करे, तो उसकी त्रिकरण शुद्धि नहीं होती; इतना ही नहीं बल्कि चैत्यद्रव्यहरणोपेक्षासे अभक्ति भी होती है। इसलिये किसीको भी हरण करते हुए अवश्य मना करना चाहिये। कारण कि, सर्वसंघने सब यत्नसे चैत्यद्रव्यके रक्षणमें और भक्षणके उपेक्षणका निषेधमें लगना ही चाहिए, यह देवद्रव्य रक्षण करनेका कार्य चारित्र्यसे युक्त और चारित्र्यसे रहित ऐसे सभी जैनियोंका है।

वैसे ही स्वयं चैत्यद्रव्य खानेवाला, दूसरे खानेवालेकी उपेक्षा करनेवाला और उधार देकर किंवा अन्यरीतिसे चैत्यद्रव्यका नाश करनेवाला अथवा कौनसा काम थोड़े द्रव्यमें हो सकता है व किस काममें अधिक द्रव्य लगता है इस बातकी खबर न होनेसे मतिमंदतासे चैत्यद्रव्यका नाश करनेवाला अ-

थवा खोटा हिमाव लिखनेवाला श्रावक पापकर्मसे लिप्त हो जाता है ।

देवद्रव्यकी आवकमें बाधा आवे ऐसा कोई भी काम कर, अथवा स्वयं देना स्वीकार किया हुआ देवद्रव्य न दे, तथा देवद्रव्य भक्षण करनेवालेकी उपेक्षा करे, तो भी वह संसारमें भ्रमण करता है । केवलिभाषितधर्मकी वृद्धि करनेवाले व ज्ञानदर्शनके गुणकी प्रभावना करनेवाले ऐसे जो चैत्यद्रव्यका भक्षण करे, तो अनंतसंसारी होता है । देवद्रव्य होने ही से मंदिरकी सार सम्हाल तथा हमेशा पूजा, सत्कार होना संभव है । वहीं मुनिराजका भी योग मिल आता है । उनका व्याख्यान सुननेसे केवलिभाषितधर्मकी वृद्धि और ज्ञान-दर्शनके गुणोंकी प्रभावना होती है । केवलिभाषितधर्मकी वृद्धि करनेवाले और ज्ञान-दर्शनके गुणोंकी प्रभावना करनेवाले देवद्रव्यकी जो रक्षा करता है वह परिमित (अल्प) संसारी होता है । केवलिभाषितधर्मकी वृद्धि करनेवाले और ज्ञान-दर्शनके गुणोंकी प्रभावना करनेवाले देवद्रव्यकी, पूर्वका हो उसकी रक्षा तथा नया संचित करके उसकी वृद्धि करे वह केवलिभाषितधर्मकी अतिशय भक्ति करनेसे तीर्थकर पद पाता है । पन्द्रह कर्मादान तथा अन्य निष्ठ व्यापार छोड़कर उत्तम व्यवहारसे तथा न्यायमार्ग ही से देवद्रव्यकी वृद्धि करना चाहिये । कहा है कि— मोहवश कोई कोई अज्ञानी पुरुष जिनेश्वर भगवानकी आज्ञामें विपरीत-

मार्गसे देवद्रव्य की वृद्धि कर संसारसमुद्रमें डूबते हैं । “ श्रावक सिवाय अन्य लोगोंके पाससे अधिक वस्तु बदलेमें रखना तथा व्याज भी विशेष लेकर देवद्रव्यकी वृद्धि करना उचित है ” ऐसा कुछ लोगोंका मत है । सम्यक्त्ववृत्तिआदि ग्रंथोंमें संकाशकी कथाके प्रसंगमें ऐसा ही कहा है । देवद्रव्यके भक्षण और रक्षण ऊपर सागरश्रेष्ठीका दृष्टांत है । यथा:—

साकेतपुर नामक नगरमें अरिहंतका भक्त श्रेष्ठी सागर नामक एक सुश्रावक रहता था. वहाँके अन्य सब श्रावकोंने सागर श्रेष्ठीको सुश्रावक समझ सर्व देवद्रव्य सौंपा, और कहा कि “मंदिरके काम करनेवाले सुतार आदिको यह द्रव्य यथोचित देना.” सागरश्रेष्ठीने लोभसे देवद्रव्यके द्वारा धान्य, गुड, घृत, तैल, वस्त्र आदि बहुतसी वस्तुएं मोल ले ली, और सुतार आदिकोंको नकद पैसा न देते उसके बदलेमें धान्य, गुड, घृत आदि वस्तुएं महंगेभावसे देने लगा व इससे जो लाभ मिलता था वह आप रख लेता था. ऐसा करते उसने एक हजार कांक्णी (रुपयेके अस्सीवें भागरूप) का लाभ लिया, और उससे महान धोर पापकर्म उपाजित किया. उसकी आलोचना न कर मृत्यु पाकर समुद्रमें जलमनुष्य हुआ. वहां जात्यरत्नके ग्राहकोंने जल तथा जलचरजीवोंके उपद्रवको दूर करनेवाले अंडगोलिकाका ग्रहण करनेके निमित्त उसे धन्नघरड्डमें पीला. वह महाव्यथासे मर कर तीसरे नरकमें नारकी हुआ. वेदान्तमें

भी कहा है कि- देवद्रव्यसे तथा गुरुद्रव्यसे हुई द्रव्यकी वृद्धि परिणाममें अच्छी नहीं. क्योंकि, उससे इसलोकमें कुलनाश और मृत्युके अनन्तर नरकगति होती है । नरकमें से निकल कर पांचसौ धनुष लम्बा महान् मत्स्य हुआ. उस भवमें किसी स्लेच्छने उसके सर्वांगको छेदकर महान् कदर्थना करी. उससे मृत्युको प्राप्त हो चौथे नरकमें नारकी हुआ. इस प्रकार एक एक भव बीचमें करके सातों नरकोंमें दो दो बार उत्पन्न हुआ. पश्चात् लगातार तथा अंतरसे श्वान, सुवर, मेष, बकरा, भेड (घेडा), हरिण, खरगोश, श्वर, (एकजातिका हरिण), शियाल, बिल्ली, मूषक, न्याँला, मकड़ी, छिपकली, गोहेरा (विषखपरा), सर्प, बिच्छू, विष्टाके कृमि, पृथ्वीकाय, अप्काय, तेउकाय, वायुकाय, वनस्पतिकाय, शंख, सीप, जोंक, कीड़ी, कीड़ा, पतंग, मक्खी, भ्रमर, मत्स्य, कलुआ, गधा, भैंसा, बैल, ऊँट, खच्चर, घोडा, हाथी इत्यादि प्रत्येक जीवोनियोंमें एक एक हजार बार उत्पन्न होकर सर्व मिल लाखों भव संसारमें भ्रमण करते पूरे किये. प्रायः सर्वभवोंमें शस्त्राघातआदि महा-व्यथा सहन करके उसकी मृत्यु हुई पश्चात् बहुतसा पाप क्षीण होगया, तब वसन्तपुरनगरमें करोडाधिपति वसुदत्तश्रेष्ठीसे उसकी स्त्री वसुमतिके गर्भमें पुत्रके रूपमें उत्पन्न हुआ. उसके गर्भमें रहते ही वसुदत्तका सर्व द्रव्य नष्ट होगया. पुत्रके जन्म होते ही उसीदिन वसुदत्तकी मृत्यु होगई और जब उसे पांचवा

वर्ष प्रारम्भ हुआ तब वसुमति भी देवगत हुई। लोगोंने उसका “निष्पुण्यक” नाम रखा। कंगालकी भांति जैसे तैसे निर्वाह करके वह बढने लगा।

एक दिन उसका मामा स्नेहसे उसे अपने घर ले गया। दैवयोगसे उसी दिनकी रात्रिको मामाके घरको भी चौरोंने लूट लिया। इस प्रकार जिस किसीके घर वह एकदिन भी रहा, उन सबके यहां चोर, डाकू, अग्निआदिका उपद्रव हुआ, कहीं कहीं तो घरधनी ही मर गया। पश्चात् “यह कपोतपोत (कबूतरका बच्चा) है ? कि जलती हुई भेड है ? अथवा मूर्तिमान उत्पात है ?” इस प्रकार लोग उसकी निन्दा करने लगे। जिससे उद्वेग पाकर वह निष्पुण्यक नामक सागरश्रेष्ठीका जीव देशदेशान्तरोंमें भटकता हुआ ताम्रलिप्ति नगरीको गया। वहां विनयंधर श्रेष्ठीके यहां नौकर रहा। उसी दिन विनयंधर श्रेष्ठीके घरमें आग लगी। जिससे उसने कुत्तेकी भांति अपने घरसे निकाल दिया। तदनंतर किंकर्तव्यविमूढ हो वह पूर्वभवमें उपाजिन किये हुए कर्मोंकी निन्दा करने लगा, कहा है कि—

कर्मं कुणंति सबसा, तस्सुदयमि अ परव्वसा हुंति ।

रुक्खं दुरुहइ सबसो, निवडेइ परव्वसो तत्तो ॥ १ ॥

सर्व जीव स्वाधीनतासे कर्म करते हैं परन्तु जब उन्हें भोगनेका अवसर आता है तो पराधीन होकर भोगते हैं। जैसे मनुष्य स्वतंत्रता पूर्वक वृक्ष पर चढ़ जाता है, परन्तु गिरनेका समय

आवे तब परतंत्र होकर नीचे गिरता है। तदनन्तर निष्पुण्यक सोचकर कि “योग्य स्थानका लाभ न होनेसे भाग्योदयको बाधा आती है,” समुद्रतट पर गया। और धनावह श्रेष्ठीकी दासता स्वीकार की, उसी दिन नौका पर चढ़ा व कुशल पूर्वक श्रेष्ठीके साथ द्वीपान्तरमें गया। व मनमें विचार करने लगा कि “मेरा भाग्य उदय हुआ ! कारण कि मेरे अन्दर बैठते हुए भी नौका न डूबी, अथवा इस समय मेरा दुर्दैव अपना काम भूल गया। ऐसा न हो कि लौटते समय उसे याद आवे !” कदाचित् निष्पुण्यकके मनमें आई हुई कल्पनाको सत्य करने ही के लिये उसके दुर्दैवने लकड़ीका प्रहार करके मट्टीके घड़ेकी भांति लौटते समय उस नौकाके टुकड़े करदिये। दैवयोगसे एक पटिया निष्पुण्यकके हाथ लगा। उसकी सहायतासे वह समुद्रतटके एक ग्राममें पहुँचा और वहाँके ठाकुरके आश्रयमें रहने लगा।

एक दिन चोरोंने ठाकुरके घर पर डाका डाला, तथा निष्पुण्यकको ठाकुरका पुत्र समझ वे उसे बांधकर अपने स्थानको लेगये। उसीदिन दूसरे किसी डाकू सरदारने डाका डाल कर उपरोक्त डाकुओंकी पल्लीका समूल नाश करदिया। तब उन चोरोंने भी निष्पुण्यकको अभागा समझकर निकाल दिया। कहा है कि—

खत्वाटो दिवसेश्वरस्य किरणैः संतापितो मस्तके,
वञ्छन् स्थानमनातपं विधिवशाद् ब्रह्मस्य मूलं गतः ।

तत्राप्यस्य महाफलेन पतता भग्नं सशब्दं शिरः,

प्रायो गच्छति यत्र दैवदूतकस्तत्रैव यान्त्यापदः ॥ १ ॥

एक सिरपर गंजवाला मनुष्य सिरपर धूप लगानेसे बहुत तपगथा, और शीतलछायाकी इच्छासे दैवयोगसे बेलवृक्षके नीचे जा पहुंचा तो वहां भी ऊपरसे गिरे हुए एक बेलफलसे “ कडाक ” शब्द करके उसका सिर फूटा । तात्पर्य यह है कि, भाग्यहीन पुरुष जहां जावे वहां आपत्ति भी उसके साथ ही आती है । इस भांति भिन्न भिन्न नौसौ निन्नानवे स्थलोंमें, चौर, जल, अग्नि, स्वचक्र, परचक्र, महामारी आदि अनेक उपद्रव होनेसे निष्पुण्यकको लोगोंने निकाला । तब वह अत्यन्त दुःखी हो एक घने वनमें आराधकोंको प्रत्यक्ष फलदाता सेलक नामक यक्षके मंदिरमें आया व अपना सर्व दुःख यक्षसे कहकर एकाग्रचित्तसे उसकी आराधना करने लगा । एक दि-
वस उपवास करनेसे प्रसन्न हो यक्षने उसे कहा कि, “ प्रति-
दिन संध्याके समय मेरे सन्मुख स्वर्णमय एक हजार चंद्रक धारण करनेवाला मोर नृत्य करेगा, उसके नित्य गिरे हुए पंख तू लेना. ” निष्पुण्यकने यक्षके इन वचनोंसे हर्षित हो नित्य २ मयूर पंख एकत्र करना शुरू किया. इस तरह करते नौ सौ पंख एकत्रित हुए, शेष सौ रहगये. तब दुर्देवकी प्रेरणासे उसने विचार किया कि, “ शेष रहे हुए पंखोंके लिये अब कितने दिन
१ मोरके पंखपर जो नेत्राकार चिन्ह होते हैं उन्हें चंद्रक कहते हैं ।

इस वनमें रहना ? अंतः सर्व पंख मुट्टीमें पकड़ कर एकदम ही उखाड़ लेना ठीक है. ” इस तरह निश्चय कर उस दिन जब मोर नाचने आया, तब एकमुट्टीसे उसके पंख पकड़ने गया, इतने ही में मोर कौंका रूप करके उड़ गया और पूर्व एकत्रित नौसौ पंख भी चले गये ! कहा है कि—

दैवमह्यं यत्कार्यं, कियते फलवत् तन् ।

सरोऽभश्चातकेनात्तं, गलरन्ध्रेण गच्छति ॥ १ ॥

दैवकी मर्यादाका उल्लंघन करके जो कार्य किया जाय, वह सफल नहीं होता. देखो चातक जो सरोवरका जल पीता है वह पेटमें न उतर कर गलेमें रहे हुए छिद्रसे बाहर निकल जाता है । अंतमें “धिकार है मुझे ! कि मैंने व्यर्थ इतनी उतावल की” इस तरह विषाद करते, इधर उधर भटकते हुए उसने एक ज्ञानी गुरुको देखा. उनके पास जा, वन्दना करके उनको अपने पूर्व-कर्मका स्वरूप पूछा. ज्ञानीने भी यथावत् कह सुनाया. जिसे सुन पूर्वमें देवद्रव्य पर अपनी आजीविका करी उसका प्रायश्चित मुनिराजसे मांगा. मुनिराजने कहा कि, “जितना देवद्रव्य पूर्व-भवमें तूने व्यवहारमें लिया, उससे भी अधिक द्रव्य देवद्रव्य-खाता (फंड) में दे, और देवद्रव्यकी रक्षा तथा उसकी वृद्धि आदि यथाशक्ति कर, ताकि तेरा दुष्कर्म दूर होगा, तथा परिपूर्ण भोग, कृद्धि और सुखका लाभ होगा.” यह सुन निष्पुण्यकने ज्ञानी गुरुके पास नियम लिया कि, “मैंने पूर्व-

भवंमें जितना देवद्रव्य व्यवहारमें लिया हो, उससे सहस्रगुणा द्रव्य देवद्रव्य खातेमें न दे दूं, तब तक अन्न वस्त्रके खर्चके अतिरिक्त द्रव्यका संग्रह न करूंगा और इस नियमके साथही साथ उसने शुद्ध श्रावक धर्म भी ग्रहण किया, उस दिनसे उसने जो जो कार्य किया, उन सभीमें उसे उत्तरोत्तर द्रव्य लाभ होता गया व ज्यों ज्यों लाभ होता गया त्यों त्यों वह भिर पर चढ़े देवद्रव्यको उतारता गया, तथा थोड़े ही दिनोंमें उसने पूर्वभवमें वापरी हुई एक सहस्र कांकिणीके बदलेमें दस लक्ष कांकिणी देवद्रव्य खातेमें जमा कर दीं, देवद्रव्यके ऋणसे उच्छृण होनेके अनन्तर बहुतसा द्रव्य उपार्जन करके वह अपने नगरको आया, सर्व बड़े २ श्रेष्ठियोंमें श्रेष्ठ होनेसे राजाने भी उसका मान किया, अब वह अपने बनवाये हुए तथा अन्य भी सर्व जिनमंदिरोंकी सार सम्हाल अपनी सर्वशक्तिसे करने लगा, नित्य महान् पूजा तथा प्रभावना कराता व देवद्रव्यका भली भांति रक्षण करके युक्तिपूर्वक उसकी वृद्धि करता, ऐसे सत्कर्मोंसे चिरकाल पुण्योपार्जन कर अन्तमें उसने जिननामकर्म बांधा, तत्पश्चात् अवसर पाकर दीक्षा ले गीतार्थ हो, यथायोग्य बहुतसा धर्मोपदेश आदि करनेसे जिन-भक्तिरूप प्रथम स्थानकी आराधना करी, और उससे पूर्वसंचित जिननामकर्म निकाचित किया तदुपरान्त सर्वार्थसिद्धि महाविमानमें देवत्व तथा अनुक्रमसे महाविदेह-क्षेत्रमें अरिहंतकी ऋद्धिका उपभोग कर वह सिद्ध होगया ।

अब ज्ञानद्रव्य तथा साधारणद्रव्यके विषयमें दृष्टान्त कहते हैं— भोगपुर नगरमें चौबीस करोड़ स्वर्णमुद्राओंका अधिपति धनावह नामक श्रेष्ठी था. उसकी स्त्रीका नाम धनवती था. उनके कर्मसार व पुण्यसार नामक युगल (जोड़ले) पैदा हुए, दो सुन्दर पुत्र थे. एक दिन धनावह श्रेष्ठीने किसी ज्योतिषीसे पूछा कि, “मेरे दोनों पुत्र आगे जाकर कैसे निकलेंगे ? ” ज्योतिषीने कहा- “ कर्मसार जडस्वभावका और बहुत ही मंदमति होनेसे नानाप्रकारकी युक्तियोंसे बहुत उद्यम करेगा; परन्तु सर्व पैतृकसंपत्ति खोकर बहुत कालतक दुःखी व दरिद्री रहेगा. पुण्यसार भी पैतृक तथा कष्टोपाार्जित निज सर्व द्रव्य बारम्बार खो देनेसे कर्मसार ही के समान दुःखी होवेगा तथापि यह व्यापारादि कलामें बहुत ही चतुर होवेगा. दोनों पुत्रोंको पिछली अवस्थामें धन, सुख, संतति आदिकी पूर्ण समृद्धि होगी.”

श्रेष्ठीने दोनों पुत्रोंको सर्व विद्या तथा कलामें निपुण उपाध्यायके पास पढ़नेके लिये रखे. पुण्यसार सुखपूर्वक सर्व विद्याएं पढ़ा. परन्तु कर्मसारको तो बहुतसा परिश्रम करने पर भी एक अक्षर तक न आया. अधिक क्या कहा जाय ! लिखना पढ़ना आदि भी न आया । तब विद्यागुरुने भी इसे सर्वथा पशु-तुल्य समझ पढ़ाना छोड़ दिया. क्रमशः दोनों पुत्र तरुण हुए तब मायापने दोनोंका दो श्रेष्ठपुत्रियोंके साथ विवाह किया.

परस्पर कलह न हो इस उद्देशसे धनावह श्रेष्ठीने अपनी संपत्ति दोनों पुत्रोंमें बांटकर उन्हें पृथक् २ रखे तथा स्वयं स्त्रीके साथ दीक्षा ले स्वर्गको गया.

कर्मसार अपने स्वजनसंबंधियोंका वचन न मानकर अपनी कुबुद्धिसे ऐसे २ व्यापार करने लगा कि उनमें उसे धनहानि ही होती गई व थोड़े दिनोंमें पिताकी दी हुई सर्व सम्पत्ति गुमा दी. पुण्यसारकी संपत्ति चोरोंने लूट ली. दोनों भाई निर्धन होगये व स्वजनसंबंधीलोमोंने उनका नाम तक छोड़ दिया. दोनोंकी स्त्रियां अन्न वस्त्र तकका अभाव हो जानेसे अपने २ पियर चली गईं । कहा है कि-

अलिअपि जणो घणवंतयस्स सयणत्तणं पयासेइ ।

आसण्णबंधवेणवि, लज्जितज्जइ झीणविहवेण ॥ १ ॥

लोग धनवानपुरुषके साथ अपना झूठ मूठ ही सम्बन्ध प्रकट करने लगते हैं और किसी निर्धनके साथ वास्तविक सम्बन्ध होवे तो भी उससे संबंध दिखानेमें भी शरमाते हैं । धन चला जाता है, तब गुणवान पुरुषको भी उसके परिवारके लोग निर्गुणी मानते हैं और चतुरता आदि झूठे गुणोंकी कल्पना करके परिवारके लोग धनवान पुरुषोंके गुण गाते हैं । पश्चात् जब “तुम बुद्धिहीन हो, भाग्यहीन हो” इस तरह लोग बहुत निन्दा करने लगे, तब लज्जित हो दोनों जने देशान्तर चले गये, अन्य कोई उपाय न रहनेसे दोनों किसी बड़े श्रेष्ठीके यहां

पृथक् २ नौकरी करने लगे. जिसके यहां कर्मसार रहा था वह श्रेष्ठी कपटी व महाकृपण था. निश्चित किया हुआ वेतन भी न देकर “अमुक दिन दूंगा” इस तरह बारम्बार ठगा करता था. जिससे बहुत समय व्यतीत होजाने पर भी कर्मसारके पास द्रव्य एकत्र न हुआ। पुण्यसारने तो थोड़ा बहुत द्रव्य उपार्जन किया व उसे यत्नपूर्वक सुरक्षित भी रखा, परन्तु धूर्तलोग सब हरण कर लेगये। कर्मसारने बहुतसे श्रेष्ठियोंके यहां नौकरी करी, तथा किमिया, खनिवाद (भूमिमेंसे द्रव्य निकालनेकी विद्या) सिद्धरसायन, रोहणाचलको गमन करनेके लिये मंत्र-साधन, रुदन्तीआदि औषधिकी शोध इत्यादि कृत्य उसने मपरिश्रम ग्यारह बार किये, तो भी अपनी कुबुद्धिसे तथा विधिविधानमें विपरीतता होनेसे वह किंचिन्मात्र भी धन संपादन न कर सका. उलटे उपरोक्त कृत्योंमें उसको नानाप्रकारके दुःख भोगने पड़े।

पुण्यसारने ग्यारह बार धन एकत्र किया और उतनी ही बार प्रमादादिकसे खो दिया. अन्तमें दोनोंको बहुत उद्वेग उत्पन्न हुआ, और एक नौकापर चढ़ कर रत्नद्वीपको गये। वहांकी साक्षात् फलदाता एक देवीके सन्मुख मृत्यु स्वीकार कर दोनों बैठ गये. इस प्रकार सात उपवास होगये, तब आठवें उपवासके दिन देवीने कहा कि “तुम दोनों भाग्यशाली नहीं हो” देवीका वचन सुन कर्मसार उठ गया. और जब इक्कीस

उपवास होगये तब देवोंने पुण्यसारको तो चिंतामणी रत्न दिया, कर्मसार पश्चात्ताप करने लगा, तब पुण्यसारने कहा- “भाई ! विषाद न कर ! इस चिन्तामणिरत्नसे तेरी कार्य सिद्धि होगी. तदनंतर दोनों भाई हर्षित हो वापस लौटे, व एक नौका पर चढ़े रात्रिको पूर्णचन्द्रका उदय हुआ, तब बड़े भाईने कहा-- “ भाई ! चिन्तामणि रत्न निकाल, देखना चाहिये कि इस रत्नका तेज अधिक है कि चन्द्रमाका तेज अधिक है ? ” नौकाके किनारे पर बैठे हुए छोटे भाईने दुर्दैवकी प्रेरणासे उक्त रत्न हाथमें लिया तथा क्षणमात्र रत्न ऊपर व क्षणमात्र चंद्रमा ऊपर दृष्टि करते वह रत्न समुद्रमें गिर पड़ा. जिससे पुण्यसारके सर्व मनोरथ भंग होगये. अन्तमें दोनों भाई अपने ग्रामको आये ।

एक समय उन दोनोंने ज्ञानी मुनिराजको अपना पूर्वभव पूछा. तो मुनिराजने कहा- “चंद्रपुर नगरमें जिनदत्त और जिनदास नामक परमश्रावक श्रेष्ठी रहते थे. एक समय श्रावकोंने सर्व ज्ञानद्रव्य जिनदत्तश्रेष्ठीको व साधारणद्रव्य जिनदास-श्रेष्ठीको रक्षण करनेके हेतु सौंपा. वे दोनों श्रेष्ठी उसकी भली भांति रक्षा करते थे। एक दिन जिनदत्तश्रेष्ठीने अपने लिये किसी लेखकसे पुस्तक लिखवाई और पासमें अन्य द्रव्य न होनेसे यह भी ज्ञान ही का काम हैं यह विचार कर ज्ञानद्रव्यमें से बारह द्रम्म लेखकको दे दिये.

१ बीस कोड़ीकी एक कांकणी, चार कांकणीका एक पण, और सोलह पणका एक द्रम्म होता है ।

जिनदासश्रेष्ठीने तो एक दिन विचार किया कि, “साधारणद्रव्य तो सातक्षेत्रमें वपराता है इसलिये श्रावक भी इसे वापर सकता है, और मैं भी श्रावक हूँ, अतएव मैं अपने काममें उपयोग करूँ तो क्या हरकत है ?” यह सोच कुछ आवश्यक कार्य होनेसे तथा पासमें अन्य द्रव्य न होनेसे उसने साधारणद्रव्यमेंके चारह द्रम्म गृहकार्यमें व्यय किये । यथाक्रम वे दोनों जने मृत्युको प्राप्त होकर, उस पापसे प्रथम-नरकको गये । वेदान्तीने भी कहा है कि— प्राण कंठगत हो जाय, तो भी साधारणद्रव्यकी अभिलाषा न करना । अग्निसे जला हुआ भाग ठीक हो जाता है, परन्तु साधारणद्रव्यके भक्षणसे जो जला, वह पुनः ठीक नहीं होता । साधारणद्रव्य, दरिद्रीका धन, गुरुपत्नी और देवद्रव्य इतनी वस्तुएं भोगने-वालेको तथा ब्रह्महत्या करनेवालेको स्वर्गमेंसे भी ढकेल देते हैं । नर्कमेंसे निकल कर वे दोनों सर्प हुए । वहांसे निकल दूसरी नरकमें नारकी हुए, वहांसे निकल गिद्ध पक्षी हुए, पश्चात् तीसरी नरकमें गये । इस तरह एक अथवा दो भवके अन्तरसे सातों नरकमें गये । तदनन्तर एकेन्द्रिय, दोन्द्रिय, त्रैन्द्रिय, चैरिन्द्रिय और पंचेन्द्रिय तथा तिर्यग्योनिमें चारह हजार भव करके उनमें अत्यन्त अशांतावेदनीय कर्म भोगा, जिससे बहुत बहुत कुछ पाप क्षीण हुआ, तब जिनदत्तका जीव कर्म-सार व जिनदासका जीव पुण्यसार ऐसे नामसे तुम उत्पन्न हुए,

बारह द्रम्म द्रव्य वापरा था इससे तुम दोनोंको बारह हजार भवमें बहुत दुःख भोगना पडा। इस भवमें भी बारह २ करोड स्वर्णमुद्राएं चली गईं, बारह वक्त बहुतसा उद्यम किया, तो भी एक्को तो बिलकुल ही द्रव्यलाभ न हुआ, और दूसरेको द्रव्य मिला था, वह भी चला गया, वैसे ही दूसरेके घर दासता तथा बहुत दुःख भोगना पडा। कर्मसारको तो पूर्वभवमें ज्ञानद्रव्य वापरनेसे बुद्धिकी अतिमंदता आदि निकृष्ट फल मिला।

मुनिराजका ऐसा वचन सुन कर दोनोंने श्रावक-धर्म अंगीकार किया, और ज्ञानद्रव्य तथा साधारणद्रव्य लेनेके प्रायश्चित्-रूप कर्मसारने बारह हजार द्रम्म ज्ञानखाते तथा पुण्यसारने बारह हजार द्रम्म साधारणखाते ज्यों २ उत्पन्न होते जायें त्यों त्यों जमा करना ऐसा नियम लिया। पश्चात् पूर्वभवके पापका क्षय होनेसे उन दोनोंको बहुत द्रव्य लाभ हुआ।

उन्होंने स्वीकृत किये अनुसार ज्ञानद्रव्य तथा साधारणद्रव्य दे दिया। उसके उपरान्त उन दोनों भाइयोंके पास बारह करोड स्वर्णमुद्राके बराबर धन होगया, जिससे वे बड़े श्रेष्ठी व सुश्रावक हुए, उन्होंने ज्ञानद्रव्य तथा साधारणद्रव्यकी भली भांति रक्षा तथा वृद्धि आदि करी। इस प्रकार उत्तम-रीतिसे श्रावक-धर्मकी आराधना कर तथा अन्तमें दीक्षा ले वे दोनों सिद्ध होगये।

ज्ञानद्रव्य, देवद्रव्यकी भांति श्रावकको बिलकुल ही अग्राह्य

है । साधारणद्रव्य भी संघने दिया होवे तभी वापरना योग्य है, अन्यथा नहीं। संघने भी साधारणद्रव्य सातक्षेत्रों ही में काममें लेना चाहिये, याचकादिकको न देना। आजकलके व्यवहारमें तो जो द्रव्य गुरुके न्युंछनादिकसे साधारणखाते एकत्र किया हुआ हो, वह श्रावक-श्राविकाओंको देनेकी कोई भी युक्ति दृष्टिमें नहीं आती अर्थात् वह द्रव्य श्रावक श्राविकाको नहीं दिया जाता। धर्मशालादिकके कार्यमें तो वह श्रावकसे काममें लिया जा सकता है। इसी प्रकार ज्ञानद्रव्यमेंसे साधुको दिये हुए कागजपत्रादिक भी श्रावकने अपने उपयोगमें न लेना, वैसेही अधिक नकरा (न्यौछावर) दिये बिना उसमें अपने पुस्तकमें स्थापन करनेके लिये न लिखवाना, साधु संबंधी मुहपत्तिआदिकों काममें लेना भी योग्य नहीं। कारण कि, वह भी गुरुद्रव्य है। स्थापनाचार्य और नौकारवाली आदि तो प्रायः श्रावकोंको देने-ही के लिये गुरुने बोहोरी होवे, और वे गुरुने दी हो तो उनको वापरनेका व्यवहार देखा जाता है । गुरुकी आज्ञा बिना साधु, साध्वीको, लेखकसे लिखवाना अथवा वस्त्रसूत्रादिकका बोहरना भी अयोग्य है इत्यादि। इस प्रकार देवद्रव्य ज्ञानद्रव्य आदि थोडा भी जो अपनी आजीविकाके निमित्त उपभोगमें लें, तो उसका परिणाम द्रव्यके प्रमाणकी अपेक्षा बहुत ही बडा व भयंकर होता है । यह जान कर विवेकी पुरुषोंने किंचितमात्र

१ गुरुके सन्मुख खड़े रह, उनके ऊपरसे उतार भेंटकी तरह रखा हुआ,

भी देवद्रव्य, ज्ञानद्रव्य व साधारणद्रव्यका उपभोग किसी प्रकार भी न करना चाहिये. और इसी हेतुसे माल पहिराना, पहरा-मणी, न्युंछन इत्यादिकका स्वीकृत किया हुआ द्रव्य उसी समय दे देना चाहिये. कदाचित ऐसा न होसके तो जितना शीघ्र दिया जाय उतना ही गुणकारी है. विलम्ब करनेसे कभी २ दुर्दैवसे सर्वद्रव्यकी हानि अथवा मृत्युआदि होजाना संभव है, और ऐसा होवे तो सुश्रावकको भी अवश्य नरकादि दुर्गति-को जाना पडता है। इस विषयमें ऐसी बात सुनते हैं कि—

महापुर नामक नगरमें अरिहंतका भक्त ऋषभदत्त नामक बडा श्रेष्ठी रहता था. वह किसी पर्व पर मंदिरको गया साधमें द्रव्य न होनेसे उधार खाते पहिरावणीका द्रव्य देना स्वीकार किया. बहुतसे कार्योंमें लग जानेसे वह उक्त द्रव्य शीघ्र न दे सका. एक समय दुर्दैववश उसके घर पर डाका पडा. शस्त्रधारी चोरोंने उसका समस्त द्रव्य लुट लिया, और ‘ भविष्यमें श्रेष्ठी अपनेको राजदंड दिलावेगा. ’ ऐसा मनमें भय होनेसे उन्होंने ऋषभदत्त श्रेष्ठीको भी मार डाला. ऋषभदत्तका जीव उसी महा-पुर नगरमें एक निर्दय, दरिद्री और कृपण भिक्कीके घर पाडा (भैंसा) के रूपमें उत्पन्न हुआ. और नित्य घर घर जलादिक मार उठा कर लेजाने लगा. वह नगर ऊंचा था, व नदी बहुत गहरी थी. जिससे ऊंची भूमि चढना, रातदिन बोझा उठाना, शृष भूख तथा पीठपर पडती मार सहना इत्यादि महावेदनाएं

उसने बहुत कष्ट तक सहन करी. एक दिन नये बने हुए जिन-मंदिरका कोट बांधा जा रहा था, उसके लिये पानी लाते जिन-मंदिर तथा जिनप्रतिमा आदि देख उसको जातिस्मरणज्ञान उत्पन्न हुआ. जिससे वह वहीं स्थिर होकर खड़ा हो गया. भिक्शी-ने बहुत प्रयत्न किया किन्तु उसने वहाँसे एक कदम भी न बढ़ाया. पश्चात् ज्ञानी गुरुके वचनसे उसके पूर्वभवके पुत्रोंने भिक्शीको द्रव्य दे उसे छुड़ाया और उसने पूर्वभवमें जितना देवद्रव्य देना स्वीकार किया था उससे सहस्रगुणा द्रव्य दे अपने पूर्वभवके पिताको ऋणसे मुक्त किया. तदनंतर वह पांडा अन-शन करके स्वर्गको गया इत्यादि.

इसलिये माना हुआ देवद्रव्य क्षणमात्र भी धरमें न रखना. विवेकीपुरुष अन्य किसीका देना हो तो भी व्यवहार रखनेके लिये देनेमें विलम्ब नहीं करते, तो फिर देवादिद्रव्य देनेके लिये विलम्ब कैसे किया जासकता है? इसी कारणसे देव, ज्ञान, माधारण आदि खानेमें माल, पहरावणीआदिका जितना द्रव्य देना स्वीकार किया हो, उतना द्रव्य उस खानेका हो चुका. अतः वह किस प्रकार भोगा जाय ? अथवा उस रकमसे उत्पन्न हुआ व्याजआदि लाभ भी कैसे लिया जाय ? कारण कि, वैसा करनेसे उपरोक्त कथनानुसार देवादि द्रव्योपभोगका दोष लगता है. अतएव देवादिकका द्रव्य तत्काल दे देना. जिसमें तत्काल न दिया जा सके उसने प्रथम ही से सप्ताह अथवा

पक्षकी मुद्दत प्रकट कर देना चाहिये, और मुद्दतके अन्दर ही उघाईकी राह न देखते स्वयं दे देना चाहिये. मुद्दत बीत जाने पर देवादि द्रव्योपभोगका दोष लगता है. देवद्रव्यादिककी उघाई भी वह काम करनेवाले लोगोंने अपने द्रव्यकी उघाईके समान शीघ्र व मन देकर करना चाहिये. वैसा न करे, व आलस्य करे तो, कभी २ दुर्दैवके योगसे दुर्भिक्ष, देशका नाश, दारिद्र्य प्राप्ति इत्यादिक होजाती है, पश्चात् कितना ही प्रयत्न करने पर भी उघाई नहीं होती जिससे भारी दोष लगता है. जैसे:—

महेन्द्रनामक नगरमें एक सुन्दर जिनमंदिर था. उसमें चंदन, कपूर, फूल, अक्षत, फल, नैवेद्य, दीप, तेल, मंडार, पूजाकी सामग्री, पूजाकी रचना, मंदिरका समारना, देवद्रव्यकी उघाई, उसका हिसाब लिखना, यत्नपूर्वक देवद्रव्य रखना, उसके जमाखर्चका विचार करना, इतने काम करनेके निमित्त श्रीसंघने प्रत्येक कार्यमें चार २ मनुष्य नियत किये थे. वे लोग अपना २ कार्य यथारीति करते. एक दिन उघाई करनेवालोंमें-का मुख्य मनुष्य एक जगह उघाई करने गया, वहां उघाई न होते उलटे देनदारके मुखमेंसे निकले हुए दुर्वचन सुनकर वह बहुत दुःखी हुआ और उस दिनसे वह उघाईके कार्यमें आलस्य करने लगा, “जैसा मुख्य व्यक्ति वैसे ही उसके हाथ नीचेके लोग होते हैं.” ऐसा लोक व्यवहार होनेसे उसके आधीनस्थ लोग भी आलस्य करने लगे. इतने ही में देशका नाश आदि

होनेसे उधार रहा हुआ बहुतसा देवद्रव्य भी नष्ट होगया। उस कर्मके दोषसे उबाई करनेवालोंका उक्त प्रमुख व्यक्ति असंख्याता भवमें भटका इत्यादि।

इसी प्रकार देवद्रव्य आदि जो देना हो वह अच्छा देना। घिसाहुआ अथवा खोटा द्रव्य आदि न देना। कारण कि, वैसा करनेसे कोई भी प्रकारसे देवद्रव्यादिकका उपभोग करनेका दोष होता है। जैसे ही देव, ज्ञान, तथा साधारण द्रव्य संबंधी घर, दूकान, खेत, बाड़ी, पाषाण, ईंट, काष्ठ, बांस, नलिया, माटी, खडिया आदि वस्तु तथा चन्दन, केशर, कपूर, फूल, छत्राडियां, चंगेरी, धूपदान, कलश, बालाकुंची, छत्रसहित सिंहासन, चामर, चन्दुआ, झालर, भेरी आदि वाद्य, तंबू, कोडियां (मट्टीके दीवे) पडदे, कम्बल, चटाई, कपाट, पाट, पटिया, पाटलियां, कुंडी, घड़े, ओरसिया, काजल, जल व दीपक आदि वस्तु तथा मंदिरकी शालामें होकर नालीके मार्गसे आया जल आदि भी अपने कार्यके निमित्त न वापरना। कारण कि देवद्रव्यकी भांति उसके उपभोगसे भी दोष लगता है। चामर, तम्बू आदि वस्तु तो काममें लेनेसे कदाचित् मलीन होने तथा टूटने फटनेका भी संभव है, जिससे उपभोग करनेकी अपेक्षा भी अधिक दोष लगता है। कहा है कि—

विधाय दीपं देवानां, पुरस्तेन पुनर्नहि ।

गृहकार्याणि कार्याणि, तिर्यङ्ङपि भवेद्यतः । १ ॥

भगवान्‌के सन्मुख दीपक करके उसी दीपकसे घरके काम न करना. वैसा करनेसे तिर्थग्योनिमें जाता है । जैसे कि—

इन्द्रपुर नगरमें देवसेन नामक एक व्यवहारी था, और धनसेन नामक एक ऊंटसवार उसका सेवक था. धनसेनके घरसे नित्य एक ऊंटनी देवसेनके घर आती थी. धनसेन उसे मार-पीट कर ले जाता तो भी वह स्नेहसे पुनः देवसेनके घर आजाती. अंतमें देवसेनने उसे मोल लेकर अपने ही घर रख ली । किसी समय ज्ञानीमुनिराजको उस ऊंटनीके स्नेहका कारण पूछने पर उन्होंने कहा कि-यह ऊंटनी पूर्वभवमें तेरी माता थी. इसने भगवान्‌ सन्मुख दीपक करके उसी दीपकसे घरके कार्य किये, धूपदानमें रहे हुए अंगारसे चूल्हा सुलगाया, उस पापकर्मसे यह ऊंटनी हुई है । कहा है कि- जो मूर्ख मनुष्य भगवान्‌के निमित्त दीपक तथा धूप करके उसीसे घरके कार्य मोहवश करता है, वह बारंवार तिर्थच योनि पाता है, इस प्रकार तुम्हारा दोनोंका स्नेह पूर्वभवके संबंधसे आया हुआ है, इत्यादि । इसलिये देवके सन्मुख किये हुए दीपकके प्रकाशमें पत्रादिक न पढ़ना, कुछ भी घरका काम न करना, मुद्रा(नाणा) न परखना, देव सन्मुख किये हुए दीपकसे अपने लिये दूसरा दीपक भी न सुलगाना, भगवान्‌के चंदनसे अपने कपालादिकमें तिलक न करना, भगवान्‌के जलसे हाथ भी न धोना. नीचे पड़ीहुई भगवान्‌की शेषा (चढ़ाई हुई माला आदि)

भी स्वल्प ही ली जाती है. परन्तु वह भी प्रतिमाके ऊपरसे उतार कर नहीं ली जा सकती. भगवान्‌के भेरी, झालर आदि वाजिंत्र भी गुरु अथवा संघके कार्यके लिये बजाये नहीं जा सकते. यहां किसी किसीका मत ऐसा है कि, यदि कोई आवश्यक कार्य होवे तो देवके वाजिंत्र काममें लेना, परन्तु प्रथम उसके बदलेमें देवद्रव्य खाति अच्छी भेट (नकरा) देना चाहिये, कहा है कि-

मुहं विष्णु जिणार्णं, उवगरणं चमरछत्तकलमादि ।

जो बाबाःइ मूढो, नियकज्जे सो हवइ दुहिओ ॥ ५ ॥

जो मूढपुरुष जिनेश्वरमहाराजके चामर, छत्र, कलश आदि उपकरण मूल्य दिये बिना अपने काममें लावे, वह दुःखी होता है। नकरा देनेके बाद वापरनेको लिये हुए वाजिंत्र कदाचित्‌ टूट जावें तो निजद्रव्यसे उन्हें ठीक कराके देना चाहिये, गृहकार्यके लिये किया हुआ दीपक दर्शन करने ही के लिये जो जिनेश्वरभगवान्‌की प्रतिमाके सन्मुख लाया गया हो तो इतने ही कारणसे वह देवदीप नहीं हो सकता. जो पूजा ही के निमित्त भगवान्‌के सन्मुख रखा हो, तो वह देवदीप होता है। मुख्यतः तो देवदीपके निमित्त कोडिया (मट्टीके दीवे) आदि अलग ही रखना, और पूजाके निमित्त दीपक किया हो तो उसके कोडिये, बत्ती अथवा घी, तैल अपने काममें न लेना, किसी मनुष्यने पूजा करनेवाले लोगोंके हाथ पैर धोनेके लिये

ही मंदिरमें पृथक् जल रखा हो, तो उस जलसे हाथ पैर धोनेमें हरकत नहीं। छात्रडियां, चंगेरी, ओरसिया आदि तथा चंदन, केशर, कपूर, कस्तूरी आदि वस्तु अपनी निश्रासे रख कर ही देवकार्यमें वापरना; देवकी निश्रासे कभी न रखना। कारण कि देवकी निश्रासे न रखी होवे तो प्रयोजन पडने पर वह घरके कार्यमें ली जा सकती है। इसी प्रकार भेरी, झालर आदि वाजिंत्र भी साधारणखाते रखे होवें तो वे सर्व धर्मकृत्योंमें उपयोगमें लिये जा सकते हैं। अपनी निश्रासे रखी हुई तंबू, पडदाआदि वस्तुएं देवमंदिरमें वापरनेको रखे हों तो भी उस कारणसे वह वस्तु देवद्रव्य नहीं मानी जाती। कारण कि, मनके परिणाम ही प्रमाणभूत हैं। ऐसा न हो तो, अपने पात्रमें रखा हुआ नैवेद्य भगवान्‌के सन्मुख रखते हैं, इससे वह पात्र भी देवद्रव्य मानना चाहिये। श्रावकने देरासरखातेकी अथवा ज्ञान-खातेकी घर, हाट आदि वस्तु भाडा देकर भी न वापरना चाहिये। कारण कि, उससे निश्शुक्ता (बेदरकारी) आदि दोष होता है। साधारणखातेकी वस्तु संघकी अनुमतिसे वापरना तो भी लोक व्यवहारकी रीतिके अनुसार कम न पडे इतना भाडा देना, और वह भी कही हुई मुद्दतके अंदर स्वयं ही जाकर देना। उसमें जो कभी उस घरकी भींत, पाट आदि पूर्वके हों, उनके गिरजाने पर पुनः ठीक करवाने पडे तो जो कुछ खर्च होवे, वह भाडेमेंसे काट लेना, कारण कि ऐसा लोकव्यवहार है; परन्तु

जो अपने ही लिये एकाध माला नया बनवाया होवे अथवा उस घरमें अन्य कोई नया काम बढाया होवे तो उसका खर्च भाडेमेंसे नहीं लिया जा सकता, कारण कि उससे साधारण-द्रव्यके उपभोगका दोष आता है। कोई साधर्मी भाई बुरी अवस्थामें होवे तो वह संघकी सम्प्रतिसे साधारणखातेके घरमें बिना भाडे रह सकता है। वैसे ही अन्यस्थान न मिलनेसे तीर्थादिकमें तथा जिनमंदिर ही में जो बहुत समय रहना पड़े तथा निद्राआदि लेना पड़े तो जितना चापरनेमें आवे, उससे भी अधिक नकरा देना। थोड़ा नकरा देने पर तो प्रकट दोष है ही। इस प्रकार देव, ज्ञान और साधारण इन तीनों खातोंकी वस्त्र, नारियल, सोने चांदीकी पटली, कलश, फूल, पक्वान्न मिठाई आदि वस्तुएं उजमणेंमें, नंदीमें व पुस्तकपूजामें यथोचित नकरा दिये बिना न रखना। 'उजमणाआदि कृत्य अपने नामसे विशेष आडंबरके साथ किये होवें तो लोकमें प्रशंसा हो, ऐसी इच्छासे थोड़ा नकरा देकर अधिक वस्तु रखना योग्य नहीं। इस विषय पर लक्ष्मीवतीका दृष्टान्त कहते हैं कि--

लक्ष्मीवती नामक एक श्राविका बहुत धनवान, धर्मिष्ठ और अपना बड़प्पन चाहनेवाली थी। वह प्रायः थोड़ा नकरा देकर बड़े आडम्बरसे विविधप्रकारके उजमणे आदि धर्मकृत्य करती तथा कराया करती थी। वह मनमे यह समझती थी कि, "मैं देवद्रव्यकी वृद्धि तथा प्रभावना करती हूं।" इस प्रकार

श्रावकधर्मका पालन कर मृत्युके बाद वह स्वर्गको गई । किन्तु बुद्धिपूर्वक अपराधके दोषसे वहाँ नीच देवी हुई व वहाँसे च्यव कर किसी धवाढ्य व पुत्रहीन श्रेष्ठीके यहाँ मान्य पुत्रीरूपमें उत्पन्न हुई । परन्तु जिस समय वह गर्भमें आई उस समय आकास्मिक परचक्रका बड़ा भय आनेसे उसकी माताका सीमन्तोत्सव न हुआ । तथा जन्मोत्सव, छट्ठीका जागरिकोत्सव, नामकरणका उत्सव आदिकी पिताने आडंबर पूर्वक करनेकी तैयारी की थी, किन्तु राजा तथा मंत्री आदि बड़े २ लोगोंके घरमें शोक उत्पन्न होनेके कारण वे न हो सके । वैसे ही श्रेष्ठी-ने रत्नजडित सुवर्णके बहुतसे अलंकार प्रसन्नतापूर्वक बनवाये थे, परन्तु चौरादिकके भयसे वह कन्या एक दिन भी न पहिर सकी । वह माबापको तथा अन्यलोगोंको भी बड़ी मान्य थी, तथापि पूर्वकर्मके दोषसे उसको खाने, पीने, पहिरने, ओढ़ने-आदिकी वस्तुएं प्रायः ऐसी मिलती थी कि जो सामान्य-मनुष्यको भी सुखपूर्वक मिल सकती हैं । कहा है कि—“हे सागर! तू रत्नाकर कहलाता है, व उसीसे तू रत्नोंसे परिपूर्ण है, तथापि मेरे हाथमें मेंडक आया ! यह तेरा दोष नहीं बल्कि मेरे पूर्वकर्मका दोष है” । पश्चात् श्रेष्ठिने “ इस पुत्रीका एक भी उत्सव न हुआ ” यह विचार कर बड़े आडंबरसे उसका लग्न-महोत्सव करना प्रारंभ किया, किन्तु लग्न समीप आते ही उस कन्याकी माता अकस्मात् मृत्युको प्राप्त हुई ! जिससे बिलकुल

उत्सव न होकर केवल रूढ़िके अनुसार वर-वधूका हस्तमिलाप किया गया । बड़े धनवान व उदार श्रेष्ठीके घर उसका विवाह हुआ व श्वसुर आदि सर्व जनोंको वह मान्य थी, तो भी पूर्वकी भांति नये नये भय, शोक रोग आदि कारणोंसे उस कन्याको अपने मनवांछित विषयसुख तथा उत्सव भोगनेका योग प्रायः न मिल सका, जिससे वह मनमें बहुत उद्विग्न हुई तथा संवेगको प्राप्त हुई । एक दिन उसने केवलीमहाराजको इसका कारण पूछा तो उन्होंने कहा कि, “ पूर्वभ्रममें तूने थोड़ा नकरा देकर मंदिरआदिकी बहुतसी वस्तुएं काममें लीं व भारी आडंबर दिखाया, उससे जो दुष्कर्म तूने उपार्जन किया, उसीका यह फल है । ” केवलीके यह वचन सुन वह प्रथम आलोचन व अनंतर दीक्षा ले अनुक्रमसे निर्वाणको प्राप्त होगई इत्यादि । अतएव उजमणाआदिमें रखनेके लिये पाटलियां, नारियल, लड्डू आदि वस्तुएं उनका जितना मूल्य होवे, अथवा उनके तैयार करने, लानेमें जितना द्रव्य लगा होवे उससे भी कुछ अधिक रकम देना चाहिये । ऐसा करनेसे शुद्ध नकरा कहा जाता है ।

किसीने अपने नामसे उजमणा किया हो परन्तु अधिक-शक्ति न होनेसे उसकी रीति पूर्ण करनेके लिये अन्य कोई मनुष्य कुछ रखे, तो उससे कुछ दोष नहीं होता । अपने घर-देरासरमें भगवानके सन्मुख रखे हुए चावल, सुपारी, नैवेद्य-

आदि वस्तुएं बेचनेसे उपजी हुई रकममेंसे पुष्प, भोग (केशर चंदन, आदि वस्तु) अपने घरदेरासरमें न बापरना; और दूसरे जिनमंदिरमें भी स्वयं भगवान् पर न चढ़ाना, बल्कि सत्य वात कह कर पूजकलोगोंके हाथसे चढ़ाना । जिनमंदिरमें पूजकका योग न होवे तो सब लोगोंको उस वस्तुका स्वरूप स्पष्ट कह कर स्वयं भगवान् पर चढ़ावे । ऐसा न करनेसे, निज खर्च न करते मुफ्तमें लोगोंसे अपनी प्रशंसा करानेका दोष आता है । घरदेरासरकी नैवेद्यआदि वस्तु मालीको देना, परन्तु यह उसके मासिक पगारकी रकम में न गिनना । जो प्रथम ही से मासिक पगारके बदले नैवेद्यआदि देनेका ठैराव किया हो, तो कुछ भी दोष नहीं । मुख्यतः तो मालीको मासिक वेतन पृथक् ही देना चाहिये । घरदेरासरमें भगवान्के सन्मुख रखे हुए चावल, नैवेद्य आदि वस्तुएं बड़े जिनमंदिरमें रखना, अन्यथा ' घरदेरासरकी वस्तु ही से घरदेरासरकी पूजा करी, परन्तु निजी-द्रव्यसे नहीं करी । ' ऐसा होकर अनादर, अवज्ञा आदि दोष भी लगता है; ऐसा होना योग्य नहीं ।

अपने शरीर, कुटुम्ब आदिके निमित्त गृहस्थ मनुष्य कितना ही द्रव्य व्यय कर देता है । अतः जिनमंदिरमें जिनपूजा भी शक्तिके अनुसार निजीद्रव्य ही से करनी चाहिये, अपने घरदेरासरमें भगवान्के सन्मुख धरी हुई नैवेद्यादि वस्तु बेचकर उत्पन्न हुए द्रव्यसे अथवा देवद्रव्य संबंधी फूल आदि वस्तुसे

कभी न करना । कारण कि, वैसा करनेसे उपरोक्त दोष आता है । वैसे ही जिनमंदिरमें आई हुई नैवेद्य, चावल, सुपारी आदि वस्तुकी निजीवस्तुके समान रक्षा करना । उचित मूल्य उत्पन्न हो, ऐसी युक्तिसे बेचना, जैसे वैसे आये उतने ही मूल्यमें न देना । कारण कि, ऐसा करनेसे देवद्रव्यका विनाशआदि करनेका दोष आता है । प्रयत्नपूर्वक रक्षा करने पर भी जो कदाचित् चोर, अग्निआदिके उपद्रवसे देवद्रव्यादिकका नाश हो जाय, तो सम्हालनेवालेका कुछ दोष नहीं । कारण कि, भवितव्यताके आगे किसीका उपाय नहीं । तीर्थकी यात्रा, अथवा संघकी पूजा, साधर्मिकवात्सल्य, स्नात्र, प्रभावना, पुस्तक लिखवाना, वाचनआदि धर्मकृत्योंमें जो अन्य किसी गृहस्थके द्रव्यकी मदद ली जाय तो, वह चार पांच पुरुषोंकी साक्षीसे लेना, और वह द्रव्य खर्च करते समय गुरु, संघआदि लोगोंके सन्मुख उस द्रव्यका स्वरूप स्पष्ट कह देना, ऐसा न करनेसे दोष लगता है । तीर्थआदि स्थलमें देवपूजा, स्नात्र, ध्वजारोपण, पहिरावणी आदि आवश्यक धर्मकृत्य निजीद्रव्य ही से करना चाहिये, उसमें अन्य किसीका द्रव्य न मिलाना ।

उपरोक्त धर्मकृत्य निजीद्रव्यसे करके पश्चात् अन्य किसीने धर्मकृत्यमें वापरनेको द्रव्य दिया होवे तो उसे महापूजा, भोग, अंगपूजा आदि कृत्योंमें सबकेसमक्ष अलग काममें लेना । जब बहुतसे गृहस्थ मिलकर यात्रा, साधर्मिक वात्सल्य, संघपू-

जादि कृत्य करें तो उस समय सबके समक्ष अपना २ जितना भाग हो, वह कह देना चाहिये । ऐसा न करनेसे पुण्यका नाश तथा चोरीआदि दोष सिर पर आता है । इसी प्रकार माता, पिताआदिकी आयुष्यका अंतिम समय आवे, उस समय जो उनके पुण्यके निमित्त द्रव्य खर्च करना हो तो मरनेवाली व्यक्तिके सुद्धिमें होते हुए गुरु तथा साधर्मिक आदि लोगोंके समक्ष कहना कि- “ तुम्हारे पुण्यके निमित्त इतने दिनमें मैं इतना द्रव्य खर्च करूंगा, उसे तुम अनुमोदना दो । ” ऐसा कह, कही हुई अवधिमें उक्त द्रव्य सर्व लोग जाने ऐसी रीतिसे व्यय करना । अपने नामसे उस द्रव्यका व्यय करनेसे पुण्यके स्थानमें चोरीआदि करनेका दोष आता है । पुण्यस्थानमें चोरीआदि करनेसे मुनिराजको भी हीनता आती है । कहा है कि--- जो मनुष्य (साधु) तप, व्रत, रूप, आचार और भाव इनकी चोरी करता है, वह किलिबषी देवताकी आयुष्य बांधता है ।

मुख्यवृत्तिसे विवेकी पुरुषने धर्मखाते निकाला हुआ द्रव्य साधारण रखना, वैसा करनेसे धर्मस्थान बराबर देखकर उस स्थानमें उस द्रव्यका व्यय किया जा सकता है । सातों क्षेत्रमें जो क्षेत्र गिरा हुआ होवे, उसे आश्रय देनेमें विशेष लाभ दृष्टि आता है । कोई श्रावक ही बुरी दशामें हो, और उसे जो उस द्रव्यसे सहायता की जावे, तो आलम्बन मिलनेसे वह श्रावक धनवान हो सातों क्षेत्रोंकी वृद्धि करे, यह संभव है । लौकिकमें भी कहा है कि:—

दरिद्रं भर राजेन्द्र !, मा समृद्धं कदाचन ।

व्याधितस्थौषधं पथ्ये नीरोगस्य किमौषधम् ? ॥ १ ॥

हे राजेन्द्र ! तू दरिद्र मनुष्यका पोषण कर, पर धनवानका मत कर । कारण कि, रोगी मनुष्य ही को औषधि देना हितकारी है, निरोगी मनुष्यको औषधि देनेसे क्या लाभ होगा ? इसीलिये प्रभावना, संघकी पहिरावणी, द्रव्ययुक्त मोदक और लहाणाआदि वस्तु साधर्मिकोंको देना हो, तब दरिद्रीसाधर्मिकको उत्तमसे उत्तम वस्तु हो वही देना योग्य है, ऐसा न करनेसे धर्मकी अवज्ञाआदि करनेका दोष आता है । योग हो तो धनवानकी अपेक्षा दरिद्रसाधर्मिकको अधिक देना, परन्तु योग न होवे तो सबको समान देना । सुनते हैं कि, यमुनापुरमें जिनदास ठक्कुरने धनिकसाधर्मिकों को दिये हुए समकितमोदकमें एक एक स्वर्णमुद्रा रखी थी, और दरिद्रीसाधर्मिकों को दिये हुए मोदकमें दो दो स्वर्णमुद्राएं रखीं थीं । अस्तु, धर्मखाते व्यय करना स्वीकार किया हुआ द्रव्य उसी खातेमें व्यय करना चाहिये ।

मुख्यतः तो पिताआदि लोगोंने पुत्रादिके पीछे अथवा पुत्रादिने पिताआदिके पीछे जो कुछ पुण्यमार्गमें व्यय करना हो, वह प्रथम ही से सबके समक्ष करना, कारण कि, कौन जाने किसकी, कहाँ व किस प्रकार मृत्यु होगी ? इसलिये प्रथम निश्चय करके जितना माना हो, उतना अवसर पर अलग ही व्यय

करना, तथा स्वयं किये हुए साधर्मिकवात्सल्यआदिमें न गिनना । क्योंकि उससे धर्मस्थानमें व्यर्थ दोष आता है ।

बहुतसे लोग यात्राके निमित्त ' इतना द्रव्य खर्च करूंगा ' इस तरह स्वीकार करके स्वीकृत रकम ही में से गाड़ीभाड़ा, खाना पीना आदि द्रव्य भी खर्च करके उसीमें गिनते हैं, उन मूर्खलोगोंको ज्ञान नहीं कि, क्या गति होगी ? यात्राके निमित्त जितना द्रव्य माना हो, उतना देव, गुरु, आदिका द्रव्य होगया । वह द्रव्य जो अपने उपभोगमें लिया जावे तो देवादि-द्रव्य भक्षण करनेका दोष क्यों न लगे ?

इस प्रकार जानते अथवा अजानते जो किसी प्रसंग पर देवादिद्रव्यका उपभोग होगया हो, उसकी आलोचना समान- (जितने द्रव्यका उपभोग अनुमानसे ध्यानमें आता हो, उसी प्रमाणमें) निजीद्रव्य देवादिद्रव्यमें डालना चाहिये । मृत्यु-समय समीप आने पर तो यह आलोचना अवश्य करना चाहिये, विवेकीमनुष्यने अपनी अल्पशक्ति हो तो धर्मके सात क्षेत्रोंमें अपनी शक्तिके अनुसार अल्पद्रव्य व्यय करना, परन्तु किसीका ऋण सिर पर न रखना, पाई पाई चुकती कर देना चाहिये, उसमें भी देव, ज्ञान और साधारण इन तीन खातोंका ऋण तो बिलकुल ही न रखना. ग्रंथकारने ही कहा है कि—

ऋणं ह्येकक्षणं नैव, धार्यमाणेन कुत्र (शं क) चित ।

देवादिविषयं तत्तु, कः कुर्यादतिदुस्सहम् ॥ १ ॥

श्रेष्ठपुरुषने किसीका ऋण एक क्षणमात्र भी कदापि न रखना चाहिये, तो भला अतिदुःसह देवादिकका ऋण कौन सिर पर रखे? अतएव बुद्धिमान पुरुषने धर्मका स्वरूप समझकर सब जगह स्पष्ट व्यवहार रखना चाहिये । कहा है कि— जैसे गाय नवीन चन्द्रको, न्याँला न्याँलीको, हंस पानीमें रहे हुए दूधको और पक्षी चित्रावेलको जानता है, वैसे ही बुद्धिमान पुरुष सूक्ष्मधर्मको जानता है... इत्यादि । इस विषयका अधिक विस्तार न कर अब गाथाके उत्तरार्द्धकी व्याख्या करते हैं.

इस प्रकार जिनपूजा करके ज्ञानादि पांच आचारको दृढतापूर्वक पालनेवाले गुरुके पास जा स्वयं पूर्व किया हुआ पच्चखान अथवा उसमें कुछ वृद्धि करके बोलना. (ज्ञानादि पांच आचारकी व्याख्या हमारे रचे हुए आचारप्रदीपग्रंथमें देखो.)

पच्चखान तीन प्रकारका है. एक आत्मसाक्षिक, दूसरा देवसाक्षिक और तीसरा गुरुसाक्षिक. उसकी विधि इस प्रकार है:-

जिनमंदिरमें देववन्दनके निमित्त, आये हुए या स्नात्रमहोत्सवके दर्शनके निमित्त अथवा उपदेशआदि कारणसे वहां ठेरे हुए सद्गुरुके पास वन्दनाआदि करके विधिपूर्वक पच्चखान लेना. मंदिरमें न हों तो उपाश्रयमें जिनमंदिरकी भांति तीन निसिही तथा पांच अभिगमआदि यथायोग्य विधिसे प्रवेश कर उपदेशके पहिले अथवा होनेके अनन्तर सद्गुरुको पच्चीस आव-

इससे शुद्ध द्वादशावर्त्त वन्दना करे. इस वन्दनाका फल बहुत बड़ा है. कहा है कि—

नीओगोअं खवे कम्मं, उच्चागोअं निबंधए ।

सिद्धिलं कम्मगंठि तु, वंदणेणं नरो करे ॥ १ ॥

तिथ्यरत्तं सम्मत्तं खाइअं सत्तमीइ तइआए ।

आउं वंदणएणं, बद्धं च दसारसीहेणं ॥ २ ॥

मनुष्य श्रद्धासे वन्दना करे तो नीचगोत्रकर्मका क्षय करता है, उच्चगोत्र कर्म संचित करता है व कर्मकी दृढप्रतिष्ठा शिथिल करता है. कृष्णने गुरुवन्दनासे सातवींके बदले तीसरी नरकका आयुष्य व तीर्थकर नामकर्म बांधा. तथा उसने क्षायिकसम्यक्त्व पाया. शीतलाचार्यने वन्दना करनेके लिये आये हुए, रात्रिको बाहर रहे हुए और रात्रिमें केवलज्ञान पाये हुए अपने चार भाणजोंको प्रथम क्रोधसे द्रव्यवन्दना करी, पश्चात् उनके वचनसे भाववन्दना करने पर उसे केवलज्ञान उत्पन्न हुआ.

गुरुवन्दन भी तीन प्रकारका है. भाष्यमें कहा है कि—
गुरुवन्दन तीन प्रकारका है. एक फेटावन्दन, दूसरा थोभ-
वन्दन और तीसरा द्वादशावर्त्त वन्दन. अकेला सिर नमावे,
अथवा दोनों हाथ जोड़ना फेटावन्दन है, दो खमासणा दे वह
दूसरा थोभवन्दन तथा बारह आवर्त्त, पच्चीस आवश्यकआदि
विधि सहित दो खमासणा दे वह तीसरा द्वादशावर्त्त वन्दन

है । जिसमें प्रथम फेटावन्दन सर्वश्रमणसंघने परस्पर करना. दूसरा थोभवन्दन गच्छमें रहे हुए श्रेष्ठमुनिराजको अथवा कारणसे लिंगमात्रधारी समक्रीतीको भी करना. तीसरा द्वादशावर्त्तवन्दन तो आचार्य, उपाध्याय आदि पदधारक मुनिराज-ही को करना. जिस पुरुषने प्रतिक्रमण नहीं किया उसने विधिसे वन्दना करना. भाष्यमें कहा है कि- प्रथम इरियावही प्रतिक्रमण कर 'कुसुमिण दुसुमिण' टालनेके लिये चार लोगस्सङ्गा अथवा सौ उच्छ्वासका काउस्सग करे, कुस्वमादिका अनुभव हुआ हो तो एक सौ आठ उच्छ्वासका काउस्सग कर पश्चात् आदेश लेकर चैत्यवन्दन करे, पश्चात् आदेश मांगकर मुहपत्ति पडिलेहे, फिर दो वन्दना कर, राइअं आलोवे, पुनः दो वन्दना दे अब्भितर राइअं खमावे, फिर दो बार वन्दना देकर पच्चखान करे, तदनंतर चार खमासमणां देकर आचार्यादिकको थोभ-वन्दन करे । बादमें सज्झाय संदिसाहुं ? और सज्झाय करूं ? इन दो खमासमणसे दो आदेश लेकर सज्झाय करे. यह प्रातः-कालकी वंदनविधि है ।

प्रथम इरियावहीका प्रतिक्रमण कर आदेश ले चैत्यवन्दन करे, फिर क्रमशः मुहपत्ति पडिलेहे, दो बार वन्दना दे, दिवस-चरिम पच्चखान करे, दो वन्दना देकर देवसिअ आलोवे. दो वन्दना दे देवसिअं खमावे, चार खमासमणा देकर आचार्यादिकको वन्दना करके आदेश ले देवसिप्रायच्छित्तविसोहणके निमित्त

चार लोगससका कायोत्सर्ग करे, पश्चात् सज्जाय संदिसाहु ? और सज्जाय करुं ? इस रीतिसे आदेश मांगकर दो खमासमण देकर सज्जाय करे. यह संध्यासमयकी वंदनविधि है ।

गुरुके किसी काममें व्यग्र होनेसे जो द्वादशावर्त्त वन्दना करनेका योग न आवे तो थोभवन्दन ही से गुरुको वन्दना करना. तथा वन्दना करके गुरुके पास पच्चखान करना. कहा है कि— जो स्वयं पहिले पच्चखान किया हो वही अथवा उससे अधिक गुरुसाक्षीसे ग्रहण करना. कारण कि, धर्मके साक्षी गुरु है. धर्मकार्य गुरु साक्षीसे करनेमें इतने लाभ हैं कि, एक तो 'गुरुसक्खिओ उ धम्मो' (गुरुसाक्षीसे धर्म होता है) जिनेश्वर भगवानकी आज्ञाका पालन होता है, दूसरा गुरुके वचनसे शुभ परिणाम उत्पन्न होनेसे अधिक क्षयोपशम होता है, तीसरा पूर्व धारा हो उससे भी अधिक पच्चखान लिया जाता है । ये तीन लाभ हैं । श्रावकप्रज्ञप्तिमें कहा है कि—

संतंभिवि परिणामे गुरुमूलपवज्जणंमि एस गुणो ।

दढया आणाकरणं, कम्मखओवसमबुद्धी अ ॥ १ ॥

प्रथम ही से पच्चखानआदि लेनेके परिणाम होवें तो भी गुरुके पास जानेमें यह लाभ है कि, परिणामकी दृढता होती है, भगवानकी आज्ञा का पालन होता है और कर्मके क्षयोपशमकी वृद्धि होती है. ऐसे ही दिनके अथवा चातुर्मासके नियमादि भी योग हावे तो गुरु साक्षी ही से ग्रहण करना.

पंच नामादि बावीस मूलद्वार तथा चारसौ व्यानवे प्रति-
द्वार सहित द्वादशावर्त्त वन्दनकी विधि तथा दस प्रत्याख्यानादि
नव मूलद्वार और नव्वे प्रतिद्वार सहित पच्चखान विधि भी
भाष्यआदि ग्रंथमेंसे जान लेना चाहिये. पच्चखानका लेश-
मात्र स्वरूप पहिले कहा है ।

अब पच्चखानका फल कहते हैं ।

धम्मिल कुमारने छः मास तक आंघ्रिल तप करके बड़े २
श्रेष्ठियोंकी, राजाओंकी तथा विद्याधरोंकी बत्तीस कन्याओंसे
विवाह किया तथा अपार ऋद्धि प्राप्त की. यह इस लोकमें फल
है । तथा चार हत्याका करने वाला दृढप्रहारी छःमास तप
करके उसी भवमें मुक्तिको गया यह परलोक फल है. कहा है कि-
पच्चक्खणांमि कए, आसवदाराइं हुंति पिडिआहिं ।

आसववुच्छेएण य, तण्हावुच्छेअणं हवइ ॥ १ ॥

तण्हावुच्छेएणं, अउलोवसमो भवे मणुस्साणं ।

अउलोवसमेण पुणो, पच्चक्खणाणं हवइ सुद्धं ॥ २ ॥

तत्तो चरित्तधम्मो, कम्मविवेगो अपुव्वकरणं तु ।

तत्तो केवल्लनाणं, तत्तो मुक्खो सयासुक्खो ॥ ३ ॥

पच्चखान करनेसे आश्रव द्वारका उच्छेद होता है. आश्रव-
के उच्छेदसे तृष्णाका उच्छेद होता है. तृष्णाके उच्छेदसे मनुष्यों-
को बहुत उपशम होता है. बहुत उपशमसे पच्चखान शुद्ध होता
है. शुद्धपच्चखानसे चारित्रधर्म प्राप्त होता है. चारित्रधर्मकी

प्राप्तिसे कर्मका विवेक होता है. कर्मके विवेकसे अपूर्वकरणकी प्राप्ति होती है. अपूर्वकरणसे केवलज्ञान उत्पन्न होता है. व केवलज्ञान उत्पन्न होनेसे सदैव सुखके दाता मोक्षकी प्राप्ति होती है। पश्चात् श्रावकने साधु साध्वी आदि चतुर्विध संघको वन्दना करना. जिनमंदिरआदि स्थलमें गुरुका आगमन होवे उनका भली भांति आदर सत्कार करना. कहा है कि—

अभ्युत्थानं तदालोकेऽभिधानं च तदागमे ।

शिरस्यंजलिसंश्लेषः, स्वयमासनढाकनम् ॥ १ ॥

आसनाभिप्रहो भक्त्या, वंदना पथुपासनम् ।

तद्यानेऽनुगमश्चेति, प्रत्तिपत्तिरियं गुरोः ॥ २ ॥

गुरुको देखते ही खड़ा हो जाना, आते हों तो सन्मुख जाना, दोनों हाथ जोड़कर सिरपर अंजलि करना, आसन देना, गुरुके आसन पर बैठ जानेके अनंतर बैठना, भक्तिपूर्वक उनको वन्दना करना, उनकी सेवा पूजा करना, जब वे जावें तो उनके पीछे २ जाना. इस प्रकार संक्षेपसे गुरुका आदर होता है. वैसे ही गुरुकी बराबरीमें, मुख सन्मुख, अथवा पीठकी तरफ भी न बैठना चाहिये. उनके शरीरसे भीड़कर न बैठना, वैसे ही उनके पास पग या हाथकी पालखी वाल कर अथवा लंबे पैर करके भी न बैठना. अन्यस्थानमें भी कहा है कि-पालखी वालना, टेका लेकर बैठना, पग लम्बे करना, विकथा करना, अधिक हंसना इत्यादि गुरुके समीप बर्जित हैं. और भी कहा है कि—

निहाविकहापरिवज्जिण्हिं गुत्तेहिं पंजलिउडेहिं ।

भत्तिबहुमाणपुव्वं उवउत्तेहिं सुणेअव्वं ॥ ४ ॥

सुननेवाली व्यक्तिने निद्रा तथा विकथाका त्याग करके मन, वचन, कायाकी गुप्ति रख, हाथ जोड़ और बराबर उपयोग सहित भक्तिसे आदर पूर्वक गुरुके उपदेश वचन सुनना. इत्यादिक सिद्धान्तमें कही हुई रीतिके अनुसार गुरुकी आशातना टालनेके निमित्त गुरुसे साढ़े तीन हाथका अवग्रहक्षेत्र छोड़, उसके बाहर जीवजन्तु रहित भूमि पर बैठकर धर्मोपदेश सुनना. कहा है कि—

धन्यस्थोपरि निपतत्यहितसमाचरणधर्मनिर्वापी ।

गुरुवदनमलयनिःसृतवचनरसश्चानन्दनस्पर्शः ॥ १ ॥

शास्त्रसे निन्दित आचरणसे उत्पन्न हुए तापको नाश करनेवाला, सद्गुरुके मुखरूप मलयपर्वतसे उत्पन्न हुआ चंदन-रस सदृश वचनरूपी अमृत धन्यपुरुषों ही के उपर गिरता है ।

धर्मोपदेश सुननेसे अज्ञान तथा मिथ्याज्ञानका नाश होता है, सम्यक्त्वका ज्ञान होता है, संशय जाता रहता है, धर्ममें दृढता होती है, व्यसनादिकुमार्गसे निवृत्ति होती है, सन्मार्गमें प्रवृत्ति होती है, कषायादिदोषका उपशम होता है, विनयादिगुणोंकी प्राप्ति होती है, कुसंगतिका त्याग होता है, सत्संगका लाभ होता है, संसारसे वैराग्य उत्पन्न होता है, मोक्षकी इच्छा होती है, शक्त्यनुसार देशविरतिकी अथवा सर्व-

विरतिकी प्राप्ति होती है व अंगीकार की हुई देशविरति अथवा सर्वविरतिकी सर्वप्रकारसे एकाग्रमनसे आराधना होती है. इत्यादिक अनेक गुण हैं. वे नास्तिक प्रदेशी राजा, आमराजा. कुमारपाल, थावच्चापुत्र इत्यादिके दृष्टान्तसे जानना चाहिये. कहा है कि—

“मोहं धियो हरति कापथमुच्छिनत्ति, संवेगमुन्नमयति प्रशमं तनोति ।
सूते विरागमधिकं मुदमादधाति, जैनं वचः श्रवणतः किमु यन्न दत्ते ॥

जिनेश्वरभगवानका वचन सुने तो बुद्धिका मोह चला जावे, कुपन्थका उच्छेद होजावे, मोक्षकी इच्छा बढे, शांतिका विस्तार हो अधिक वैराग्य उपजे, व अतिशय हर्ष आदि उत्पन्न हो. ऐसी कौनसी वस्तु है कि; जो जिनेश्वरभगवानका वचन सुननेसे न मिले ? अपना शरीर क्षणभंगुर है, बांधव बंधन समान है, लक्ष्मी विविध अनर्थको उत्पन्न करनेवाली है, अतः जैन-सिद्धान्त सुनना जिससे संवेग आदि उत्पन्न होता है, तथा यह सिद्धान्त मनुष्य पर उपकार करनेमें किसी भी प्रकारकी कमतरता नहीं रखता । प्रदेशी राजाका संक्षेप वर्णन इस प्रकार है:—

श्वेताम्बीनगरीमें प्रदेशी नामक राजा व चित्रसारथी नामक उसका मंत्री था. मंत्रीने चतुर्ज्ञानी श्रीकेशिगणधरसे श्रावस्तिनगरीमें श्रेष्ठ श्रावकधर्म अंगीकार किया था. एक बार उसके आग्रहसे श्रीकेशिगणधर श्वेताम्बीनगरीमें आये. मंत्री

घोड़े पर बैठ सैर करनेके मिषसे प्रदेशी राजाको उनके पास ले गया. तब राजाने गर्वसे मुनिराजको कहा- 'हे मुनिराज ! आप व्यर्थ कष्ट न करो. कारण कि धर्म आदि जगत्में है ही नहीं. मेरी माता श्राविका थी और पिता नास्तिक था. मृत्युके समय मैंने उनसे बार २ कहा था कि, 'मृत्यु होजानेके अनंतर तुमको जो सुख अथवा नरकमें दुःख हो, वह मुझे अवश्य सूचित करना.' परन्तु उनमेंसे किसीने आकर मुझे अपने सुखदुःखका वृत्तान्त नहीं कहा. एक चोरके मैंने तिलके बराबर टुकड़े किये, तो भी मुझे उसमें कहीं भी जीव नजर नहीं आया. वैसे ही जीवित तथा मृत मनुष्यको तौलनेसे उनके भारमें कुछ भी अन्तर ज्ञात न हुआ. और भी मैंने एक मनुष्यको छिद्र रहित एक कोठीमें बंदकर दिया. वह अंदर ही मरगया. उसके शरीरमें पड़े हुए असंख्य कीड़े मैंने देखे, परन्तु उस मनुष्यका जीव बाहर जाने तथा उन कीड़ोंके जीवोंको अंदर आनेके लिये मैंने वालके अग्रभागके बराबर भी मार्ग नहीं देखा. इस प्रकार बहुतसी परीक्षाएं करके मैं नास्तिक हुआ हूं.'

श्रीकेशिगणधरने कहा- 'तेरी माता स्वर्गसुखमें निमग्न होनेके कारण तुझे कहनेको नहीं आई, तथा तेरा पिता भी नरककी अतिघोर वेदनासे आकुल होनेके कारण यहाँ नहीं आ सका. अरणीकी लकड़ीमें अग्नि होते हुए, उसके चाहे कितने ही बारीक टुकड़े करे जायें तो भी उसमें अग्नि दृष्टिमें नहीं

आती. वैसे ही शरीरके चाहे कैसे ही बारीक टुकड़े करो तो भी उसमें जीव कहाँ है यह नहीं दीखता. लोहारकी धमनी वायुसे भरी हुई अथवा खाली तोलें तो भी तौलमें रत्तीभर भी अन्तर नहीं होगा ? उसी तरह शरीरमें जीव होते हुए अथवा उसके निकल जाने पर शरीर तोलोगे तो अन्तर नहीं ज्ञात होगा. कोठीकी अंदर बंद किया हुआ मनुष्य यदि शंख बजावे जो शब्द बाहर सुननेमें आता है, परन्तु यह नहीं जान पड़ता कि वह शब्द किस मार्गसे बाहर आया. उसी प्रकार कोठीके अंदर बंद किये हुए मनुष्यका जीव कैसे बाहर गया और उसमें उत्पन्न हुए कीड़ोंका जीव कैसे अन्दर आया, यह भी नहीं ज्ञात हो सकता.'

इस प्रकार श्रीकेशिगणधरने युक्तिपूर्वक उसे समझाया, तब प्रदेशी राजाने कहा- 'आप कहते हैं सो सब सत्य है, किन्तु कुलपरंपरासे आया हुआ नास्तिकत्व कैसे छोड़ दूं ?' श्रीकेशिगणधरने कहा. 'जैसे कुल परंपरासे आये हुए दारिद्र्य, रोग, दुःख आदि छोड़ दिये जाते हैं उसी तरह नास्तिकताको भी छोड़ देना चाहिये' यह सुन प्रदेशी राजा सुश्रावक होगया उसकी सूर्यकान्ता नामक एक रानी थी. उसने परपुरुषमें आसक्त हो एकबार पोषधके पारणेके दिन राजाको विष खिलाया. वह बात तुरंत राजाके ध्यानमें आगई व उसने मंत्रीसे कही. पश्चात् मंत्रीके कहनेसे उसने अपना मन समाधिमें रखा और

आराधना तथा अनशन कर वह सौधर्मदेवलोकमें सूर्याभ विमानके अन्दर देवता हुआ, विषप्रयोगकी बात खुल जानेसे सूर्यकान्ता बहुत लज्जित हुई तथा भयसे जंगलमें भाग गई और वहां सर्पदंशसे मर कर नरकको पहुंची। एक समय आमल-कल्पानगरीमें श्रीवीरभगवान् समवसरे, तब सूर्याभ देवता यायें तथा दाहिने हाथसे एक सौ आठ खेलक तथा खेलिकाएँ प्रकट करना आदि प्रकारसे भगवान्‌के सन्मुख आश्चर्यकारी नाटक कर स्वर्गको गया, तब गौतमस्वामीके पूछने पर श्रीवीर-भगवान्‌ने सूर्याभ देवताका पूर्वभव तथा देवके भवसे च्यव कर महाविदेहक्षेत्रमें सिद्धिको प्राप्त होगा इत्यादि बात कही, इसी तरह आमराजा वप्पभट्सुरिके व कुमारपाल राजा श्री हेमचन्द्र-सुरिके उपदेशसे बोधको प्राप्त हुए यह प्रसिद्ध है। अब संक्षेपसे थावच्चापुत्रकी कथा कहते हैं:—

द्वारिकानगरीमें किसी सार्थवाहकी थावच्चा नामक स्त्री बड़ी धनवान् थी, 'थावच्चापुत्र' इस नामसे प्रतिष्ठित उसके पुत्रने बत्तीस कन्याओंसे विवाह किया था, एक समय श्री-नेमिनाथभगवान्‌के उपदेशसे उसे प्रतिबोध हुआ, माताके बहुत मना करनेपर भी उसने दीक्षा लेनेका विचार नहीं छोड़ा, तब वह दीक्षा उत्सवके निमित्त कृष्णके पास कुछ राजचिन्ह मंगाने गई। कृष्णने भी थावच्चाके घर आकर उसके पुत्रको कहा कि, 'तू दीक्षा मत ले, विषयसुखका भोग कर,' उसने

उत्तर दिया कि 'भय पाये हुए मनुष्यको विषयभोग अच्छे नहीं लगते।' कृष्णने पूछा 'मेरे होते हुए तुझे किसका भय है ?' उसने उत्तर दिया. 'मृत्युका' तदनंतर स्वयं कृष्णने उसका दीक्षा उत्सव किया. थावच्चापुत्रने एक सहस्र श्रेष्ठीआदिके साथ दीक्षा ली. अनुक्रमसे वह चौदहपूर्वा हुआ, और सेलक राजा तथा उसके पांचसौ मंत्रियोंको श्रावक कर सौगंधिका नगरीमें आया. उस समय व्यासका पुत्र शुकनामक एक परि-
 ब्राजक अपने एक हजार शिष्यों सहित वहां था. वह त्रिदंड, कमंडलु, छत्र, त्रिकाष्ठी, अंकुश, पवित्रक और केशरी नामक वस्त्र इतनी वस्तुएं हाथमें रखता था. उसके वस्त्र गेरूसे रंगे हुए थे. वह सांख्यशास्त्रके सिद्धान्तानुसार चलनेवाला होनेसे प्राणातिपातविरमणादि पांच यम (व्रत) और शौच (पवि-
 त्रता), संतोष, तप, स्वाध्याय तथा ईश्वरप्रणिधान यह पांच नियम मिलकर दश प्रकारके शौचमूल परिव्राजक धर्मकी तथा दानधर्मकी प्ररूपणा करता था. पहिले उसने सुदर्शन नामक नगर सेठसे अपना शौचमूल धर्म अंगीकार कराया था. थावच्चा-
 पुत्रआचार्यने उसीको पुनः प्रतिबोध कर विनयमूल जिनधर्म अंगीकार कराया. पश्चात् सुदर्शनश्रेष्ठीके देखते हुए शुकपरि-
 ब्राजक व थावच्चापुत्रआचार्यमें परस्पर इस प्रकार प्रश्नोत्तर हुए ।

शुकपरिव्राजकः— 'हे भगवान् ! सरिसवय भक्ष्य है कि अभक्ष्य है ?'

थावच्चापुत्रः— 'हे शुकपरिव्राजक ! सरिसवय भक्ष्य है, तथा अभक्ष्य भी है, वह इस प्रकार हैः— सरिसवय दोप्रकारके हैं. एक मित्र सरिसवय (समान उमरका) और दूसरा धान्य सरिसवय (सर्पप, सरसों). मित्र सरिसवय तीनप्रकारके हैं. एक साथमें उत्पन्न हुआ, दूसरा साथमें बढ़ा हुआ, और तीसरा वाल्यावस्थामें साथमें धूलमें खेला हुआ. ये तीनों प्रकारके मित्र सरिसवय साधुओंको अभक्ष्य है. धान्य सरिसवय दोप्रकारके हैं. एक शस्त्रसे परिणमित और दूसरे शस्त्रसे अपरिणमित. शस्त्र-परिणमित सरिसवय दो प्रकारके हैं. एक प्रासुक व दूसरे अप्रासुक. प्रासुक सरिसवय भी दो प्रकारके हैं. एक जात और दूसरे अजात. जात सरिसवय भी दो प्रकारके हैं, एक एषणीय और दूसरे अनेषणीय. एषणीय सरिसवय भी दो प्रकारके हैं. लब्ध और अलब्ध. धान्य सरिसवयमें अशस्त्र परिणमित, अप्रासुक अजात, अनेषणीय व अलब्ध इतने प्रकारके अभक्ष्य हैं, तथा शेष सर्व प्रकारके धान्य सरिसवय साधुओंको भक्ष्य हैं.

१ 'सरिसवय' यह भागधीशब्द है. 'सदृशवय' व 'सर्षप' इन दो संस्कृतशब्दोंका भागधीमें 'सरिसवय' ऐसा रूप होता है. सदृशवय याने समान उमरका और सर्षप याने सरसों.

इसी प्रकार कुलत्थ और मास भी जानो. उसमें इतनी ही विशेषता है कि, मास तीन प्रकारका है. एक कालमास (महीना), दूसरा अर्थमास (सोने चांदीका तौल विशेष) और तीसरा धान्यमास (उड्ड)

इस भांति थावच्चापुत्राचार्यने बोध किया, तब अपने हजार शिष्योंके परिवार सहित शुक्रपरिव्राजकने दीक्षा ली, थावच्चाचार्य अपने एक हजार शिष्यों सहित शत्रुंजय तीर्थमें सिद्धिको प्राप्त हुए । पश्चात् शुक्राचार्य शेलकपुरके शेलक नाम राजाको तथा उसके पांचसौ मंत्रियोंको प्रतिबोध कर दीक्षा दे स्वयं सिद्धिको प्राप्त हुए । शेलकमुनि ग्यारह अंगके ज्ञाता हो अपने पांचसौ शिष्योंके साथ विहार करने लगे । इतनेमें नित्य रूखा आहार करनेसे शेलक मुनिराजको खुजली (पामा) पित्त आदि रोग उत्पन्न हुए. पश्चात् विहार करते हुए वे परिवार सहित शेलकपुरमें आये. वहां उनका गृहस्थाश्रमका पुत्र मड्डुक राजा था. उसने उनको अपनी वाहनशालामें रखे. प्रासुक औषध व पथ्यका ठीक योग मिलनेसे शेलक मुनिराज निरोग

१ 'कुलत्थ' शब्दमागधी है. 'कुलत्थ' (कुलथी) व 'कुलस्थ' इन दो संस्कृतशब्दोंका 'कुलत्थ' ऐसा एकही मागधीमें रूप होता है.

२ 'मास' (महीना), 'माष' (उड्ड) और 'माष' (तौलनेका एक बाट) इन तीनों शब्दोंका मागधीमें 'मास' ऐसा एकही रूप होता है.

होगये, तो भी स्निग्ध आहारकी लोलुपतासे विहार न करते वे वहीं रहे. तदनंतर पंथक नामक एक साधुको मुनिराजकी सूश्रूषा करनेके लिये रख कर शेष सर्व साधुओंने विहार किया.

एक समय कार्तिकचौमासीके दिन शैलक मुनिराज यथेच्छ आहार कर सो रहे. प्रतिक्रमणका समय आया तब पंथकने खमानेके निमित्त उनके पगमें अपना मस्तक अड़ाया. जिससे उनकी निद्रा उडगई और क्रुद्ध हुए, अपने गुरुको कुपित देख कर पंथकने कहा--'चातुर्मासमें हुए अपराध खमानेके निमित्त मैंने आपके चरणोंको स्पर्श किया, पंथकका ऐसा वचन सुन उनको वैराग्य उत्पन्न हुआ और मनमें विचार करने लगे. कि, 'रसविषयमें लोलुप हुए मुझको धिक्कार है !' यह सोचकर उन्होंने तुरन्त विहार किया. पश्चात् अन्य शिष्य भी उन्हें मिले. वे शत्रुंजय पर्वत पर अपने परिवार सहित सिद्धिको प्राप्त हुए...इत्यादि

इसलिये सुश्रावकने नित्य सद्गुरुसे धर्मोपदेश सुनना चाहिये । और धर्मोपदेशमें कहे अनुसार यथाशक्ति धर्मानुष्ठान भी करना चाहिये. कारण कि, जैसे केवल औषधिके जानने ही से आरोग्यता नहीं होती, तथा भक्ष्य पदार्थ भी केवल देखनेसे पेट नहीं भरता, वैसेही केवल धर्मोपदेश सुननेसे भी पूर्णफल नहीं मिलता. अतएव उपदेशानुसार धर्मक्रिया करना चाहिये. कहा है कि, पुरुषोंको क्रिया ही फलको देनेवाली है. केवल ज्ञान फल नहीं देता. कारण कि, स्त्री व भक्ष्य पदार्थके भोगने-

का ज्ञान हो, तो भी केवल उस ज्ञान ही से मनुष्यको भोगसे मिलनेवाला सुख प्राप्त नहीं होता. वैसेही कोई पुरुष तैरना जानता हो, तो भी जो नदीमें गिरकर शरीरको नहीं हिलावे तो वह नदीके प्रवाहमें वह जाता है, इसी रीतिसे ज्ञानवान् पुरुष धर्माक्रिया न करे, तो संसारसमुद्रमें गोते खाता है । दशाश्रुतस्कंधकी चूर्णिमें कहा है कि--जो अक्रियावादी हैं, वे भव्य हों, अथवा अभव्य हों, परन्तु नियमसे कृष्णपक्षके तो होते ही हैं, और क्रियावादी नियम से भव्य व शुक्लपक्ष ही का होता है । वे सम्यग्दृष्टि हों अथवा मिथ्यादृष्टि हो तो भी वे पुद्गलपरावर्तके अन्दर सिद्ध होवेंहीगे । इसपरसे यह न समझना कि 'ज्ञान बिनाकी क्रिया भी हितकारी है, कहा है कि-

“ अज्ञाणा कम्मखओ, जायइ मंडुकचुण्णतुल्लत्ति ।

सम्मकिरिआइ सो पुण, नेओ तच्छारसारिच्छो ॥ १ ॥

जं अज्ञाणी कम्मं, खवेइ बहुआहिं वासकोडीहिं ।

तं नाणी तिहिं गुत्तो, खवेइ ऊसासमित्तेणं ॥ २ ॥”

ज्ञान रहित क्रियासे जो कर्मका क्षय होता है, वह मंडुक-चूर्णके समान है, और ज्ञानपूर्वक क्रियासे जो कर्मका क्षय होता है वह मंडुकभस्मके समान है । अज्ञानी जीव करोड़ों वर्षोंसे जितने कर्मका क्षय करता है, उतने कर्मको मन, वचन, कायाकी गुप्ति रखनेवाला ज्ञानी एक उश्वासमें क्षय करदेता है. इसी लिये तामलितापस, पूरणतापस इत्यादि लोगोंने तपस्याका महान्

कष्ट सहन किया, तो भी उन्हें ईशानेन्द्रपन और चमरेन्द्रपन इत्यादिक अल्प ही फल मिला. जो ज्ञानीपुरुष होवे, तथापि चित्तमें श्रद्धा न होवे तो उसे सम्यक् रीतिसे क्रियामें प्रवृत्ति नहीं होती. यहां अंगारमर्दक आचार्यका दृष्टान्त समझो, कहा है कि-
 “अज्ञस्य शक्तिरसमर्थविधेर्निबोधस्तौ चारुचेरियममृतुदती न किञ्चित्।
 अन्धांग्रिहीनहतवःक्षितमानसानां, दृष्टा न जातु हितवृत्तिरनन्तराया॥१॥

ज्ञान रहित पुरुषकी क्रियाशक्ति, क्रिया करनेमें असमर्थ पुरुषका ज्ञान और मनमें श्रद्धा न हो ऐसे पुरुषकी क्रियाशक्ति व ज्ञान ये सर्व निष्फल हैं यहां चलनेकी शक्तिवाला परन्तु मार्गसे अपरिचित अंधेका, मार्गसे परिचित परन्तु चलनेकी शक्तिसे रहित पंगुका और मार्गका ज्ञान व चलनेकी शक्ति होते हुए बुरे मार्गमें जानेके इच्छुक पुरुषका दृष्टान्त घटित होता है. कारण कि, दृष्टान्तमें कहे हुए तीनों पुरुष अंतराय रहित किसी स्थानको नहीं जा सकते. इसपर यह सिद्ध हुआ कि ज्ञान, दर्शन और चारित्र इन तीनोंके योगसे मोक्ष होता है. अतः ज्ञान, दर्शन और चारित्रकी आराधना करनेका नित्य प्रयत्न करना, यही तात्पर्य है।

इसी प्रकार सुश्रावक मुनिराजको संयमयात्राका निर्वाह पूछे. यथा:- ‘आपकी संयमयात्रा निभती है? आपकी रात्रि सुखसे व्यतीत हुई? आपका शरीर निर्वाध है? कोई व्याधि आपको पीडा तो नहीं करती? वैद्यका प्रयोजन तो नहीं?

औषध आदिका खप नहीं ? किसी पथ्य आदिकी आवश्यकता तो नहीं ?' इत्यादि ऐसे प्रश्न करनेसे कर्मकी भारी निर्जरा होती है, कहा है कि-

“ अभिगमणवन्दनमंसणेण पडिपुच्छणेण साहूणं ।

चिरसंचिअं पि कम्मं, खणेण विरलत्तणमुवेइ ॥ १ ॥ ”

साधुओंके सन्मुख जानेसे, उनको वन्दना तथा नमस्कार करनेसे, और संयमयात्राके प्रश्न पूछनेसे चिरकाल-संचित-कर्म भी क्षणमात्रमें शिथिलबंधन होजाता है. प्रथम साधु-ओंको वन्दना करते समय सामान्यतः ‘सुहराइ सुहेदेवसी आदि शान्ति प्रश्न किया होवे तो भी विशेषकर यहां जो प्रश्न करनेको कहा, वह प्रश्नका स्वरूप सम्यक् प्रकारसे बतानेके निमित्त तथा प्रश्नमें कहे हुए उपायके हेतु है, ऐसा समझो. इसीलिये यहां साधु मुनिराजके पांव छूकर इस प्रकार प्रकट निमंत्रणा करना—

‘इच्छकारि भगवन् ! पसाय कर प्रासुक और एषणीय अशन, पान, खादिम, स्वादिम, वस्त्र, पात्र, कम्बल, पादप्रौल्लनक, प्रातिहार्य पीठ, फलक, सिज्जा (पग चौड करके सो सकें वह) संथारा (जिसपर पग चौडे न हो सकें), औषध (एकवस्तुसे बनाई हुई), तथा भैषज (बहुतसी वस्तुएं सम्मिलित करके बनाया हुआ) इनमेंसे जिस वस्तुका खप हो उसे स्वीकार कर हे भगवान् ! मेरे ऊपर अनुग्रह करो. आजकल यह

निमंत्रण वृहद्वंदना देनेके अनन्तर श्रावक करते हैं। जिसने साधुके साथ प्रतिक्रमण किया होवे वह श्रावक सूर्योदय होनेके अनन्तर अपने घर जाकर पश्चात् निमंत्रण करे। जिस श्रावकको प्रतिक्रमण और वन्दनाका योग न होवे, उसने भी वन्दनादिके अवसर ही पर निमंत्रणा करना चाहिये, मुख्यतः तो दूसरीबार देवपूजा कर तथा भगवान्‌के सन्मुख नैवेद्य रख पश्चात् उपाश्रयको जाना, तथा साधुमुनिराजको निमंत्रणा करना, श्राद्ध-दिन-कृत्य आदि ग्रंथोंमें ऐसा ही कहा है। तत्पश्चात् अवसरानुसार रोगकी चिकित्सा करावे, औषध आदि दे, उचित व पथ्य आहार बहोरावे, अथवा साधुमुनिराजकी अन्य जो अपेक्षा होवे वह पूर्ण करे, कहा है कि—

“ दाणं आहारार्द्रं, ओसहवत्थाइं जस्स जं जोग्गं ।

णाणार्द्रं गुणार्द्रं, उवठभणहेउ साहूणं ॥ १ ॥ ”

साधुमुनिराजके ज्ञानादिगुणको अवलम्बन देनेवाला चतुर्विध आहार, औषध, वस्त्र आदि जो मुनिराजके योग्य हो वह उनको देना चाहिये ।

साधुमुनिराज अपने घर बहोरने आवें, तब जो जो योग्य वस्तु होवे, वे सर्व उनको बहोराना, और सर्व वस्तुओंका नाम लेकर नित्य कहना कि, ‘महाराज ! अमुक अमुक वस्तुकी जोग-वाइ है’ ऐसा न कहनेसे पूर्व की हुई निमंत्रणा निष्फल होती है। नाम देकर सर्व वस्तुएं कहने पर भी कदाचित् मुनिराज न

वहोरे, तो भी कहनेवाले श्रावकको पुण्यलाभ तो होता ही है।
कहा है कि—

मनस्तापि भवेत्पुण्यं, वचसा च विशेषतः ।

कर्त्तव्येनापि तद्योगे, स्वर्द्धुमोऽभूत्फलेप्रादिः ॥ १ ॥ ”

साधुमुनिराजको वहोरानेकी बातका मनमें चिन्तवन मात्र करनेसे भी पुण्य होता है, जो वचनसे वहोरानेकी बात कहे तो विशेष पुण्य होता है; और जो वैसा योग बन-जावे तो मानो कल्पवृक्ष ही मिलगया ऐसा समझना चाहिये । जिस वस्तुका योग होवे, और जो श्रावक उस वस्तुका नाम लेकर न कहे तो वस्तु प्रत्यक्ष दीखनेपर भी साधु नहीं वहोरते, इससे बड़ी हानि होती है. निमंत्रणा करनेके बाद जो कदाचित् साधु मुनिराज अपने घर न आवें, तो भी निमंत्रणा करनेवाले-को पुण्यलाभ तो होता ही है तथा विशेषभाव होनेपर अधिक पुण्य होता है. जैसे वैशालीनगरीमें श्रीवीरभगवान् छद्मस्थ-अवस्थामें चौमासीतप करते थे तब जीर्णश्रेष्ठी नित्य भग-वान्को पारणेके निमित्त निमंत्रण करने आता. चौमासीतप पूर्ण हुआ उस दिन जीर्णश्रेष्ठीने समझा कि, ‘आज तो स्वामी निश्चय पारणा करेंगे.’ यह विचार कर वह बड़े आग्रह पूर्वक निमंत्रणा कर अपने घर गया, और मैं धन्य हूं. आज स्वामी मेरे घर पारणा करेंगे.’ इत्यादि भावनाओंसे उसने अच्युत-देवलोकका आयुष्य बांधा । पारणेके दिन मिथ्यादृष्टि अभिनव-

श्रेष्ठिने दासीद्वारा किसी भिक्षुकको भिक्षा देनेके समान भगवान्‌को कुलमाप (उडदके बाकुले) दिलवाया. भगवंतने उसीसे पारणा किया, अभिनवश्रेष्ठीके घर पंच दिव्य प्रकट हुए, उस समय देवदुंदुभीका प्रकट हुआ शब्द जो जीर्णश्रेष्ठी न सुनता, तो अवश्य ही केवलज्ञान भी पा जाता; परन्तु दुंदुभीका स्वर सुनते ही भावना खंडित होगई, ऐसा ज्ञानी कहते हैं ।

साधुसुनिराजको आहार बहोरानेके विषयमें श्रीशालिभद्र-आदिका और रोगादिपर औषध, भेषज देनेके विषयमें श्रीवीर-भगवान्‌को औषध देनेवाली तथा जिननाम कर्म बांधनेवाली रेवतीका दृष्टान्त जानो. रोगी साधुकी सुश्रूषा (सार सम्हाल) करनेमें बहुत फल है. सिद्धान्तमें कहा है कि- हे गौतम ! जो जीव रुग्णसाधुकी सेवा सुश्रूषा करता है, वह मेरे दर्शन (शासन) को मानता है, और जो मेरे दर्शनको मानता है, वह रुग्णसाधुकी सेवा सुश्रूषा करता है. कारण कि, अरिहंतके दर्शनमें शासनकी आज्ञानुसार चलना ही प्रधान है. ऐसा निश्चयपूर्वक जानो, इत्यादि. इसपर कृमिकुष्ठरोगसे पीडित साधुकी सेवा सुश्रूषा करनेवाले ऋषभदेवके जीव जीवानन्द-वैद्यका दृष्टान्त जानो. वैसे ही सुश्रावकने सुपात्रसाधुओंको उचित स्थानमें उपाश्रय आदि देना. कहा है कि:—

“ वसहीसयणासनभक्तपाणभेसज्जवत्थपत्ताई ।

जइवि न पज्जत्तधणो, थोवावि हु थोवयं देइ ॥ १ ॥

जो देइ उवस्सयं जइवराण तवनिअमजोगजुत्ताणं ।

तेणं दिन्ना वत्थन्नपाणसयणासणविगप्पा ॥ २ ॥

घरमें यथोचित धन न होय, तो भी सुश्रावकने मुनिराजको वसति, शय्या, आसन, आहार, पानी, औषध, वस्त्र, पात्र आदि थोड़ेसे थोड़ा भी देना चाहिये । जयंती, वंकचूल, कोशा वेद्या, अवंतिसुकुमाल आदि जीव साधुको उपाश्रय देने ही से संसार-सागर पार करगये, वैसे ही सुश्रावकने साधुकी निंदा करनेवाले तथा जिनशासनके प्रत्यनीक लोगोंको अपनी सर्वशक्तिसे मना करना चाहिये । कहा है कि- सुश्रावकने सामर्थ्य होते हुए, भगवान्की आज्ञासे प्रतिकूल चलनेवाले लोगोंकी कदापि उपेक्षा न करना, समयानुसार अनुकूल अथवा प्रतिकूल उपाय-से अवश्य शिक्षाके वचन कहना चाहिये, यहां द्रमकमुनिकी निन्दा करनेवाले लोगोंको युक्तिसे मना करनेवाले अभयकुमार-का दृष्टान्त जानो.

साधुकी भांति साध्वियोंको भी सुखसंयमयात्राके प्रश्न आदि करना. उसमें इतनी बात और अधिक जानना कि, साध्वियोंका दुराचारी और नास्तिक लोगोंसे रक्षण करना. अपने घरके समीप चारों ओरसे सुरक्षित तथा गुप्त द्वारवाली (जहां एकाएक कोई घुस न सके) वसति देना. अपनी स्त्रियों-द्वारा उनकी सेवा कराना, अपनी पुत्रियोंको ज्ञानादिगुणके निमित्त उनके पास रखना, अपने कुटुम्बमेंकी पुत्रीआदि

कोई स्त्री दीक्षा लेनेको तैयार होवे, तो उसे उन्हींको (साध्वियोंको) सौंपना, जो साध्वियां अपना कोई आचार भूल जायँ, तो उनको स्मरण कराना, जो साध्वियां अन्यायमार्गमें जावें तो उनको रोकना, जिनका पग असन्मार्गमें पडगया हो, तो प्रथम उन्हें सदुपदेश देना, यदि वे शिक्षा न मानकर बारम्बार कुमार्गमें जावें, तो उनको कठोर वचन कहना तथा अन्य उपाय न होवे तो डंडादिसे शिक्षा करना. वैसे ही उचित वस्तु देकर उनकी सेवा करना चाहिये. इत्यादि.

सुश्रावकने साधुमुनिराजके पास जाकर कुछ तो भी पढना चाहिये. कहा है कि —

“ अञ्जनस्य क्षयं दृष्ट्वा वल्मीकस्य वि (च) वर्द्धनम् ।

अवन्ध्यं दिवसं कुर्याद्दानाध्ययनकर्त्तव्यम् ॥ १ ॥

सन्तोषस्त्रिषु कर्त्तव्यः, स्वदारे भाजने धने ।

त्रिषु चैव न कर्त्तव्यो, दाने चाध्ययने तपे ॥ २ ॥

गृहीत इव केशेषु, मृत्युना धर्ममाचरेत् ।

अजरामरवत्प्राज्ञो, विद्यामर्थञ्च चिन्तयेत् ॥ ३ ॥

जह जह सुयमवगाहइ, अइसरसरसरसंजुअमपुव्वं ।

तह तह पल्हाइ मुणी, नवनवसंजेगसद्धाए ॥ ४ ॥

जो इह पढ अउव्वं, स लहइ तित्थंकरत्तमन्नभवे ।

जो पुण पाढेइ परं, सम्मसुअं तस्स किं भणिमो? ॥ ५ ॥

विवेकीपुरुषने काजलका क्षय और बामेल (सर्पका वाल्मीकि) की वृद्धि देखकर दान व पढ़ना इत्यादि शुभकृत्योंसे अपना दिवस सफल करना चाहिये. अपनी स्त्री, भोजन और धन इन तीनों वस्तुओंमें संतोष रखना चाहिये. अर्थात् इन तीनोंका विशेष लोभ न रखना, परन्तु दान, पढ़ना और तपस्या इन तीन वस्तुओंमें संतोष न रखना अर्थात् इनकी नित्य वृद्धि करना चाहिये. मानों मृत्युने अपने मस्तकके केश पकड़े हों, ऐसा सोचकर धर्मकृत्य उतावलसे करना चाहिये, और कायाको अजरामर समझ विद्या तथा धनका उपार्जन करना. साधुमुनिराज जैसे जैसे अधिक रुचिसे नये नये श्रुत (शास्त्र) में प्रवेश करते हैं, वैसे २ अपने संवेगीपन पर नई २ श्रद्धा उत्पन्न होनेसे उनको बड़ा ही हर्ष होता है. जो जीव इस मनुष्यभवमें प्रतिदिवस नया नया पढ़ता है, वह परभवमें तीर्थंकरत्वको प्राप्त होता है. अब दूसरेको जो पढ़ावे, उसका ज्ञान श्रेष्ठ फल देता है यह कहनेकी तो आवश्यकता ही क्या रही? थोड़ी बुद्धि होनेपर भी जो पाठ करनेका नित्य उद्यम करे, तो माषतुषादिककी भांति उसी भवमें केवलज्ञानादिकका लाभ होता है ऐसा जानों ।

ऊपर कहे अनुसार धर्मक्रिया कर लेनेके अनन्तर राजा आदि होवे तो अपने राजमंदिरको जावे. मंत्रीआदि होवे तो न्याय-सभाको जावे, और वणिकआदि होवे तो अपनी दूकान

पर अथवा जो उद्यम करता हो उस उद्यमको जावे. इस प्रकार अपने अपने उचित स्थानको जा कर धर्मको विरोध न आवे. उस रीतिसे द्रव्य संपादन करनेका विचार करना. जो राजा दरिद्री अथवा धनवान, मान्य अथवा अमान्य तथा उत्तम अथवा अधम मनुष्यको मध्यस्थ वृत्ति रखकर समानतासे न्याय देता है, तो उसके कार्यमें धर्मका विरोध नहीं है। यथा:-

कल्याणकटकपुरमें अत्यन्त न्यायी यशोवर्मा नामक राजा था. उसने अपने राजमंदिरके द्वारमें न्यायघंटा नामक एक घंट बंधाया रखा था. एक समय राजाके न्यायकी परीक्षाके निमित्त राज्यकी अधिष्ठायिका देवी तत्काल प्रसूत हुई गाय व बछड़ेका रूप ग्रहण कर राजमार्गमें बैठ गई. इतनेमें राजपुत्र बड़े वेगसे दौड़ती हुई एक घोड़ी पर बैठ कर वहाँ आ पहुँचा. वेग बहुत होनेसे बछड़ेके दो पग घोड़ीके अडफेटमें आये व उससे बछड़ेकी मृत्यु होगई. तब गाय आंखमेंसे पानी टपकाते हुए चिल्लाने लगी. किसीने गायको कहा कि, “ तू राजद्वार पर जाकर न्याय मांग ” तब उसने वहाँ जाकर अपने सींगकी नोकसे न्यायघंट बजाया. राजा यशोवर्मा उस समय भोजन करते बैठा था, उसने घंटेका शब्द सुनते ही पूछा कि, “ घंटा कौन बजाता है ? ” सेवकोंने द्वार पर आ, देखकर कहा कि, “ हे देव ! कोई नहीं है. आप भोजन करिये ” राजाने कहा, “ किसने बजाई, इसका

निर्णय हुए बिना मैं किस प्रकार भोजन करूं ? ” पश्चात् भोजन-
का थाल छोड़ कर राजा द्वार पर आया तथा दूसरा कोई दृष्टिमें
न आनेसे उसने गायको पूछा कि, “ क्या किसीने तुझे कष्ट
पहुंचाया है ? कष्ट पहुंचानेवाला कौन है ? उसे मुझे बता ”
तब गाय आगे चलने लगी व राजा भी उसके पीछे हो गया.
गायने मरा हुआ बछड़ा दिखाया. राजाने कहा—“ इस बछड़े
ऊपरसे जो घोड़ीको कुदाता हुआ गया है, वह मेरे सन्मुख
प्रकट होवे. ” परन्तु जब कोई कुछ न बोला तब राजाने पुनः
कहा कि, “जब अपराधी प्रकट होगा तभी मैं भोजन करूंगा.”

उस दिन राजाको लंघन हुआ, तब सवेरे राजकुमारने
कहा—“ हे तात ! मैं अपराधी हूं. मुझे यथोचित दंड दो. ”
तदनन्तर राजाने स्मृतिके ज्ञाता पुरुषोंसे पूछा कि, “ इसे क्या
दंड देना चाहिये ? ” उन्होंने उत्तर दिया- “ हे राजन्! राज्यके
योग्य यह तेरा एक मात्र पुत्र है, अतएव इसके लिये क्या दंड
बतावें ? ” राजाने कहा—“ किसका राज्य और किसका पुत्र ?
मैं तो न्याय ही को सब वस्तुओंसे श्रेष्ठ मानता हूं. कहा है कि—
“ दुष्टस्य दण्डः स्वजनस्य पूजा, न्यायेन कोशस्य च संप्रवृद्धिः ।
अपक्षपातो रिपुराष्ट्ररक्षा, पञ्चैव यज्ञाः कथिता नृपाणाम् ॥ १ ॥

१ दुर्जनको दंड देना, २ सज्जनकी पूजा करना, ३ न्याय-
से भंडारकी वृद्धि करना, ४ पक्षपात न रखना, और ५ शत्रुसे
राज्यकी रक्षा करना. ये ही राजाओंके लिये नित्य करनेके

योग्य पंच महायज्ञ हैं. सोमनीतिमें भी कहा है कि- राजाने अपने पुत्रको भी अपराधके अनुसार दंड देना चाहिये. अतएव इसके लिये जो योग्य दंड हो सो कहो. ” राजाके इतना कहने पर भी जब वे विद्वान लोक कुछ न बोले तब राजाने ‘जो जीव किसी अन्यजीव को जिस प्रकार व जो दुःख दे, उसको बदलेमें उसी प्रकार से वही दुःख मिलना चाहिये.’ तथा ‘कोई अपकार करे तो उसको अवश्य बदला देना चाहिये’ इत्यादि नीतिशास्त्रके वचन परसे, स्वयं ही पुत्रको दंड देनेका निर्णय किया. पश्चात् घोड़ी मंगाकर पुत्रको कहा- ‘तू यहां मार्गमें लेट रह’ पुत्र भी विनीत था इससे पिताकी आज्ञा मान मार्गमें लेट गया. राजाने सेवकोंको कहा कि, ‘इसके ऊपरसे दौड़ती हुई घोड़ी ले जाओ’ परंतु कोई भी ऐसा करनेको तैयार नहीं हुआ. तब सब लोगोंके मना करते हुए भी राजा स्वयं घोड़ी पर सवार होकर ज्योंही घोड़ीको दौड़ाकर पुत्रके शरीर पर लेजाने लगा, इतने ही में राज्यकी अधिष्ठायिका देवीने प्रकट हो पुष्पवृष्टि करके कहा कि, ‘हे राजन् ! मैंने तेरी परीक्षा की थी. प्राणसे भी बल्लभ निजपुत्रसे भी तुझे न्याय अधिक प्रिय है, इसमें संशय नहीं, अतएव तू चिरकाल तक निर्विघ्न राज्य कर इत्यादि.

अब जो राजाके अधिकारी हैं, वे यदि अभयकुमार, चाणक्यकी भांति राजा व प्रजा दोनोंके हितके अनुसार राज्य

कार्य करें तो उनके काममें धर्मको विरोध नहीं आता है. कहा है कि- केवल राजा ही का हित करनेवाला मनुष्य प्रजाका शत्रु होता है, और केवल प्रजाका हित करनेवाला मनुष्य राजा-से त्याग दिया जाता है. इस प्रकार एकके हितमें दूसरेका अहित समाया हुआ होनेसे राजा व प्रजा इन दोनोंका हित करनेवाला अधिकारी दुर्लभ है। वणिक आदि लोगोंने सच्चा व्यवहार रखना चाहिये, जिससे धर्मको विरोध न आवे. (६) ॥ यही बात मूलगाथामें कहते हैं.

(मूल गाथा)

व्यवहारसुद्विदेसाद्विरुद्धरूचायउच्चिअचरणेहिं ॥

तो कुणइ अत्थचिंतं, निव्वारहितो निअं धम्मं ॥ ७ ॥

भावार्थ:—पूर्वकथित धर्मक्रिया कर लेनेके अनन्तर, अर्थ-चिन्ता (धन संपादन करने संबंधी विचार) करना. उसे करते समय तीन बातोंका अवश्य ध्यान रखना चाहिये. एक तो धन-आदि प्राप्त करनेके साधन-व्यवहारमें निर्दोषता रखना. अर्थात् व्यवहारमें मन, वचन और काय इन तीनोंको सरल रखना. कपट न करना, दूसरे जिस देशमें रहना, उस देशके लोक-विरुद्ध कृत्य न करना. तीसरे उचित कृत्य अवश्य करना. इन तीनोंका विस्तार पूर्वक विवेचन आगे किया जावेगा. उसे ध्यानमें रखकर धनकी चिन्ता करना. चौथी ध्यानमें रखने

योग्य आवश्यक बात यह है कि, अपने अंगीकार किये हुए धर्मका तथा ग्रहण किये हुए व्रतका निर्वाह होवे. परन्तु किसी स्थानमें किसी भी प्रकारसे उसमें (धर्म व व्रत आदिमें) लोभसे अथवा भूल आदिसे भी हरकत न आवे, ऐसी रीतिसे धनकी चिन्ता करना. कहा है कि- ऐसी कोई भी वस्तु नहीं कि, जो द्रव्यसे प्राप्त न हो सके. इसलिये बुद्धिशाली मनुष्यने सर्व प्रकारके प्रयत्नसे धन संपादन करना । इस स्थान पर 'अर्थचिन्ता करना' ऐसा आगम नहीं कहता. कारण कि, मनुष्यमात्र अनादिकालकी परिग्रहसंज्ञासे अपनी इच्छा ही से अर्थचिन्ता करता है. केवलिभाषित आगम ऐसे सावद्यव्यापार-में जीवोंकी प्रवृत्ति किस लिये करावे ? अनादिकालकी संज्ञासे सुश्रावकको अर्थचिन्ता करना पड़े, तो उसने इस रीतिसे करना चाहिये कि धर्मआदिको बाधा न आवे, इतनी ही आगमकी आज्ञा है.

“ इहलोइआमि कज्जे, सत्वारंभेण जह जणो तणइ ।
तह जइ लक्खंसेणवि, धम्मो ता किं न पज्जत्तं ॥ १ ॥”

“ रोगिणां सुहृदो वैद्याः, प्रभूणां चाटुकारिणः ।
मुनयो दुःखदग्धानां, गणकाः क्षणिसंपदाम् ॥ १ ॥

पण्यानां गान्धिकं पण्यं, किमन्यैः काञ्चन दिकैः ? ।
यत्रैकेन गृहीतं यत् तत्सहस्रेण दीयते ॥ २ ॥ ”

लोग जिसभांति संसार संबंधी कार्यमें सर्व आरंभ पूर्वक अहोरात्रि उद्यम करते हैं, उसका एक लाखवां अंश तुल्य भी उद्यम धर्ममें करे, तो क्या प्राप्त करना बाकी रहे ?

मनुष्यकी आजीविका १ व्यापार, २ विद्या, ३ खेती, ४ गाय, बकरी आदि पशुकी रक्षा, ५ कलाकौशल, ६ सेवा और ७ भिक्षा इन सात उपायोंसे होती है, जिसमें वणिक् लोग व्यापारसे वैद्यआदि लोग अपनी विद्यासे, कुन्बी लोग कृषिसे, ग्वाल गडरिये गायआदिके रक्षणसे, चित्रकार सुतारआदि अपनी कारीगरीसे, सेवक लोग सेवासे और भिखारीलोग भिक्षासे अपनी आजीविका करते हैं। उसमें धान्य, घृत, तेल, कपास, सूत, कपडा, तांबा, पीतल आदि धातु, मोती, जवाहरात, नाणां (रुपया पैसा) आदि किरानेके भेदसे अनेक प्रकारके व्यापार हैं। लोकमें प्रसिद्ध है कि, 'तीन सौ साठ किराने हैं।' भेद प्रभेद गिनने लगें तो व्यापारकी संख्याका पार ही नहीं आ सकता। व्याजसे उधार देना, यह भी व्यापार ही में समाता है।

औषधि, रस, रसायन, चूर्ण, अंजन, वास्तु, शकुन, निमित्त सामुद्रिक, धर्म, अर्थ, काम, ज्योतिष, तर्कआदि भेदसे नाना प्रकारकी विद्याएं हैं। जिसमें वैद्यविद्या और गांधीपन (अत्तारी) ये दो विद्याएं प्रायः बुरा ध्यान होना संभव होनेसे विशेष गुणकारी नहीं है। कोई धनवान पुरुष रोगी होजाय अथवा

अन्य किसी ऐसे ही प्रसंग पर वैद्य व गांधीको विशेष लाभ होता है, स्थान २ पर आदर होता है। कहा है कि—

शरीरमें दुःख होता है तब वैद्य पिताके समान है। तथा रोगीके मित्र वैद्य, राजाके मित्र हांजी २ करके मीठे वचन बोलने वाले, संसारी दुःखसे पीड़ित मनुष्यके मित्र मुनिराज और लक्ष्मी खोकर बैठे हुए पुरुषोंके मित्र ज्योतिषी होते हैं।

सर्व व्यापारोंमें गांधी ही का व्यापार सरस है। कारण कि, उस व्यापारमें एकटकेमें खरीदी हुई वस्तु सौटकेमें बिकती है। यह सत्य बात है कि वैद्य तथा गांधीको लाभ व मान बहुत मिलता है; परंतु यह निश्चय है कि, जिसको जिस कारणसे लाभ होता है, वह मनुष्य वैसाही कारण नित्य बन आनेकी इच्छा रखता है। कहा है कि— योद्धा रणसंग्रामकी, वैद्य बड़े बड़े धनवान लोगोंके बीमार होनेकी, ब्राह्मण अधिक मृत्युओंकी तथा निर्गन्ध मुनिजन लोकमें सुभिक्ष तथा क्षेमकुशलकी इच्छा करते हैं। मनमें धन उपार्जन करनेकी इच्छा रखनेवाले जो वैद्य लोगोंके बीमार होनेकी इच्छा करते हैं, रोगी मनुष्यके रोगको औषधिसे अच्छा होते रोककर द्रव्य लोभसे उलटी उसकी वृद्धि करते हैं, ऐसे वैद्यके मनमें दया कहाँसे हो सकती है? कितनेही वैद्य तो अपने साधर्मि, दरिद्री, अनाथ, मृत्युशय्यापर पड़े हुए लोगोंसे भी बलात्कार द्रव्य लेने की इच्छा करते हैं। अभक्ष्य-वस्तु भी औषधिमें डालकर रोगीको खिलाते और दारिकाके

अभव्य वैद्य धन्वन्तरिकी भांति जाति २ की औपधि आदिके कपटसे लोगोंको ठगते हैं । थोड़ा लोभ रखनेवाले, परोपकारी व उत्तमप्रकृतिके जो वैद्य हैं, उनकी वैद्यविद्या ऋषभदेवभगवानके जीव जीवानंदवैद्यकी भांति इसलोक तथा परलोकमें गुणकारी जानो ।

खेती तीन प्रकारकी है । एक बरसादके जलसे होनेवाली दूसरी कुएआदिके जलसे व तीसरी दोनोंके जलसे होनेवाली । गाय, भैंस, बकरी, बैल, घोड़ा, हाथी आदि जानवर पालकर अपनी आजीविका करना पशुरक्षावृत्ति कहलाती है । वह जानवरोंके भेदसे अनेक प्रकारकी है । खेती और पशुरक्षावृत्ति ये दोनों विधेकी मनुष्यको करना योग्य नहीं । कहा है कि—

गायण दंतिदंते बडल्लखंधेसु पामरजगणं ।

सुहडाण मंडलग्गे, वेसाण पओहरे लच्छी ॥ १ ॥

हाथीके दांतमें राजाओंकी लक्ष्मी, बैलके कंधेपर कृषकोंकी लक्ष्मी, खड्गकी धारपर योद्धाओंकी लक्ष्मी तथा शृंगारे हुए स्तनपर वेश्याओंकी लक्ष्मी रहती है । कदाचित् अन्य कोई वृत्ति न होवे और खेती ही करना पड़े तो बोनैका समय आदि बराबर ध्यानमें रखना । तथा पशुरक्षावृत्ति करना पड़े तो मनमें पूर्ण दया रखना. कहा है कि- जो कृषक बोनैका समय, भूमिका भाग तथा उसमें कैसा धान्य पकता है, इसे अच्छी तरह जानता है, और मार्गमें आया हुआ खेत छोड़ देता है, उसीको बहुत

लाभ होता है । वैसे ही जो मनुष्य द्रव्यप्राप्तिके निमित्त पशु-
रक्षावृत्ति करता हो, उसने मनमें स्थित दयाभाव कदापि न
छोड़ना चाहिये । उस कार्यमें सब जगह जागृत रह कर छ-
विच्छेद—खस्ती करना, नाक बाँधना आदि त्यागना ।

शिल्पकला सौ प्रकारकी है, कहा है कि— कुंभार, लोहार
चित्रकार, सुतार और नाई ये पांच शिल्प मुख्य हैं । पश्चात् इन
प्रत्येकके बीस २ भेद मिलकर सौ भेद होजाते हैं । प्रत्येक
मनुष्यकी शिल्पकला एक दूसरेसे पृथक् होनेसे पृथक् २ गिनी
जावे तो अनेकों भेद होजाते हैं । आचार्यके उपदेशसे हुआ वह
शिल्प कहलाता है । उपरोक्त पांच शिल्प ऋषभदेवभगवानके
उपदेशसे चले आ रहे हैं । आचार्यके उपदेश बिना जो केवल
लोकपरंपरासे चला हुआ खेती, व्यापार आदि है, वह कर्म
कहलाता है । सिद्धांत में कहा है कि— आचार्यके उपदेशसे
हुआ वह शिल्प और उपदेशसे न हुआ वह कर्म कहलाता है ।
कुंभारका, लोहारका, चित्रकारका इत्यादि शिल्पके भेद हैं, खेती
व्यापार आदि कर्मके भेद हैं, खेती व्यापार और पशुरक्षावृत्ति
ये तीन कर्म यहाँ प्रत्यक्ष कहे, शेष कर्मोंका प्रायः शिल्पआदिमें
समावेश हो जाता है । पुरुषोंकी तथा स्त्रियोंकी कलाएं कितनी
ही विद्यामें तथा कितनी ही शिल्पमें समा जाती हैं । कर्मके
सामान्यतः चार प्रकार हैं । कहा है कि—

उत्तमा बुद्धिकर्माणः, करकर्मा च मध्यमः ।

अधमाः पादकर्माणः, शिरःकर्मऽधमाधमः ॥ १ ॥

बुद्धिसे कर्म (कार्य) करनेवाले उत्तम, हाथसे कर्म करनेवाले मध्यम, पगसे कर्म करनेवाले अधम और मस्तकसे (बोझा उठाकर) कर्म करनेवाले महान् अधम जानो । बुद्धिसे कर्म करनेके ऊपर दृष्टांत कहते हैं ।

चंपानगरीमें मदन नामक धनश्रेष्ठीका पुत्र था । उसने बुद्धि देने वाले लोगोंकी दुकान पर जाकर पांचसौ द्रम्म दे एक बुद्धि ली कि, “दो जने लडते होवें वहां खडे नहीं रहना ।” घर आया तब मित्रोंने उसकी पांचसौ द्रम्मकी बुद्धि सुनकर खूब हंसी करी, तथा पिताने भी भला बुरा कहा । जिससे मदन बुद्धि वापस करके अपने द्रम्म लेनेके लिये दुकानदारके पास आया । दुकानदारने कहा कि, “जहां दो जनोकी लडाई चलती होवे वहां अवश्य खडा रहना ।” यह तू स्वीकार करता हो तो तेरे द्रम्म लौटा दूं । मदनके स्वीकार करनेपर दुकानदारने पांचसौ द्रम्म फेर दिये । एक समय मार्गमें दो सुभटोंका कुछ विवाद हो रहा था, तब मदन उनके पास खडा रहा । दोनों सुभटोंने मदनको अपना २ साक्षी बनाया । अंतमें न्यायके समय राजाने मदनको साक्षीरूपमें बुलवाया । तब दोनों सुभटोंने मदनसे कहा कि, “जो मेरे पक्षमें साक्षी नहीं देगा, तो तेरी मृत्यु निकट ही समझना ।” इस धमकीसे आकुल-व्याकुल हो धनश्रेष्ठीने अपने पुत्रकी रक्षाके निमित्त एक करोड द्रम्म खर्च करके बुद्धि देनेवालोंके पास से एक बुद्धि ली कि,

“ तू तेरे पुत्रको पागल जाहिर कर ” तदनुसार करनेसे धन श्रेष्ठी सुखी हुआ.....इत्यादि.

व्यापार आदि करनेवाले लोग हाथसे काम करने वाले हैं. दूतआदिका काम करनेवाले लोग पगसे काम करने वाले हैं. बोझा उठाने वालेआदि लोग मस्तकसे काम करने वाले हैं । १ राजाकी, २ राजाके अमलदार लोगोंकी, ३ श्रेष्ठीकी और ४ दूसरे लोगोंकी मिलकर चार प्रकारकी सेवा है. राजादिककी सेवा रात्रिदिवस परवशताआदि भोगना पडने-से ऐसे वैसे मनुष्यसे नहीं हो सकती है । कहा है कि—

मौना मूकः प्रवचनपशुर्वातिको जल्पको वा,

धृष्टः पार्श्वे भवति च तथा दूरतश्चाप्रगल्भः ।

क्षान्त्या भीरुर्यदि न सहते प्रायशो नाभिजातः

सेवाधर्मः परमगहनो योगितामप्यगम्यः ॥ १ ॥

जो सेवक कुछ न बोले तो गूंगा कहलावे, जो स्पष्ट बोले तो बकवादी, जो पास बैठे रहे तो ढीठ, जो दूर बैठे तो बुद्धि-हीन, स्वामी कहे वह सर्व सहन करे तो कायर और जो न सहन करे तो कुलहीन कहलाता है, इसलिये योगीजन भी न जान सकते ऐसा सेवाधर्म महान् काठिन है । जो अपनी उन्नति होनेके निमित्त नीचा सिर नमावे, अपनी आजीविकाके निमित्त प्राण तक देनेको तैयार हो जाय, और सुखप्राप्तिके हेतु दुःखी होवे, ऐसे सेवकसे बढकर दूसरा कौन मूर्ख होगा ?

दूसरेकी सेवा करना श्वानवृत्तिके समान है, ऐसा कहने-
वाले लोगोंने कदाचित् बराबर विचार नहीं किया, कारण कि,
श्वान तो स्वामीकी खुशामद पूँछसे करता है, परन्तु सेवक तो
सिर नमा नमा कर करता है, इसलिये सेवककी वृत्ति श्वानकी
अपेक्षा भी नीच है। इतने पर भी अन्य किसी रीतिसे निर्वाह
न हो तो सेवा करके भी मनुष्यने अपना निर्वाह करना। कहा
है कि—बड़ा श्रीमान् होवे उसने व्यापार करना, अल्प धनवान
होवे उसने खेती करना, और जब सब उद्यम नष्ट हो जावे, तब
अन्तमें सेवा करना। समझदार, उपकारका ज्ञाता तथा जिसमें
ऐसे ही अन्यगुण हों, उस स्वामीकी सेवा करना। कहा है कि—

अकर्णदुर्बलः शूरः, कृतज्ञः सात्त्विको गुणी ।

वदान्यो गुणरागी च, प्रभुः पुण्यैरवाप्यते ॥ १ ॥

क्रूरं व्यसनिनं लुब्धप्रगल्भं सदाभयम् ।

मूर्खमन्यायकर्तारं, नाधिपत्ये नियोजयेत् ॥ २ ॥

जो कानका कच्चा न हो, तथा शूरवीर, कृतज्ञ, अपना
सत्त्व रखनेवाला, गुणी, दाता, गुणग्राही ऐसा स्वामी सेवकको
भाग्य ही से मिलता है। क्रूर, व्यसनी, लोभी, नीच, जीर्ण-
रोगी, मूर्ख व अन्यायी ऐसे मनुष्यको कदापि अपना अधिपति
न करना। जो मनुष्य अविवेकी राजा द्वारा स्वयं ऋद्धिवन्त
होनेकी इच्छा करता है, वह मानो ऋद्धिप्राप्तिके लिये मङ्गीके

घोड़ेसे सौ योजन जानेका विचार करता है, अथवा वह निरर्थक है । कामंदकीयनीतिसारमें भी कहा है कि—

वृद्धोपसेकी नृपतिः, सतां भवति संमतः ।

प्रेर्यमाणोऽप्यसद्वृत्तैर्नाकार्येषु प्रवर्त्तते ॥ १ ॥

वृद्धपुरुषोंकी सम्मतिसे चलनेवाला राजा सत्पुरुषोंको मान्य होता है. कारण कि, दुष्टलोग कदाचित् उसे कुमार्गमें अग्रसर करें, तो भी वह नहीं जाता. स्वामीने भी सेवकके गुणानुसार उसका आदर सत्कार करना चाहिये. कहा है कि—

निर्विशेषं यदा राजा, समं भृत्येषु वर्त्तते ।

तत्रोद्यमसमर्थानामुत्साहः परिहीयते ॥ १ ॥

जब राजा अच्छे व अयोग्य सब सेवकोंको एक ही पंक्तिमें गिने तो उद्यमी सेवकोंका उत्साह दूट जाता है ।

सेवकने भी अपनेमें भक्ति, चतुरता आदि अवश्य ही रखना चाहिये. कहा है कि—

अप्राज्ञेन च कातरेण च गुणः स्यात्सानुरागेण कः ?,

प्रज्ञाविक्रमशालिनोऽपि हि भवेत् किं भक्तिहीनात्कलम् ? ।

प्रज्ञाविक्रमभक्तयः समुदिता येषां गुणा भूतले,

ते भृत्या नृपतेः कलत्रमितरे संपत्सु चापत्सु च ॥ १ ॥

सेवक स्वामिभक्त होवे तो भी यदि वह बुद्धिहीन व कायर होवे तो उससे स्वामीको क्या लाभ? और जिसमें भक्ति नहीं है ऐसे बुद्धि और पराक्रमवालेसे भी क्या लाभ है? अतएव जिसमें

बुद्धि, वीरता और प्रीति ये तीन गुण हों, वही राजाके संपत्काल तथा विपत्कालमें उपयोगी होने योग्य है, और जिसमें ये गुण न हों, वह सेवक स्त्रीसमान है। कदाचित् राजा प्रसन्न होजाय तो सेवकोंको मात्र मान देता है, परन्तु सेवक तो उस मानके बदलेमें अवसर आने पर अपने प्राण तक देकर राजाका उपकार करते हैं। सेवकने राजादिकी सेवा बड़ी चतुराईसे करनी चाहिये। कहा है कि—सेवकने सर्प, व्याघ्र, गज व सिंह ऐसे क्रूरजन्तुओंको भी उपायसे वश किये हुए देखकर मनमें विचारना कि, बुद्धिशाली व चतुरपुरुषोंके लिये “ राजाको वश करना ” कौनसी बड़ी बात है ? राजादिको वश करनेकी रीति नीतिशास्त्रआदिग्रन्थोंमें इस प्रकार कही है:—चतुरसेवकने स्वामीकी बाजूमें बैठना, उसके मुख तरफ दृष्टि रखना, हाथ जोड़ना, और स्वामीके स्वभावानुसार सर्व कार्य साधना. सेवकने सभामें स्वामीके बहुत समीप नहीं बैठना तथा बहुत दूर भी न बैठना, स्वामीके बराबर अथवा उससे ऊँचे आसन पर न बैठना, स्वामीके सन्मुख व पीछे भी न बैठना, कारण कि, बहुत समीप बैठनेसे स्वामीको ग्लानि होती है तथा बहुत दूर बैठे तो बुद्धिहीन कहलाता है, आगे बैठे तो अन्य किसीको घुरा लगे और पीछे बैठे तो स्वामीकी दृष्टि न पड़े, अतएव उपरोक्त कथनानुसार बैठना चाहिये।

जिस समय स्वामी थका हुआ, क्षुधा अथवा तृषासे पीड़ित, क्रोधित, किसी काममें लगा हुआ, सोनेके विचारमें तथा अन्य किसीकी विनती सुननेमें लगा हुआ हो उस समय सेवकने उससे न बोलना. सेवकने राजा ही के समान राजमाता, पटरानी, युवराज, मुख्य मन्त्री, राजगुरु व द्वारपाल इतने मनुष्योंके साथ भी बर्ताव करना चाहिये. “ पहिले मैंने ही इसे सुलगाया है, अतः मैं इसकी अवहेलना करूं, तो भी यह मुझे नहीं जलावेगा. ” ऐसे अयोग्यविचारेस जो मनुष्य अपनी अंगुली दीपक पर धरे, तो वह तत्काल जला देता है, वैसे ही “ मैंने ही इसे हिकमतसे राजपदवी पर पहुंचाया है, अतः चाहे कुछ भी व्यवहार करूं, पर यह मुझ पर रुष्ट नहीं होगा. ” ऐसे व्यर्थविचारसे जो कोई मनुष्य राजाको अंगुली लगावे तो वह रुष्ट हुए बिना नहीं रहता. अतएव इस प्रकार कार्य करना कि वह रुष्ट न होवे. कोई पुरुष राजाको बहुत मान्य हो तो भी वह इस बातका गर्व न करे. कारण कि, “ गर्व विनाशका मूल है. ” इस विषय पर सुनते हैं कि:—

दिल्लीनगरमें बादशाहके प्रधानमन्त्रीको बड़ा गर्व हुआ. वह मनमें समझने लगा कि, “ राज्य मेरे आधार ही पर टिक रहा है. ” एक समय किसी बड़े मनुष्यके सन्मुख उसने वैसी गर्वकी बात प्रकट भी करी. यह बात बादशाहके कानमें पहुंचते ही उसने प्रधानमन्त्रीको पदच्युत कर दिया और

उसके स्थान पर हाथमें रांपी रखनेवाले एक मोचीको नियुक्त किया. वह कामकाजके कागजों पर सहीकी निशानीके रूपमें रांपी लिखता था. उसका वंश अभी भी दिल्लीमें मान्य है.

इस प्रकार राजादिक प्रसन्न होवें तो ऐश्वर्य आदिका लाभ होना अशक्य नहीं. कहा है कि—सटि का खेत, समुद्र, योनि-पोषण और राजाका प्रसाद ये तत्काल दरिद्रता दूर करते हैं. सुखकी इच्छा करनेवाले अभिमानी लोग राजाआदिकी सेवाकी भले ही निन्दा करें; परन्तु राजसेवा किये बिना स्वजनका उद्धार और शत्रुका संहार नहीं हो सकता. कुमारपाल भाग गया तब वोसिरब्राह्मणने उसे सहायता दी, जिससे उसने प्रसन्न हो अवसर पाकर उस ब्राह्मणको लाटदेशका राज्य दिया. देवराजनामक कोई राजपुत्र जितशत्रुराजाके यहां पौरियेका काम करता था. उसने एक समय सर्पका उपद्रव दूर किया, जिससे प्रसन्न हो राजा जितशत्रुने देवराजको अपना राज्य दे स्वयं दीक्षा लेकर सिद्धि प्राप्त की. मन्त्री, श्रेष्ठी, सेनापति आदिके कार्योंका भी राजसेवामें समावेश हो जाता है. ये मन्त्रीआदिके कार्य बड़े पापमय हैं, और परिणाममें कड़वे हैं. इसलिये वास्तवमें श्रावकके लिये वर्जित हैं. कहा है कि—जिस मनुष्यको जिस अधिकार पर रखते हैं वह उसमें चोरी किये बिना नहीं रहता. देखो, क्या धोबी अपने पहरनेके वस्त्र मोल लेकर पाहिनता है ? मनमें अधिकाधिक चिन्ता

उत्पन्न करनेवाले अधिकार कारागृह समान हैं। राजाके अधिकारियोंको प्रथम नहीं परन्तु परिणाममें बन्धन होता है।

यदि सुश्रावक राजाओंका काम करना सर्वथा न त्याग सके, तो भी गुप्तपाल, कोतवाल, सीमापालआदिके अधिकार तो बहुत ही पापमय व निर्दय कृत्य हैं, इसलिये श्रद्धावन्त श्रावकके लिये सर्वथा त्याज्य हैं। कहा है कि—जानवर देवस्थान न्यायस्थान अंगरक्षक तेलार, कोतवाल, सीमापाल, पटेल आदि अधिकारी किसी मनुष्यको भी सुख नहीं देते। शेष अधिकार कदाचित् कोई श्रावक स्वीकारे, तो उसने मन्त्री वस्तुपाल तथा पृथ्वीधरकी भांति श्रावकोंको सुकृतिकी कीर्ति हो, उस रीतिसे अधिकार चलाना चाहिये। कहा है कि—जिन मनुष्योंने पापमय राज्यकार्य करते हुए, उनके साथ धर्मकृत्य करके पुण्योपार्जन नहीं किया, उन मनुष्योंको द्रव्यके लिये धूल धोनेवाले लोगोंसे भी मूर्ख जानना चाहिये। अपने ऊपर राजाकी बहुत कृपा हो तो भी उसका शाश्वतपणा धार उसके किसी भी मनुष्यको अप्रसन्न नहीं करना। तथा राजा अपनेको कोई कार्य सौंपे तो राजासे उस कामके ऊपर ऊपरी मनुष्य मांगना। सुश्रावकने इस प्रकारसे राज्य-सेवा करनी चाहिये। जहां तक बने श्रावकने श्रावक ऐसे राजा

१ जेलर, कारागृहका अधिकारी. २ पोलिसका मुख्य अधिकारी.

ही की सेवा करना उचित है, कहा है कि--कोई श्रावकके घर यदि ज्ञान व दर्शन संपादन करके दास होकर रहे वह भी श्रेष्ठ है, परन्तु मिथ्यात्वसे मूढमति सामान्य राजा अथवा चक्रवर्ती होना योग्य नहीं. कदाचित् अन्य कोई निर्वाहका साधन न होवे, तो समकितके पञ्चखानमें “वित्तीकंतारेण” याने आजीविका रूप गहरापन उल्लंघन करनेके लिए मिथ्यात्वके विनय आदि की छुट रखता हूं, ऐसा आगार रखा है, जिससे कोई श्रावक जो मिथ्यादृष्टिकी सेवा करे, तो भी उसने अपनी शक्ति तथा युक्तिसे बन सके उतनी स्वधर्मीकी पीड़ा टालना. तथा अन्य किसी प्रकारसे थोड़ाभी श्रावकके घर निर्वाह होनेका योग मिले, तो मिथ्यादृष्टिकी सेवा त्याग देना चाहिये.

(इति सेवाविधि)

सुवर्णआदि धातु, धान्य, वस्त्र इत्यादि वस्तुओंके भेदसे भिक्षा अनेक प्रकारकी है । उनमें सर्व संग परित्याग करनेवाले मुनिराजकी धर्मकार्यके रक्षणार्थ आहार, वस्त्र, पात्र आदि वस्तुकी भिक्षा उचित है । कहा है कि--हे भगवति भिक्षे ! तू नित्य बिना परिश्रमके मिल जाय ऐसी है, भिक्षुकलोगोंकी माता समान है, साधुमुनिराजकी तो कल्पलता है, राजा भी तुझे नमते हैं, तथा तू नरकको टालने वाली है, इसलिये मैं तुझे नमस्कार करता हूं । शेष सर्वप्रकारकी भिक्षा मनुष्यको लघुता उत्पन्न करनेवाली है. कहा है कि--

ता रुवं ताव गुणा, लज्जा सन्ध कुलकमो ताव ।

तावच्चिअ अभिमाणं, देहिति न जंए जाव ॥ १ ॥

मनुष्य जब तक मुंहसे “ दो ” यह शब्द नहीं निकालता, अर्थात् याचना नहीं करता, तब तक उसके रूप, गुण, लज्जा, सत्यता, कुलीनता व अहंकार रहे हैं ऐसा जानो. तृण अन्य वस्तुओंकी अपेक्षा हलका है, रुई तृणसे हलकी है, और याचक तो रुईसे भी हलका है, तो इसे पवन क्यों नहीं उड़ा ले जाता ? उसका कारण यह है कि, पवनके मनमें यह भय रहता है कि, मैं इसे ले जाऊँ तो यह मुझसे क्या मांगेगा ? रोगी, लंबे कालका प्रवासी, नित्य दूसरेका अन्न भक्षण करनेवाला और दूसरेके घर सोनेवाला, इतने मनुष्यका जीवन मृत्युके समान है, इतना ही नहीं, परन्तु मर जाना यह तो इनको पूर्ण विश्रांति है, भिक्षा मांगकर निर्वाह करनेवाला मनुष्य निष्क्रिय, बहुभक्षी, आलसी व अतिनिद्रा लेनेवाला होनेसे जगत्में विलकुल निष्काम होता है. ऐसा सुनते हैं कि— किसी कापालिकके भिक्षा मांगनेके पात्रमें एक तेलीके बेलने मुंह डाला. तब कापालिकने चिल्लाकर कहा कि, “ भिक्षा तो मुझे और भी बहुत मिल जावेगी, परन्तु इस बेलने भिक्षाके पात्रमें मुख डाला, इससे कहीं इसमें भिक्षाचरके आलस, बहु-निद्रा आदि गुण आजावें, और यह तुम्हें बेकाम हो जावे ! इसका मुझे बहुत खेद है । ” श्री हरिभद्रस्वरिने पांचवें अष्टकमें

तीन प्रकारकी भिक्षा कही है. यथा:--तत्त्वज्ञ पुरुषोंने १ सर्व-संपत्करी, २ पौरुषघ्नी, और ३ वृत्तिभिक्षा, इस प्रकार तीन प्रकारकी भिक्षा कही है । गुरुकी आज्ञामें रहनेवाले, धर्मध्यान आदि शुभ-ध्यान करनेवाले और यावज्जीव सर्व आरंभसे निवृत्ति पाये हुए साधुओंकी भिक्षा सर्वसंपत्करी भिक्षा कहलाती है. जो पुरुष पंच महाव्रत अंगीकार करके यतिधर्मको विरोध आवे ऐसी रीतिसे चले, उस गृहस्थकी भांति सावध आरंभ करनेवाले साधुकी भिक्षा पौरुषघ्नी कहलाती है. कारण कि, धर्मकी लघुता उत्पन्न करनेवाला वह मूर्ख साधु, शरीरसे पुष्ट होते हुए दीन हो भिक्षा मांगकर उदर पोषण करता है, इससे उसका केवल पुरुषार्थ नष्ट होता है. दरिद्री, अंधा, पंगु (लंगड़ा) तथा दूसराभी जिनसे कोई धन्धा नहीं हो सकता, ऐसे लोग जो अपनी आजीविकाके निमित्त भिक्षा मांगते हैं उसे वृत्तिभिक्षा कहते हैं. वृत्तिभिक्षामें अधिक दोष नहीं, कारण कि, उसके मांगनेवाले दरिद्रीआदि लोग धर्ममें लघुता नहीं उत्पन्न करते. मनमें दया लाकर लोग उनको भिक्षा देते हैं. इसलिये गृहस्थ व विशेषकर धर्मी श्रावकने न मांगना चाहिये.

दूसरा कारण यह है कि, भिक्षा मांगनेवाला गृहस्थ चाहे कितना ही श्रेष्ठ धर्मानुष्ठान करे, तो भी दुर्जनकी मित्रताके समान उससे लोकमें अवज्ञा, निन्दाआदि ही होती है । और जो जीव धर्मकी निन्दा करानेवाला होता है, उसे सम्यक्त्व-

प्राप्ति आदि होना कठिन है. ओषधनिर्युक्तिमें साधुको लक्ष्य कर कहा है कि—

छक्कायद्यावन्तोवि संजओ दुल्लहं कुणइ बोहिं ।

आहारे नौहारे, दुगुंछिए पिढगहणे अ ॥ १ ॥”

पड़जीवनिकाय ऊपर दया रखनेवाला संयमी साधु भी, आहार निहार करते, तथा गोचरीमें अन्न ग्रहण करते जो कुछ भी धर्मकी निन्दा उपजावे, तो उसे बोधि दुर्लभ होता है. भिक्षा मांगनेसे किसीको लक्ष्मी व सुखआदिकी प्राप्ति नहीं होती. कहा है कि—

लक्ष्मीर्वसति वाणिज्ये, किञ्चिदस्ति च कर्षणे ।

अस्ति नास्ति च सेवायां, भिक्षायां न कदचन ॥ १ ॥”

पूर्ण लक्ष्मी व्यापार में बसती है, थोड़ी खेतीमें है, सेवामें नहीं के बराबर है तथा भिक्षामें तो बिलकुल ही नहीं है. उदरपोषण मात्र तो भिक्षासे होता है. जिससे अंधेआदिको आजीविकाका साधन होजाता है । मनुस्मृतिके चौथे अध्यायमें तो ऐसा कहा है कि—ऋत १, अमृत २, मृत ३, प्रमृत ४ और सत्यानृत ५ इन उपायोंसे अपनी आजीविका करना, परन्तु नीचकी सेवा करके अपना निर्वाह कभी न करना चाहिये. बाजारमें पड़े हुए दाने बीनना इसे ऋत कहते हैं १. याचना किये बिना मिला हुआ अमृत २ व याचना करनेसे मिला हुआ मृत कहलाता है ३. प्रमृत खेती ४ तथा सत्यानृत व्यापारको

कहते हैं ५ और सेवा की आजीविका श्रवृत्ति कही जाती है, इससे उसको छोड़देनी चाहिए । इन सबमें वणिक्लोगोंको मुख्यतः तो द्रव्यसंपादनका साधन व्यापार ही है. कहा है कि--

महुमहणस्स य वच्छे न चेव कमलायरे सिरी वसइ ।

किंतु पुरिसाण ववसायसायरे तीइ सुहटाणं ॥ १ ॥”

लक्ष्मी विष्णुके वक्षस्थल अथवा कमलबनमें नहीं रहती परन्तु पुरुषोंका उद्यमरूप समुद्र ही उसका विवासस्थान है. विवेकी-पुरुषने अपना तथा अपने सहायक धन, बल, भाग्योदय, देश, काल आदिका विचारकरके ही व्यापार करना चाहिये, अन्यथा हानिआदि होनेकी संभावना रहती है । हमने कहा है कि--बुद्धिमान पुरुषोंने अपनी शक्ति ही के अनुसार कार्य करना. वैसा न करनेसे कार्यकी असिद्धि, लज्जा, लोकमें उपहास, अवहेलना, और लक्ष्मी तथा बलकी हानि होती है. अन्यग्रन्थकारोंने भी कहा है कि--देश कैसा है ? मेरे सहायक कैसे हैं ? काल कैसा है ? मेरा आय-व्यय कितना है ? मैं कौन हूं ? तथा मेरी शक्ति कितनी है ? इन बातोंका नित्य बारंबार विचार करना चाहिये ।

शीघ्र हाथ आने वाले, निर्विघ्न, अपनी सिद्धिके निमित्त बहुतसे साधन रखनेवाले कारण प्रथम ही से शीघ्र कार्य-सिद्धिकी सूचना करते हैं. यत्नके बिना प्राप्त होनेवाली और बहुत यत्नसे भी प्राप्त न होनेवाली लक्ष्मी पुण्यपापका भेद बताती

है । व्यापारके व्यवहारकी शुद्धि द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव इन भेदोंसे चार प्रकार की है, जिसमें द्रव्यसे तो पन्द्रह कर्मादान-आदिका कारण भूत किराना सर्वथा त्यागना कहा है कि--

धर्मबाधकरं यच्च, यच्च स्यादयश्चकरम् ।

भूरिलाभमपि ग्रह्यं, पुण्यं पुण्यार्थिभिर्न तत् ॥ १ ॥

धर्मको पीड़ा करनेवाला तथा लोकमें अपयश उत्पन्न करने वाला किराना विशेष लाभ होता होवे तो भी पुण्यार्थी लोगोंने ग्रहण न करना चाहिये, तैयार हुए वस्त्र, सूत, नाणा, सुवर्ण और चांदी आदि व्यापारकी वस्तुएं प्रायः निर्दोष होती हैं, व्यापारमें सदैव ऐसा वर्त्ताव रखना चाहिये कि जिससे आरम्भ कम होवे, दुर्भिक्षआदिके समय अन्य किसी रीतिसे निर्वाह न होता हो, तो विशेष आरम्भसे होवे ऐसा व्यापार तथा खरकर्मआदि भी करे, तथापि खरकर्म करनेकी इच्छा मनमें न रखना चाहिये, प्रसंग वश करना पड़े तो अपनी आत्मा व गुरुकी साक्षीसे उसकी निन्दा करनी चाहिये, तथा मनमें लज्जा रखकर ही वैसे कार्य करना, सिद्धान्तमें भावश्रावकके लक्षणमें कहा है कि-सुश्रावक तीव्र आरम्भ वर्जे, और उसके बिना निर्वाह न होता हो, तो मनमें वैसे आरम्भकी इच्छा न रख, केवल निर्वाहके हेतु ही तीव्र आरम्भ करे; परन्तु आरम्भ परिग्रह रहित धन्य जीवोंकी स्तुति करना, तथा सर्वजीवों पर दयाभाव रखना, जो मनसे भी किसी जीवको कष्ट नहीं पहुंचाते और जो आरम्भके पापसे

विरति पाये हुए हैं, ऐसे धन्य महामुनिजन शुद्ध आहार ग्रहण करते हैं । न देखा हुआ तथा न परखा हुआ किराना ग्रहण न करना. तथा जिसमें लाभ हानिकी शंका हो, अथवा जिसमें अन्य बहुतसी वस्तुएं मिली हुई हों ऐसा किराना बहुतसे व्यापारियोंके हिस्सेसे लेना, ताकि कभी हानि होवे तो सबको समानभागसे होवे. कहा है कि व्यापारी पुरुष व्यापारमें धन प्राप्त करना चाहता हो तो उसने किराने देखे बिना बयाना (स्वीकृतिके रूपमें कुछ द्रव्य अग्रिम देना) न देना और यदि देना हो तो अन्य व्यापारियोंके साथ देना.

क्षेत्रसे तो जहां स्वचक्र, परचक्र, रुग्णावस्था और व्यसन-आदिका उपद्रव न होवे, तथा धर्मकी सर्व सामग्री हो, उस क्षेत्रमें व्यापार करना, अन्यथा बहुत लाभ होता हो तो भी न करना । कालसे तो बारह मासमें आनेवाली तीन अष्टाइयां, पर्व-तिथि व्यापारमें छोड़ना, और वर्षादिऋतुके लिये जिन २ व्यापारोंका सिद्धान्तमें निषेध किया है, वे व्यापार भी त्यागना. किस ऋतुमें कोनसा व्यापार न करना यह इसी ग्रंथमें कहा जावेगा । भावसे तो व्यापारके बहुत भेद हैं, यथा:- क्षत्रिय-जातिके व्यापारी तथा राजाआदिके साथ थोड़ा व्यवहार किया हो तो भी प्रायः लाभ नहीं होता । अपने हाथसे दिया हुआ द्रव्य भी मांगते जिन लोगों का डर रहता है, ऐसे शस्त्र-धारीआदि लोगोंके साथ थोड़ा व्यवहार करने पर भी लाभ-

कहाँसे होवे ? कहा है कि- श्रेष्ठवाणिकने क्षत्रियव्यापारी, ब्राह्मणव्यापारी तथा शस्त्रधारी इनके साथ कभी भी व्यवहार न रखना, तथा पीछेसे विरोध करने वाले लोगोंके साथ उधारका व्यापार भी न करना । कहा है कि- कोई वस्तु उधार न देते संग्रह करके रखी जावे, तो भी अवसर पर उसके बेचनेसे मूलधन तो उपजेहीगा, परन्तु विरोध करनेवाले लोगोंको दिया होवे तो मूलधन भी उत्पन्न नहीं होता । जिसमें विशेष कर नट, विट (वेश्याके दलाल), वेश्या, तथा जुआरीआदिके साथ तो उधारका व्यापार कदापि न करना । कारण कि, उससे मूलधनका भी नाश होता है । व्याजबट्टेका व्यापार भी मूलधनकी अपेक्षा अधिक मूल्यकी वस्तु गिरवी रखकर करना उचित है । अन्यथा वसूल करनेमें बड़ा क्लेश तथा विरोध होता है । समय पर धर्मकी हानि, तथा धरना देकर बैठनाआदि अनेक अनर्थ भी उत्पन्न होते हैं । इस विषयपर एक बात सुनते हैं कि:-

जिनदत्त नामक एक श्रेष्ठ तथा उसका एक मुग्ध नामक पुत्र था । मुग्ध अपने नामके अनुसार बड़ा ही मुग्ध (भोळा) था । अपने पिताकी कृपासे वह सुखमें लीलालहर करता था । जिनदत्तश्रेष्ठोंने कुलवान नन्दवर्धनश्रेष्ठीकी कन्याके साथ धूमधामसे उसका विवाह किया । आगे जाते जब जिनदत्तने अपने पुत्रकी मुग्धता पूर्ववत् ही देखी तब गूढार्थ-वचनो द्वारा उसे इस भांति उपदेश किया कि, “ हे वत्स !

१ सब जगह दांतका पड़दा रखना । २ किसीको ब्याजपर द्रव्य देनेके बाद उसकी उगाई न करना । ३ बंधनमे पड़ी हुई स्त्रीको मारना । ४ मीठा ही भोजन करना । ५ सुख ही से सोना । ६ गांवर घर करना । ७ दरिद्रावस्था आनेपर गंगातट खोदना । ८ ऊपर कही बात पर कोई संशय आवे तो पाटलीपुत्रनगरको जाकर वहां सोमदत्त श्रेष्ठी नामक मेरा मित्र रहता है, उसको पूछना” मुग्धने पिताका यह उपदेश सुना, किन्तु इसका भावार्थ उसके ध्यानमे न आया । आगे जाकर मुग्धश्रेष्ठीको बड़ा खेद हुआ । भोलेपनमें सर्व द्रव्य खो दिया । स्त्रीआदिको वह अग्रिथ लगने लगा तथा लोगोंमें इसकी इस प्रकार हंसी होने लगी कि “ इसका एक भी काम सिद्ध नहीं होता । इसके पासका द्रव्य भी खुट गया, यह महामूर्ख है । ” इत्यादि । अंतमें मुग्ध पाटलीपुत्रनगरको गया व सोमदत्तश्रेष्ठीको पिताके उपदेशका भावार्थ पूछा । सोमदत्तने कहा, “ १ सर्व जगह दांतका पड़दा रखना अर्थात् सबसे प्रिय व हितकारी वचन बोलना । २ कोईको ब्याजपर द्रव्य उधार देनेके बाद उसकी उगाई न करना अर्थात् प्रथम ही से अधिक मूल्य वाली वस्तु गिरवी रख कर द्रव्य देना कि जिससे देनदार स्वयं आकर ब्याज सहित द्रव्य पीछा दे जाय । ३. बंधनमें पड़ी हुई स्त्रीको मारना अर्थात् अपनी स्त्रीके जो संतान हो गई हो तभी उसको ताड़ना करना । यदि ऐसा न होवे तो वह ताड़नासे रोषमें

आकर पियर अथवा अन्य कहीं चली जाय अथवा कुएँ पड़कर या अन्य किसी रीतिसे आत्महत्या कर डाले । ४ मीठा ही भोजन करना, अर्थात् जहाँ प्रीति तथा आदर हो वहीं भोजन करना, कारण कि, प्रीति व आदर यही भोजनकी वास्तविक मिठास है । अथवा भूख लगे तभी खाना जिससे कि सभी मीठा लगे । ५ सुखपूर्वक ही सोना अर्थात् जहाँ किसी प्रकारकी शंका न होवे वहीं रहना ताकि वहाँ सुखसे निद्रा आवे । अथवा आंखमें निद्रा आवे तभी सोना, जिससे कि सुखपूर्वक निद्रा आवे । ६ गांव २ घर करना अर्थात् हर गांवमे ऐसी मित्रता करना कि, जिससे अपने घरकी भांति वहाँ भोजनादि सुखसे मिल सकें । ७ दरिद्रावस्था आनेपर गंगातट खोदना अर्थात् तेरे घरमे जहाँ गंगा नामकी गाय बंधती है वह भूमि खोदना, जिससे पिताका गाडा हुआ धन तुझे शीघ्र मिल जावे । सोमदत्तश्रेष्ठिके मुखसे यह भावार्थ सुन मुग्धने उसीके अनुसार किया जिससे वह धनवान्, सुखी तथा लोकमान्य होगया यह पुत्रशिक्षाका दृष्टान्त है ।

अतएव उधारका व्यवहार कदापि न रखना, कदाचित् उसके बिना न चले तो सत्य बोलनेवाले लोगों ही के साथ रखना, व्याज भी देश, काल आदिका विचारकर ही के एक, दो, तीन, चार, पांच अथवा इससे अधिक टका लेना, परन्तु वह इस प्रकार कि जिससे श्रेष्ठियोंमें अपनी हंसी न होवे, देन-

दारने भी कही हुई मुद्दत ही में कर्ज चुका देना चाहिये. कारण कि, मनुष्यकी प्रतिष्ठा मुखसे निकले हुए वचनको पालने ही पर अवलंबित है. कहा है कि--

तत्तिअमितं जंपह जत्तिअमितस्स निकयं वहह ।

तं उक्खिवेह भारं जं अद्धपहे न छेडेह ॥ १ ॥

जितने वचनका निर्वाह कर सको, उतने ही वचन तुम मुंहसे निकालो. आधे मार्गमें डालना न पड़े, उतना ही बोझा पाहिलेसे उठाना चाहिये. कदाचित् किसी आकस्मिक कारणसे धनहानि होजावे, व उससे करी हुई कालमर्यादामें ऋण न चुकाया जा सके तो थोड़ा थोड़ा लेना कुबूल कराकर लेनदारको संतोष करना. ऐसा न करनेसे विश्वास उठ जानेसे व्यवहारमें भंग आता है ।

विवेकीपुरुषने अपनी पूर्णशक्तिसे ऋण चुकानेका प्रयत्न करना. इस भवमें तथा परभवमें दुःख देनेवाला ऋण क्षण भर भी सिर पर रखे ऐसा कौन मूर्ख होगा ? कहा है कि--

धर्मारम्भे ऋणच्छेदे, कन्यादाने धनागमे ।

शत्रुघातेऽग्निरोगे च, कालक्षेपं न कारयेत् ॥ १ ॥

तैलाभ्यङ्गमृगच्छेदं, कन्यामरणमेव च ।

एतानि सद्योदुःखानि, परिणामे सुखानि तु ॥ २ ॥

धर्मका आरम्भ, ऋण उतारना, कन्यादान, धनोपार्जन, शत्रुदमन और अग्नि तथा रोगका उपद्रव मिटाना आदि जहां तक

हो शीघ्रतासे करना. शरीरमें तैल मर्दन करना, ऋण उतारना और कन्या की मृत्यु ये तीन बातें प्रथम दुःख देकर पश्चात् सुख देती है। अपना उदरपोषण करने तकको असमर्थ होनेसे जो ऋण न चुकाया जा सके तो अपनी योग्यताके अनुसार साहुकारकी सेवा करके भी ऋण उतारना. अन्यथा आगामीभवंमें साहुकारके यहां सेवक, भैंसा, बैल, ऊँट, गधा, खच्चर, अश्व आदि होना पड़ता है. साहुकारने भी जो ऋण चुकानेको असमर्थ हो उससे मांगना नहीं. कारण कि, उससे व्यर्थ संकलेश तथा पाप-वृद्धि मात्र होना संभव है। इसलिये ऐसे निर्धनको साहुकारने कहना कि, “तुझमें देनेकी शक्ति होवे तब मेरा द्रव्य चुकाना और न होवे तो मेरा इतना द्रव्य धर्मार्थ है।” देनदारने विशेषकाल तक ऋणका सम्बन्ध सिर पर नहीं रखना, कारण कि उससे कभी आयुष्य पूर्ण हो जाय तो आगामी भवमें पुनः दोनों जनोंका सम्बन्ध हो वैरआदि उत्पन्न होता है। सुनते हैं कि भावडश्रेष्ठीको पूर्वभवके ऋणके सम्बन्ध ही से पुत्र हुए, यथा:—

भावड नामक एक श्रेष्ठी था. उसकी स्त्रीके गर्भमें एक-जीवने अवतार लिया, उस समय दुष्ट स्वप्न आये तथा उसकी स्त्रीको दोहले भी बड़े ही बुरे २ उत्पन्न हुए. अन्य भी बहुतसे अपशकुन हुए. समय पूर्ण होने पर श्रेष्ठीको मृत्युयोग पर दुष्ट पुत्र हुआ. वह घरमें रखने योग्य नहीं था, इससे उसे

माहनी नदीके किनारे एक सूखे हुए वृक्षके नीचे पटक दिया। तब वह बालक प्रथम रुदन कर तथा पश्चात् हंसकर बोला कि, “ मैं तुम पर एक लाख स्वर्णमुद्राएं मांगता हूं, वे दो-अन्यथा तुम्हारे ऊपर अनेक अनर्थ आ पड़ेंगे। ” यह सुन भावड श्रेष्ठीने पुत्रका जन्मोत्सव कर छठे दिन एक लाख स्वर्णमुद्राएं बांटी, तब वह बालक मर गया। इसी प्रकार दूसरा पुत्र तीन लाख स्वर्णमुद्राएं देने पर मृत्युको प्राप्त हुआ, तीसरा पुत्र होनेके अवसर पर स्वप्न तथा शकुन भी उत्तम हुए, पुत्रने उत्पन्न होकर कहा कि “ मेरे उन्नीस लाख स्वर्णमुद्राएं लेना है। ” यह कह उसने मातापसे उन्नीस लाख स्वर्णमुद्राएं धर्मखाते निकलवाई, पश्चात् नवलाख स्वर्णमुद्राएं खर्च कर वह काश्मीरदेशमें श्रीकृष्णभदेवभगवान, श्रीपुंडरीक गणधर और चक्रेश्वरीदेवी इन तीनकी प्रतिमा ले गया, दस लाख स्वर्णमुद्रा खर्चकर वहां प्रतिमाकी प्रतिष्ठा कराई। तदनन्तर उपार्जित किया हुआ अपार स्वर्ण बहाणमें भरकर वह शत्रुंजयको गया। वहां लेप्यमय प्रतिमाएं थीं, उन्हें निकाल कर उनके स्थान पर उसने मम्माणी (पाषाण रत्न विशेष)-की प्रतिमाएं स्थापन करीं.....इत्यादि।

ऋणके सम्बन्धमें प्रायः कलह तथा बैरकी बुद्धिआदि होती है, यह बात प्रसिद्ध है। इसलिये ऋण चाहे किसी उपायसे वर्तमान भव ही में चुका देना चाहिये, दूसरे व्यवहार

करते जो द्रव्य पछि न आवे, तो मनमें यह समझना कि उतना द्रव्य मैंने धर्मार्थ व्यय किया है. दिया हुआ द्रव्य उगाई करते भी वापस न मिले तो उसे धर्मार्थ माननेका मार्ग रहता है, इसी हेतु ही से विवेकीपुरुषोंने साधर्म्यभाइयोंके साथ ही मुख्यतः व्यवहार करना, यह योग्य है. म्लेच्छआदि अनार्यलोगोंसे लेना हो और वह जो वापस न आवे तो वह द्रव्य धर्मार्थ है यह समझनेका कोई मार्ग नहीं, अतः उसका केवल त्याग करना अथवा उस परसे अपनी ममता छोड़ देना. यदि त्याग करनेके अनन्तर देनदार कभी वह द्रव्य दे तो, उसे धर्मार्थ कार्यमें लेनेके लिये श्रीसंघको दे देना. वैसे ही द्रव्य, शस्त्रआदि आयुध अथवा अन्य भी कोई वस्तु गुम हो जावे, व मिलना सम्भव न हो, तो उसका भी त्याग करना चाहिये अर्थात् उसे बिसराना चाहिये. ताकि जो चोर आदि उस वस्तुका उपयोग पापकर्ममें करे तो अपन उस पापकर्मके भागी नहीं होते इतना लाभ है । विवेकीपुरुषोंने पापका अनुबन्ध करनेवाली, अनन्तभव सम्बन्धी शरीर, गृह, कुटुम्ब, द्रव्य, शस्त्रआदि वस्तुओंका इसी रीतिसे त्याग करना. अन्यथा अनन्तों भव तक उन वस्तुओंके सम्बन्धसे होने वाले बुरे फल भोगना पड़ते हैं ।

यह हमारा वचन सिद्धान्त विरुद्ध नहीं है. श्री भगवती-सूत्रके पाँचवे शतकके छठे उद्देशमें “ पारधीने हरिणको मारा,

तो जिस धनुष्य, बाण, प्रत्यंचा तथा लोहसे हरिण मरा, उन जीवोंको भी हिंसा (पांच क्रिया) लगती है. ऐसा कहा है. अस्तु. चतुरपुरुषोंने किसी जगह धनहानिआदि हो जाय तो उससे मनमें उदासीनता न लाना. कारण कि, उदासीनता न करना यही लक्ष्मीका मूल है. कहा है कि-

सुव्यवसायिनि कुशले, क्लेशसाहिष्णौ समुद्यतारम्भे ।

नरि पृष्ठतो विलम्बे, यास्यति दूरं क्षियलक्ष्मीः ? ॥ १ ॥

दृढ़ निश्चयवाला, कुशल, चाहे कितना ही क्लेश हो उसे सहन करनेवाला और निशिदिन उद्यम करनेवाला मनुष्य पीछे पड़ जावे तो लक्ष्मी कितनी दूर जा सकती है? जहां धन उर्पाजन किया जाता है, वहां थोड़ा बहुत धन तो नष्ट होता ही है। कृषकको बोये हुए बीजसे उत्पन्न हुए धान्यके पर्वत समान ढेरके ढेर मिलते हैं तथापि बोया हुआ बीज तो उसे पीछा नहीं मिलता. वैसेही जहां बहुतसा लाभ होता है वहां थोड़ी हानि तो सहनी ही पड़ती है। कभी दुर्दैवसे विशेष हानि होजाय, तो भी विवेकी पुरुषने दीनता न करनी चाहिये, किन्तु ऊपर कही हुई रीतिके अनुसार हानि हुआ द्रव्य धर्मार्थ सोच लेना. ऐसा करनेका मार्ग न होवे तो उसका मनसे त्याग कर देना व लेशमात्र भी उदासीनता न रखनी चाहिये. कहा है कि -

स्लानोऽपि रोहति तरुः, क्षीणोऽप्युपचीयते पुनश्च द्रुः ।

इति विमृशन्तः सन्तः, स तप्यन्ते न विमदादौ ॥ १ ॥

विपदां रूपदां च पि, महतामेव संभवः ।

कृशता पूर्णता चापि, चन्द्र एव न चोडुपु ॥ २ ॥

काटा हुआ वृक्ष पुनः नवपल्लव होता है और क्षीण हुआ चन्द्रमा भी पुनः परिपूर्ण होता है. ऐसा विचार करनेवाले सत्पुरुष आपत्तिकाल आने पर मनमें खेद नहीं करते. बड़े मनुष्य ही सम्पत्ति और विपत्ति इन दोनोंको भोगते हैं. देखो ! चन्द्रमा ही में क्षय व वृद्धि दृष्टि आती है, नक्षत्रोंमें नहीं. हे आम्रवृक्ष ! “फाल्गुणमासने मेरी सर्वशोभा एकदम हरण कर ली ” ऐसा सोचकर तू क्यों उदास होता है ? थोड़े ही समयमें वसन्तऋतु आने पर पूर्ववत् तेरी शोभा तुझे अवश्य मिलेगी. इस विषय पर ऐसा दृष्टान्त कहा जाता है कि:—

पाटणमें श्रीमालीजातिका नागराज नामक एक कोटि-ध्वज श्रेष्ठी था. उसकी स्त्रीका नाम मेलादेवी था. एक समय मेलादेवीके गर्भवती होते हुए श्रेष्ठी नागराज विषूचिका (कौलेरा) रोगसे मर गया. राजाने उसे निपुत्र समझ उसका सर्व धन अपने आधीन कर लिया, तब मेलादेवी अपने पियर धोलके गई. गर्भके सुलक्षणसे मेलादेवीको अमारिपडह (अभय-दानकी डौंडी) बजवानेका दोहला उत्पन्न हुआ. वह उसके पिताने पूर्ण किया. यथासमय पुत्रोत्पत्ति हुई, उसका नाम

अभय रखा गया. लोगोंमें वह 'आभड' नामसे प्रख्यात हुआ. पांचवर्षका होने पर उसे पाठशालामें पढ़नेको भेजा. एक दिन सहपाठी बालकोंने इसे उपहाससे "नबापा, नबापा" (बिना बापका) इस तरह चिढ़ाया. उसने घर आते ही आग्रह पूर्वक माताको पिताका स्वरूप पूछा. माताने सब सत्य वृत्तान्त कह सुनाया. तदनन्तर आग्रह व प्रसन्नता पूर्वक आभड पाटणको गया तथा वहां व्यापार करने लगा. यथासमय उसने लाल्लदेवी नामक कन्यासे विवाह किया. पिताका गाढा हुआ द्रव्यआदि मिलनेसे वह भी कोटिध्वज होगया. उसके तीन पुत्र हुए.

समय जाते बुरे कर्मोंके उदयसे वह निर्धन होगया. उसने स्त्रीको तीनों पुत्रों सहित उसके पियर भेज दि और आप एक भनिहारेकी दुकान पर मणिआदि घिसनेके काम पर रहा. उसे कुछ जब मिलते थे. उन्हें स्वयं ही पीसकर तथा पकाकर खाता था. लक्ष्मीकी गति कैसी विचित्र है ? कहा है कि--

वर्धिमाधवयोः सौधे, प्रीतिभेमाङ्गधारिणोः ।

या न स्थिता नि मन्येषां, स्थास्थति व्ययकारिणाम् ? ॥ १ ॥

जो लक्ष्मी स्नेहपूर्वक गोदमें बैठानेवाले समुद्रके तथा कृष्णके राजमहलमें स्थिर न रही वही लक्ष्मी अन्य खर्चोंले लोगोंके घरमें किस प्रकार स्थिर रह सकती है ? एकसमय श्री-हेमाचार्यजीके पाससे परिग्रह परिमाण व्रत लेनेके लिये आभड

खड़ा हुआ. द्रव्यका परिमाण बहुत संक्षेप किया देखकर श्री-
हेमाचार्यजीने उसे मना किया. तब उसने एक लाख द्रम्म
तथा उन्हीं अनुसार अन्यवस्तुओंका भी परिमाण रखा.
परिमाणसे धनआदि वृद्धि पावे तो उसे धर्मकार्यमें व्यय
करना निश्चय किया. धीरे २ कुछ समयमें पांच द्रम्म इकट्ठे
हुए. जिससे उसने एक बकरी मोल ले ली. भाग्योदयेस
बकरीके गलेमें इन्द्रनील (मणि) बंधा था वह आभडने
पहिचान लिया. उसके टुकड़ेकर एक २ के लाख लाख द्रम्म
आवे ऐसे मणि बनवाये. जिससे वह पुनः पूर्ववत् धनिक हो
गया. तब उसके कुटुम्बके सब मनुष्य भी आगये. उसके घरमें-
से प्रतिदिन साधुमुनिराजको एक घड़ा भरकर घी बहोराया
जाता. प्रतिदिन साधर्मिचात्सल्य, सदाव्रत तथा महापूजा आदि
होता था. प्रतिवर्ष दो बार सर्वदर्शनसंघकी पूजा होती थी.
नानाप्रकारकी पुस्तकें लिखवाई जातीं, जर्णिमंदिरके जीर्णो-
द्धार होते तथा भगवान्की सुमनोहर प्रतिमाएं भी तैयार होती
थीं. ऐसे २ धर्मकृत्य करते आभडकी चौरासी वर्षकी अवस्था
होगई. अन्तसमय समीप आया, तब उसने धर्मखातेकी वही
पढवाई, उसमें भीमराजाके समयके अट्टानवे लाख द्रव्यके व्यय-
का वर्णन सुनकर, उसने खिन्न होकर कहा कि, “ मुझ कृपण-
ने एक करोड द्रम्म भी धर्मकार्यमें व्यय नहीं किये. ” यह
सुन उसके पुत्रोंने उसी समय दश लाख द्रम्म धर्म-कार्यमें व्यय

किये. जिससे सब मिलकर एक करोड़ आठ लाख द्रम्म धर्म-खाते गये. आभडके पुत्रोंने और भी आठ लाख द्रम्म धर्म-कृत्यमें व्यय करनेका संकल्प किया. तदनन्तर कालसमय आने पर आभड अनशन कर स्वर्गको गया.....इत्यादि.

पूर्वभ्रममें किये हुए दुष्कृतके उदयसे पुनः पूर्ववत् अवस्था न आवे. तो भी मनमें धैर्य रखना कारण कि, आपत्तिकाल-रूप समुद्रमें डूबते हुए जीवको धीरज नौकाके समान है. सर्व दिन सरीखे किसके रहते हैं ? कहा है कि -

को इत्थं सया सुहिओ?, कस्स व लच्छी ? थिराईं पिम्माईं ? ।

को मच्चुणा न गसिओ?, को गिद्धो नेव विसएसु ? ॥ १ ॥

इस संसारमें सदा ही कौन सुखी है ? लक्ष्मी किसके पास स्थिर रही ? स्थिर प्रेम कहां है ? मृत्युके वशमें कौन नहीं ? और विषयासक्त कौन नहीं ? बुरी दशा आने पर सर्वसुखके मूल संतोष ही को नित्य मनमें रखना चाहिये, अन्यथा चिंतासे इस लोकके तथा परलोकके भी कार्य नष्ट होजाते हैं । कहा है कि—चिंता नामक नदी आशारूप पानीसे परिपूर्ण होकर बहती है. हे मूढजीव ! तू उसमें डूबता है, इसलिये इसमेंसे पार करनेवाले संतोषरूप बहाणका आश्रय कर नानाप्रकारके उपाय करने पर भी जो ऐसा मालूम पड़े कि, “ अपनी भाग्यदशा ही हीन है.” तो युक्तिपूर्वक किसी भाग्यशाली पुरुषका आश्रय करना. कारण

कि, काष्ठका आधार मिलने पर तो लोहा व पाषाणआदि भी पानीमें तैरते हैं. ऐसा सुनते हैं कि—

एक भाग्यशाली श्रेष्ठी था. उसका मुनीम बड़ा ही विचक्षण था. वह भाग्यहीन होते हुए भी श्रेष्ठीके सम्बन्धसे धनवान होगया. जब श्रेष्ठीका देहान्त होगया तब वह भी पुनः निर्धन होगया. तदनन्तर वह श्रेष्ठीके पुत्रोंके पास रहनेकी इच्छा करता था, परन्तु उसे निर्धन जान वे एक अक्षर भी मुंहसे न बोलते थे. तब उसने दो तीन अच्छे मनुष्योंको साक्षी रखकर युक्तिसे श्रेष्ठीकी जूनी बहीमें अपने हाथसे लिखा कि, “ श्रेष्ठीके दो हजार टंक मुझे देना है. ” यह कार्य उसने बहुत ही गुप्त रीतिसे किया. एकसमय इस लेख पर श्रेष्ठी-पुत्रोंकी दृष्टि पड़ी, तब उन्होंने मुनीमसे दो हजार टंककी मांगनी करी. उसने कहा “ व्यापारके निमित्त थोड़ा द्रव्य मुझे दो तो मैं थोड़े ही समयमें तुम्हारा कर्ज चुका दूंगा. ” तदनुसार उन्होंने इसको कुछ द्रव्य दिया. जिससे इसने बहुत द्रव्य सम्पादन किया. तब पुनः श्रेष्ठीपुत्रोंने अपना लेना मांगा तो मुनीमने साक्षी सहित यथार्थ बात कह दी. इस प्रकार श्रेष्ठीपुत्रोंके आश्रयसे वह पुनः धनवान होगया.

निर्दयत्वमहङ्कारस्तृष्णा कर्कशभाषणम् ।

नीचपात्रप्रियत्वं च, पञ्च श्रोतव्यचारिणः ॥ १ ॥

निर्दयता, अहंकार, अतिलोभ, कठोर भाषण और नीच-वस्तु पर प्रीति रखना ये पांच लक्ष्मीके साथ निरंतर रहते हैं, ऐसा एक वचन प्रसिद्ध है, परन्तु वह सज्जनपुरुषोंको लागू नहीं होता. हलके स्वभावके मनुष्योंको लक्ष्य करके ऊपरका वचन प्रवृत्त हुआ है. इसलिये ज्ञानीपुरुषोंने अधिकाधिक द्रव्य आदि मिलने पर भी अहंकार आदि न करना चाहिये। कहा है कि--

विपदि न दीनं संपदि न गर्वितं सव्यथं परव्यसने ।

दृष्यति चात्मव्यसने येषां चेतो नमस्तेभ्यः ॥ १ ॥

जं जं खमइ समत्थो, धणवतो जं न गच्चिओ होइ ।

जं च सविज्जो नमिओ, तिहिं तेहि अलंकिआ पुहवी ॥ २ ॥

जिन सत्पुरुषोंका चित्त आपत्ति आने पर दीन नहीं होता, संपदा (लक्ष्मी) आने पर अहंकारको प्राप्त नहीं होता, दूसरोंका दुःख देखकर दुःखी होवे, और स्वयं संकटमें होने पर भी हर्षित होवें, उनको नमस्कार है । सामर्थ्य होते हुए दूसरोंके उपद्रव सहन करे, धनवान होकर गर्व न करे तथा विद्वान होकर भी विनय करे, ये तीनों पुरुष पृथ्वीके श्रेष्ठ अलंकार हैं । विवेकीपुरुषने किसीके साथ स्वल्पमात्र भी क्लेश न करना, जिसमें भी बड़े मनुष्योंके साथ तो कभी भी न करना. कहा है कि--जिसे खांसीका विकार होवे उसने चोरी नहीं करना, जिसे अधिक नींद आती हो उसने व्यभिचार न

करना, जिसे कोई रोग हो उसने मधुरादि रस पर आसक्ति न करना, अर्थात् अपनी जीभ वशमें रखना, और जिसके पास धन होवे उसने किसीके साथ क्लेश न करना चाहिये. भंडारी, राजा, गुरु और तपस्वी तथा पक्षपाती, बलिष्ठ क्रूर और नीच-मनुष्योंके साथ वाद न करना चाहिये. यदि किसी बड़े मनुष्य-से द्रव्यआदिका व्यवहार हुआ हो तो विनय ही से अपना कार्य साधना; बलात्कार क्लेश आदि न करना. पंचोपाख्यानमें भी कहा है कि-उत्तमपुरुषको विनयसे, शूरपुरुषको फितूरसे, नीचपुरुषको अल्पद्रव्यादिकके दानसे और अपनी बराबरी-का होवे उसे अपना पराक्रम दिखाकर वशमें करना चाहिये ।

धनका अर्थी व धनवान इन दोनों पुरुषोंने विशेषकर क्षमा रखना चाहिये. कारण कि-क्षमासे लक्ष्मीकी वृद्धि तथा रक्षा होती है. कहा है कि-ब्राह्मणका बल होम-मन्त्र राजाका बल नीतिशास्त्र, अनाथ प्रजाओंका बल राजा और वणिक-पुत्रका बल क्षमा है.

अर्थस्य मूलं प्रियवाक् क्षमा च, कामस्य वित्तं च वपुर्वयश्च ।

धर्मस्य दानं च दया दमश्च, मोक्षस्य सर्वार्थनिवृत्तिरेव ॥

प्रियवचन और क्षमा ये दोनों धनके कारण हैं. धन, शरीर और यौवनावस्था ये तीनों कामके कारण हैं. दान दया और इन्द्रियनिग्रह ये तीन धर्मके कारण हैं और सर्वसंग परित्याग करना यह मोक्षका कारण है । वचन क्लेश

तो सर्वथा त्याज्य ही है । श्रीदारिद्र्यसंवादमें कहा है कि- (लक्ष्मी कहती है) हे इन्द्र ! जहां महान् पुरुषोंकी पूजा होती है, न्यायसे धनोपार्जन होता है और लेशमात्र भी धन कलह नहीं, वहां मैं रहती हूं. (दारिद्र्य कहता है.) नित्य जुआ खेलनेवाले, स्वजनके साथ द्वेष करनेवाले. धातुर्वाद (किमिया) करनेवाले, सब समय आलस्यमें बितानेवाले और आयव्ययकी ओर दृष्टि न रखनेवाले लोगोंके पास मैं नित्य रहता हूं. विवेकी-पुरुषने अपने लेनेकी उघाई भी कोमलतासे तथा निन्दा न हो उसी प्रकार करनी चाहिये. ऐसा न करनेसे देनदारकी दाक्षिण्यता, लज्जाआदिका लोप होता है और उससे अपने धन, धर्म व प्रतिष्ठाकी हानि होना सम्भव है. इसी लिये स्वयं चाहे लंघन करे, परन्तु दूसरेको लंघन न कराना. स्वयं भोजन करके दूसरेको लंघन कराना अयोग्य ही है. भोजनआदिका अंतराय करना यह टंढणकुमारादिककी भांति बहुत दुःसह है.

सर्वपुरुषोंने तथा विशेषकर वाणिज्जनोंने सर्वथा संप्रसलाह ही से अपना सर्वकार्य साधना चाहिये. कहा है कि- यद्यपि साम, दाम, भेद व दंड ये कार्य साधनके चार उपाय प्रसिद्ध हैं, तथापि सामहीसे सर्वत्र कार्यसिद्धि होती है, शेष उपाय नाममात्रके हैं. कोई व्यक्ति तीक्ष्ण तथा बड़ा क्रूर हो, तो भी वह सामसे वश होजाता है । देखो ! जिन्हामें मधुरता होनेसे कठोर दांत भी दासकी भांति उसकी सेवा करते हैं.

लेनदेनके सम्बन्धमें जो भ्रान्तिसे अथवा विस्मरणआदि होनेसे कोई बाधा उपास्थित हो तो परस्पर व्यर्थ झगडा न करना. परन्तु चतुर लोक प्रतिष्ठित, हितकारी व न्याय कर सकें ऐसे चार पांच पुरुष निष्पक्षपातसे जो कहे, उसे मान्य करना. अन्यथा विवाद नहीं मिट सकता. कहा है कि -

परैरेव निवर्त्येत, विवादः सोदरेष्वपि ।

विरलान् कङ्कतः कुर्यात्, अन्येऽन्यं गूढमूर्द्धजान् ॥ १ ॥

सहोदर भाइयोंमें विवाद होवे तो भी उसे अन्यपुरुष ही मिटा सकते हैं. कारण कि-उलझे हुए बाल कंधी ही से अलग हो सकते हैं. न्याय करनेवाले पुरुषोंने भी पक्षपातका त्यागकर मध्यस्थ वृत्ति रखकर ही न्याय करना चाहिये. और वह भी स्वजन अथवा स्वधर्मीआदिका कार्य हो तभी उत्तमतासे सब बातोंका विचार करके करना, हर कहीं न्याय करने न बैठ जाना. कारण कि, लोभ न रखते उत्तमतासे न्याय करनेमें आने पर भी उससे जैसे विवादका भंग होता है और न्याय करनेवालेकी प्रशंसा होती है, वैसे ही उससे एक भारी दोष भी उत्पन्न होता है. वह यह कि, विवाद तोड़ते न्याय करनेवालेके ध्यानमें उस समय खरी बात न आनेसे किसीका देना न होवे तो वह माथे पड़ता है, और किसीका खरा देना होवे तो वह रह जाता है. प्रस्तुत विषयके ऊपर एक बात सुनते हैं कि:—

एक क्राद्विवन्त श्रेष्ठी लोकमें बहुत प्रख्यात था. बडप्पन-से तथा बहुमानकी अभिलाषासे जहां तहां न्याय करने जाया करता था. उसको बाल-विधवा परन्तु बहुत समझदार एक लडकी थी, वह सदैव श्रेष्ठीको ऐसा करनेसे मना किया करती थी, परन्तु वह एक न मानता. एकसमय श्रेष्ठीको समझानेके निमित्त उस लडकीने झूठा झगडा प्रारम्भ किया, कि “पहिले-की धरोहर रखी हुई मेरी दो हजार स्वर्णमुद्राएं दो, तभी मैं भोजन करूंगी ” ऐसा कहकर वह श्रेष्ठीपुत्री लंघन करने लगी. किसीकी एक भी न सुनी. “ पिताजी बृद्ध होगये तो भी मेरे धनका लोभ करते हैं ” इत्यादि ऐसे वैसे वचन बोलने लगी. अन्तमें श्रेष्ठीने न्याय करनेवाले पंचोंको बुलवाया. उन्होंने आकर विचार किया कि, “ यह श्रेष्ठीकी पुत्री है व बाल-विधवा है अतः इस पर दया रखनी चाहिये. ” यह सोच उन्होंने दो हजार सुवर्ण-मुद्राएं उसे दिलाई. जिससे धनहानि व अपवादके कारण श्रेष्ठी बहुत खिन्न हुआ. थोड़ी देरके अनन्तर पुत्रीने अपना सब अभिप्रायः भली प्रकार समझाकर उक्त स्वर्णमुद्राएं वापस दे दीं. जिससे श्रेष्ठीको हर्ष हुआ व उसने न्याय करनेका परिणाम ध्यानमें आजानेसे जहां तहां न्याय करनेको जाना छोड दिया इत्यादि.

इसालिये न्याय करनेवाले पंचोंने जहां तहां जैसा वैसा न्याय न करना चाहिये. साधर्मीका, संघका, भारी उपकारका

अथवा ऐसा ही योग्य कारण हो तो न्याय करना. इसी प्रकार किसी जीवके साथ मत्सरता न करना. लक्ष्मीकी प्राप्ति कर्माधीन है, इसलिये व्यर्थ मत्सर करनेमें क्या लाभ है ? उससे दोनों भवमें दुःख मात्र होता है. हमने कहा है कि जैसा दूसरेके लिये सोचे, वैसा स्वयं पाता है, ऐसा जानते हुए कौन व्यक्ति दूसरेकी लक्ष्मीकी वृद्धि देखकर मत्सर करता है ? वैसे ही धान्यकी बिक्रीमें लाभके हेतु दुर्भिक्ष, औषधिमें लाभ होनेके हेतु रोगवृद्धिकी तथा वस्त्रमें लाभ होनेके निमित्त अग्नि-आदिसे वृक्षके क्षयकी इच्छा न करना. कारण कि, जिससे मनुष्य संकटमें आ पड़े ऐसी इच्छा करनेसे कर्मबंधन होता है. दुर्दैवके योगसे कदाचित् दुर्भिक्षादि आवे तो भी विवेकी-पुरुषने कदापि अनुमोदना न करना. कारण कि उससे वृथा अपना मन मलीन होता है. यथा:—

दो मित्र थे. उनमें एक घीकी व दूसरा चमड़ेकी खरीदी-को जा रहे थे. मार्गमें एक वृद्धास्त्रीके यहां भोजन करनेको ठहरे. वृद्धस्त्रीने उनका भाव समझ घृतके खरीददारको घरके अन्दर और दूसरेको बाहिर बिठाकर भोजन कराया. दोनों जने खरीद करके पुनः उसी वृद्धा स्त्रीके यहां आये. तब उस स्त्रीने चमड़ेके खरीददारको अन्दर और दूसरेको बाहर बैठाकर जिमाया. पश्चात् उन दोनोंके पूछने पर उक्त वृद्धाने कहा कि, जिसका मन शुद्ध था उसे अन्दर बैठाया, और जिसका मन

मलीन था उसे बाहर बैठाया. इत्यादि । कहा है कि-

उचिअं मुत्तूण कलं, दव्वादिकमागयं च उक्करिसं ॥

निवडिअमवि जाणंतो, परस्स संतं न गिण्हिज्जा ॥ १ ॥

प्रति सैंकडे चार पांच टका तक उचित व्याज अथवा “ व्याजमें दूना मूल द्रव्य होजाय ” ऐसा वचन है, जिससे उधार दिये हुए द्रव्यकी दुगुनी वृद्धि और उधार दिये हुए धान्यकी तिगुनी वृद्धि होवे उतना लाभ लेना चाहिये. तथा जो गणिमधरिमादिवस्तुका सर्वत्र किसी कारणसे क्षय होगया हो, और अपने पास होवे तो उसका ऊंचे भावसे जितना उत्कृष्ट लाभ होवे, उतना लेना; परन्तु इसके सिवाय अन्य लाभ नहीं लिया जा सकता. तात्पर्य यह है कि, यदि किसी समय भाविभावसे सुपारीआदि वस्तुका नाश होनेसे अपने पासकी संगृहीत वस्तु बेचते दूना अथवा उससे भी अधिक लाभ होवे, वह मनमें शुद्ध परिणाम रखकर लेना, परन्तु “ सुपारीआदि वस्तुका सर्वत्र नाश हुआ, यह ठीक हुआ. ” ऐसा चिन्तवन न करना. वैसेही किसी भी जगह पड़ी हुई दूसरेकी वस्तु न उठाना. व्याज, बट्टा अथवा क्रय-विक्रयआदि व्यापारमें देश, कालआदिकी अपेक्षासे उचित तथा शिष्टजनोंको निंदापात्र न होवे उस रीतिसे जितना लाभ मिले उतनाही लेना; ऐसा प्रथमपंचाशककी वृत्तिमें कहा है.

वैसेही खोटी तराजू, बाट व खोटे माप रखकर न्यूनाधिक

व्यापार करके अथवा अन्य वस्तु मिश्रण करके, मर्यादाकी अपेक्षा अधिक अयोग्य मूल्य बढ़ाकर, अयोग्य रीतिसे व्याज बढ़ाकर, घूस (रिश्वत) ले या देकर, खोटा अथवा घिसा हुआ पैसा देकर, किसीके क्रयविक्रयका भंग करके, दूसरेके ग्राहक-को बहकाकर खेंच लेकर, नमूना कुछ बता माल दूसरा देकर, जहां बराबर दीखता न हो ऐसे स्थानमें बस्त्रादिकका व्यापार करके, लेखमें फेरफार करके तथा ऐसेही अन्य किसी प्रकारसे किसीको भी ठगना नहीं. कहा है कि -

विधाय मायां विविधैरुपायैः, परस्य ये वञ्चनमाचरन्ति ।

ते वञ्चयन्ति त्रिदिवापवर्गसुखान्महामोहसखः स्वमेव ॥ १ ॥”

जो लोग भांति २ का कपट करके दूसरोंको ठगते हैं, वे मानो मोहजालमें पड़कर अपने आपहीको ठगते हैं. कारण कि, वे लोग कूटकपट न करें तो समय पर स्वर्ग तथा मोक्षका सुख पावें. इस परसे यह कुतर्क न करना कि, कूटकपट किये बिना दरिद्री तथा गरीब लोग व्यापारके ऊपर अपनी आजीविका किस भांति करें ? आजीविका तो कर्मके आधीन है, तो भी व्यवहार शुद्ध रखनेसे ग्राहक अधिक आते हैं व लाभ भी विशेष होता है. इस पर दृष्टान्त है किः--

एक नगरमें हेलक नामक श्रेष्ठी था. उसके चार पुत्र थे तथा उसका अन्य परिवार भी बहुत विस्तृत था. हेलकश्रेष्ठीने तीनसेर, पांचसेर आदिके खोटे माप तौल रखे थे. तथा

त्रिपुष्कर, पंचपुष्कर आदि संज्ञा कह पुत्रको गाली देनेके बहानेसे खोटे तौलमापद्वारा लोगोंको ठगा करता था. उसके चौथे पुत्रकी स्त्री बहुत समझदार थी. उसने यह बात ज्ञात होने पर एक बार श्रेष्ठीको बहुत ठपका दिया. तब श्रेष्ठीने कहा कि, “ क्या करें ? ऐसा न करें तो निर्वाह कैसे होवे ? कहा है कि-भूखा मनुष्य कौनसा पाप नहीं करता ? ” यह सुन पुत्रवधूने कहा कि, “ हे तात ! ऐसा न कहिये. कारण कि, व्यवहार शुद्ध रखने ही में सर्व लाभ रहता है. कहा है कि-

धम्मत्थिआण दब्बत्थिआण नाएण बट्टमाण्णं ।

धम्मा दब्बं सत्वं संपज्झइ नन्नहा कहवि ॥ १ ॥”

लक्ष्मीके अर्थी सुपुरुष धर्म तथा नीतिके अनुसार चलें तो उनके समस्त कार्य धर्म ही से सिद्ध होते हैं. धर्मके बिना किसी प्रकार भी कार्यसिद्ध नहीं होती. इसलिये हे तात ! परीक्षार्थ छः मास तक शुद्ध व्यवहार करिये. उससे धनकी वृद्धि होगी. और इतने समयमें प्रतीति आवे तो आगे भी वैसा ही करिये.”

पुत्रवधूके वचनानुसार श्रेष्ठीने वैसाही करना प्रारम्भ किया. अनुक्रमसे ग्राहक बहुत आने लगे, आजीविका सुखसे हुई, और चार तोला सोना भी पासमें होगया. पश्चात् “न्यायो-पार्जित द्रव्य खो जाने पर भी पुनः मिल जाता है.” इस बात-की परीक्षा करनेके हेतु पुत्रवधूके वचनसे श्रेष्ठीने उक्त चार तोला सुवर्ण पर लोहा मढ़ाकर उसका अपने नामका एक बाट

बनवाया, व छः मास तक उसे काममें लेकर एक द्रहमें डाल दिया. भक्ष्य वस्तु समझकर एक मच्छी उसे निगल गई. धीवरने वह मछली पकड़ी तो उसके पेटमेंसे उक्त बाट निकला. नामपरसे पहिचानकर धीवरने वह बाट श्रेष्ठीको दिया. जिससे श्रेष्ठीको तथा उसके समस्त परिवारको शुद्ध-व्यवहार पर विश्वास उत्पन्न होगया. इस तरह श्रेष्ठीको बोध हुआ तब वह सम्यक् प्रकारसे शुद्धव्यवहार करके बड़ा धनवान होगया. राजद्वारमें उसका मान होने लगा. वह श्रावकोंमें अग्रसर व सब लोगोंमें इतना प्रख्यात हुआ कि, उसका नाम लेनेसे भी विघ्न, उपद्रव दूर होने लगे. वर्तमानसमयमें भी मछ्हाह लोग नौका चलाते समय “ हेला, हेला ” ऐसा कहते सुनते हैं.....इत्यादि

विवेकीपुरुषने सर्व पापकर्म त्यागना चाहिये. उसमें भी अपने स्वामी, मित्र, अपने ऊपर विश्वास रखनेवाला, देव, गुरु, वृद्ध तथा बालक इनके साथ वैर करना अथवा उनकी धरोहर दबा जाना ये उनकी हत्या करनेके समान है, अतएव ये तथा अन्य महापातकोंका अवश्य त्याग करना चाहिये. कहा है कि--

कूटसाक्षी दीर्घरोषी, विश्वस्तन्नः कृतघ्नकः ।

चत्वारः कर्मचाण्डालाः, पञ्चमो जातिसम्भवः ॥ १ ॥

झूठी साक्षी भरनेवाला, बहुत समय तक रोष रखनेवाला, विश्वासघाती और कृतघ्न ये चारों कर्मचाण्डाल (कर्मसे हुए

चांडाल) कहलाते हैं. और पांचवा जातिचांडाल है । विश्वास-
घ तके ऊपर यहां विसेमिराका दृष्टान्त कहते हैं. यथा:—

विशालानगरीमें नंदनामक राजा, भानुमतीनामक रानी,
विजयपालनामक राजपुत्र और बहुश्रुतनामक मंत्री था. राजा
नंद भानुमतीरानीमें बहुत आसक्त होनेसे सभामें भी उसको
पासही रखता था.

वैद्यो गुरुश्च मन्त्री च, यस्य राज्ञः प्रियंवदाः ।

शरीरधर्मकोशेभ्यः, क्षिप्रं स परिहीयते ॥ १ ॥”

जिस राजाके वैद्य, गुरु, और मंत्री प्रसन्नता रखनेके
निमित्त, केवल मधुरवचन बोलने ही वाले हों, राजाके कोपके
भयसे सत्यवात भी नहीं कहते, क्रमशः उस राजाके शरीर,
धर्म और भंडारका नाश होता है. ऐसा नीतिशास्त्रका वचन
होनेसे राजाको सत्यवात कहना अपना कर्तव्य है. यह सोचकर
मंत्रीने राजासे कहा कि, “ हे महाराज! सभामें रानीसाहिबको
पास रखना योग्य नहीं है. कहा है कि—

अत्यासन्ना विनाशाय, दूग्स्था न फलप्रदाः ।

सेव्या मध्यमभावेन, राजवह्निगुरुभ्यः ॥ १ ॥”

राजा, अग्नि, गुरु, और स्त्री ये चार वस्तुएं बहुत समीप
रहें तो विनाश करती हैं, और बहुत दूर हों तो अपना अपना
फल बराबर नहीं दे सकतीं. इसलिये रानीका एक उत्तम
छायाचित्र (फोटो) बनवाकर उसे पास रखिये. ” राजाने

मंत्रीकी बात स्वीकार कर रानीका छायाचित्र बनवाकर अपने गुरु शारदानन्दनको बताया। उन्होंने अपनी विद्वत्ता बतानेके लिये कहा कि, “ रानीकी बायीं जाँघ पर एक तिल है, वह इसमें नहीं है ” गुरुके इन वचनोंसे राजाके मनमें रानीके शीलके सम्बन्धमें संशय आया, तथा उसने मन्त्रीसे कहा कि, “ शारदानन्दनको मार डालो. ”

सहसा विदधीत न क्रियमविवेकः परमापदां पदम् ।

वृणते हि विमृश्यकारिणं, गुणलुब्धाः स्वयमेव स्मरदः ॥ १ ॥”

सगुणमपगुणं कुर्वता कार्यजातं, परिणतिरवधार्या यत्नतः पण्डितेन ।
अतिरभसकृतानां कर्मणामाविपत्तेर्भवति हृदयदाही शल्यतुल्यो विपाकः

मन्त्रीने विचार किया कि, सहसा कोई कार्य नहीं करना। विचार न करनेसे महान् संकट उत्पन्न होते हैं। सद्गुणोंसे लालायित सम्पदाएं विचार करके कार्य करनेवाले पुरुषको स्वयं आकर बरती हैं, पंडितपुरुषने शुभ अथवा अशुभ कार्य करते समय प्रथम उसके परिणामका निर्णय कर लेना चाहिये। कारण कि अतिशय उतावले किये हुए कृत्योंके परिणाम शल्यकी भांति मृत्युसमय तक हृदयमें वेदना उत्पन्न करते हैं । ऐसे नीतिशास्त्रके वचन स्मरण आनेसे मन्त्रीने शारदानन्दनको अपने घरमें छिपा रखा। एक समय राजपुत्र मृगया करते एक सूअरके पीछे बहुत दूर निकल गया। सन्ध्या होजानेसे एक सरोवरका जल पीकर बाघके भयसे वह एक वृक्ष पर

चढ़ा. वहाँ एक व्यंतराधिष्ठित वानर था, प्रथम राजपुत्र उसकी गोदमें सो रहा और पश्चात् वानर राजपुत्रकी गोदमें सोता था कि इतनेमें क्षुधा पीडित बाघके वचनसे राजपुत्रने उसे नीचे डाल दिया. वह बाघके मुखमें गिरा था, परन्तु ज्योंही बाघ हंसा, वह मुखमेंसे बाहर निकला और रुदन करने लगा. बाघके रुदन करनेका कारण पूछने पर उसने कहा कि, “ हे बाघ ! अपनी जाति छोड़कर जो लोग परजातिमें आसक्त होते हैं, उनको उद्देश करके मैं इसलिये रुदन करता हूँ कि, उन मूर्खोंकी क्या गति होगी ? ” तदनन्तर इन वचनोंसे व अपने कृत्यसे लाजित राजकुमारको उसने पागल कर दिया. तब राजपुत्र “ विसेमिरा, विसेमिरा ” यह कहता हुआ जंगलमें भटकने लगा. उसका घोड़ा अकेलाही नगरमें जा पहुंचा. उस परसे शोध करवाके राजा अपने पुत्रको घर लाया. बहुतसे उपाय किये परन्तु राजपुत्रको लेशमात्र भी गुण न हुआ. तब राजाको शारदानंदनका स्मरण हुआ । अंतमें जब राजाने अपने पुत्रको आरोग्य करनेवालेको आधा राज्य देनेका ठिंठोरा पिटवानेका निश्चय किया, तब मंत्रीने कहा कि, “ महाराज ! मेरी पुत्री थोड़ा बहुत जानती है । ” यह सुन राजा पुत्रसहित मंत्रीके घर आया । पड़देके अंदर बैठे हुए शारदानंदनने कहा कि, “ विश्वास रखनेवालेको ठगना इसमें कौनसी चतुराई है ? तथा गोदमें सोये हुएको मारना इसमें भी क्या पराक्रम है ?

शारदानन्दनका यह वचन सुन राजपुत्रने 'विसेमिरा' इन चार अक्षरोंमेंसे प्रथम अक्षर 'वि' छोड़ दिया. 'सेतु (रामकी बंधाई हुई समुद्रकी पाल) देखनेसे तथा गंगा और समुद्रके संगममें स्नान करनेसे ब्रह्महत्या करनेवाला अपने पातकसे छूटता है, परन्तु मित्रको मारनेकी इच्छा करनेवाला मनुष्य पालको देखनेसे अथवा संगमस्नानसे शुद्ध नहीं होता.' यह दुसरा वचन सुन राजपुत्रने दुसरा 'से' अक्षर छोड़ दिया मित्रको मारनेकी इच्छा करनेवाला, कृतघ्न, चोर और विश्वासघाती ये चारों व्यक्ति जब तक सूर्य चन्द्र हैं, तब तक नरकगतिमें रहते हैं.' यह तीसरा वचन सुनकर राजपुत्रने तीसरा 'मि' अक्षर छोड़ दिया. 'राजन् ! तू राजपुत्रका कल्याण चाहता हो तो सुपात्रको दान दे. कारण कि, गृहस्थमनुष्य दान देनेसे शुद्ध होता है. यह चौथा वचन सुनकर राजपुत्रने चौथा 'रा' अक्षर भी छोड़ दिया पश्चात् स्वस्थ होकर वानर वाघ आदिका वृत्तान्त कहा. राजा परदेके अन्दर बैठे हुए शारदानन्दनको मंत्रीकी पुत्री समझता था, इससे उसने पूछा कि, 'हे वाला ! तू ग्राममें रहकर भी जंगलमें हुई वाघ, वानर और मनुष्यकी वार्त्ता किस प्रकार जानती है ?' तब शारदानन्दनने कहा कि, 'हे राजन् ! देवगुरुके प्रसादसे मेरी जीभमें सरस्वती वास करती है, उससे जैसे मैंने भानुमतीरानीका तिल जाना उसी-प्रकार ही यह बात भी मैं जानता हूं.'

तदनन्तर शारदानन्दन गुरु और राजाका भिलाप हुआ, व दोनों जनोंको अपार हर्ष हुआ ।...इत्यादि

इस लोकमें पाप दो प्रकारका है. एक गुप्त और दूसरा प्रकट. गुप्तपाप भी दो प्रकारका है. एक लघुपाप और दूसरा महापाप. खोटे तराजू, बाट इत्यादि रखना यह गुप्त लघुपाप और विश्वासघात आदि करना यह गुप्त महापाप कहलाता है. प्रकटपापके भी दो भेद हैं. एक कुलाचारसे करना और दूसरा लोकलज्जा छोड़कर करना. गृहस्थलोग कुलाचारसे आरंभ समारंभ करते हैं तथा म्लेच्छलोग कुलाचार ही से हिंसा आदि करते हैं वह प्रकट लघुपाप है; और साधुका वेष पहिर कर निर्लज्जतासे हिंसा आदि करे, वह प्रकट महापाप है. लज्जा छोड़कर किये हुए प्रकट महापापसे अनन्तसंसारीपन आदि होता है, कारण कि, प्रकट महापापसे शासनका उड्डाह आदि होता है. कुलाचारसे प्रकट लघुपाप करे तो थोड़ा कर्मबंध होता है, और जो गुप्त लघुपाप करे तो तीव्र कर्मबंध होता है. कारण कि, वैसा पाप करनेवाला मनुष्य असत्य व्यवहार करता है. मन, वचन, कायासे असत्य व्यवहार करना, यह बड़ा ही भारी पाप कहलाता है; और असत्य व्यवहार करनेवाले मनुष्य गुप्तलघुपाप करते हैं ।

असत्यका त्याग करनेवाला मनुष्य किसी समय भी गुप्त-पाप करनेको प्रवृत्त नहीं होता. जिसकी प्रवृत्ति असत्यकी ओर

हुई, वह मनुष्य निर्लज्ज हो जाता है, और निर्लज्ज हुआ मनुष्य स्वामी, मित्र और अपने ऊपर विश्वास रखने वालेका घात आदि गुप्त महापाप करता है. यही बात योगशास्त्रमें कही है. यथा:-

एकत्रासत्यजं पापं, पापं निःशेषमन्यतः ।

द्वयोस्तुलविधृतयोराद्यमेवातिरिच्यते ॥ १ ॥”

तराजूके एक पलडेमें असत्य रखें, और दूसरी बाजूमें सर्व पातक रखें तो दोनोंमें पहिला ही तौलमें अधिक उतरेगा. किसीको ठगना इसका असत्यमय गुप्तलघु-पापके अन्दर समावेश होता है. इसलिये कदापि किसीको न ठगना चाहिये. न्यायमार्गसे चलना यही द्रव्यकी प्राप्ति कराने वाला एक गुप्त महामंत्र है. वर्तमानसमयमें भी देखते हैं कि न्यायमार्गानुयायी कितने ही लोग थोडा २ धनोपार्जन करते हैं, तोभी वे धर्मकृत्यमें नित्य खर्च करते हैं. ऐसा होते हुए भी जैसे कुएँका जल निकले थोडा, परन्तु कभी भी क्षयको प्राप्त नहीं होता, इसी प्रकार उनका धन भी नष्ट नहीं होता. अन्य पापकर्म करनेवाले लोग बहुत द्रव्योपार्जन करते हैं, तथा विशेष खर्च नहीं करते, तो भी मरुदेशके सरोवरकी भाँति वे लोग अल्पसमयमें निर्धन हो जाते हैं. कहा है कि—

आत्मनाशाय नोन्नत्यै, छिद्रेण परिपूर्णता ।

भूयो भूयो घटीयन्त्रं, निमज्जन् किं न पश्यसि ? ॥ १ ॥

पर-छिद्र निकाल कर स्वार्थसाधनेसे अपनी उन्नति नहीं होती. परन्तु उलटा अपना नाश ही होता है. देखो, रहंटेके घड़े छिद्रसे अपनेमें जल भर लेते हैं, इससे उनमें जल भरा हुआ रहता नहीं, बल्कि बारम्बार खाली होकर उनको जलमें डूबना पड़ता है.

शंकाः--न्यायवान और धर्मी ऐसे भी कितने ही लोग निर्धनताआदि दुःखसे अतिपीडित दृष्टिमें आते हैं. वैसे ही अन्यायसे व अधर्मसे चलने वाले लोगभी ऐश्वर्य आदि होने-से सुखी दीख पड़ते हैं. तो न्याय व धर्मसे सुख होता है, इसे प्रमाणभूत कैसे माना जावे ?

समाधानः--न्यायी लोगोंको दुःख और अन्यायी लोगोंको सुख नजर आता है, वह पूर्वभवके कर्मका फल है, इस-भवमें किये हुए कर्मका फल नहीं. पूर्वकर्मके चार प्रकार हैं. श्रीधर्मघोषस्वरिजीने कहा है कि- १ पुण्यानुबंधी पुण्य, २ पापानुबंधी पुण्य, ३ पुण्यानुबंधि पाप और ४ पापानुबंधि पाप ये पूर्वकर्मके चार प्रकार हैं. जिन-धर्मकी विराधना न करने वाले लोग भरतचक्रवर्तीकी भांति संसारमें कष्ट रहित निरुपम सुख पाते हैं, वह पुण्यानुबंधि पुण्य है. अज्ञान कष्ट करने वाले जीव कोणिकराजाकी भांति अतिशय क्रद्धि तथा रोग रहित काया आदि धर्मसामग्री होते हुएभी धर्मकृत्य न कर, पाप-कर्ममें रत होता है, वह पापानुबंधि पुण्य है. जो जीव द्रमक-

मुनिकी भांति पापके उदयसे द्रविद्रो और दुःखी होते भी लेशमात्र दयाआदि होनेसे जिनधर्म पाते हैं, वह पुण्यानुबंधि पाप है. जो जीव कालशौकरिककी भांति पापी, क्रूरकर्म करने वाले, अधर्मी, निर्दय, किये हुए पापका पश्चात्ताप न करने-वाले, और ज्यों २ दुःखी होते जाय, त्यों २ अधिकाधिक पाप-कर्म करते जाय, ऐसे हैं, वह पापानुबंधिपापका फल है । पुण्यानुबंधिपुण्यसे बाह्यक्राद्धि और अंतरंगक्राद्धि भी प्राप्त होती है. इन दोनोंमेंसे एकभी क्राद्धि जिस मनुष्यने न पाई उसके मनुष्यभवको धिकार है ! जो जीव प्रथम शुभपरिणामसे धर्मकृत्यका आरंभ करें परन्तु पीछेसे शुभपरिणाम उतर जानेसे परिपूर्ण धर्म नहीं करते, वे परभवमें आपदा सहित संपदा पाते हैं । इस तरह किसी जीवको पापानुबंधी पुण्यके उदयसे इस लोकमें दुःख कष्ट ज्ञात नहीं होता, तथापि उसे आगामी भवमें निश्चयपूर्वक पापकर्मका फल मिलता है, इसमें संशय नहीं । कहा है कि— द्रव्य संपादन करनेकी बहुत इच्छासे अंधा हुआ मनुष्य पापकर्म करके जो कुछ द्रव्य पाता है, वह द्रव्यआदि मांसमे घुसेड़े हुए लोहेके कांटेकी भांति उस मनुष्यका नाश किये बिना नहीं पचता । अतएव जिससे स्वामी-द्रोह होवे ऐसे दाणचोराआदि अकार्योंका अवश्य त्याग करना चाहिये । कारण कि, उनसे इस लोक तथा परलोकमें अनर्थ उत्पन्न होता है । जिससे किसीको स्वल्पमात्र भी ताप उत्पन्न

होता हो, वह व्यवहार, घर, हाट बनवाना, तथा लेना या उनमें रहना आदि सर्व वर्जना । कारण कि किसीको ताप उत्पन्न करनेसे अपनी सुखादि ऋद्धि बढ़ती नहीं है । कहा है कि—
शत्र्येन मित्रं कपटेन धर्मं, परोपतापेन समृद्धिभावम् ।

सुखेन विद्यां पदपेण नारीं, वाञ्छन्ति ये व्यक्तमपण्डितास्ते ॥ १ ॥

जो मनुष्य मूर्खतासे मित्रको, कपटसे धर्मको, सुखसे विद्याको और क्रूरपनेसे स्त्रीको वश करना तथा दूसरेको ताप उपजाकर आप सुखी होनेकी इच्छा करते हैं, वे मूर्ख हैं ।

विवेकी पुरुषने जैसे लोग अपने ऊपर प्रीति करते हैं, वैसे ही आपने भी बर्ताव करना चाहिये । कहा है कि—

जितेन्द्रियत्वं विनयस्य कारणं, गुणप्रकर्षो विनयाद्वर्ष्यते ।

गुणप्रकर्षेण जनोऽनुरज्यते, जनानुरागप्रभवा हि संपदः ॥ २ ॥”

इंद्रियां जीतनेसे विनयगुण उत्पन्न होता है, विनयसे सद्गुणोंकी प्राप्ति होती है, सद्गुणोंसे लोगोंके मनमें प्रीति उत्पन्न होती है, और लोगोंके अनुरागसे सर्व संपत्ति होती है । विवेकी-पुरुषने अपने धनकी हानि, वृद्धि अथवा किया हुआ संग्रह आदि बात किसीके सन्मुख प्रकट न करना, कहा है कि—
चतुरपुरुषने स्त्री, आहार, पुण्य, धन, गुण, दुराचार, मर्म और मंत्र ये आठ वस्तुएं गुप्त रखना चाहिये । कोई अपरिचित व्यक्ति उपरोक्त आठ वस्तुओंका स्वरूप पूछे तो, असत्य न बोलना, परन्तु ऐसा कहना कि, “ऐसे प्रश्नोंका क्रया प्रयोजन?”

इत्यादि प्रत्युत्तर भाषासमितिसे देना । राजा, गुरु आदि बड़े पुरुष उपरोक्त आठ बातें पूछें तो परमार्थसे यथावत् कह देना । कहा है कि—

सत्यं मित्रैः प्रियं स्त्रीभिरलीकमधुरं द्विषा ।

अनुकूलं च सत्यञ्च, वक्तव्यं स्वामिना सह ॥ १ ॥”

मित्रोंके साथ सत्यवचन बोलना, स्त्रीके साथ मधुरवचन बोलना, शत्रुके साथ असत्य परंतु मधुरवचन बोलना और अपना स्वामीके साथ उनको अनुकूल होवे ऐसा सत्यवचन बोलना । सत्यवचन मनुष्यको बड़ा आधार है । कारण कि, सत्यवचन ही से विश्वास आदि उत्पन्न होता है । इस विषयपर एक दृष्टांत सुनते हैं कि:—

दिल्लीनगरमें एक साधुमहणसिंह नामक वज्रि रहता था. उसकी सत्यवादिताकी कीर्ति सर्वत्र फैल रही थी. बादशाहने एक दिन परीक्षाके हेतुसे उसे पूछा कि, “ तेरे पास कितना धन है? ” उसने उत्तर दिया. “ मैं वहींमें लेखा देख कर कहूंगा ” ऐसा कह उसने सम्यक् रीतिसे सब लेखा देखकर कहा कि, “ मेरे पास अनुमान चौरासी लाख टंक होंगे. ” मैंने थोड़ाही द्रव्य सुना था व इसने तो बहुत कहा. यह विचार कर बादशाह बहुत प्रसन्न हुआ और उसे अपना भंडारी नियुक्त किया.

इसी तरह खंभातनगरमें प्राणान्त संकट आने परभी सत्यवचन न छोड़े ऐसा श्रीजगच्चंद्रसूरिका शिष्य भीम-

नामक सोनी रहता था. एकसमय शस्त्रधारी यवनोंने श्री-मल्लिनाथजीके मंदिरमें भीमको पकड़ कर कैद करलिया, तब भीमके पुत्रोंने उसे छुड़ानेके निमित्त चार हजार खोटे टंक उनलोगोंको भेंट किये. यवनोंने उन टंकोंकी परीक्षा करवाइ तब भीमने यथार्थ बात कह दी. जिससे प्रसन्न हो उन्होंने भीमको छोड़ दिया, और उसके पुत्रोंको उसी समय मार डाले. उनको अधि-दाह देनेके अनंतर यवनोंने भोजन किया वचन देनेसे उनकी मृत्युके दिन अभी भी उनके निमित्त वहां श्रीमल्लिनाथजीकी पूजाआदि होती है।

विवेकीपुरुषने संकट समय पर सहायता मिले इस हेतुसे एक ऐसा मित्र करना कि, जो धर्मसे धनसे, प्रतिष्ठासे तथा ऐसे ही अन्यसद्गुणोंसे अपनी बरोबरीका, बुद्धिशाली तथा निर्लोभी होवे. रघुकाव्य में कहा है कि--राजाके मित्र बिलकुल शक्तिहीन होंवे तो प्रसंग आनेपर कुछभी उपकार न करसकें तथा उससे अधिक शक्तिशाली होंवे तो वे स्पर्धासे बैरआदि करें. इसलिये राजाके मित्र मध्यमशक्ति वाले चाहिये. अन्य एकस्थानमें भी कहा है कि--आगन्तुक आपत्तिको दूर करने-वाला मित्र, मनुष्यको ऐसी अवस्थामें सहायता करता है कि, जिस अवस्थामें मनुष्यका सहोदर भाई, स्वयं पिता तथा अन्य स्वजनभी उसके पास खड़े न रह सकते हैं। हे लक्ष्मण ! अपनेसे विशेषसमर्थके साथ प्रीति करना मुझे नहीं रुचता.

कारण कि, अपने यदि उसके घर जावें तो अपना कुछ भी आदर सत्कार नहीं होता, और वह जो अपने घर आवे तो अपनेको शक्तिसे अधिक धनव्यय करके उसकी मेहमानी करनी पड़ती है। इस प्रकार यह बात युक्तिवाली है अवश्य तथापि किसी प्रकार जो बड़ेके साथ प्रीति होजाय तो उससे दूसरेसे न बन सकें ऐसे अपने कार्य सिद्ध हो सकते हैं, तथा अन्य भी बहुतसे लाभ होते हैं। कहा है कि—

आपणपे प्रभु होइए, के प्रभु कीजे हत्थ ॥

कज करेवा माणुसह, अवरो मग्ग न अच्छ ॥ १ ॥

बड़े मनुष्यने हलके मनुष्यसे भी मित्रता करना, कारण कि प्रसंग आने पर वह भी सहायता कर सकता है? पंचोपाख्यानमें कहा है कि—बलवान व दुर्बल दोनों प्रकारके मित्र करना चाहिये, देखो, वनमें वन्धनमें पड़े हुए हाथीके झुंडको चूहेने छुड़ाया। क्षुद्रजीवसे हो सके ऐसे काम सर्व बड़े मनुष्य एकत्र होजायें तो भी उनसे नहीं हो सकते। सुईका कार्य सुई ही कर सकती है, वह खड्गआदि शस्त्रोंसे नहीं हो सकता। तृणका कार्य तृण ही कर सकता है, हाथीआदि नहीं। कहा भी है कि—तृण, धान्य, नमक, अग्नि, जल, काजल, गोबर, माटी, पत्थर, राख, लोहा, सुई, औषधि चूर्ण और कूची इत्यादि वस्तुएं अपना कार्य आप ही कर सकती हैं, अन्य वस्तुसे नहीं होता। दुर्जनके साथ भी वचनकी सरलता आदि दाक्षिण्यता रखना चाहिये, कहा है कि—

कर्त्तव्यान्येव मित्राणि, सबलान्यबलान्यपि ।

हस्तियूथं वने बद्धं, मूषकेण विमोचितम् ॥ १ ॥

सद्भावेन हरेन्मित्रं, सन्मानेन च बान्धवान् ।

स्त्रीभृत्यान् प्रेमदानाभ्यां, दाक्षिण्येनेतरं जनम् ॥ १ ॥

मित्रको शुद्ध मनसे, चांधवोंको सन्मानसे, स्त्रियोंको प्रेमसे, सेवकोंको दानसे और अन्य लोगोंको दाक्षिण्यतासे वशमें करना चाहिये ।

समय पर अपनी कार्यसिद्धिके निमित्त खलपुरुषोंको भी अग्रसर करना चाहिये. कहा है कि-किसी स्थान पर खल-पुरुषोंको भी अग्रसर करके ज्ञानियोंने अपना कार्य साधना. रसको चखनेवाली जिह्वा, क्लेश करनेमें निपुण दांतोंको अग्रसर करके अपना कार्य साधन करती है. कांटोंका सम्बन्ध किये बिना प्रायः निर्वाह नहीं होता. देखो, क्षेत्र, ग्राम, गृह, बगीचाआदिकी रक्षा कांटोंहीके स्वाधीन रहती है. जहां प्रीति होवे वहां द्रव्यसम्बन्ध बिलकुल ही न रखना चाहिये. कहा है कि-जहां मित्रता करनेकी इच्छा न हो, वहां द्रव्यसम्बन्ध करना और प्रातिष्ठाभंगके भयसे जहां तहां खडे न रहना चाहिये. सोमनीतिमें भी कहा है कि-जहां द्रव्यसम्बन्ध और सहवास दोनों बातें होती हैं, वहां कलह हुए बिना नहीं रहता. अपने मित्रके घर भी कोई साक्षी रखे बिना धरोहर नहीं रखना, तथा अपने मित्रके हाथ द्रव्य भेजना भी नहीं. कारण कि,

अविश्वास धनका और विश्वास अनर्थका कारण है। कहा है कि-विश्वासी तथा अविश्वासी दोनों मनुष्योंके ऊपर विश्वास न रखना चाहिये. कारण कि, विश्वाससे उत्पन्न हुआ भय समूल नाश करता है. ऐसा कौन मित्र है कि, जो गुप्त धरोहर रखी हो तो उसका लोभ न करे ? कहा है कि-श्रेष्ठी अपने घरमें किसीकी धरोहर (अमानत) आकर पड़े, तब वह अपने देवता-की स्तुति करके कहता है कि, “ जो इस थापण (धरोहर)-का स्वामी शीघ्र मर जावे तो तुझे अमुक वस्तु चढाऊंगा. ” वास्तवमें अर्थ अनर्थका मूल है, परन्तु जैसे अग्नि बिना, वैसे ही धन बिना गृहस्थका निर्वाह नहीं हो सकता. अतएव विवेकीपुरुषने धनका अग्निकी भांति रक्षण करना चाहिये. यथा:-

धनेश्वर नामक एक श्रेष्ठी था, उसने अपने घरमेंकी सर्व सार वस्तुएं एकत्र कर उनका नकद द्रव्य करके एक २ करोड स्वर्णमुद्राके मूल्यके आठ रत्न मोल लिये और गुप्तचुप अपने एक मित्रके यहां धरोहर रख दिये और आप धन सम्पादन करनेके लिये विदेश चला गया. बहुत समय वहां रहनेके अनन्तर अकस्मात् बीमार होजानेसे उसकी मृत्यु होगई. कहा है कि-पुरुष मचकुन्दफूल सदृश शुद्धमनमें कुछ सोचता है, और दैवयोगसे कुछ और ही होता है. धनेश्वरश्रेष्ठीका अन्तसमय समीप आया, तब स्वजन सम्बन्धियोंने उसको

द्रव्यआदिके विषयमें पूछा. श्रेष्ठीने कहा--“ परदेशमें उपार्जन किया हुआ बहुतसा द्रव्य है, तथापि वह इधर उधर फैला हुआ होनेसे मेरे पुत्रोंसे लिया नहीं जा सकेगा. किन्तु मेरे एक मित्रके पास मैंने आठ रत्न धरोहर रखे हैं, वे मेरे स्त्रीपुत्रादिकोंको दिला देना. ” यह कह वह मर गया. स्वजनोंने आकर उसके पुत्रादिकोंको यह बात कही, तब उन्होंने अपने पिताके मित्रको विनयसे, प्रेमसे और अत्यादरसे घर बुलाया और अभयदानादि अनेक प्रकारकी युक्तिसे रत्नोंकी मांगणी की; परन्तु उस लोभी मित्रने एक भी बात न मानी तथा रत्न भी नहीं दिये. अन्तमें यह विवाद न्यायसभामें गया, किन्तु साक्षी, लेख आदि प्रमाण न होनेसे कुछ भी फल न हुआ. यह साक्षी रखकर द्रव्य देनेके विषयमें धनेश्वरश्रेष्ठीका दृष्टान्त है। इसलिये किसीको भी साक्षी रखकर द्रव्य देना चाहिये. साक्षी रखा हो तो चोरको दिया हुआ द्रव्य भी पीछा आता है. जैसे:--

एक वणिक धनवान तथा बहुत धूर्त था. मार्गमें जाते उसे चोर मिले. चोरोंने जुहार करके उससे द्रव्य मांगा. वणिकने कहा--“ साक्षी रखकर यह सर्व द्रव्य तुम ले लो और समय पाकर पीछा देना, परन्तु मुझे मारो मत. ” चोरोंने इसे मूर्ख समझ एक काबरचित्र जंगली बिलाडको साक्षी रख सर्व द्रव्य लेकर वणिकको छोड़ दिया. वह वणिक उस स्थानको बराबर

ध्यानमें रखकर अपने ग्रामको गया. कुछ दिनोंके बाद एक दिन वेही चोर उसी ग्रामके कुछ चोरोंको साथ लेकर ग्राममें आये. उस वणिकने चोरोंको पहिचान कर अपना द्रव्य मांगा; कलह हुआ, अन्तमें यह बात राजद्वार तक पहुंची. न्यायाधीशों-ने वणिकसे पूछा--“ द्रव्य दिया उस समय कोई साक्षी था ? ” वणिकने पीजरेमें रखे हुए एक काले बिलाडको बताकर कहा--“ यह मेरा साक्षी है. ” चोरोंने कहा--“ बता, तेरा कौनसा साक्षी है ? ” वणिकके बताने पर चोरोंने कहा--“ वह यह नहीं है. वह तो काबरचित्र वर्णका था, और यह तो काला है. ” इस प्रकार अपने मुख ही से चोरोंने स्वीकार कर लिया. तब न्यायाधीशोंने उनके पाससे वणिकको द्रव्य दिलाया इत्यादि.

इसालिये धरोहर रखना अथवा लेना हो तो गुप्त नहीं रखना, स्वजनोंको साक्षी रखकर ही रखना या लेना चाहिये. मालिककी सम्मतिके बिना उसे इधर उधर भी न करना चाहिये । कदाचित् धरोहर रखनेवाला मनुष्य मर जावे तो उक्त धरोहर उसके पुत्रोंको दे देना चाहिये. यदि उसके पुत्र-आदि न हों तो सर्वसंघके समक्ष उसे धर्मकार्यमें वापरना चाहिये. उधार-थापणआदिकी नोंध उसी समय करनेमें लेश मात्र भी प्रमाद न रखना चाहिये. कहा है कि--

मन्थिवंधे पीक्षायां, गणने गोपने व्यये ।

लेखयके च कृतालस्यो, नरः शीघ्रं विनश्यति ॥ १ ॥

पासमें द्रव्य रखनेमें, वस्तुकी परीक्षा करनेमें, गिननेमें, गुप्त रखनेमें, खर्च करनेमें और नामा (हिसाब आदि लेख) रखनेमें जो मनुष्य आलस्य करता है, वह शीघ्रही नष्ट होता है। मनुष्यको सर्व धातु ध्यानमें नहीं रह सकती, बहुतसी विस्मृति हो जाती हैं, और भूल जानेसे वृथा कर्मबन्ध आदि दोष सिर पर आता है। अपने निर्वाहके लिये चन्द्रमा जैसे सूर्यको अनुसरता है, वैसेही राजा तथा मन्त्री आदिको अनुसरना चाहिये। अन्यथा पराभव आदि होना सम्भव है। कहा है कि-चतुरपुरुष अपने मित्रजनों पर उपकार करनेके निमित्त तथा शत्रुओंका नाश करनेके निमित्त राजाके आश्रयकी इच्छा करते हैं, अपना उदरपोषण करनेके लिये नहीं कारण कि, राजाके आश्रय बिना अपना उदर पोषण कौन नहीं करता ? बहुतसे करते हैं। वस्तुपालमन्त्री, पेथडश्रेष्ठी आदि लोगोंने भी राजाके आश्रयसे जिन-मंदिर-आदि अनेक पुण्यकृत्य किये हैं।

अस्तु, विवेकीपुरुषने जूआ, धातुवाद (किमिया) और व्यसनोका दूरहीसे त्याग करना चाहिये। कहा है कि-दैवका कोप होनेही पर द्यूत, धातुवाद, अंजनसिद्धि, रसायन और याक्षिणीकी गुफामें प्रवेश करनेकी बुद्धि होती है। इसी प्रकार सहज कार्यमें सौगन्द आदि भी न खाना चाहिये। कहा है कि-जो मूर्ख मनुष्य चैत्य (देव) के सच्चे या झूठे सौगन्द खाता है वह बोधिबीजको निकालता और अनन्तसं सारी

होता है । चतुरमनुष्यने किसीकी जमानत देना (भलामण)-
 आदि संकटमें न पडना. कार्पासिकने कहा है कि-दरिद्रीको
 दो स्त्रियां, मार्गमें क्षेत्र, दो तरहकी खेती, जमानत और साक्षी
 देना ये पांच अनर्थ स्वयं मनुष्य उत्पन्न कर लेते हैं. वैसेही
 विवेकीपुरुषने शक्तिभर जिस ग्राममें निवास करता हो उसीमें
 व्यापारआदि करना जिससे अपने कुटुम्बके मनुष्योंका वियोग
 नहीं होता, घरके तथा धर्मके कार्य यथास्थित होते हैं. अपने
 ग्राममें निर्वाह न होता हो तो अपने देशमें व्यापारआदि
 करना, परन्तु परदेश न जाना चाहिये. अपने देशहीमें
 व्यापार करनेसे बारम्बार घर जानेका अवसर आता है तथा
 घरके कार्यादिका निरीक्षण भी होजाता है. ऐसा कौन दरिद्री
 मनुष्य है जो अपने ग्राम अथवा देशमें निर्वाह होना सम्भव
 होने पर भी परदेश जानेका क्लेश सहता है ? कहा है कि--
 हे अर्जुन ! दरिद्री, रोगी, मूर्ख, मुसाफिर और नित्य सेवा
 करनेवाला ये पांचों जीते हुए भी मृतके समान है, ऐसा शास्त्र-
 में सुनते हैं । यदि परदेश गये बिना निर्वाह न चलता हो, व
 परदेश ही में व्यापार करना पड़े, तो स्वयं न करना, तथा
 पुत्रादिकसे भी न कराना, किन्तु विश्वासपात्र मुनीमों द्वारा
 व्यापार चलाना. किसी समय अपनेको परदेश जाना पड़े, तो
 शुभशकुनआदि देख तथा गुरुवंदनादिक मांगलिक कर
 भाग्यशाली पुरुषों ही के साथ जाना चाहिये. साथमें अपनी

जातिके कुछ परिचित मनुष्योंको भी लेना, मार्गमें निद्रादि प्रमाद लेशमात्र भी न करना तथा यत्नपूर्वक जाना उचित है। परदेशमें व्यापार करना पड़े अथवा रहना पड़े तो भी इसी रीतिसे करना. कारण कि एक भाग्यशालीके साथमें होनेसे सबका विघ्न टलता है. इस विषय पर दृष्टान्त है, वह इस प्रकार:—

एकबीस मनुष्य वर्षाकालमें किसी ग्रामको जा रहे थे. संध्या-समय वे एकमंदिरमें ठहरे। वहां बिजली बार २ मंदिरके द्वार तक आकर जाने लगी। उन सबने भयातुर हो कहा कि, “अपनेमें कोई अभागी मनुष्य है, इसलिये प्रत्येक मंदिरकी चारों ओर प्रदक्षिणा देकर यहां आवे।” तदनुसार बीस जनों-ने अनुक्रमसे प्रदक्षिणा देकर मंदिरमें प्रवेश किया। एकबीसवां मनुष्य बाहर नहीं निकलता था, उसे शेष सबने बलात्कार पूर्वक खींचकर बाहर निकाला। तब बीसों ही पर बिजली गिरी। उनमें एक ही भाग्यशाली था। इत्यादि

अतएव भाग्यशाली पुरुषोंके साथमें जाना, तथा जो कुछ लेन देन होवे, अथवा निधि आदि रखा होवे, तो वह सब पिता, भाई, पुत्र आदिको नित्य कह देना, उसमें भी परग्राम जाते समय तो अवश्य ही कह देना चाहिये। ऐसा न करनेसे कदाचित् दुर्दैववश परग्राममें अथवा मार्गमें अपनी मृत्यु हो

जाय, तो धनके होते हुए पिता, भाई, पुत्र आदिको वृथा दुःख भोगना पड़ता है ।

विवेकीपुरुषने परग्राव जाते समय धनादिककी यथोचित चिन्ता करनेके लिये कुटुंबके सब लोगोंको योग्य शिक्षा देना तथा सबके साथ आदर पूर्वक वातचीत करके जाना । कहा है कि— जिसको जगत्में जीनेकी इच्छा हो, उस मनुष्यने पूज्य-पुरुषोंका अपमान कर, अपनी स्त्रीको कटुवचन कहकर, किसीको ताड़ना कर तथा बालकको रुलाकर परग्राम गमन न करना चाहिये । परग्राम जानेका विचार करते जो कोई उत्सव या पर्व समीप आगया हो तो वह करके जाना चाहिये । कहा है कि— उत्सव, भोजन, बड़ा पर्व तथा अन्य भी सर्व मंगल-कार्यकी उपेक्षा करके तथा जन्म या मरण इन दो प्रकारोंके सूतक होवें अथवा अपनी स्त्री रजस्वला होवे तो परग्रामको गमन न करना चाहिये । इसी प्रकार अन्यविषयोंका भी शास्त्रानुसार विचार करना उचित है । कहा भी है कि— दूधका भक्षण, स्त्रीसंभोग, स्नान, स्त्रीको ताड़ना, वमन तथा धूंकना-आदि करके या आक्रोश वचन सुनकर परग्रामको न जाना । हजामत करा कर, नेत्रोंमेंसे आंसू टपकाकर तथा शुभशकुन न होते हों तो परग्रामको न जाना । अपने स्थानसे किसी कार्यके निमित्त बाहर जाते जिस भागकी नाडी चलती हो, उस तरफका पैर आगे रखना । इससे मनवांछित कर्मकी सिद्धि

होती है । ज्ञानीपुरुषने मार्गमें जाते हुए सन्मुख आये हुए रोगी, वृद्ध, ब्राह्मण, अंध, गाय, पूज्यपुरुष, राजा, गर्भिणी स्त्री और सिर पर बोझा होनेसे नमै हुए पुरुषको प्रथम मार्ग देकर फिर आपने जाना चाहिये । पक्व अथवा अपक्व धान्य, पूजने योग्य मंत्रका मंडल, डाल दिया हुआ उबटन, स्नानका जल, रुधिर, मृतक इनको लांघकर न जाना । धूंक, कफ, विष्टा, मूत्र, प्रज्वलित अग्नि, सर्प, मनुष्य और शस्त्र इनका तो कदापि उल्लंघन न करना चाहिये । विवेकीपुरुषने नदीके किनारे तक, गायें बांधनेके स्थान तक, बडआदि वृक्ष, तालाब, सरोवर, कुआ, बाग इत्यादिक आवे वहां तक अपने बंधुको पहुंचानेको जाना चाहिये ।

कल्याणार्थी पुरुषने रात्रिके समय वृक्षके नीचे न रहना । उत्सव तथा सूतक समाप्त होनेके पहिले किसी दूरदेशमें न जाना । अकेले अपरिचित व्यक्ति अथवा दासके साथ नहीं जाना, तथा मध्यान्ह व मध्यरात्रिके समय भी गमन न करना । क्रूरपुरुष, चौकीदार, चुगलखोर, शिल्पकार और अयोग्यमित्रके साथ अधिक बातचीत न करना तथा असमय इनके साथ कहीं भी न जाना । मार्गमें चाहे कितनी ही थकावट पैदा हो पर पाडा, गाय और गधे पर न बैठना । मार्गमें हमेशा हाथीसे एक हजार, गाड़ीसे पांच तथा सींगवाले पशु व घोड़ेसे दश हाथ दूर जाना चाहिये । साथमें कलेऊ (कुछ भी खाद्य पदार्थ)

लिये बिना गमन न करना, जहां मुकाम किया हो वहां अधिक नींद न लेना तथा साथ आनेवाले लोगोंका विश्वास नहीं रखना । सैकड़ों कार्य हों तो भी अकेले कहीं न जाना । देखो एक कर्कट (केंकड़ा) के समान क्षुद्रजीवने ब्राह्मणकी रक्षा करी थी । अकेले मनुष्यने किसीके घर नहीं जाना । किसीके घरमें आडे मार्गसे (जो द्वार चालू न हो) उससे भी प्रवेश न करना ।

बुद्धिमान पुरुषने जीर्णनावमें न बैठना, अकेले नदीमें प्रवेश न करना और सहोदरभाईके साथ मार्गप्रवास नहीं करना । अपने पास साधन न हो तो जल तथा थलके विषम प्रदेश, घोरवन तथा गहरेजलका उल्लंघन न करना । जिस समुदायमें बहुतसे लोग क्रोधी, सुखके अभिलाषी और कृपण होवें वह अपना स्वार्थ खो बैठता है । जिसमें सब लोग नालायक होते हैं, सब अपने आपको पंडित मानते हैं, तथा बडप्पन चाहते हैं वह समुदाय दुर्दशामें आ पड़ता है । जहां कैदियोंको तथा फांसीकी शिक्षा पाये हुए लोगोंको रखते हों, जहां जुआ खेला जाता हो, जहां अपना अनादर होता हो, वहां तथा किसीके खजानेमें और अन्तःपुरमें न जाना चाहिये । दुर्गन्धि-युक्त स्थल, स्मशान, शून्यस्थान, बाजार, जहां फोतरे व सूखा घास बहुत बिछा हुआ हो, जहां प्रवेश करते बहुत दुःख होता हो तथा जहां कूड़ा कचरा डाला जाता हो ऐसा स्थान, खारी

भूमि, वृक्षका अग्रभाग, पर्वतका सिर, नदी तथा कुएँका किनारा और जहाँ भस्म, कोयला, बाल और खोपडियाँ पड़ी हों इतने स्थानोंमें अधिक समय तक खड़े न रहना । अधिक परिश्रम होनेपर भी जिस समय जो कार्य करना हो, उसे न छोड़ना । क्लेशके वश हुआ मनुष्य पुरुषार्थके फल स्वरूप धर्म अर्थ व काम तीनोंको नहीं पा सकता ।

मनुष्य जरा आडम्बर रहित हुआ कि उसका जहाँ तहाँ अनादर होता है, इसलिये किसी भी स्थानमें विशेष आडम्बर नहीं छोड़ना । परदेशमें जाने पर अपनी योग्यताके अनुसार सर्वांगमें विशेष आडम्बर तथा स्वधर्ममें परिपूर्ण निष्ठा रखना । कारण कि उसीसे बड़प्पन, आदर तथा निश्चित कार्यकी सिद्धि-आदि होना संभव है । विशेषलाभ होने पर भी परदेशमें अधिक समय तक नहीं रहना, कारण कि, उससे काष्ठश्रेष्ठिआदिककी भाँति गृहकार्यकी अव्यवस्थादि दोष उत्पन्न होता है । लेने बेचने आदि कार्यके आरंभमें, विघ्नका नाश और इच्छित-लाभआदि कार्यकी सिद्धिके निमित्त पंचपरमेष्ठीका स्मरण करना, गौतमादिकका नाम लेना तथा कुछ वस्तुएं देव, गुरु और ज्ञान आदिके काममें आवे इस रीतिसे रखना । कारण-कि, धर्मकी प्रधानता रखने ही से सर्व कार्य सफल होते हैं । धनोपार्जनके हेतु जिसे आरम्भ समारम्भ करना पड़े उस श्रावक-ने सातक्षेत्रमें धन वापरनेके तथा अन्य ऐसे ही धर्म-कृत्योंके बड़े २ मनोरथ करना । कहा है कि—

उच्चैर्मनोरथाः कार्याः, सर्वदैव मन स्वना ।

विधिस्तदनुमानेन, संपदे यतते यतः ॥ १ ॥

विचारवान् पुरुषने नित्य बडे २ मनोरथ करना चाहिये । कारण कि, अपना भाग्य मनोरथके अनुसार कार्यसिद्धि करनेमें प्रयत्न करता है । धन, काम और यशकी प्राप्तिके लिये किया हुआ यत्न भी समय पर निष्फल होजाता है, परन्तु धर्मकृत्य करनेका केवल मनमें किया हुआ संकल्प भी निष्फल नहीं जाता ।

लाभ होनेपर पूर्व किये हुए मनोरथ लाभके अनुसार सफल करना. कहा है कि—

ववसायफलं विहवो, विवहस्स फलं सुपत्तविणिओगो ।

तयभावे ववसाओ, विहवोवि अ दुग्गदनिमित्तं ॥ १ ॥

उद्यमका फल लक्ष्मी है, और लक्ष्मीका फल सुपात्रको दान देना है. इसलिये जो सुपात्रको दान न करे तो उद्यम और लक्ष्मी दोनों दुर्गतिके कारण होते हैं । सुपात्रको दान देने ही से, उपार्जित की हुई लक्ष्मी धर्मकी ऋद्धि कहलाती है, अन्यथा पापकी ऋद्धि कहलाती है. कहा है कि- ऋद्धि तीन प्रकारकी है. एक धर्मऋद्धि, दूसरी भोग-ऋद्धि और तीसरी पापऋद्धि. जो धर्मकृत्यमें वपराती है वह धर्मऋद्धि, जो शरीरसुखके हेतु वापरी जाती है वह भोग-ऋद्धि, और जो दान तथा भोगके काममें नहीं आती वह

अनर्थ उत्पन्न करनेवाली पापऋद्धि कहलाती है. पूर्वभवंमें किये हुए पापकर्मसे अथवा भावीपापसे पापऋद्धि प्राप्त होती है. इस विषय पर दृष्टान्त सुनो:---

वसन्तपुर नगरमें एक ब्राह्मण, एक क्षत्रिय, एक वणिक् और एक सुनार ये चार मित्र थे. वे द्रव्योपार्जनके निमित्त एक साथ परदेशको निकले. रात्रिको एक उद्यानमें ठहरे. वहां उन्होंने वृक्षकी शाखामें लटकता हुआ एक सुवर्णपुरुष देखा. उन चारोंमेंसे एकने कहा—'यह द्रव्य है' सुवर्णपुरुषने कहा—'द्रव्य है, परंतु अनर्थ करने वाला है' यह सुन सबने भयसे उसे छोड़ दिया. परन्तु सुनारने उससे कहा—'नीचे गिर' तदनुसार स्वर्ण-पुरुष नीचे गिरगया. सुनारने उसकी एक अंगुली काटकर शेष भागको एक गड्ढेमें फेंक दिया, यह सबने देखा. पश्चात् उनमें-से दो जने भोजन लानेके लिये गांवमें गये और शेष दोनोंको मारनेकी इच्छासे विष-मिश्रित अन्न लाये. इधर उन दोनोंने इन दोनोंको आते ही खड्ग प्रहारसे मारडाला और स्वयं विष-मिश्रित अन्न भक्षण किया जिससे मरगये. सारांश यह कि पाप-ऋद्धिसे द्रव्यके कारण चारोंका विनाश होगया.

इसलिये प्रतिदिन देवपूजा, अन्नदानआदि पुण्य तथा अवसर पर संघपूजा, साधर्मिकवात्सल्यआदि पुण्य कृत्य करके अपनी लक्ष्मी धर्मकृत्यमें लगानी चाहिये. साधर्मिकवात्सल्य-आदि पुण्यकृत्य बहुत द्रव्यका व्यय करनेसे होते हैं. और

इसीलिये वे श्रेष्ठ भी कहलाते हैं तथा नित्य होनेवाले पुण्य छोटे कहलाते हैं। यह बात सत्य है, तथापि ये पुण्य नित्य करते रहना चाहिये, क्योंकि उससे भी बहुत फल उत्पन्न होता है। इसलिये नित्यके पुण्य करके ही अवसरपुण्य करना उचित है। धन अल्प हो अथवा ऐसेही अन्य कारण हों तो भी धर्मकार्य करनेमें विलंब न करना चाहिये। कहा है कि—

देयं स्तोकादपि स्तोत्रं, न व्यपेक्ष्यो महोदयः ।

इच्छानुसारिणी शक्तिः, कदा कस्य भविष्यति ? ॥ १ ॥

अल्पधन होवे तो अल्पमेंसे अल्प भी देना, परन्तु बड़े उदयकी अपेक्षा नहीं रखना। इच्छानुसार दान देनेकी शक्ति कब किसे मिलनेवाली है ? कल करनेका विचार किया हुआ धर्मकार्य आज ही करना। तथा पिछले पहरको धारा हुआ धर्मकार्य दुपहरके पहिले ही करलेना चाहिये। कारण कि, मृत्यु आती है तो यह नहीं विचार करती कि 'इसने अपना कर्तव्यकर्म कितना करलिया है, तथा कितना बाकी रखा है ?' । द्रव्योपार्जन करनेका भी यथायोग्य उद्यम नित्य करना चाहिये। कहा है कि- वणिक्, वैश्या, कवि, भट्ट, चोर, ठग, ब्राह्मण ये मनुष्य जिस दिन कुछ लाभ न हो उस दिनको निष्फल मानते हैं। अल्प लक्ष्मीकी प्राप्ति होनेसे उद्यम न छोड़ देना चाहिये। माधकविने कहा है कि- जो मनुष्य अल्प संपत्तिके लाभसे अपनेको उत्तम-स्थितिमें मानता है, उसका दैव भी कर्तव्य किया जान कर

उसकी संपत्ति नहीं बढ़ाता, ऐसा जान पड़ता है. अत्यन्त-लोभ भी न करना चाहिये. लोकमें भी कहा है कि- अतिलोभ-न करना, तथा लोभका समूल त्याग भी न करना. अतिलोभ वश सागर श्रेष्ठी समुद्रमें डूबकर मृत्युको प्राप्त हुआ था.

अपरिमित इच्छा जितना धन किसीको भी मिलना संभव नहीं है. निर्धन मनुष्य चक्रवर्ती होनेकी इच्छा चाहे करे परन्तु वह कदापि हो नहीं सकता. भोजनवस्त्रादि तो इच्छानुसार मिल भी सकते हैं । कहा है कि- इच्छानुसार फल प्राप्त करने वाले पुरुषने अपनी योग्यता ही के अनुसार इच्छा करनी चाहिये. लोकमें मांगनेसे परिमित वस्तु तो मिल जाती है, परन्तु अपरिमित नहीं मिल सकती. इसलिये अपने भाग्यादिके अनुसार ही इच्छा रखनी चाहिये । जो मनुष्य अपनी योग्यताकी अपेक्षा अधिकाधिक इच्छा किया करता है, उसे इच्छित वस्तुका लाभ न होनेसे सदा दुःखी ही रहना पड़ता है. निन्यानवे लाख टंकका अधिपति होते हुए करोडपति होनेके निमित्त धनश्रेष्ठीको अहर्निश बहुत क्लेश भोगना पड़े. ऐसे ही और भी बहुतसे उदाहरण हैं. कहा है कि—

आकांक्षितानि जन्तूनां, संपद्यन्ते यथा यथा ।

तथा तथा विशेषाप्तौ, मनो भवति दुःखितम् ॥ १ ॥

आशादासस्तु यो जातो, दासस्त्रिभुवनस्य सः ।

आशा दासीकृता येन, तस्य दास्ये जगत्त्रयी ॥ २ ॥

मनुष्योंके मनोरथ ज्यों २ पूर्ण होते जाते हैं, त्यों २ उनका मन विशेष लाभके लिये दुःखी होता जाता है, जो मनुष्य आशाका दास होगया वह मानो तीनों लोकका दास होगया और जिसने आशाको अपनी दासी बनाइ उसने तीनों जगत्को अपना दास बना लिया है.

गृहस्थमनुष्यने धर्म, अर्थ और काम इन तीनोंका इस रीतिसे सेवन करना चाहिये कि एक दूसरेको बाधा न हो. कहा है कि- धर्म, अर्थ (द्रव्य) और काम (विषयसुख) ये तीनों-लोकमें पुरुषार्थ कहे जाते हैं । चतुरपुरुष अवसर देखकर तीनों का सेवन करते हैं. जंगली हाथीकी भांति धर्म व अर्थका त्याग करके जो मनुष्य क्षणिक विषयसुखमें लुब्ध होता है वह आपत्तिमें पड़ता है । जो मनुष्य विषयसुखमें अधिक आसक्ति रखता है, उसके धनकी धर्मकी व शरीरकी भी हानि होती है । धर्म और कामको छोड़कर उपार्जन किया हुआ धन अन्य लोग भोगते हैं, और उपार्जन करनेवाला हाथीको मारनेवाले सिंहकी भांति केवल पापका भागीदार होता है । अर्थ और कामको त्यागकर केवल धर्म ही की सेवा करना यह तो साधु मुनिराजका धर्म है, गृहस्थका नहीं । गृहस्थने भी धर्मको बाधा उपजाकर अर्थ तथा कामका सेवन न करना चाहिये । कारण कि, बीज भोजी (बोनेके लिये रखे हुए दाने खानेवाला) कुनबीकी भांति अधार्मिक पुरुषका अंतमें कुछ भी कल्याण नहीं होता ।

सोमनातिमें भी कहा है कि--जो मनुष्य परलोकके सुखमें बाधा न आवे ऐसी रीतिसे इस लोकका सुख भोगता है, वही सुखी कहा जाता है। वैसे ही अर्थको बाधा उपजाकर धर्म तथा कामका सेवन करनेवालेके सिरपर बहुत देना होजाता है और कामको बाधा उपजाकर धर्म व अर्थका सेवन करनेवालेको सांसारिकसुखका लाभ नहीं होता। इस प्रकार क्षणिक विषयसुखमें आसक्त, मूलभोगी (जडको खा जानेवाला) और कृपण इन तीनों पुरुषोंके धर्म, अर्थ तथा कामको बाधा उत्पन्न होती है।

जो मनुष्य कुछभी संग्रह न करते जितना धन मिले उतना विषयसुख ही में खर्च करते हैं वे क्षणिकविषयसुखमें आसक्त कहे जाते हैं। जो मनुष्य अपने बापदादाओंका उपाजित द्रव्य अन्यायसे खाते हैं, वे बीज(मूल)भोजी कहे जाते हैं, और जो मनुष्य अपने जीव, कुटुम्ब सेवकवर्गको दुःख देकर द्रव्यसंग्रह करते हैं और योग्यरीतिसे जितना खर्चना चाहिये उतना भी न खर्चें वे कृपण कहलाते हैं। जिसमें क्षणिक विषयसुखमें आसक्त और मूलभोजी इस दोनोंका द्रव्य नष्ट हो जाता है, इस कारण उनसे धर्म और कामका सेवन नहीं होता। इसलिए इन दोनों जनोंका कल्याण नहीं होता। कृपणका किया हुआ द्रव्यका संग्रह दूसरेका कहलाता है। राजा, भूमि, चोरआदि लोग कृपणके धनके मालिक होते हैं, इससे उसका धन धर्म अथवा कामके उपयोगमें नहीं आता। कहा है कि—

दायादाः स्पृहयन्ति तस्करगणा मुष्णन्ति भूमीभुजो,
 गृह्णन्ति चञ्चलमाकलय्य हुतभुग् भस्मीकरोति क्षणात् ।
 अम्भः लावयते क्षितौ विनिहितं यक्षा हरन्ते हठाद् ,
 दुर्वृत्तास्तनया नयन्ति निधनं विग् बह्वधीनं धनम् ॥ १ ॥

जिस धनको मनुष्य चाहते हैं, उस धनको चोर लूटें, किसी छलभेदसे राजा हरण कर लें, क्षणमात्रमें अग्निभस्म कर दे, जल डुवा दे, भूमिमें गाड़ा हो तो यक्ष हरण करे, पुत्र दुराचारी होवें तो बलात्कारसे कुमार्गमें उड़ा दें, ऐसे अनेकोंके अधिकारमें रहे हुए धनको धिक्कार है, अपने पुत्र-को लाड लड़ाने वाले पतिको जैसे दुराचारिणी स्त्री हंसती है, वैसेही मृत्यु शरीरकी रक्षा करनेवालेको तथा पृथ्वी धनकी रक्षा करनेवालेको हंसती है । कीड़ियोंका एकत्रित किया हुआ धान्य, मधुमक्खियोंका एकत्रित किया हुआ मधु और कृषणका उपार्जन किया हुआ धन ये तीनों वस्तुएं दूसरोंही-के उपभोगमें आती हैं। इसलिये धर्म अर्थ और कामको बाधा उत्पन्न करना यह बात गृहस्थको उचित नहीं। कदाचित् पूर्वकर्मके योगसे ऐसा हो तोभी उत्तरोत्तर बाधा होने पर भी शेषका रक्षण करना चाहिये । यथा:—

कामको बाधा होवे तो भी धर्म और अर्थकी रक्षा करना। कारण कि धर्म और अर्थकी भलीभाँति रक्षा करनेही से काम (विषयसुख) सुखसे मिल सकता है। वैसेही अर्थ और काम

इन दोनोंको बाधा होवे तथापि सर्वप्रकारसे धर्मकी रक्षा करना चाहिये. कारण कि अर्थ व कामका मूल धर्म है. कहा है कि- चाहे नरेंद्रोंमें भिक्षा मांगकर अपनी आजीविका चलाता हो, तो भी मनुष्य जो अपने धर्मको बाधा न उपजावे तो उसे ऐसा समझना चाहिये कि, “ मैं बड़ा धनवान हूं. ” कारण कि, धर्मही सत्पुरुषोंका धन है. जो मनुष्य मनुष्यभव पाकर धर्म, अर्थ, काम इन तीनका साधन न करे उसका आयुष्य पशुकी आयुष्यकी भांति वृथा है. इन तीनोंमें भी धर्म श्रेष्ठ है. कारण कि, उसके बिना अर्थ और काम उत्पन्न नहीं होते. द्रव्यकी प्राप्तिके प्रमाणमें उचित व्यय करना चाहिये. नीतिशास्त्रमें कहा है कि, जितनी द्रव्यकी प्राप्ति हो, उसका एक चतुर्थभाग संचय करना, दुसरा चतुर्थभाग व्यापारमें अथवा व्याज पर लगाना, तीसरा चतुर्थभाग धर्मकृत्यमें तथा अपने उपभोगमें लगाना; और चौथा चतुर्थभाग कुटुम्बके पोषण निमित्त व्यय करना. कोई २ ऐसा कहते हैं कि- प्राप्तिका आधा अथवा उससे भी अधिक भाग धर्मकृत्यमें लगाना और बाकी रहे हुए द्रव्यमें शेष सर्व कार्य करना. कारण कि, एक धर्मके सिवाय इसलोकके शेष सर्वकार्य तुच्छ हैं. कोई कोई लोग कहते हैं कि- उपरोक्त दोनों वचनोंमें प्रथम गरीबके तथा दुसरा धनवानके उद्देश्यसे कहा है. जीवन और लक्ष्मी किसको बल्लभ नहीं? किन्तु अवसर पर सत्पुरुष इन दोनोंको तृणसे भी हलका समझते हैं.

यशस्करे कर्मणि मित्रभङ्गहे, प्रियासु नारोष्वधनेषु बन्धुषु ।
 धर्मे विवहे व्यसने रिपुक्षये, धनव्ययोऽष्टासु न गण्यते बुधैः ॥२॥
 यः काकणीमप्यपथप्रपन्नामन्वेपते निष्कसहस्रतुल्याम् ।
 काले च कौटिष्वपि मुक्तहस्तस्तस्यानुबन्धं न जहाति लक्ष्मीः ॥३॥

१ यशका विस्तार करना हो, २ मित्रता करना हो, ३ अपनी प्रियस्त्रियोंके लिये कोई कार्य करना हो, ४ अपने निर्धन बान्धवोंको सहायता करनी हो, ५ धर्मकृत्य करना होवे, ६ विवाह करना हो ७ शत्रुका नाश करना होवे, अथवा ८ कोई संकट आया होवे तो चतुरपुरुष धनव्यय की कुछ भी गिन्ती नहीं रखते. जो पुरुष एक कांकिणी भी कुमार्गमें चली जावे तो एक हजार स्वर्णमुद्राएं गईं ऐसा समझते हैं, और वेही पुरुष योग्य अवसर आने पर जो करोड़ों धनका छूटे हाथसे व्यय करते हैं, तो लक्ष्मी उनको कभी भी नहीं छोड़ती है. जैसे:—

एक श्रेष्ठीकी पुत्रवधू नई विवाही हुई थी. उसने एक दिन अपने श्वसुरको दीवेमेंसे नीचे गिरी हुई तैलकी बूंदें अपने जूतोंमें लगाते देखा, इससे मनमें विचार करने लगी कि, 'मेरे श्वसुरकी यह कृपणता है कि काटकसर है ?' ऐसा संशय होनेसे श्वसुरकी परीक्षा करनेका निश्चय कर एक दिन सिर दुखनेका बहाना करके वह सो रही तथा बहुत चिल्लाने लगी. श्वसुरने बहुतसे उपाय किये तब उसने कहा कि, 'पहिले भी कभी कभी मेरे ऐसा ही दर्द होता था और वह सच्चे मोतिशों-

का चूर्ण लेप करनेसे मिट जाया करता था ' यह सुन श्वसुरको बड़ा हर्ष हुआ. उसने तुरन्त मोती मंगानेकी तैयारी की. इतने ही में बहूने यथार्थ बात कह दी.

धर्मकृत्यमें खर्च करना यह लक्ष्मीका एक वशीकरण है. कारण कि, इसीसे वह स्थिर होती है. कहा है कि—

मा मंस्थाः क्षीयते वित्तं, दीयमानं कदाचन ।

कूपारामगवादीनां, ददतामेव संपदः ॥ १ ॥

देनेसे धनका नाश होता है, ऐसा तू किसी कालमें भी मत समझना. देखो, कुआ, बगीचा, गाय आदि ज्यों ज्यों देते जाते हैं त्यों त्यों उनकी संपदा वृद्धिको प्राप्त होती है. इस विषय पर एक उदाहरण है कि:—

विद्यापति नामक एक श्रेष्ठी बहुत धनवान था. लक्ष्मीने स्वप्नमें आकर उसको कहा कि, 'मैं आजसे दशवें दिन तेरे घरमेंसे निकल जाऊंगी.' पश्चात् विद्यापतिने अपनी स्त्रीके कहनेसे उसी दिन सर्वधन धर्मके सातक्षेत्रोंमें व्यय कर दिया. और गुरुसे परिग्रहका प्रमाण स्वीकार कर सुखपूर्वक रात्रिमें सो रहा. प्रातःकाल होते ही देखा कि पुनः पूर्वकी भांति धन परिपूर्ण भरा है. तब उसने पुनः सब द्रव्य धर्मकृत्यमें व्यय कर दिया. इसी प्रकार नौ दिन व्यतीत हुए. दशवें दिन फिर लक्ष्मीने स्वप्नमें आकर कहा कि, 'तेरे पुण्यसे मैं तेरे घर ही में स्थिर रहती हूं.' लक्ष्मीका यह वचन सुनकर विद्यापति श्रेष्ठी

परिग्रहपरिमाणव्रतका खंडन होनेके भयसे नगरको छोड़कर बाहर चला गया. उधर कोई राजा मर गया था. उसके संतान न होनेके कारण, उसकी भादी पर किसी योग्य पुरुषको बैठानेके निमित्त मंत्रीआदि लोगोंने पट्टहार्थीकी सूँडमें अभिषेक कलश दे रखा था. उस हार्थीने आकर इस (विद्यापति श्रेष्ठी) पर अभिषेक किया, तदनंतर आकाशवाणीके कथनानुसार विद्यापतिने राजाके तौर पर जिन-प्रतिमाकी स्थापना करके राज्य संचालन किया, तथा क्रमशः वह पाँचवें भवमें मोक्षको प्राप्त हुआ.

न्यायपूर्वक धन उपार्जन करनेवाले मनुष्य पर कोई भी शक नहीं रखता, बल्कि हरस्थानमें उसकी प्रशंसा होती है. प्रायः उसकी किसी प्रकारकी हानि भी नहीं होती, और उसकी सुखसमाधिआदि दिन प्रतिदिन वृद्धिको प्राप्ति होती है.

इसलिये उपरोक्त रीतिके अनुसार धनोपार्जन करना इसलोक तथा परलोकमें लाभकारी है. कहा है कि—

सर्वत्र शुचयो धीराः, स्वकर्मबलगर्विताः ।

कुर्मनिहतात्मानः, पापाः सर्वत्र शङ्किताः ॥ १ ॥

पवित्र पुरुष अपने शुद्धाचरणके अभिमानके बलसे सब जगह धैर्यसे रहते हैं. परन्तु पापी पुरुष अपने कुर्मसे वेधित होनेके कारण सब जगह मनमें शंकायुक्त रहते हैं. यथा:-

देव और यश नामक दो श्रेष्ठी प्रीतिसे साथ साथ फिरा करते थे. एक दिन किसी नगरके मार्गमें पड़ा हुआ एक रत्न-जडित कुंडल उनकी दृष्टिमें आया. देवश्रेष्ठी सुश्रावक, दृढ-व्रत और परधनको अनर्थका मूल समझनेवाला होनेसे पीछे फिरा. यशश्रेष्ठी भी उसके साथ पीछा फिरा. किन्तु 'पडी हुई वस्तु लेनेमें अधिक दोष नहीं.' यह विचार कर उसने वृद्धदेव-श्रेष्ठीकी निगाह बचाकर कुंडल उठा लिया और पुनः मनमें विचार किया कि, 'मेरे इस मित्रको धन्य है. कारण कि, इसमें ऐसी अलौकिक निर्लोभता बसती है. तथापि युक्तिसे मैं इसे इस कुंडलमें भागीदार करूंगा.' ऐसा विचार कर कुंडलको छिपा रखा व दुसरे नगरमें जाकर उस कुंडलके द्रव्यसे बहुतसा किराना खरीदा. कुछ दिनके बाद दोनों अपने ग्रामको आये. लाये हुए किरानेको बेचनेका समय आया तब बहुतसा किराना देख कर देवश्रेष्ठीने आग्रहपूर्वक इसका कारण पूछा. यशश्रेष्ठीने भी यथार्थ बात कह दी. तब देवश्रेष्ठीने कहा. 'अन्यायसे उपार्जन किया हुआ यह द्रव्य किसी भी प्रकार ग्रहण करनेके योग्य नहीं. कारण कि, जैसे खराबकाजीके अंदर पड़नेसे दुधका नाश होजाता है, वैसे ही यह धन लेनेसे अपना न्यायो-पार्जित द्रव्य भी अवश्य विनाश होजायगा.' यह कह उसने संपूर्ण अधिक किराना यशश्रेष्ठीको देदिया. अपने आपही पास आया हुआ धन कौन छोडे ?' इस लोभसे यशश्रेष्ठी वह सब

किराना अपने घर लेगया. उसी दिन रात्रिको चौरोंने यश-श्रेष्ठीका संपूर्ण किराना लूट लिया. प्रातःकालमें किरानेके बहुतसे ग्राहक आये जिससे दुना तिगुना मूल्य मिलनेके कारण देवश्रेष्ठीको बहुत लाभ हुआ. पश्चात् यशश्रेष्ठी भी पश्चाताप होनेसे सुश्रावक हुआ. और शुद्धव्यवहागसे द्रव्योपार्जन करके सुख पाया.....इत्यादि.

इस विषय पर लौकिकशास्त्रमें भी एक दृष्टांत कहा है कि:- चम्पानगरीमें सोम नामक राजा था. उसने मन्त्रीको पूछा कि “ सुपर्वमें दान देनेके योग्य श्रेष्ठद्रव्य कौनसा है ? और दान लेनेको सुपात्र कौन है ? ” मन्त्रीने उत्तर दिया. “ इस नगरमें एक सुपात्र ब्राह्मण है. परन्तु न्यायोपार्जित शुभद्रव्यका योग मिलना सब लोगोंको और विशेषकर राजा को दुर्लभ है. कहा है कि—

दातुर्विशुद्धचित्तस्य, गुणयुक्तस्य चार्थिनः ।

दुर्लभः खलु संयोगः, सुबीजक्षेत्रयोरिव ॥ १ ॥

जैसे उत्तमबीज व उत्तम खेतका योग मिलना कठिन है, वैसेही शुद्धचित्त दाता और योग्य गुणवन्त पात्र इन दोनोंका योग मिलना भी दुर्लभ है.” यह सुन सोमराजाने पर्वके ऊपर शुद्धदान देनेके हेतुसे गुप्त वेश धारण कर आठ दिन तक रात्रिके समय वणिकूलोगोंकी दुकान पर जाकर साधारण वणिकू-पुत्रके समान काम किया,

और उसके बदलेमें आठ द्रम्म उपार्जन किये. पर्वके दिन सब ब्राह्मणोंको निमन्त्रण करके उक्त सुपात्रब्राह्मणको बुलानेके लिये मन्त्रीको भेजा. उस ब्राह्मणने उत्तर दिया कि, “ जो ब्राह्मण लोभसे मोहवश हो राजाके पाससे दान ले, वह तमि-
 श्रादिक घोरनरकमें पडकर दुःखी होता है. राजाका दान मधु-
 में मिश्रित किये हुए विषके समान है. समय पर पुत्रका मांस भक्षण कर लेना श्रेष्ठ, पर राजाके पाससे दान न लेना चाहिये. कुम्भारके पाससे दान लेना दश हिंसाके समान, ध्वज (कलार)-
 के पाससे लेना सौ हिंसाके समान, बैश्याके पाससे लेना एक हजार हिंसाके समान और राजाके पाससे लेना दश हजार हिंसाके समान है । स्मृति, पुराणआदिके वचनोंमें राजाके पाससे दान लेनेमें ऐसे दोष कहे हैं, इसलिये मैं राजदान नहीं लेता. तब मन्त्रीने कहा—“ राजा अपने बाहुबलसे न्यायपूर्वक उपार्जन किया हुआ द्रव्यही तुमको देगा, उसे लेनेमें कोई दोष नहीं है. ” इत्यादि नानाप्रकारसे समझाकर मन्त्री उस सुपात्रब्राह्मणको राजाके पास ले गया. राजाने हर्षित हो उस ब्राह्मणको बैठनेके लिये अपना आसन दिया. पग धोकर विनय-
 पूर्वक उसकी पूजा की और पूर्वोक्त न्यायोपाजित आठ द्रम्म उसे दाक्षिणाके तौर पर गुप्तराजिसे उसकी मुट्ठीमें दिये. दूसरे ब्राह्मणोंको यह देखकर कुछ रोष आया. उनके मनमें यह भ्रम हुआ कि “ राजाने इसे गुप्तराजिसे कुछ श्रेष्ठ वस्तु दे दी है.”

पश्चात् राजाने स्वर्णआदि देकर अन्यब्राह्मणोंको सन्तुष्ट किया. अन्य सब ब्राह्मणोंका राजानें दिया हुआ द्रव्य किसीका छः मासमें, तो किसीका इससे कम अधिक अवधिमें खर्च हो गया. परन्तु सुपात्रब्राह्मणको दिये हुए आठ द्रम्म अन्नवस्त्रादिके कार्यमें खर्च करने पर भी न्यायोपाजित होनेके कारण कम न हुए, बल्कि अक्षयनिधिकी भांति तथा खेतमें बोये हुए श्रेष्ठ-बीजकी भांति बहुत काल तक लक्ष्मीकी वृद्धिही करनेवाला होता रहा इत्यादि.

१ न्यायोपाजित धन और सुपात्रदान इन दोनोंके योगसे चौभंगी (चार भंगे) होते हैं. जिसमें १ न्यायोपाजित-धन और सुपात्रदान इन दोनोंके योगसे प्रथम भंग होता है, यह पुण्यानुबंधिपुण्यका कारण होनेसे इससे उत्कृष्ट देवतापन, तथा समकितआदिका लाभ होता है, और ऐसे अपूर्वलाभसे अन्तमें थोड़े काल ही में मोक्ष भी प्राप्त होजाता है. इस पर धनसार्थवाह तथा शालिभद्रआदिका दृष्टान्त जानो.

२ न्यायोपाजित द्रव्य और सुपात्रदान इन दोनोंका योग होनेसे दूसरा भंग होता है । यह पापानुबंधिपुण्यका कारण होनेसे इससे किसी २ भवमें विषयसुखका पूर्ण लाभ होता है, तो भी अन्तमें उसका परिणाम कड़वा ही उत्पन्न होता है. जैसे किः--

एक ब्राह्मणने लाख ब्राह्मणोंको भोजन दिया जिससे वह कुछ भवोंमें विषयसुख भोग मरकर अत्यन्त सुन्दर व सुलक्षण

अवयवोंको धारण करनेवाला सेचनक नामक भद्रजातिका हाथी हुआ, जिस समय उसने लाख ब्राह्मणोंको जिमाया था, उस समय ब्राह्मणोंके जीमते बचा हुआ अन्न एकत्रित कर सुपात्र-को दान देनेवाला दूसरा एक दरिद्री ब्राह्मण था, वह सुपात्र-दानके प्रभावसे सौधर्मदेवलोकमें जा, वहांसे व्यवकर पांचसौ राजकन्याओंसे विवाह करनेवाला नन्दिषेण नामक श्रेणिकपुत्र हुआ, उसे देखकर सेचनकको जातिस्मरण ज्ञान हुआ, तथापि अन्तमें वह प्रथम नरकको गया।

३ अन्यायसे उपार्जित द्रव्य और सुपात्रदान इन दोनोंके योगसे तीसरा भंग होता है। उत्तमक्षेत्रमें हलका बीज बोनेसे जैसे अंकुर मात्र ऊगता है, परन्तु धान्य नहीं उपजता, वैसेही इससे परिणाममें सुख होता है, जिससे राजा, व्यापारी और अत्यारम्भसे धनोपार्जन करनेवाले लोगोंको वह मान्य होता है। कहा है कि--यह लक्ष्मी काशयष्टिके समान सार व रस रहित होते हुए भी धन्यपुरुषोंने उसे सातक्षेत्रोंमें बोकरी सांटेके समान कर दिया। गायको खली देनेसे उसका परिणाम दूधके रूपमें होता है, और दूध सर्पको देनेसे उसका परिणाम विषके रूपमें आता है। सुपात्र तथा कुपात्रमें वस्तुका उपयोग करनेसे ऐसे भिन्न २ परिणाम होते हैं, अतएव सुपात्र ही में करना श्रेष्ठ है। स्वातिनक्षत्रका जल सर्पके मुंहमें पड़े तो विष और सीपके संपुटमें पड़े तो मोती होता है। देखो, वही स्वाति-

नक्षत्र और वही जल है किन्तु पात्रके फेरफारसे परिणाममें कितनी भिन्नता होजाती है? । इस विषयमें अबुद (आबू) पर्वतके ऊपर जिनमंदिर बनानेवाले विमलमंत्रीआदिके दृष्टान्त लोक प्रसिद्ध हैं । भारी आरंभ, समारम्भ आदि अनुचित कर्म करके एकत्रित किया हुआ द्रव्य धर्मकृत्यमें न व्यय किया जावे तो उस द्रव्यसे इसलोकमें अपयश और परलोकमें अवश्य ही नरक मिलता है । इस पर मम्मणश्रेष्ठीआदिका दृष्टान्त समझो ।

४ अन्यायसे उपार्जन किया हुआ द्रव्य और कुपात्रदान इन दोनोंके योगसे चौथा भंग होता है । इससे मनुष्य इस लोकमें तिरस्कृत होता है और परलोकमें नरकादिकदुर्गतिमें जाता है । इसलिये यह चौथा भंग अवश्य वर्जनीय है । कहा है कि— अन्यायसे कमाये हुए धनका दान देनेमें बहुत दोष है । यह बात गायको मारकर कौएको तृप्त करनेके समान है । अन्यायोपार्जितधनसे लोग जो श्राद्ध करते हैं, उससे चांडाल, भील और ऐसे ही हलकी जातिके लोग तृप्त होजाते हैं । न्यायसे उपार्जन किया हुआ थोडासा भी द्रव्य यदि सुपात्रको दिया जाय तो उससे कल्याण होता है, परन्तु अन्यायसे उपार्जन किया हुआ बहुतसा द्रव्य दिया जाय तो भी उससे कुछ भी सुफल नहीं प्राप्त हो सकता । अन्यायोपार्जितद्रव्यसे जो मनुष्य अपने कल्याणकी इच्छा करता है वह मानो कालकूट विष भक्षण करके जीवनकी आशा रखता है । अन्यायमार्गसे एकत्रित किये

धनपर निर्वाह चलानेवाला पुरुष प्रायः अन्यायी, कलह करने-वाला, अहंकारी और पापकर्मी होता है । जैसा कि रंक-श्रेष्ठी था । यथाः—

मारवाड देशान्तर्गत पालीग्राममें काकूयाक और पाताक नामक दो भाई थे । जिनमें छोटा भाई पाताक धनवन्त व बड़ा भाई काकूयाक महान् दरिद्री था । और इसी कारण काकूयाक पाताकके घर चाकरी करके अपना निर्वाह करता था । एकसमय वर्षाकालके दिनमें बहुत परिश्रम करनेसे थका हुआ काकूयाक रात्रिको सो रहा । इससे पाताकने ठपका देकर कहा कि, “ भाई ! अपने खेतकी क्या रीति अधिक पानी भरनेसे फट गई, तो भी क्या तुझे उसकी कोई चिन्ता नहीं ? ” यह सुन काकूयाक शीघ्र बिछौना त्याग, दूसरेके घर चाकरी करने-वाले अपने जीवकी निन्दा करता हुआ कुदाली लेकर खेतको गया । और कुछ लोगोंको फटी हुई क्यारियोंको पुनः ठीक करते देखकर उसने पूछा कि, “ तुम कौन हो ? ” उन लोगोंने उत्तर दिया—“ हम तेरे भाईके चाकर हैं ” उसने पुनः पूछा कि, “ मेरे चाकर भी कहीं हैं ? ” उन्होंने कहा कि, “ वल्लभी पुरमें हैं । ” कुछ समयके बाद अवसर मिलते ही काकूयाक-सपरिवार वल्लभीपुरको गया । वहां एक मोहल्लेमें गडरिये रहते थे । उनके पास एक घासका झोंपड़ा बांधकर तथा उन्हीं लोगोंकी सहायतासे उसमें एक दुकान लगाकर रहने लगा ।

काकूयाक शरीरसे बहुत दुबला था, इस कारण वे लोग इसे “ रंकश्रेष्ठी ” कहने लगे । एकसमय कोई कार्पटिक, शास्त्रोक्त-कल्पके अनुसार गिरनारपर्वतके ऊपर सिद्ध किया हुआ कल्याण-रस एक तुंबडीमें भरकर लिये आरहा था । इतनेमें बलभीपुरके समीप आते कल्याणरसमेंसे “ काकू तुंबडी ” ऐसा शब्द निकला, जिससे भयातुर हो उस कार्पटिकने वह तुंबडी काकू-याकके यहां धरोहर रख दी और आप सोमनाथकी यात्राको चला गया ।

एक वक्त किसी पर्वके अवसरपर काकूयाकके घरमें कुछ विशेष वस्तु तैयार करनेके लिये चूल्हे पर कढ़ाई रखी । उस कढ़ाई पर उक्त तुंबडीके छेदमेंसे एक बूंद गिर गया, अग्नि-का संयोग होते ही उस कढ़ाईको स्वर्णमय हुई देखकर काकू-याकको निश्चय होगया कि-“ इस तुंबडीमें कल्याणरस है । ” तदनन्तर उसने घरमेंकी सब अच्छी २ वस्तुएं तथा वह तुंबडी बाहर निकालकर झोंपडीमें आग लगादी तथा दूसरे मोहल्लेमें घर बंधाकर रहने लगा । एक दिन एक स्त्री घी बेचने आई । उसका घी तोल लेनेपर काकूयाकको ऐसा दृष्टि आया कि ‘चाहे कितना ही घी निकाल लिया जाय परन्तु घीका पात्र खाली नहीं होता है ।’ इस परसे उसने निश्चय किया कि, “ इस पात्रके नीचे जो कुंडलिका (चुमली) है, वह कालीचित्रक-वल्लीकी है । ” व किसी बहाने उसने वह कुंडलिका ले ली ।

इसी प्रकार कपट करके उसने खोटे तराजू व बाटोंसे व्यापार किया । पापानुबंधिपुण्य बलवान होनेसे व्यापारमें भी उसे बहुत द्रव्यलाभ हुआ । एक समय एक सुवर्णसिद्धि करने-वाला मनुष्य उसे मिला तो उसने युक्तिसे उसे ठगकर सुवर्णसिद्धि भी ग्रहण करली । इस प्रकार तीन प्रकारकी सिद्धियां हाथ आनेसे रंकश्रेष्ठी (काकूयाक) कितने ही करोड धनका अधिपति होगया । अपना धन किसी तीर्थमें, सुपात्रको तथा अनुकंपादानमें यथेच्छ खर्च करना तो दूर रहा, परन्तु अन्यायोपाजित धनके ऊपर निर्वाह करनेका तथा पूर्वकी दीनस्थिति और पीछेसे मिली हुई धनसंपदाका अपार अहंकार आदि कारणोंसे उसने, सब लोगोंको भगा देना, नये २ कर बढ़ाना, अन्य धनिकलोगोंके साथ स्पर्धा तथा भत्सरआदि करना इत्यादिक दुष्टकृत्य कर अपनी लक्ष्मीका लोगोंको प्रलयकालकी रात्रिके समान भयंकर रूप दिखाया ।

एकसमय रंकश्रेष्ठीकी पुत्रीकी स्तनजडित कंधी बहुत सुन्दर होनेसे राजाने अपनी पुत्रीके लिये मांगी, परन्तु उसने नहीं दी । तब राजाने बलात्कारसे ली । जिससे राजाके ऊपर रोषकर वह म्लेच्छलोगोंके राज्यमें गया । और वहां करोडों स्वर्णमुद्राएं खर्चकर मुगलोंको बलभीपुर पर चढ़ाई करने ले आया, मुगलोंने बलभीपुरके अधीनस्थ देशको नष्ट भ्रष्ट कर दिया, तब रंकश्रेष्ठीने सूर्यमंडलसे आये हुए अश्वके रक्षक-

लोगोंको चुपचाप द्रव्य देकर अपने पक्षमें मिलाकर कपटप्रपंच रचाया । उस समय वल्लभीपुरमें ऐसा नियम था कि, संग्रामका प्रसंग आने पर राजा सूर्यके वचनसे आये हुए घोड़े पर चढ़े, पश्चात् प्रथम ही से नियुक्त किये लोग पंच वार्जित्र बजावें, इतने ही में वह घोड़ा आकाशमें उड़े और उसपर सवार हुआ राजा शत्रुओंको मारे और संग्रामकी समाप्ति होने पर वह घोड़ा वापस सूर्यमंडलमें चला जावे । इस समय रंकश्रेष्ठीने पंच वार्जित्र बजानेवाले लोगोंको मिला रखे थे, जिससे उन्होंने राजाके घोड़े पर सवार होनेके पहिले ही वार्जित्र बजा दिये, इतने ही में घोड़ा आकाशमें उड़ गया । राजा शिलादित्य किंकर्तव्यविमूढ़ होगया । तब शत्रुओंने उसे मार डाला और सुखपूर्वक वल्लभीपुर जीत लिया । कहते हैं कि विक्रम संवत् ३७५ के अनन्तर वल्लभीपुर भेदन किया था । रंकश्रेष्ठीने मुगलोंको भी जल-रहित प्रदेशमें डालकर मार डाले.....इत्यादि ।

अन्यायोपाजित द्रव्यका यह परिणाम ध्यानमें लेकर न्याय-पूर्वक धनोपाजन करनेका प्रयत्न करना चाहिये. कहा है कि-साधुओंके विहार, आहार, व्यवहार और वचन ये चारों शुद्ध है कि नहीं ? सो देखे जाते हैं. परन्तु गृहस्थका तो केवल व्यवहार देखा जाता है । व्यवहार शुद्ध होने ही से सर्व धर्म-कृत्य सफल होते हैं. दिनकृत्यकारने कहा है कि, व्यवहार-शुद्धि धर्मका मूल है, कारण कि व्यवहार शुद्ध होवे तो कमाया

हुआ धन भी शुद्ध होता है, धन शुद्ध होनेसे आहार शुद्ध होता है, आहार शुद्ध होनेसे देह शुद्ध होती है और देह शुद्ध होनेसे मनुष्य धर्मकृत्य करनेको उचित होता है. तथा वह मनुष्य जो कुछ कर्म करता है वे सब सफल होते हैं. परन्तु व्यवहार शुद्ध न होनेसे मनुष्य जो कुछ कर्म करे वह सर्व निष्फल है। कारण कि व्यवहार शुद्ध न रखनेवाला मनुष्य धर्मकी निन्दा कराता है और धर्मकी निन्दा करानेवाला मनुष्य अपने आपको तथा दूसरेको अतिशय दुर्लभबोधि करता है, ऐसा सूत्रमें कहा है. अतएव मनुष्यने यथाशक्ति प्रयत्न करके ऐसे कृत्य करना चाहिये, कि जिससे मूर्खलोग धर्मकी निन्दा न करें, लोकमें भी आहारके अनुसार शरीर-प्रकृतिका बंधन स्पष्ट दृष्टि आता है. जैसे अपनी बाल्यावस्थामें भैंसका दूध पीनेवाले घोड़े सुखसे जलमें पड़े रहते हैं, और गायका दूध पीनेवाले घोड़े जलसे दूर रहते हैं, वैसेही मनुष्य बाल्यादिवस्थामें जैसे आहारका भोग करता है, वैसीही प्रकृतिका होता है. इसलिये व्यवहार शुद्ध रखनेके निमित्त भली भांति प्रयत्न करना चाहिये।

देशविरुद्ध-इसी प्रकार देशादिविरुद्ध बातका त्याग करना चाहिये. याने जो बात देशविरुद्ध (देश की रूढिके प्रतिकूल) कालविरुद्ध किंवा राजादिविरुद्ध हो उसे छोड़ना. हितोपदेशमालामें कहा है कि, जो मनुष्य देश, काल, राजा,

लोक, तथा धर्म इनमेंसे किसीके भी प्रतिकूल जो बात हो उसको छोड़दे, तो वह समकित तथा धर्मको पाता है ।

सौवीर (सिंध) देशमें खेती और लाट (भरुछ प्रांत) देशमें मद्यसन्धान (दारू बनाना) देशविरुद्ध है. दूसरा भी जिस देशमें शिष्टलोगोंने जो मना किया होवे, वह उस देशमें देशविरुद्ध जानो. अथवा जाति, कुलआदिकी रीतिरिवाज-को जो अनुचित हो वह देशविरुद्ध कहलाता है । जैसे ब्राह्मण-को मद्यपान करना तथा तिल, लवणआदि वस्तु बेचना, यह देशविरुद्ध है. उनके शास्त्रमें कहा है कि, तिलका व्यापार करनेवाले ब्राह्मण जगत्में तिलके तुल्य हलके तथा काला काम करनेके कारण काले गिने जाते हैं, तथा परलोकमें तिलकी भांति घाणीमें पीले जाते हैं. कुलकी रीतिके प्रमाणसे तो चौलुक्यआदि कुलमें उत्पन्न हुए लोगोंको मद्यपान करना देश-विरुद्ध है अथवा परदेशीलोगोंके सन्मुख उनके देशकी निन्दा करना आदि देशविरुद्ध कहलाता है ।

कालविरुद्ध—शीतकालमें हिमालयपर्वतके समीपस्थ प्रदेशमें जहां अत्यन्त शीत पड़ती हो अथवा ग्रीष्मऋतुमें मारवाड- (बीकानेर प्रांत) के समान अतिशय निर्जलदेशमें, अथवा वर्षाकालमें जहां अत्यंत जल, दलदल और बहुत ही चिकना कीचड़ रहता है ऐसे पश्चिम तथा दक्षिणसमुद्रके किनारे बसे हुए कोकणआदि देशोंमें अपनी उचितशक्ति तथा किसीकी

योग्य सहायता न होते जाना तथा बहुत दुष्काल पड़ा हो वहाँ, दो राजाओंकी परस्पर लड़ाई चलती हो वहाँ, डाका-आदि पड़नेसे मार्ग बंद हो वहाँ, सघन वनमें तथा सायंकाल आदि भयंकर समयमें अपनी शक्ति बिना तथा किसीकी सहायता बिना जाना, कि जिससे प्राण अथवा धनकी हानि हो, अथवा अन्य कोई अनर्थ सन्मुख आवे, सो कालविरुद्ध कहलाता है. अथवा फाल्गुनमास व्यतीत होजानेके बाद तिल पीलना, तिलका व्यापार करना, अथवा तिल भक्षण करना आदि, वर्षाकालमें चवलाईआदिका शाक लेना आदि, तथा जहाँ बहुत जीवाकुल भूमि होवे वहाँ गाड़े गाड़ी आदि हांकना. ऐसा भारी दोष उपजानेवाला कृत्य करना, वह कालविरुद्ध कहलाता है ।

राजविरुद्ध—राजाआदिके दोष निकालना, राजाके माननीय मंत्रीआदिका आदरमान न करना, राजाके विपरीत-लोगोंकी संगति करना, बैरीके स्थानमें लोभसे जाना, बैरीके स्थानसे आइ हुई व्यक्तिके साथ व्यवहारादि रखना, राजाकी कृपा है ऐसा समझकर उसके किये हुए कार्योंमें भी फेरफार करना, नगरके शिष्टलोगोंसे विपरीत चलना, अपने स्वामीके साथ नमकहरामी करना इत्यादि राज्यविरुद्ध कहलाता है. उसका परिणाम बड़ा ही दुःसह है, जैसे भुवनभानुकेवलीका जीव रोहिणी हुई. वह यद्यपि निष्ठावान, पढी हुई तथा स्वा-

ध्यायके ऊपर लक्ष रखनेवाली थीं, तथापि विक्रधाके रससे वृथा रानीका कुशीलत्व आदि बोलनेसे राजाको उस पर रोष चढा. पश्चात् उसकी जीभ काटकर उसे देशसे निर्वासित कर दी. जिससे दुःखित रोहिणीने अनेकों भवोंमें जिव्हाच्छेद आदि दुःख सहन किये.

लोकाविरुद्ध—लोककी तथा विशेषकर गुणीजनोंकी निन्दा न करना चाहिये. कारण कि लोकनिन्दा करना और अपनी प्रशंसा करना ये दोनों बातें लोकाविरुद्ध कहलाती हैं. कहा है कि—दूसरेके भले बुरे दोष कहनेमें क्या लाभ है ? उससे धन अथवा यशका लाभ तो होता नहीं, बल्कि जिसके दोष निकालें वह मानो अपना एक नया शत्रु उत्पन्न किया ऐसा हो जाता है.

सुष्ठुवि उज्जममाणं, पंचेव करिति रिक्तयं समणं ।

अप्यथुई परनिन्दा, जिम्भोवत्था कसाया य ॥ १ ॥

१ निजस्तुति, २ परनिन्दा, ३ वशमें न रखी हुई जीभ, ४ उपस्था याने जननेन्द्रिय और ५ कषाय ये पांच बातें संयमके निमित्त पूर्ण उद्यम करनेवाले मुनिराजको भी हीन कर देती हैं. जो वास्तवमें किसी पुरुषमें अनेक गुण हों तो वे तो बिना कहे ही अपना उत्कर्ष करते ही हैं और जो (गुण) न हों तो व्यर्थ आत्मप्रशंसा करनेसे क्या होता है ? आत्मश्लाघा मनुष्यको उसके मित्र हंसते हैं, बान्धवजन उसकी निन्दा करते हैं, बड़े

मनुष्य उसकी उपेक्षा करते हैं तथा उसके मातापिता भी उसे अधिक नहीं मानते.

परपरिभवपरिवादादात्मोत्कर्षच्च बध्यते कर्म ।

नीचैर्गोत्रं प्रतिभवमनेकभवोऽटिदुर्मोचम् ॥

दूसरेका पराभव अथवा निंदा करनेसे अथवा अपना बड़प्पन आप प्रकट करनेसे भवभवमें नीचकर्म बंधता है. ये कर्म करोड़ों भव तक भी छूटना कठिन हैं. पर-निंदा महान पाप है, कारण, बड़े खेदकी बात है कि, निंदा करनेसे दूसरेके किएहुए भी पाप बिना किये ही निंदा करनेवालेको गड़में डालते हैं. यहां एक निंदक वृद्धा स्त्रीका दृष्टान्त कहते हैं कि:-

सुग्राम नामक नगरमें सुन्दर नामक एक श्रेष्ठी था. वह बड़ा धर्मी और मुसाफिरआदि लोकोंको भोजन, वस्त्र, निवास-स्थान आदि देकर उन पर भारी उपकार किया करता था. उसके पड़ोसमें एक वृद्ध ब्राह्मणी रहती थी, वह श्रेष्ठीकी नित्य निंदा किया करती, और कहती कि, “ मुसाफिर लोग विदेश-में मर जाते हैं, उनकी धरोहरआदि मिलनेके लोभसे यह (श्रेष्ठी) अपनी सच्चाई बताता है आदि.” एक समय क्षुधा-तृषासे पीडित एक कार्पटिक (भिक्षुक)आया. अपने घरमें न होनेके कारण उसने (श्रेष्ठीने) ग्वालिनके पाससे छाछ मंगाकर उसे पिलाई, जिससे वह मर गया. कारण कि, ग्वालिनके सिर पर रखे हुए छाछके बरतनमें ऊपर उडती हुई सेमलीके मुखमें

पकड़े हुए सर्पके मुंहमेंसे विष पड़ गया था. कार्पेटिकके मरजाने-से ब्राह्मणीने अत्यन्त हर्षित होकर कहा कि, “ देखो, यह कैसा धर्मीपन !! ” उस समय आकाश स्थित हत्याने विचार किया कि, “ दाता (श्रेष्ठी) निरपराधी है, सर्प अज्ञानी तथा सेमलीके मुखमें जकड़ा हुआ होनेसे विवश है, सेमलीकी तो जाति ही सर्पभक्षक है तथा ग्वालिन भी इस बातसे अज्ञान है. अतएव मैं अब किसे लगू ? ” यह विचारकर वह हत्या अन्त-में वृद्धा ब्राह्मणीको लगी. जिससे वह काली, कुबड़ी और कोढ़ी होगई..... इत्यादि.

सत्यदोष कहने पर एक दृष्टान्त है कि किसी राजाके सन्मुख किसी परदेशीकी लाई हुई तीन खोपड़ियोंकी पंडितोंने परीक्षा करी यथा:— एकके कानमें डोरा डाला वह उसके मुखमेंसे निकला, सुना हो उतना मुखसे बकने वाली उस खोपड़ीकी कीमत फूटी कौड़ी बताई. दूसरी खोपड़ीके कानमें डाला हुआ डोरा उसके दूसरे कानमेंसे बाहर निकला. उस एक कानसे सुनकर दूसरे कानसे निकाल देनेवालीकी कीमत एक लक्ष सुवर्णमुद्रा की. तीसरीके कानमें डाला हुआ डोरा उसके गलेमें उतर गया. उस सुनी हुई बातको मनमें रखने-वालीकी कीमत पंडितलोग न कर सके इत्यादि.

इसी प्रकार सरलप्रकृतिलोगोंकी हंसी करना, गुणवान-लोगोंसे डाह करना, कृतघ्न होना, बहुतसे लोगोंसे विरोध

रखनेवाले मनुष्यकी संगति करना, लोकमान्यपुरुषका मान-भंग करना. सदाचारीलोगोंके संकटमें आनेपर प्रसन्न होना, शक्ति होते हुए आपत्तिग्रसित अच्छे मनुष्यकी सहायता न करना. देशोचित रीतिरिवाजको छोड़ना, धनके प्रमाणसे विशेष स्वच्छ अथवा विशेष मलीन वस्त्रादि धारण करना इत्यादि बातें लोकविरुद्ध कहलाती हैं. इनसे इस लोकमें अपयशआदि होता है. वाचकशिरोमणि श्रीउमास्वातिवाचकजीने कहा है कि—

लोकः खल्व्वाधारः, सर्वेषां धर्मचारिणां यस्मात् ।

तस्माल्लोकविरुद्धं, धर्मविरुद्धं च संत्याज्यम् ॥ १ ॥

समस्तधर्मी मनुष्योंका आधार लोक है. इसलिये जो बात धर्मविरुद्ध अथवा लोकविरुद्ध होवे उसको सर्वथा त्याग देना चाहिये. इससे अपने ऊपर लोगोंकी प्रीति उत्पन्न होती है, स्वधर्माराधन होता है और सुखपूर्वक निर्वाह होता है. कहा है कि— लोकविरुद्धवातको छोड़नेवाला मनुष्य समस्त-लोगोंको प्रिय होता है. और लोकप्रिय होना यह समकित-वृक्षका बीज है.

धर्मविरुद्ध — मिथ्यात्वकृत्य करना, मनमें दया न रखते बैलआदिको मारना, बांधना आदि, जूएँ, खटमल आदिको धूपमें डालना, सिरके बाल बड़ी कंघीसे समारना, लीखेंआदि फोड़ना, उष्णकालमें तीन बार और बाकीके कालमें दो बार मजबूत, जाड़े व बड़े गलणसे संखाराआदि करने-

की युक्तिसे पानी छाननेमें तथा धान्य, कंडे, शाक, खानेके पान फलआदि तपासनेमें सम्यग् प्रकारसे उपयोग न रखना. सुपारी, खारिक. वालोल, फली इत्यादि ऐसीही मुंहमें डालना, नाले अथवा धाराका जल पीना, चलते, बैठते, सोते, नहाते, कोई वस्तु डालते अथवा लेते, रांधते, कूटते, दलते, घिसते और मलमूत्र, कफ, कुल्ली, जल, तांबूल आदि डालते यथोचित यतना न रखना, धर्मकरनीमें आदर न रखना, देव, गुरु तथा साधर्मियोंके साथ द्वेष करना, देवद्रव्यादिका उपभोग करना, अधर्मियोंकी संगति करना, धार्मिकआदि श्रेष्ठ-पुरुषोंकी हंसी करना, कषायका उदय विशेष रखना, अतिदोष युक्त क्रय विक्रय करना, खटकर्म तथा पापमय अधिकार आदि-में प्रवृत्त होना. ये सर्व धर्मविरुद्ध कहलाते हैं. उपरोक्त मिथ्या-त्वआदि बहुतसे पदोंकी व्याख्या 'अर्थदीपिका'में की गई है. धर्मी लोग देशविरुद्ध, कालविरुद्ध, राजविरुद्ध अथवा लोक-विरुद्ध आचरण करें तो उससे धर्मकी निंदा होती है, इसलिये वह सब धर्मविरुद्ध समझना चाहिये. उपरोक्त पांच प्रकारका विरुद्धकर्म श्रावकने कदापि न करना चाहिये ।

अब उचिताचरण (उचित कर्म) कहते हैं. उचिताचरण-के पितासम्बन्धी, मातासम्बन्धी आदि नौ प्रकार हैं. उचिताचरणसे इसलोकमें भी स्नेहकी वृद्धि, यशआदिकी प्राप्ति होती है. हितोपदेशमालाकी जिन गाथाओंमें इसका वर्णन किया गया है उनको यहां उद्धृत करते हैं:-

सामन्त्रे मणुअत्ते, जं केई पाउणंति इह किंत्ति ॥

सं मुणह निव्विअप्पं, उचिआचरणस्स माहप्पं ॥१॥

अर्थः--मनुष्यमात्रका मनुष्यत्व समान होते हुए कुछ मनुष्य ही इस लोकमें यश पाते हैं, यह उचितआचरणकी महिमा है, यह निश्चय जानो ।

तं पुण पिइमाइसहोअरेसु पणइणिअवच्चसयणेसु ॥

गुरुजननायरपरतित्थिएसु पुरिसेण कायम्बं ॥ २ ॥

अर्थः--उस उचितआचरणके नौ प्रकार हैंः--१ पिता-सम्बन्धी, २ मातासम्बन्धी, ३ सहोदरभ्रातासम्बन्धी, ४ स्त्रीसम्बन्धी, ५ सन्तानसम्बन्धी, ६ नातेदारोंसम्बन्धी, ७ गुरुजनसम्बन्धी, ८ नगरके रहीस लोगों सम्बन्धी तथा ९ अन्य-दर्शनी सम्बन्धी. इस प्रकार नौप्रकारका उचितआचरण प्रत्येक-मनुष्यको करना चाहिये. (२)

पिताके सम्बन्धमें मन, वचन, कायासे तीन प्रकारका उचितआचरण करना पडता है, हितोपदेशमालाकार कहता है किः—

पिउणो तणुसुस्सूसे, विणएणं किंकरव्व कुणइ सयं ॥

वयणंपि से पडिच्छइ, वयणाओ अपाडिअं चेव ॥ ३ ॥

अर्थः--सेवककी भांति स्वयं विनयपूर्वक पिताजीकी शरीर-सेवा करना. यथा--उनके पैर धोना तथा दाबना, वृद्धावस्थामें उनको उठाना बैठाना, देशकालके अनुसार उनकी प्रकृतिके

अनुकूल भोजन, शय्या, वस्त्र, उबटन आदि वस्तुएं देना. तथा उनके अन्यकार्योंको, कभी अवज्ञा, तिरस्कार न करके स्वयं सविनय करना, नौकरोंआदिसे न कराना. कहा है कि-पुत्र पिताजीके सन्मुख बैठे हो उस समय उसकी जो शोभा दीखती है उसका शतांश भी, चाहे वह किसी ऊंचे सिंहासन पर बैठ जाय, नहीं दीख सकता । तथा मुखमेंसे बाहर निकलते न निकलते पिताजीके वचनको स्वीकार कर लेना चाहिये. याने पिताजीका वचन सत्य करनेके निमित्त राज्याभिषेक ही के अवसर पर वनवासके लिये निकले हुए रामचंद्रजीकी भांति सुपुत्रने पिताजीके मुखमेंसे वचन निकलते ही आदरपूर्वक उसके अनुसार आज्ञा पालन करना, किसी प्रकार भी आनाकानी करके उनके वचनोंकी अवज्ञा न करना चाहिये. (३)

चित्तंपि हु अणुअत्तइ, सव्वपयत्तेण सव्वकज्जेसु ॥

उवजीवइ बुद्धिगुणे, निअसम्भावं पयासेइ ॥ ४ ॥

अर्थः--सुपात्रपुत्रने प्रत्येककार्यमें पूर्णप्रयत्नसे पिताजीको पसंद आवे वह करना. अर्थात् अपनी बुद्धिसे कोई आवश्यक कार्य सोचा हो, तो भी वह पिताजीके चिन्तानुकूल हो तभी करना. सुश्रूषा (सेवा), ग्रहण आदि तथा लौकिक और अलौकिक सर्व व्यवहारमें आनेवाले अन्य सम्पूर्ण बुद्धिके गुणोंका अभ्यास करना. बुद्धिका प्रथम गुण मातापिताआदिकी सेवा

करना है. ज्ञानी मातापिताओंकी योग्य सेवा करनेसे वे प्रत्येक कार्यके रहस्य (गुप्त भेद) अवश्य प्रकट करते हैं. कहा है कि-
तत्तदुत्प्रेक्षमाणानां, पुराणैरागमैर्विना ।

अनुपासितवृद्धानां, प्रज्ञा नातिप्रसीदति ॥ १ ॥

यदेकः स्थविरो वेत्ति, न तत्तरुणकोटयः ।

यो नृपं लत्तया हन्ति, वृद्धवाक्यात्तत्त पूज्यते ॥ २ ॥

ज्ञानवृद्धलोगोंकी सेवा न करनेवाले और पुराण तथा आगम बिना अपनी बुद्धिसे पृथक् २ कल्पना करनेवाले लोगोंकी बुद्धि विशेष प्रसन्न नहीं होती. एक स्थविर (वृद्ध) जितना ज्ञान रखता है उतना करोड़ों तरुणलोग भी नहीं रख सकते. देखो, राजाको लात मारनेवाला पुरुष वृद्धके वचनसे पूजा जाता है. वृद्धपुरुषोंका वचन सुनना तथा समय पडने पर बहुश्रुतोंसे पूछना. देखो, वनमें हंसोंका समूह बन्धनमें पड़ा था वह वृद्ध-वचन ही से मुक्त हुआ. इसी प्रकार अपने मनका अभिप्रायः पिताजीके सन्मुख अवश्य प्रकट कर देना चाहिये. (४)

आपुच्छिडं पयट्टइ, करणिज्जेसुं निसेहिओ ठाइ ॥

खलिए खरंपि भणिओ, विणीअयं न हु विडंघेइ ॥५॥

अर्थः—पिताजीको पूछ कर ही प्रत्येककार्यमें लगना, यदि पिताजी कोई कार्य करनेकी मनाई कर दें तो न करना, कोई अपराध होने पर पिताजी कठोर शब्द कहे, तो भी अपना विनीतपन न छोड़े, अर्थात् मर्यादा छोड़कर चाहे जैसा प्रत्युत्तर न दें.

सविसेसं परिपूरङ्गं, धम्माणुगए मणोरहे तस्स ॥

एमाइ उचिअकरणं, पिउणो जणणीईवि तहेव ॥६॥

अर्थः—जैसे अभयकुमारने श्रेणिकराजा तथा चिल्लणा-माताके मनोरथ पूर्ण किये, वैसे ही सुपुत्रने पिताजीके साधारण लौकिक मनोरथ भी पूर्ण करना उसमें भी देवपूजा करना, सद्गुरुकी सेवा करना, धर्म सुनना, व्रत पञ्चखान करना, षडावश्यकमें प्रवृत्त होना, सातक्षेत्रोंमें धनव्यय करना, तीर्थयात्रा करना और दीन तथा अनाथ लोगोंका उद्धार करना इत्यादि जो मनोरथ होवे वे धर्ममनोरथ कहलाते हैं- पिताजीके धर्ममनोरथ बड़े ही आदर पूर्ण करना. कारण कि, इसलोकमें श्रेष्ठ ऐसे मांवापके संबंधमें सुपुत्रोंका यही कर्तव्य है. जिनके उपकारसे किसी प्रकार भी उच्छ्रृण नहीं हो सकते ऐसे मातापिताआदि गुरुजनोंको केवलभाषित सद्दर्ममें लगानेके सिवाय उपकारका भार हलका करनेका अन्य उपाय ही नहीं है । स्थानांगसूत्रमें कहा है कि—

तिण्हं दुप्पडिआरं समणाउसो ! तंजहा- अम्मापिउणो १,
भट्टिस्स २ धम्मायरिअस्स ३ ॥

तीन जनोंके उपकार उतारे नहीं जा सकते ऐसे हैं ।
१ माता पिता, २ स्वामी और ३ धर्माचार्य ।

संपाओविअणं केइ पुरिसे अम्मापिअरं सद्यपागसहस्सपागेहिं
तिह्लेहिं अब्भंगित्ता सुरभिणा गंधट्टएणं उव्वट्टित्ता तिहिं उदगेहिं मज्जा-

वित्ता सव्वालंकारविभूतिअं करित्ता मणुन्नं थालिपागसुद्धं अट्टारसवं जणा-
उलं भोअणं भोआवित्ता जावज्जीवं पिट्ठवंसिआए परिवहिज्जा , तेणावि
तस्स अम्मापिउस्स दुप्पडिआरं भवइ, अहे णं से तं अम्मापिअरं
केवल्लिपन्नत्ते धम्मे आघवइत्ता पन्नवइत्ता परुवइत्ता ठावइत्ता
भवइ तेणामेव तस्स अम्मापिउस्स सुपडियारं भवइ समणाउसो ! १ ॥

कोई पुरुष जीवन पर्यंत प्रातःकालमें अपने मातापिताको
शतपाक तथा सहस्रपाकतेलसे अभ्यंगन करे, सुगन्धित उबटन
लगावे, गंधोदक, उष्णोदक और शीतोदक इन तनिप्रकारके
जलोंसे स्नान करावे, संपूर्ण आभूषणोंसे सुसज्जित करे, पाक-
शास्त्रकी रीतिसे तैयार किया हुआ अट्टारह जातिके शाकयुक्त
रुचिके अनुसार भोजन करावे, और आजीवन अपने कंधे पर
धारण करे तो भी वह मातापिताके उपकारका बदला नहीं दे
सकता, परन्तु यदि वह पुरुष अपने मातापिताको केवलिभाषित
सुनाकर मनमें बराबर उतार तथा धर्मके मूलभेद और उत्तर
भेदकी प्ररूपणा कर उस धर्ममें स्थापन करनेवाला होजाय तभी
उसके उपकारका बदला दिया जा सकता है ।

केइ महच्चे दरिदं समुक्खिज्जा , तए णं से दरिदे समुक्खिदे
समाणे पच्छा पुरं च णं विउलभोगसमिइसमण्णागएअवि विहरिज्जा ।
तएणं स महच्चे अन्नया कयाइ दरिदीहूए समाणे तस्स दरिदस्स
आंतिअं हवमगच्छिज्जा । तए णं से दरिदे तस्स भट्टिस्स सव्वस्सनवि
दल्लमणे तेणावि तस्स दुप्पडियारं भवइ अहे णं से तं भट्टिं केवलि-

पन्नत्ते धम्मे आघवइत्ता जाव ठावइत्ता भवइ तेणामेव तस्स भट्टिस्स सुप्पडियारं भवइ २ ॥

कोई धनाढ्य पुरुष किसी दरिद्रीगनुष्यको धनादि देकर सुदशामें लावे, और वह मनुष्य सुदशामें आया, उस समयकी भांति उसके बाद भी सुखपूर्वक रहे, पश्चात् उक्त धनाढ्य किसी समय स्वयं दरिद्री होकर उसके पास आवे, तब वह अपने उस स्वामीको चाहे सर्वस्व अर्पण करदे, तो भी वह उसके उपकारका बदला नहीं चुका सकता । परन्तु यदि वह अपने स्वामीको केवलभाषित धर्म कह समझाकर और अंतर्भेद सहितकी प्ररूपणा कर उस धर्ममें स्थापन करे, तभी वह स्वामीके उपकारका बदला चुका सकता है ।

केइ तहारूवस्स समणस्स वा माहणस्स वा आंति ए एमवि आरिअं धम्मिअं सुवयणं सुक्खा निसम्भ कालमासे कालं किञ्चा अन्न-यरेसु देवलोगेसु देवत्ताए उववण्णे ॥ तए णं से देवे तं धम्मायरियं दुब्भिकखाओ वा देसाओ सुभिकखं देसं साहरिज्जा, कंताराओ निकं तारं करिज्जा, दीहकालिएणं वा रोगायंकेण अभिभूअं विमोइज्जा, तेणावि तस्स धम्मायरियस्स दुप्पडियारं भवइ । अहे णं से तं धम्मा-यरिअं केवलपन्नत्ताओ धम्माओ भट्ठं समणं भुज्जो केवलपन्नत्ते धम्मे आघवइत्ता जाव ठावइत्ता भवइ तेणामेव तस्स धम्मायरियस्स सुप्पडियारं भवइ ३ ॥

कोई पुरुष सिद्धान्तमें कहे हुए लक्षणयुक्त श्रमण माहण (धर्माचार्य) से जो धर्म संबंधी श्रेष्ठ एक ही वचन सुनकर, उसका मनमें यथोचित विचारकर अंतसमये मृत्युको प्राप्त होकर किसी देवलोकमें देवता होजावे । पश्चात् वह देवता अपने पूर्वोक्त धर्माचार्यको जो दुर्भिक्षवाले देशमेंसे सुभिक्षदेशमें ला रखे, घोरजंगलमेंसे पार उतारे, अथवा किसी जीर्णरोगसे पीडित उक्त धर्माचार्यको निरोग करे तो भी उससे उनका बदला नहीं दिया जा सकता । परन्तु वह पुरुष केवलिभाषित-धर्मसे भ्रष्ट हुए अपने उस धर्माचार्यको केवलिभाषित धर्म कह, समझाकर, अंतर्भेद सहित प्ररूपणा करके पुनः धर्ममें स्थापित करे तभी धर्माचार्यके उपकारका बदला दिया जा सकता है ।

मातापिताकी सेवा करने पर, अपने अंधे मातापिताको कावडमें बैठाकर स्वयं कंधेपर उठा उनको तीर्थयात्रा कराने-वाला श्रवण उत्कृष्ट उदाहरण है । मातापिताको केवलि-भाषितधर्ममें स्थापन करनेके ऊपर अपने पिताजीको दीक्षा देनेवाले श्रीआर्यरक्षितस्वरिका अथवा केवलज्ञान उत्पन्न होने पर भी मातापिताको प्रतिबोध हो वहां तक निरवद्यवृत्तिसे धर्ममें रहे हुए कूर्मापुत्रका दृष्टान्त जानो । अपने सेठको धर्ममें स्थापन करनेके ऊपर प्रथम किसी मिथ्यात्वी श्रेष्ठीके मुनीम-पणसे स्वयं धनिक हुआ और समयान्तरसे दुर्भाग्यवश दारिद्र्य-को प्राप्त हुए उस मिथ्यात्वी श्रेष्ठीको धनादिक दे पुनः उसे

धनिक बनानेवाले और श्रावकधर्ममें स्थापन करनेवाले जिन-
दासश्रेष्ठीका दृष्टान्त जानो । अपने धर्माचार्यको पुनः धर्ममें
स्थापन करनेके ऊपर निद्रादिप्रमादमें पड़े हुए शैलकाचार्यको
बोध करनेवाले पंथकशिष्यका दृष्टान्त समझो । इत्यादिक पिता
संबंधी उचित आचरण हैं । मातासंबंधी उचित आचरण भी
पिताकी भांति ही जानो (६) ।

मातासम्बन्धी उचितआचरणमें जो विशेषता है वह
कहते हैं—

नवरं से सविभेसं, पयडइ भावाणुवित्तिमप्पडिमं ॥

इत्थीर हावसुलहं, पराभवं वडइ न हु जेण ॥ ७ ॥

अर्थ— मातासम्बन्धी उचितआचरण पिता समान
होते हुए भी उससे इतना विशेष है कि, माता स्त्रीजाति है,
और स्त्रीका स्वभाव ऐसा होता है कि, कुछ ने कुछ बात ही में वह
अपना अपमान मान लेती है, इसलिये माता अपने मनमें स्त्री-
स्वभावसे किसी तरह भी अपमान न लावे, ऐसी रीतिसे सुपुत्र-
ने उनकी इच्छानुसार पितासे भी अधिक चलना । अधिक-
कहनेका कारण यह है कि, मातापिताकी अपेक्षा अधिक पूज्य
है । मनुने कहा है कि— उपाध्यायसे दशगुणा श्रेष्ठ आचार्य
है, आचार्यसे सौगुणा श्रेष्ठ पिता है और पितासे हजार गुणी
श्रेष्ठ माता है । दूसरोंने भी कहा है कि— पशु दूधपान करना
हो तब तक माताको मानते हैं, अधमपुरुष विवाह होने तक

मानते हैं, मध्यमपुरुष घरका कामकाज उसके हाथसे चलता हो तब तक मानते हैं, और उत्तमपुरुष तो यावज्जीव तीर्थकी भांति मानते हैं । पशुओंकी माता पुत्रको केवल जीवित देखकर संतोष मानती है, मध्यमपुरुषोंकी माता पुत्रकी कमाई-से प्रसन्न होती है, उत्तमपुरुषोंकी माता पुत्रके वीरकृत्योंसे संतुष्ट होती है और लोकोत्तरपुरुषोंकी माता पुत्रके पवित्र आचरणसे खुशी होती है । (७)

अब बन्धुसम्बन्धी उचितआचरणका वर्णन करते हैं ।

उचिअं एअं तु सहोअरंभि जं निअइ अप्पसममेअं ॥

जिट्ठं व कणिट्ठं पिट्ठु, बहु मन्नइ सव्वकज्जेसु ॥ ८ ॥

अर्थ:— अपने सहोदरभाईके सम्बन्धमें उचितआचरण यह है कि, उसे आत्मवत् समझना । छोटे भाईको भी बड़े भाईके समान बहुत मानना । “ बड़े भाईके समान ऐसा कहनेका कारण यह है कि, “ ज्येष्ठो भ्राता पितुः समः ” (ज्येष्ठ भाई पिताके समान है) ऐसा कहा है । इससे ‘ बड़े भाईके समान ’ ऐसा कहा । जैसे लक्ष्मण श्रीरामको प्रसन्न रखता था, वैसे ही सौतेले छोटे भाईने भी बड़े भाईकी इच्छाके अनुकूल बर्त्ताव करना । इसी प्रकार छोटे बड़े भाईयोंके स्त्रीपुत्रादिक लोगोंने भी उचितआचरणमें ध्यान देना चाहिये । (८)

दंसइ न पुडोभावं, सन्भावं कहइ पुच्छइ अ तस्स ॥

बवहारंभि पयट्ठइ, न निगूहई थेवमवि दविणं ॥ ९ ॥

अर्थ:— भाई अपने भाईको भिन्नभाव न बतावे, मनका सर्व अभिप्राय कहे, उसका अभिप्राय पूछे, उसको व्यापारमें प्रवृत्त करे, तथा द्रव्यादि भी गुप्त न रखे । “ व्यापारमें प्रवृत्त करे ” ऐसा कहनेका यह कारण है कि, जिससे वह व्यापारमें होशियार होवे तथा ठगलोगोंके ठगनेमें न आवे । “ द्रव्य गुप्त न रखे ” ऐसा जो कहा उसका कारण यह है कि, मनमें दगा रखकर द्रव्य न छुपावे, परन्तु संकटके समय निर्वाह करनेके लिये तो गुप्त रखे ही । इसमें दोष नहीं है । (९)

यदि कुसंगतिसे अपना भाई ढीठ होजावे तो—

अविणीअं अणुअत्तइ, मित्तेहिंतो रहो उवालभइ ॥

सथणजणाओ सिक्खं, दावइ अजावएसेणं ॥ १० ॥

अर्थ:— विनयहीन हुए अपने भाईको उसके मित्रद्वारा समझावे, स्वयं एकान्तमें उसे उपालम्भ दे और अन्य किसी विनय रहित पुरुषके मित्रसे उसको काका, मामा, श्वसुर, साला आदि लोगों द्वारा शिक्षा दिलावे, परन्तु स्वयं उसका तिरस्कार न करे; कारण कि इससे वह कदाचित् निर्लज्ज होकर मर्यादा छोड़दे । (१०)

हिअए ससिणेहोवि हु, पयडइ कुविअं व तस्स अप्पाणं ॥

पडिवन्नविणयमग्गं, आलवइ अल्लम्मपिम्मपरो ॥ ११ ॥

अर्थ:—हृदयमें प्रीति होने पर भी बाहरसे उसे अपना स्वरूप क्रोधीके समान बतावे, और जब वह विनयमार्ग स्वीकार

करले, तब उसके साथ वास्तविक प्रेमसे बातचीत करे. उपरोक्त उपाय करने पर भी यदि वह मार्ग पर न आवे तो “ उसकी यह प्रकृति ही है” ऐसा तत्त्व समझकर उसकी उपेक्षा करे. (११)

“ तप्येणइणिपुत्ताइसु, समदिट्ठी होइ दाणसम्माणे ॥

सावक्कांमि उइत्तो, सविसेसं कुणइ सव्वंपि ॥ १२ ॥

अर्थ:-भाईके स्त्रीपुत्रादिकमें दान, आदरआदि विषयमें समान दृष्टि रखना, अर्थात् अपने स्त्रीपुत्रादिकी भांति ही उनकी भी आसना वासना करना. तथा सौतेले भाईके स्त्रीपुत्रादिकोंका मानआदि तो अपने स्त्रीपुत्रादिकोंसे भी अधिक रखना. कारण कि, सौतेले भाईके सम्बन्धमें तनिक भी अंतर प्रकट हो तो उनके मन बिगड़ते हैं, व लोकमें भी अपवाद होता है. इसी प्रकार अपने पितासमान, मातासमान तथा भाईसमान लोगोंके सम्बन्धमें भी उनकी योग्यतानुसार उचित-आचरण ध्यानमें लेना चाहिये. कहा है कि-

१ उत्पन्न करनेवाला, २ पालन करनेवाला, ३ विद्या देनेवाला, ४ अन्नवस्त्र देनेवाला और ५ जीवको बचानेवाला, ये पांचों पिता कहलाते हैं. १ राजाकी स्त्री, २ गुरुकी स्त्री, ३ अपनी स्त्रीकी माता, ४ अपनी माता और ५ धायमाता, ये पांचों “ माता ” कहलाती हैं । १ सहोदर भाई, २ सहपाठी, ३ मित्र, ४ रुग्णावस्थामें शुश्रूषा करनेवाला और ५ मार्गमें बातचीत करके मित्रता करनेवाला, ये पांचों “ भाई ” कहलाते

हैं । भाइयोंने परस्पर धर्मकृत्यकी भली प्रकार याद कराना कहा है कि-

भवाग्निहमज्जमि पमायजलणजलिअमि मोहनिदाए ।

उट्ठवइ जो सुअंतं, सो तस्स जणो परमबंधू ॥ १ ॥

जो पुरुष, प्रमादरूप अग्निसे जलते हुए संसाररूप घरमें मोहनिद्रासे सोते हुए मनुष्यको जगाता है वह उसका परमबन्धु कहलाता है । भाइयोंकी पारस्परिक प्रीति ऊपर भरतका दूत आने पर श्रीकृष्णभदेवभगवानको साथ पूछनेको गये हुए अट्टानवे भाइयोंका दृष्टान्त जानो. मित्रके साथ भी भाईके समान बर्ताव करना चाहिये. (१२)

इय भाइगयं उच्चिअं, पणइणिविसयंपि किमि जंपेमो ॥

सत्पणयवयणसम्माणेण तं अभिमुहं कुणइ ॥ १३ ॥

अर्थ:-इस प्रकार भाईके सम्बन्धमें उचितआचरण कहा. अब भार्याके विषयमें भी कुछ कहना चाहिये. पुरुषने प्रीतिवचन कह योग्य मान रख अपनी स्त्रीको स्वकार्यमें उत्साहित रखना. पतिका प्रीतिवचन एक संजीवनी विद्या है. उससे शेष सम्पूर्ण प्रीति सजीव होजाती है. योग्य अवसरमें प्रीतिवचनका उपयोग किया होवे तो वह दानादिकसे भी अत्यधिक गौरव उत्पन्न करता है. कहा है कि-

न सद्वाक्यात्परं वश्यं, न कलायाः परं धनम् ।

न हिंसायाः परोऽधर्मो, न सन्तोषात्परं सुखम् ॥ १ ॥

प्रीतिवचनके सिवाय अन्य वशीकरण नहीं, कलाकौशलके समान अन्य धन नहीं, हिंसा के समान अन्य अधर्म नहीं और सन्तोषके समान अन्य सुख नहीं है. (१३)

सुस्तूसाइ पयट्टइ, वत्याभरणाइ समुचिअं देइ ॥

नाडयपिच्छणयाइसु, जणसंमदेसु वारेइ ॥ १४ ॥

अर्थ:-पुरुष अपनी स्त्रीको स्नान कराना, पग दावना-आदि अपनी कायसेवामें प्रवृत्त करे. देश, काल, अपने कुटुम्ब धन आदिका विचार करके उचित वस्त्र, आभूषणआदि उसको दे, तथा जहां नाटक. नृत्य आदि होते हैं ऐसे बहुतसे लोगोंके मेलेमें जानेको उसे मना करे। अपनी कायसेवामें स्त्रीको लगानेका कारण यह है कि, उससे पतिके ऊपर उसका पूर्ण विश्वास रहता है, उसके मनमें स्वाभाविक प्रेम उत्पन्न होता है, जिससे वह कभी भी पतिकी इच्छाके प्रतिकूल कार्य नहीं करती. आभूषणादि देनेका कारण यह है कि, स्त्रियोंके आभूषणादिसे सुशोभित रहनेसे गृहस्थकी लक्ष्मी बढ़ती है, कहा है कि--
श्रीमङ्गलात्मभवति, प्रागल्भ्याच्च प्रवर्द्धते ।

दाक्ष्यान्तु कुरुते मूलं, संयमात्प्रतितिष्ठति ॥ १ ॥

लक्ष्मी मांगलिक करनेसे उत्पन्न होती है. धीरजसे बढ़ती है, दक्षतासे दृढ़ होकर रहती है और इन्द्रियोंको वशमे रखनेसे स्थिर रहती है. नाटकआदि मेलोंमें स्त्रियोंको न जानें देनेका कारण यह है कि, वहां हलके लोगोंकी कुचेष्टाएं मर्यादा रहित

हलके वचन आदि देखने सुननेसे स्त्रियोंका समूल निर्मल मन वर्षाक्रतुके पवनसे दर्पणकी भांति प्रायः बिगड़ता है. (१४)

कंभइ रथणिपयागं, कुसीलपासंडिसंगमवणेइ ॥

गिहकज्जेसु निओअइ, न विओअइ अप्पणा सद्धि ॥१५॥

अर्थ:-पुरुष अपनी स्त्रीको रात्रिमें बाहर राजमार्गमें अथवा किसीके घर जानेको मना करे, कुशील तथा पाखंडीकी संगतिसे दूर रखे, देना लेना सगे सम्बन्धियोंका आदर मान करना, रसोई करना इत्यादि गृहकार्यमें अवश्य लगावे, अपनेसे अलग अकेली न रखे । स्त्रीको रात्रिमें बाहर जानेसे रोकनेका कारण यह है कि, मुनिराजकी भांति कुलीनस्त्रियोंको भी रात्रिमें बाहिर हिरना फिरना घोर अनर्थकारी है । धर्मसम्बन्धी आवश्यक-आदि कृत्यके लिये भोजना होवे तो माता, बहिन आदि सुशील-स्त्रियोंके समुदाय ही के साथ जानेकी आज्ञा देना चाहिये ।

स्त्रीके गृहकृत्य इस प्रकार हैं:-

बिलौना आदि उठाना, गृह साफ करना, पानी छानना, चूल्हा तैयार करना, बरतन (बासन) धोना, धान्य पीसना तथा कूटना, गायें दुहना, दही बिलौना, रसोई बनाना, उचित रीतिसे अन्न परोसना, बरतन (बासन) आदि ठीक करना, तथा सासू, भर्तार, ननद, देवर आदिका विनय करना आदि. स्त्रियोंको गृहकृत्योंमें अवश्य लगानेका कारण यह है कि, ऐसा न करनेसे स्त्री सर्वदा उदास रहती है. स्त्रियोंके उदासीन होनेसे गृह-

कृत्य बिगडते हैं। स्त्रियोंको कोई उद्यम न हो तो वे चपल-स्वभावसे बिगडती हैं। गृहकृत्योंमें स्त्रियोंका मन लगा देने हीसे उनकी रक्षा होती है। श्रीउमास्वातिवाचकजीने प्रशमरति-ग्रन्थमें कहा है कि, पुरुषने पिशाचका आख्यान सुनकर और कुल स्त्रीका निरन्तर रक्षण हुआ देखकर अपनी आत्माको संयमयोगसे से सदैव उद्यममें रखना. स्त्रीको अपनेसे अलग नहीं रखना यह कहा इसका कारण यह है कि, प्रायः परस्पर दर्शन ही में प्रेमका वास है. कहा है कि—देखनेसे, वार्तालाप करनेसे, गुणके वर्णनसे, इष्टवस्तु देनेसे, और मनके अनुसार बर्त्ताव करनेसे पुरुषमें स्त्रीका प्रेम दृढ़ होता है. न देखनेसे, अतिशय देखनेसे, मिलने पर न बोलनेसे, अहंकारसे और अपमानसे प्रेम घटता है। पुरुष नित्य देशाटन करता रहे तो स्त्रीका मन उस परसे उतर जाता है, और उससे कदाचित् वह अनुचित कृत्य भी करने लगती है, इसलिये स्त्रीको अपनेसे अलग न रखना चाहिये। (१५)

अवमाणं न पयंसइ, खल्लिए सिक्खेइ कुविअमणुणेइ ॥

घणहाणिवुद्धिधरमंतवइयरं पयडइ न तसि ॥ १६ ॥

अर्थः—पुरुष अकारण क्रोधादिकसे अपनी स्त्रीके सन्मुख “ तेरे ऊपर और विवाह कर लूंगा ” ऐसे अपमानजनक वचन न प्रकट करे, कुछ अपराध भी हुआ हो तो उसको एकान्तमें ऐसी शिक्षा दे कि जिससे वह पुनः वैसा अपराध न करे. विशेष

क्रोधित होगई हो तो उसे समझावे, धनके लाभहानिकी बात तथा घरमें की गुप्त सलाह उसके सन्मुख प्रकट न करे। “ तेरे ऊपर और विवाह कर लूंगा ” ऐसे वचन न बोलनेका यह कारण है कि, कौन ऐसा मूर्ख है, जो स्त्रीके ऊपर क्रोध आदि आनेसे दूसरी स्त्रीसे विवाह करनेके संकटमें पड़े ? कहा है कि—

बुभुक्षितो गृहाद्याति, नाप्नोत्यम्बुच्छटामपि ।

अक्षालितपः शोते, भार्याद्वयवशो नरः ॥ १ ॥

वरं कारागृहे क्षिप्तो, वरं देशान्तभ्रमी ।

वरं नरकसञ्चारी, न द्विभार्यः पुनः पुमान् ॥ २ ॥

दो स्त्रियोंके वशमें पड़ा हुआ मनुष्य घरमें से भूखा बाहर जाता, घरमें पानीकी एक बूंद भी नहीं पाता और पैर धोये बिना ही सोता है । पुरुष कारागृहमें पटक दिया जाय, देशान्तरमें भटकता रहे अथवा नर्कवास भोगे वह कुछ ठीक है, परन्तु दो स्त्रियोंका पति होना ठीक नहीं। कदाचित् किसी योग्य-कारणसे पुरुषको दो स्त्रियोंसे विवाह करना पड़े तो उन दोनोंमें तथा उनकी संतानमें सदैव समदृष्टि रखना। कभी किसीकी पारी खंडित न करना। कारण कि सोतकी पारी तोड़कर अपने पतिके साथ कामसंभोग करनेवाली स्त्रीको चौथे व्रतका अतिचार लगता है ऐसा कहा है । २ विशेष क्रोधित होने पर उसे समझानेका कारण यह है कि, वैसा न करनेसे कदाचित् वह सोमदत्तकी स्त्रीकी भांति अचानक कुएमें जा गिरे अथवा ऐसा

ही कुछ अन्य अपकृत्य करे, इसीलिये स्त्रियोंके साथ सदा नरमाईका बर्ताव करना चाहिये कभी भी कठोरता न बताना. कहा है कि, “पाञ्चालः स्त्रीषु मार्दवम्” (पाञ्चाल ऋषि कहते हैं कि, स्त्रियोंसे नरमाई रखना.) नरमाई ही से स्त्रियां वशमें होती हैं. कारण कि, इसी रीतिसे उनसे सर्व कार्य सिद्ध हुए दृष्टि आते हैं; और यदि नरमाई न होवे तो कार्यसिद्धीके बदले कार्यमें बिगाड़ हुआ भी अनुभवमें आता है. निर्गुणी स्त्री होवे तो अधिक नरमाईसे काम लेनेकी चिन्ता रखना चाहिये. देहमें जीव है तब तक मजबूत बेड़ीके समान साथ लगी हुई उस निर्गुणी स्त्री ही से किसी भी प्रकारसे गृहसूत्र चलाना तथा सर्वप्रकारसे निर्वाह कर लेना चाहिये. कारण कि, “गृहिणी वही घर” ऐसा शास्त्रवचन है । ३ “धनके लाभहानिकी बात न करना” ऐसा कहनेका कारण यह है कि, पुरुष धनका लाभ स्त्रीसंमुख प्रकट करे, तो वह अपरिमित द्रव्य खर्च करने लगे और उसके सन्मुख धनहानिकी बात करे तो वह तुच्छतासे जहां तहां वह बात प्रकट कर पतिकी चिरकाल संचित बढप्पन गुमावे । ४ घरमेंकी गुप्त सलाह उसके सन्मुख न प्रकट करनेका कारण यह है कि, स्त्री स्वभाव ही से कोमल हृदय होनेसे उसके मुंहमें गुप्त बात रह नहीं सकती, वह अपनी सहेलियों आदिके सन्मुख प्रकट कर देती है, जिससे निश्चित किये हुए भावी-कार्य निष्फल हो जाते हैं ।

कदाचित् कोई गुप्त बात उसके मुखसे प्रकट होनेसे राज्यद्रोह का विवाद भी खड़ा हो जावे, इसीलिये घरमें स्त्रीका मुख्य चलन नहीं रखना चाहिये । कहा है कि— “स्त्री पुंवच्च प्रभवति यदा तद्वि गेहं विनष्टम्” (स्त्री पुरुषके समान प्रबल होजावे तो वह घर धूलमें मिल गया ऐसा समझो.) इस विषय पर एक दृष्टान्त कहते हैं, कि:—

किसी नगरमें मंथर नामक एक कोली था । वह बुननेकी लकड़ीआदि बनानेके लिये जंगलमें लकड़ी लेने गया । वहां एक शीसमके वृक्षको काटते हुए उसके अधिष्ठायक व्यंतरने मना किया, तो भी वह साहसपूर्वक तोड़ने लगा, तब व्यंतरने उसको कहा—“ वर मांग ” कोली स्त्रीलंपट होनेके कारण स्त्रीको पूछने गया । मार्गमें उसका एक नाई मित्र मिला. उसने सलाह दी कि “ तू राज्य न मांग । ” तो भी उसने स्त्रीको पूछा । स्त्री तुच्छ स्वभावकी थी इससे एक वचन उसे स्मरण हुआ कि—

प्रवर्धमानः पुरुषस्त्रयाणामुपघातकृन् ।

पूर्वोपाजिहमित्राणां, दाराणामथ वेदमनाम् ॥१॥

अर्थ:— पुरुष लक्ष्मीके लाभसे विशेष वृद्धिको प्राप्त हो जावे तो अपने पुराने मित्र, स्त्री और घर इन तीन वस्तुओंको छोड़ देता है । यह विचार कर उसने पतिसे कहा कि, अत्यन्त दुखदायी राज्य लेकर क्या करना है ? दूसरे दो हाथ और एक

मस्तक मांगो ताकि तुम दो वस्त्र एकही साथ बनालोगे । ” तदनन्तर कोलीने स्त्रीके कथनानुसार वर मांगा व व्यंतरने दे दिया, परन्तु लोगोंने ऐसे विलक्षण स्वरूपसे उत कोलीको ग्राममें प्रवेश करते देख राक्षस समझकर लकड़ी पत्थर आदि-से मार डाला । कहा है कि—

जिसे स्वयं बुद्धि नहीं तथा जो मित्रकी सलाह भी नहीं मानता तथा स्त्रीके वशमें रहता है, वह मंथरकोलीकी भांति नष्ट होजाता है । ऐसी बातें क्वचित् ही देखनेमें आती हैं इसलिये सुशिक्षित और बुद्धिशाली स्त्री होवे तो उसकी सलाह मसलत लेनेसे लाभ ही होता है । इस विषयमें अनुपमदेवी और वस्तुपालतेजपालका उत्कृष्ट उदाहरण है । (१६)

सुकुलुग्गयाहिं परिणयंवयाहिं निच्छम्मधम्मनिरयाहिं ॥

सयणरमणीहिं पीइं, पाउणइ समाणधम्माहिं ॥ १७ ॥

अर्थ:— श्रेष्ठ कुलमें उत्पन्न हुई, प्रौढावस्थावाली, कष्ट रहित, धर्मरत, साधार्मिक और अपने सगे सम्बन्धकी स्त्रियोंके साथ अपनी स्त्रीकी प्रीति कराना चाहिये । श्रेष्ठकुलोत्पन्न स्त्रीके साथ संगति करनेका कारण यह है कि, नीचकुलमें उत्पन्न हुई स्त्रीके साथ रहना यह कुल-स्त्रियोंको अपवादकी जड है । (१७)

रोगाइसु नोविक्खइ, सुसहाओ होइ धम्मकज्जेसु ॥

एमाइ पणइणिगयं, उच्चिअं पाएण पुरिसस्स ॥ १८ ॥

अर्थः— स्त्रीको रोगादिक होवे तो पुरुष उसकी उपेक्षा न करे, तपस्या, उजमणा, दान, देवपूजा, तीर्थयात्रा आदि धर्मकृत्योंमें स्त्रीका उत्साह बढ़ाकर उसे द्रव्य आदि देकर उसकी सहायता करे, अंतराय कभी न करे । कारण कि, पुरुष स्त्रीके पुण्यका भागीदार है । तथा धर्मकृत्य कराना यही परम उपकार है । इत्यादि पुरुषका स्त्रीके सम्बन्धमें उचित आचरण जानो । (१८) अब पुत्रके सम्बन्धमें पिताका उचित आचरण कहते हैं—

पुत्तं पइ पुण उचिअं, पिउणो लालेइ बालभावंभि ॥

उम्मिलिअबुद्धिगुणं, कलसु कुसलं कुणइ कमसो ॥ १९ ॥

पिता बाल्यावस्थामें पौष्टिक अन्न, स्वेच्छासे हिरना फिरना, नानाभांतिके खेल आदि उपायोंसे पुत्रका लालन पालन करे, और उसकी बुद्धिके गुण खिलें तब उसे कलाओंमें कुशल करे । बाल्यावस्थामें पुत्रका लालन पालन करनेका यह कारण है कि, उस अवस्थामें जो उसका शरीर संकुचित और दुबला रहे तो वह फिर कभी भी पुष्ट नहीं होसका, इसीलिये कहा है कि—

लालयेत्पञ्च वर्षाणि, दश वर्षाणि ताडयेत् ।

प्राप्ते षोडशमे वर्षे, पुत्रं मित्रमिवाचरेत् ॥ १ ॥

पुत्रका पांच वर्षकी अवस्था होने तक लालन पालन करना, उसके बाद दस वर्ष तक अर्थात् पन्द्रह वर्षकी अवस्था तक ताडना करना और सोलहवां वर्ष लग जाने पर पिताने पुत्रके साथ मित्रकी भांति बर्ताव करना चाहिये । (१९)

गुरुदेवधर्मसुहिसयणपरिचयं कारवेइ निचवंपि ॥

उत्तमलोएहिं समं, मिच्छिभावं रयावेई ॥ २० ॥

अर्थ— पिताने पुत्रको गुरु, देव, धर्म, सुहृद् तथा स्व-जनोंका सदैव परिचय कराना । तथा श्रेष्ठ मनुष्योंके साथ उसकी मित्रता करना । गुरुआदिका परिचय बाल्यावस्था ही में हो जानेसे बल्लकलीरि की भांति मनमें सदा उत्तम ही वासनाएं रहती हैं । उच्चजातिके कुलीन तथा सुशीलमनुष्योंके साथ मित्रता की होय तो कदाचित् भाग्यहीनतासे धन न मिले, तथापि आगन्तुक अनर्थ तो निस्सन्देह दूर होजाते हैं । अनार्य-देशनिवासी होने पर भी आर्द्रकुमारको अभयकुमारकी मित्रता उसी भवमें सिद्धिका कारण हुई । (२०)

गिण्हावेइ अ पाणिं, समाणकुलजन्मरूवइआणं ॥

गिहभारंमि निजुंजइ, पट्टत्तणं विअरइ कमेण ॥ २१ ॥

अर्थ—पिताने पुत्रका कुल, जन्म व रूपमें समानता रखने-वाली कन्याके साथ विवाह करना, उसे घरके कार्यभारमें लगाना तथा अनुक्रमसे उसको घरकी मालिकी सौंपना. “ कुल जन्म व रूपमें समानता रखनेवाली कन्याके साथ विवाह करना ” यह कहनेका कारण ऐसा है कि, अनमेल पतिपत्नी-का योग होय तो उनका वह गृहवास नहीं, विटंबना मात्र है । तथा पारस्परिक प्रेम कम होजाय तो संभव है कि दोनों अनुचित कृत्य करने लगें । जैसा कि:—

राजा भोजके राज्यान्तर्गत धारानगरीमें एकघरके अंदर अत्यन्त कुरूप और निर्दयी पुरुष तथा अतिरूपवती व गुणवान स्त्री थी। दूसरे घरमें इससे प्रतिकूल याने पुरुष उत्तम और स्त्री कुरूप थी। एक समय दोनों जनोंके घरमें चोरोंने खात्र पाडा (सेंध लगाई) और दोनों बेजोड़ोंको देखकर कुछ न बोलते सुरूप स्त्री सुरूप पुरुषके पास और कुरूप स्त्री कुरूप पुरुषके पास बदल दी। जहां सुरूपको सुरूपका योग हुआ, वे दोनों स्त्री पुरुष पहिले बहुत उद्विग्न थे अतः बहुत हर्षित हुए, परन्तु जिसको कुरूप स्त्री मिली उसने राजसभामें विवाद चलाया। राजाने डौंडी पिटवाई, तब चोरने आकार कहा कि, “ हे महाराज ! रात्रिमें परद्रव्यका हरण करनेवाले मैंने विधाताकी भूल सुधारी व एक रत्नका दूसरे रत्नके साथ योग किया। ” चोरकी बात सुनकर हंसते हुए राजाने वही बात कायम रखी।

विवाहके भेद आदि आगे कहे जावेंगे। उसे घरके कार्य-भारमें लगाना ” ऐसा कहनेका यह कारण है कि, घरके कार्य-भारमें लगा हुआ पुत्र सदैव घरकी चिंतामें रहनेसे स्वच्छन्दी अथवा मदोन्मत्त नहीं हो जाता। वैसे ही धन कमानेके कष्टका अनुभव होजानेसे अनुचित व्यय करनेका विचार भी न कर सके। “ घरकी मालिकी सौंपना ” यह कहा, उसका कारण यह है कि, बड़े पुरुषोंके छोटोंके सिर पर योग्य वस्तु सौंप देने-

से छोटीकी प्रशंसा होती है। घरका कार्यभार योग्य परीक्षा करके छोटा पुत्र योग्य होवे तो उसीके सिर पर सौंपना। कारण कि, ऐसा करने ही से निर्वाह होता है, तथा इससे शोभा-आदि भी बढ़ना संभव है। प्रसेनजित राजाने प्रथम समस्त-पुत्रोंकी परीक्षा करके सौवें (सबसे छोटे) पुत्र श्रेणिकको राज्य सौंपा। पुत्र ही की भांति पुत्री, भतीजे आदिके सम्बन्ध-में भी योग्यतानुसार उचितआचरण जानो। ऐसा ही पुत्रवधू-के लिये समझो। जैसे धनश्रेष्ठीने चावलके पांच दाने दे परीक्षा करके चौथी बहू रोहिणी ही को घरकी स्वामिनी बनाइ। तथा उज्जिता, भोगवती और रक्षिता इन तीनों बड़ी बहुओं-को अनुक्रमसे गोबर आदि निकालनेका, रसोई बनानेका तथा भंडारका काम सौंपा। (२१)

पञ्चकसं न पञ्चसइ, वसणोवहयाण कहइ दुरवत्थं ॥

आयं वयमवसेसं च सोहए सयमिमेहितो ॥ २२ ॥

अर्थ:-पिता पुत्रकी उसके सन्मुख प्रशंसा न करे, यदि पुत्र किसी व्यसनमें पड़ जावे तो उसे द्यूतादिव्यसनसे होने-वाली, धननाश, लोकमें अपमान, तर्जना, ताड़ना आदि दुर्दशा सुनावे, जिससे वह व्यसनोसे बचे, तथा लाभ, स्वर्च व शिलक तपासता रहे, जिससे पुत्र स्वेच्छाचारी भी न होने पावे तथा अपना बड़प्पन भी रहे. " पुत्रकी उसके सन्मुख प्रशंसा न करे. " ऐसा कहनेका यह हेतु है कि, प्रथम तो पुत्रकी प्रशंसा करना ही नहीं, कहा है कि--

प्रत्यक्ष गुरवः स्तुत्याः, परोक्षे मित्रबान्धवाः ।

कर्मान्ते दासभृत्याश्च, पुत्रा नैव मृताः स्त्रियः ॥ १ ॥

गुरुकी उनके सन्मुख, मित्र तथा बान्धवोंकी उनके पीछे, नौकर दास आदिकी उनका काम अच्छा होने पर तथा स्त्रियोंकी उनके मर जानेके अनन्तर स्तुति करना चाहिये, परन्तु पुत्रकी स्तुति तो बिलकुल ही न करना. कदाचित् इसके बिना न चले तो स्तुति करना पर प्रत्यक्ष न करना, कारण कि, इससे उनकी गुणवृद्धि रुक जाती है व वृथा अहंकार पैदा होता है. ॥ २२ ॥

दंसेह नरिंदसभं देसंतरभावपयडणं कुणइ ॥

इच्छाइ अवच्छगयं, उच्चिअं पिउणो मुणेअव्वं ॥२३॥

अर्थः--पिताने पुत्रको राजसभा बताना, तथा विदेशके आचार और व्यवहार भी स्पष्टतः बताना. इत्यादि पिताका पुत्रके सम्बन्धमें उचितआचरण है। राजसभा दिखानेका कारण यह है कि, राजसभाका परिचय न होवे तो किसी समय दुर्दैव वश यदि कोई आकस्मिक संकट आ पड़े तब वह कायर होजाता है तथा परलक्ष्मीको देखकर जलनेवाले शत्रु उसको हानि पहुंचाते हैं. कहा है किः—

गन्तव्यं राजकुले, द्रष्टव्या राजपूजिता लोकाः ।

यद्यपि न भवन्त्यर्थास्तथाप्यनर्था विलीयन्ते ॥ १ ॥

राजदरबारमें जाना तथा राज्यमान्य लोगोंको देखना चाहिये. यद्यपि उससे कोई अर्थलाभ नहीं होता तथापि

अनर्थका नाश तो होता ही है. इसलिये राजसभाका परिचय अवश्य कराना चाहिये. विदेशके आचार तथा व्यवहार स्पष्टतः बतानेका कारण यह है कि, परदेशके आचारव्यवहारका ज्ञान न होवे और कारणवश कहीं जाना पड़े तो वहाँके लोग इसे परदेशी समझकर सहज ही में व्यसन-के जालमें फंसा दें. अतएव प्रथमही से भलीभांति समझा देना चाहिये. पिताकी तरह माताने भी पुत्र तथा पुत्रवधूके सम्बन्धमें यथासम्भव उचितआचरण पालन करना. माताने सौतेले लड़केके सम्बन्धमें विशेष उचितआचरण पालना. कारण कि, वह प्रायः सहज ही में भिन्नभाव समझने लग जाता है. इस विषयमें सौतेली माकी दी हुई उडदकी रावड़ी ओकनेवाले (बमन करनेवाले) पुत्रका उदाहरण जानो. ॥ २३ ॥

सयणाण समुचिअभिणं, जं ते निअगेहवुद्धिकजेसु ॥

संमाणिज्ज सयावि द्दु, करिज्ज हाणीसुवि समीवे ॥२४॥

अर्थः--पिता, माता तथा स्त्रीके पक्षके लोग स्वजन कहलाते हैं. उनके सम्बन्धमें पुरुषका उचितआचरण इस प्रकार है. अपने घरमें पुत्रजन्म तथा विवाह सगाई प्रमुख मंगल कार्य होवे तब उनका सदा आदर सत्कार करना, वैसेही उनका किसीप्रकारकी हानि होजावे तो अपने पास रखना.

सयमवि तेसि वसणूसवेसु होअन्नमंतिअंमि सया ॥

स्त्रीणविह्वाण रोगाचरण कायन्नमुद्धरणं ॥ २५ ॥

अर्थः--स्वजनो पर कोई संकट आवे, अथवा उनके यहां कोई उत्सव होवे तो स्वयं भी सदैव वहां जाना. तथा वे निर्धन अथवा रोगातुर होजावें तो उनका उक्तसंकटमेंसे उद्धार करना. कहा है कि—

आतुरे व्यसने प्राप्ते, दुर्भिक्षे शत्रुसंकटे ।

राजद्वारे श्मशाने च, यस्तिष्ठति स बान्धवः ॥ १ ॥

उत्सव, रोग, आपदा, दुर्भिक्ष, शत्रुविग्रह, राजद्वार और श्मशानमें जो साथ रहता है वही बान्धव कहलाता है । स्वजनका उद्धार करना वास्तवमें अपनाही उद्धार है. कारण कि जैसे रहेंगे वैसे क्रमशः भरते व खाली होते हैं वैसेही मनुष्य भी धनी व निर्धन होता है. किसीकी भी धनीअवस्था वा दरिद्रता चिरकाल तक स्थिर नहीं रहती. इसलिये कदाचित् दुर्देववश अपनी भी हीनावस्था आजावे तो पूर्वमें जिस पर अपनने उपकार किया हो वही आपत्तिसे अपना उद्धार करता है. इसलिये समय पर स्वजनोंका संकटमेंसे उद्धार अवश्य करना चाहिये. ॥ २५ ॥

क्वाइज पिट्टिमंसं, न तेसि कुज्जा न सुक्कलहं च ॥

तदभिच्छेहि मित्तिं, न करिज्ज कग्गिज्ज मिच्छेहि ॥२६॥

अर्थः--पुरुषने स्वजनोंकी पीठ पर निन्दा न करना; उनके साथ हास्यआदिमें भी शुष्कवाद न करना, कारण कि, उससे

चिरसंचित प्रीति भी टूट जाती है. उनके शत्रुओंके साथ मित्रता न करे व उनके मित्रोंसे मित्रता करे. (२६)

तयभावं तमोहं, न वदज्ज चहुज्ज अत्थसम्बन्धं ॥

गुरुदेवधर्ममकज्जेसु एकचित्तेहिं होअब्बं ॥ २७ ॥

अर्थ:- पुरुषने स्वजन घरमें न होय, और उसके कुटुम्ब-की केवल स्त्रियां ही घरमें होवें, तो उसके घरमें प्रवेश न करना, स्वजनोंके साथ द्रव्यका व्यवहार न करना, तथा देवका, गुरुका अथवा धर्मका कार्य होवे तो उनके साथ एकचित्त होना. स्वजनोंके साथ द्रव्यका व्यवहार न करनेका कारण यह है कि, उनके साथ व्यवहार करते समय तो जरा ऐसा ज्ञात होता है कि प्रीति बढ़ती है; परन्तु परिणाममें उससे प्रीतिके बदले शत्रुता बढ़ती है. कहा है कि—

यदीच्छेद्विपुलां प्रीतिं, त्रीणि तत्र न कारयेत् ।

वाग्वादमर्थसम्बन्धं, परोक्षे दारदर्शनम् (भाषणम्) ॥१॥

जहां विशेष प्रीति रखनेकी इच्छा होवे वहां तीन बातें न करना. एक वादविवाद, दूसरी द्रव्यका व्यवहार और तीसरी उनकी अनुपस्थितिमें उनकी स्त्रीसे भाषण, धर्मादिक कार्यमें एकचित्त होनेका कारण यह है कि, संसारीकाममें भी स्वजनोंकी साथ ऐक्यता रखनेहीसे उत्तम परिणाम होता है. तो फिर जिनमंदिर-आदि देवादिकके कार्यमें तो अवश्यही ऐक्यता चाहिये । क्योंकि, ऐसे कार्य तो सर्वसंघके आधार पर हैं. और सर्वसंघकी

ऐक्यता ही से निर्वाह तथा शोभा आदि सम्भव है. इसलिये वे कार्य सबकी सम्पत्तिसे करना चाहिये । स्वजनोंके साथ ऐक्यता रखनेके ऊपर पांच अंगुलियोंका उत्कृष्ट उदाहरण है, यथा:—

प्रथम तर्जनी (अंगूठेके पासकी) अंगुली लिखनेमें तथा चित्रकलाआदि प्रायः सर्वकार्योंमें अग्रसर होनेसे तथा संकेत करनेमें, उत्कृष्टवस्तुका वर्णन करनेमें, मना करनेमें, चिमटी-आदि भरनेमें चतुर होनेसे अहंकारवश मध्यमा (बीचकी) अंगुलीको कहती है कि, “ तुझमें क्या गुण हैं ? ” मध्यमा बोली- “ मैं सर्व अंगुलियोंमें मुख्य, बड़ी और मध्यभागमें रहनेवाली हूं, तंत्री, गीत, तालआदि कलामें कुशल हूं, कार्यकी उतावल बतानेके लिये अथवा दोष, छलआदिका नाश करनेके हेतु चिमटी बजाती हूं, और टचकारेसे शिक्षा करने वाली हूं. ” इसी प्रकार तीसरी अंगुलीसे पूछा तब उसने कहा कि, “ देव, गुरु, स्थापनाचार्य साधर्मिकआदिकी नवांगआदिमें चन्दन पूजा, मंगलिक, स्वस्तिक, नंदावर्तआदि करनेका, तथा जल, चन्दन, वासक्षेपचूर्ण आदिका अभिमंत्रण करना मेरे आधीन है. ” पश्चात् चौथी अंगुलीको पूछा तो उसने कहा कि, “ मैं पतली होनेसे कान खुजलानाआदि सूक्ष्म काम कर सकती हूं, शरीरमें कष्ट आने पर छेदनआदि पीडा सहती हूं, शाकिनी आदिके उपद्रव दूर करती हूं, जपकी संख्याआदि

करनेमें भी अग्रसर हूं ।” यह सुन चारों अंगुलियोंने मित्रता कर अंगूठेसे पूछा कि, “ तेरेमें क्या गुण हैं ? ” अंगूठेने कहा : “ अलियो ! मैं तो तुम्हारा पति हूं ! देखो, लिखना, चित्रकारी करना, ग्रास भरना, चिमटी भरना, चिमटी बजाना, टचकार करना, मुट्ठी बांधना, गांठ बांधना, हथियार आदिका उपयोग करना, दाढी मूंछ समारना तथा कतरना, कातना, पोंछना, पीजना, बुनना, धोना, कूटना, पीसना, परोसना, कांटा निकालना, गाय आदि दुहना, जपकी संख्या करना, बाल अथवा फूल गूंथना, पुष्पपूजा करना आदि कार्य मेरे बिना नहीं होते. वैसेही शत्रुका गला पकड़ना, तिलक करना, श्रीजिनेश्वरको अमृतका पान करना, अंगुष्ठप्रक्ष करना इत्यादि कार्य अकेले मुझसे ही होते हैं. यह सुन चारों अंगुलियां अंगूठेका आश्रय कर सर्व कार्य करने लगीं. (२७)

एमाई सयणोचिअमह धम्मायरिअसमुचिअं भणिमो ॥

भत्तिबहुमाणपुब्बं, तोसिं तिसंझं पि पणिवाभो ॥ २८ ॥

अर्थ:- स्वजनके सम्बन्धमें उपरोक्त आदि उचितआचरण जानो. अब धर्माचार्यके सम्बन्धमें उचितआचरण कहते हैं. मनुष्यने नित्य तीन वक्त भक्तिपूर्वक शरीर और वचनसे सादर धर्माचार्यको वन्दना करना. (२८)

तदंसिअनीईए, आवस्सयपमुहकिच्चकरणं च ॥

धम्मोवएससवणं, तदांतिए सुद्धसद्धाए ॥ २९ ॥

अर्थः--धर्माचार्यकी बताई हुई रीतिसे आवश्यक आदि कृत्य करना तथा उनके पास शुद्धश्रद्धापूर्वक धर्मोपदेश सुनना. (२९)

आएसं बहु मज्झइ, इमेसि मणसावि कुणइ नावन्नं ॥

कंभइ अवज्जवायं, शुइवायं पयडइ सयावि ॥ ३० ॥

अर्थः--धर्माचार्यके आदेशका अत्यादर करे, उनकी मनसे भी अवज्ञा न करे. अधर्मीलोगोंके किये हुए धर्माचार्यके अवर्ण-वादको यथाशक्ति रोके, किन्तु उपेक्षा न करे, कहा है कि-सज्जनोंकी निन्दा करनेवाला ही पापी नहीं, परन्तु वह निन्दा सुननेवाला ही पापी है. तथा नित्य धर्माचार्यका स्तुतिवाद करे, कारण कि समक्ष अथवा पीठ पर धर्माचार्यकी प्रशंसा करनेसे असंख्य पुण्यानुबंधि पुण्य संचित होता है । (३०)

न हवइ छिइप्पेही, सुहिक्व अणुअत्तए सुहदुइसे ॥

पाडिणीअपच्चवायं, सव्वपयत्तेण वारेइ ॥ ३१ ॥

अर्थः--धर्माचार्यके छिद्र न देखना, सुखमें तथा दुःखमें मित्रकी भांति उनके साथ वर्ताव करना तथा प्रत्यनीकलोगों-के किये हुए उपद्रवोंको अपनी पूर्णशक्तिसे दूर करना. यहाँ कोई शंका करे कि, “ प्रमाद रहित धर्माचार्यमें छिद्र ही न होते, इसलिये ‘ उन्हें न देखना ’ ऐसा कहना व्यर्थ है. तथा ममता रहित धर्माचार्यके साथ मित्रकी भांति वर्ताव किस तरह करना ? ” इसका उत्तर “ सत्य बात है, धर्माचार्य तो प्रमाद व ममतासे

रहित ही हैं, परन्तु पृथक् २ प्रकृतिके श्रावकोंको अपनी २ प्रकृतिके अनुसार धर्माचार्यमें भी पृथक् २ भाव उत्पन्न होता है। स्थानांगसूत्रमें कहा है कि, हे गौतम ! श्रावक चार प्रकारके हैं. एक मातापिता समान, दूसरे भाईसमान, तीसरे मित्र-समान, चौथे सौतसमान. ” इत्यादि इस ग्रंथमें पहिले कहे जा चुके हैं. प्रत्यनीकलोगोंका उपद्रव दूर करनेके विषयमें कहा है कि—

साहूण चेइआण य, पडिणीअं तह अवन्नवायं च ।

जिणपवयणस्स अहिअं, सव्वत्थामेण वारेइ ॥ १ ॥

साधुओंका, जिनमंदिरका तथा विशेषकर जिनशासनका कोई विरोधी होवे, अथवा कोई अवर्णवाद बोलता हो तो सर्वशक्तिसे उसका प्रतिवाद करना. ” इस विषय पर भागीरथ नामक सगरचक्रवर्तीके पौत्रके जीव कुंभारने प्रान्त-ग्राम निवासी साठ हजार मनुष्योंके किये हुए उपद्रवसे पीडित यात्री संघका उपद्रव दूर किया, वह उत्कृष्ट उदाहरण है. (३१)

खलिअंमि चोइओ गुरुजणेण मअइ तहसि सव्वंपि ॥

चोएइ गुरुजणंपिहु, पमायखालिएसु एगंते ॥ ३२ ॥

अर्थ:-पुरुषने अपना कुछ अपराध होने पर धर्माचार्य शिक्षा दे, तब “ आपका कथन योग्य है ” ऐसा कह सर्व मान्य करना. कदाचित् धर्माचार्यका कोई दोष दृष्टिमें आवे तो

उन्हें एकान्तमें कहना कि, “ महाराज ! आपके समान चारित्र-
वन्तको क्या यह बात उचित है ? ” ३२)

कुण्ड विणओवयारं, भर्त्ताप समयसमुचिअं सव्वं ॥

गाढं गुणाणुरायं, निम्मायं वहइ हिअयंमि ॥ ३३ ॥

अर्थः—शिष्यने सन्मुख आना, गुरुके आने पर उठना,
आसन देना, पगचंपी करना, तथा शुद्ध वस्त्रपात्रआहारादि-
का दानआदि समयोचित समस्त विनय सम्बन्धी उपचार
भक्तिपूर्वक करना और अपने हृदयमें धर्माचार्य पर दृढ तथा
कण्ठ रहित अनुराग धारण करना. ३३

भावोवयारयेसिं, देसंतरिओवि सुमरइ सयवि ॥

इअ एवमाइगुरुजणसमुचिअमुचिअं मुणेयव्वं ॥३४॥

अर्थः—पुरुष विदेशमें होवे तो भी धर्माचार्यके किये हुए
सम्यक्त्वदानआदि उपकारको निरन्तर स्मरण करे. इत्यादि
धर्माचार्यके सम्बन्धमें उचितआचरण है. ॥३४॥

जत्थ सयं निवासिज्जइ, नयरे तत्थेव जे किर वसंति ॥

ससमाणवत्तिणो ते, नायरया नाम वुञ्चंति ॥ ३५ ॥

अर्थः—पुरुष जिस नगरमें रहता हो, उसी नगरमें वणि-
ग्वृत्तिसे आजीविका करनेवाले जो अन्य लोग रहते हैं. वे नागर
कहलाते हैं. ॥३५॥

समुचिअमिणमेतेतिं, जमेगचित्तेहिं सणसुहदुहेहिं ॥

ब्रसणूसबतुल्लगमागमेहिं निञ्चंपि होअव्वं ॥ ३६ ॥

अर्थः--नागरलोगोंके सम्बन्धमें उचितआचरण इस प्रकार हैंः--पुरुषने उन पर (नागरलोगों पर) दुःख आने पर स्वयं दुःखी होना, तथा सुखमें स्वयं सुखी होना. वैसेही वे संकटमें हों तो आपने भी आपत्ति ग्रसितकी भांति वर्ताव करना तथा वे उत्सवमें हों तो स्वयं भी उत्सवमें रहना. इसके विरुद्ध यदि एकही नगरके निवासी समव्यवसायी लोग जो कुसंपन्न रहें तो राज्याधिकारी लोग उनको इस भांतिमें संकटजालमें फंसाते हैं, जिस तरह कि पारधी मृगोंको. ॥ ३६ ॥

कायव्वं कज्जेऽपि हु, न इक्कमिक्केण दंसणं पटुणो ॥

कज्जो न मंतभेओ, पेसुअं परिहरेअव्वं ॥ ३७ ॥

अर्थः--बड़ा कार्य होवे तो भी अपना बड़प्पन बढ़ानेके लिये समस्तनागरोंने राजाकी भेंट लेनेके लिये पृथक् पृथक् न जाना. किसी कार्यकी गुप्त सलाह करी होवे तो उसे प्रकट न करना तथा किसीने किसीकी चुगली न करना. एक एक मनुष्य पृथक् २ राजाको मिलने जावे तो उससे एक दूसरेके मनमें वैर-आदि उत्पन्न होता है, अतएव सबने मिलकर जाना चाहिये, तथा सबकी योग्यता समान होने पर भी किसी एकको मुख्य (अगुआ) कर बाकी सबने उसके साथ रहना; राजाके हुक्म-से मंत्रीके द्वारा परीक्षा करनेके लिये दी हुई एक शय्या पर सोनेके लिये विवाद करनेवाले पांचसौ मूर्ख सुभटोंकी

भांति कुसंपसे राजाकी भेट लेने अथवा विनती करने अदिके लिये न जाना चाहिये । कहा है कि—

बहूनामप्यसाराणां, समुदायो जयावहः ।

तृणैरावेष्टिता रज्जुर्यथा नागोऽपि बध्यते ॥ १ ॥

चाहे जैसी असार वस्तु होवे तो जो बहुतसी एकत्र होजावे तो विजयी होजाती है देखो, तृणसमूहसे बनी हुई रस्सी हाथीको भी बांध रखती है. गुप्त सलाह प्रकट करनेसे कार्य भंग होजाता है तथा समय पर राजाका कोपआदि भी होता है; इसलिये गुप्त सलाह कदापि प्रकट न करना चाहिये । परस्पर चुगली करनेसे राजादि अपमान तथा समय पर दंड आदि भी कर देते हैं. तथा सम-व्यवसायी लोगोंका कुसंपसे रहना नाशका कारण है. कहा है कि—एक पेटवाले और भिन्न २ फलकी इच्छा करनेवाले भारंड पक्षीकी भांति कुसंपमें रहनेवाले लोग नष्ट होजाते हैं. जो लोग एक दूसरेके मर्मकी रक्षा नहीं करते वे सर्पकी भांति मरणान्त कष्ट पाते हैं. ॥ ३७ ॥

समुवद्विष्ट विवाए, तुलासमाणेहि चैव ठायव्वं ॥

कारणसाविक्खेहि, विट्ठणेअव्वो न नयमग्गो ॥३८॥

अर्थः—कोई विवाद आदि उत्पन्न होजावे तो तराजुके समान रहना. स्वजन सम्बन्धी तथा अपनी ज्ञातिके लोगों पर

उपकार करने अथवा रिश्तत खानेकी इच्छासे न्यायमार्गका उल्लंघन न करना. ॥ ३८ ॥

बालिहिं दुब्बलजणो, सुककराईहिं नाभिभविअव्वो ॥

थेवावराहदोसेऽवि दंडभूमिं न नेअव्वो ॥ ३९ ॥

अर्थः--प्रचललोगोंने दुर्बललोगोंको अधिक कर-राजदंड-आदिसे न सताना तथा थोडासा अपराध होने ही पर उनको एकदम दंड न करना. करआदिसे पीडित मनुष्य पारस्परिक प्रीति न होनेसे संप छोड देते हैं. संप न होनेसे बलिष्ठ लोग भी अपने झुंडसे अलग हुए सिंहकी भांति जहां तहां ही पराभव पाते हैं. इसलिये परस्पर संप रखना ही उचित है. कहा है कि-

संहतिः श्रेयसी पुंसां, स्वपक्षे तु विशेषतः ।

तुषैरपि परिभ्रष्टा, न प्ररोहन्ति तंदुब्बाः ॥ २ ॥

मनुष्योंको संप कल्याणकारी है. जिसमें भी अपने २ पक्षमें तो अवश्य ही संप चाहिये. देखो, फोतरेसे अलग हुए चावल ऊग नहीं सकते. जो पर्वतोंको फोड देता है तथा भूमिको भी फाड डालता है, उसी जलप्रवाहको तृणसमूह रोक देता है. यह संपकी महिमा है. ॥ ३९ ॥

कारणिहिं पि समं, कायव्वो ता न अत्थसम्बन्धो ॥

किं पुण पडुणा सद्धिं, अप्पाहिअं अहिहसंतेहिं ? ॥ ४० ॥

अर्थः--अपने हितकी इच्छा करनेवाले लोगोंने राजा, देव-स्थान अथवा धर्मखातेके अधिकारी तथा उनके आधीनस्थ लोगों-

के साथ लेन देनका व्यवहार न करना. तो फिर राजाके साथ तो कदापि व्यवहार न करना इसमें तो कहना ही क्या है ? राजाके अधिकारीआदिके साथ व्यवहार न करनेका कारण यह है कि, वे लोग धन लेते समय तो प्रायः प्रसन्नमुखसे वार्तालाप कर तथा उनके यहां जाने पर बैठनेको आसन, पान सुपारी आदि देकर झूठा बाह्य आडम्बर बताते हैं, तथा भलाई प्रकट करते हैं. परन्तु समय आने पर खरा लेना मांगें तो “ हमने तुम्हारा अमुक काम नहीं किया था क्या ? ” ऐसा कह अपना किया हुआ तिलके फोतरेके समान यत्किंचित् मात्र उपकार प्रकट करते हैं, और पूर्वके दाक्षिण्यको उसी समय छोड़ देते हैं. ऐसा उनका स्वभाव ही है. कहा है कि—

द्विजन्मनः क्षमा मातुर्द्वेषः प्रेम पणस्त्रियाः ।

नियोगिनश्च दाक्षिण्यमरिष्टानां चतुष्टयम् ॥ १ ॥

१ ब्राह्मणमें क्षमा, २ मातामें द्वेष, ३ गणिकामें प्रेम और ४ अधिकारियों में दाक्षिण्यता ये चारों अरिष्ट हैं. इतना ही नहीं, बल्कि उलटे देनेवालेको झूठे अपराध लगाकर राजासे दंड कराते हैं. कहा है कि—

उत्पाद्य कृत्रिमान् दोषान्, धनी सर्वत्र बाध्यते ।

निर्धनः कृतदोषोऽपि, सर्वत्र निरुपद्रवः ॥ १ ॥

लोग धनवान् मनुष्य पर झूठे दोष लगाकर उस पर उपद्रव करते हैं, परन्तु निर्धन मनुष्य अपराधी भी होवे तो भी उसे

कोई नहीं पूछता. राजाके साथ धनका व्यवहार न रखनेका कारण यह है कि, किसी सामान्य क्षत्रियसे भी अगर अपना लेना मांगे तो वह खड्ग बतलाता है, तो भला स्वभाव ही से क्रोधी ऐसे राजाओंकी क्या बात कहना ? इत्यादि समव्यय-सायी नागरलोगोंके सम्बन्धमें उचितआचरण है. समान व्यवसाय न करनेवाले नागरलोगोंके साथ भी उपरोक्त कथनानुसारही यथायोग्य बर्ताव करना चाहिये. ॥ ४० ॥

एअं परुप्परं नायराण पाएण समुचिआचरणं ॥

परतिथिआण समुचिअमह किंपि मणामि लेसेणं ॥४१॥

अर्थः--नागरलोगोंने परस्पर किस प्रकार उचितआचरण करना चाहिये सो कहा. अब अन्यदर्शनीलोगोंके साथ किस प्रकार उचितआचरण करना, वह लेशमात्र कहते हैं ॥४१॥

एएअं तिथिआणं, भिक्खट्टमुवट्ठिआण निअगेहे ॥

कायव्वमुचिआकिच्चं, विसेसओ रायमाहिआणं ॥ ४२ ॥

अर्थः--अन्यदर्शनी भिक्षुक अपने घर भिक्षाके निमित्त आवे तो उनको यथायोग्य दानआदि देना. उसमें भी राज-मान्य अन्यदर्शनी भिक्षाके लिये आवें, तो उन्हें विशेषतः दान-आदि देना. ॥ ४२ ॥

जइवि न मणंमि भत्ती, न पक्खवाओ अ तग्गयगुणेसु ॥

उचिअं गिहागएसुंति तहवि धम्मो गिहीण इमो ॥ ४३ ॥

अर्थः--यद्यपि श्रावकके मनमें अन्यदर्शनीमें भक्ति नहीं तथा उसके गुणमें भी पक्षपात नहीं; तथापि अतिथिका उचित आदर करना गृहस्थका धर्म है ॥ ४३ ॥

गेहागयागमुचिअं, वसणावडिआण तह समुद्धरणं ॥
दुडिआण दया एसो, सव्वेसिं संमओ धम्मो ॥ ४४ ॥

अर्थः--अतिथि (घर आया हुआ) के साथ उचितआचरण करना, अर्थात् जिसकी जैसी योग्यता हो उसके अनुसार उसके साथ मधुरभाषण करना, उसको बैठनेके लिये आसन देना, असनादिकके लिये निमन्त्रण करना, किस कारणसे आगमन हुआ ? सो पूछना, तथा उनका कार्य करना इत्यादि उचितआचरण हैं। तथा संकटमें पड़े हुए लोगोंको उसमेंसे निकालना और दीन, अनाथ, अंधे, बहिरे, रोगी आदि लोगों पर दया करना तथा अपनी शक्तिके अनुसार उन्हें दुःखमेंसे निकालना। यह धर्म सर्वदर्शनियोंको सम्मत है। यहां श्रावकोंको ये लौकिक उचितआचरण करनेको कहा, इसका यह कारण है कि जो मनुष्य उपरोक्त लौकिक उचितआचरण करनेमें भी कुशल नहीं वे लोकोत्तरपुरुषकी सूक्ष्मबुद्धिसे ग्रहण हो सके ऐसे जैनधर्ममें किस प्रकार कुशल हो सकते हैं?,- इसलिये धर्मार्थी-लोगोंने उचितआचरण करनेमें अवश्य निपुण होना चाहिये। और भी कहा है कि—

सञ्चत्थ उविअकरणं, गुणाणुराओ रई अ जिणवयणे ।

अगुणेषु अ मज्झत्थं, सम्मादिट्ठिरस लिंगाई ॥ १ ॥'

सब जगह उचितआचरण करना, गुणके ऊपर अनुराग रखना, दोषमें मध्यस्थपन रखना तथा जिनवचनमें रुचि रखना, ये सम्यग्दृष्टिके लक्षण हैं। समुद्र अपनी मर्यादा नहीं छोड़ते, पर्वत चलायमान नहीं होते, उसी भांति उत्तमपुरुष किसी समय भी उचितआचरण नहीं छोड़ते। इसीलिये जगद्गुरु तीर्थंकर भी गृहस्थावस्थामें मातापिताके सम्बन्धमें अभ्युत्थान (बड़े पुरुषोंके आने पर आदरसे खड़ा रहना) आदि करते हैं। इत्यादि नौप्रकारका उचितआचरण है। (४४)

अवसर पर कहे हुए उचितवचनसे बहुत गुण होता है। जैसे आंबडमंत्रीने मल्लिकार्जुनको जीतकर चौदह करोड मूल्यके मोतियोंसे भरे हुए छः मूडे (मापका पात्रविशेष), चौदह चौदह भार वजन धनसे भरे हुए बत्तीस कुंभ, श्रृंगारके एक करोड रत्न जड़ित वस्त्र तथा विषनाशक शुक्ति(सीप) आदि वस्तुएं कुमारपालके भंडारमें भरीं। जिससे उस कुमारपालने प्रसन्न हो आंबड मंत्रीको “ राजपितामह ” पदवी, एक करोड द्रव्य, चौबीस उत्तम अश्व इत्यादि ऋद्धि प्रदान की। तब मंत्रीने अपने घर तक पहुंचनेके पहिले ही मार्गमें याचकजनोंको वह सम्पूर्ण ऋद्धि बांटदी। इस बातकी किसीने जाकर राजाके पास

चुगली खाई । तो मनमें निकृष्ट अध्यवसाय आनेसे कुमारगाल-राजाने क्रोधसे आंख मंत्रीको कहा कि, “ क्या तू मेरेसे भी अधिक दान देता है ? ” उसने उत्तर दिया— “ महाराज ! आपके पिता दस गांवोंके स्वामी थे, और आपतो अठारह देश-के स्वामी हो, इसमें क्या आपकी ओरसे पिताजीकी अविनय हुई मानी जा सकती है ? ” इत्यादि उचितवचनोंसे राजाने प्रसन्न हो उसे “ राज्यपुत्र ” की पदवी व पूर्वकी अपेक्षा दूनी ऋद्धि दी । हमने भी ग्रंथान्तरमें कहा है कि, दान देते, गमन करते, सोते, बैठते, भोजन पान करते, बोलते तथा अन्य समस्त स्थानोंमें उचितवचनका बड़ा रसमय अवसर होता है । इसलिये अवसरज्ञानी पुरुष सब जगह उचितआचरण करता है । कहा है कि—

‘ औचित्यमेकमेकत्र, गुणानां कोटिरिक्तः ।

विषायते गुणग्राम, औचित्यपरिवर्जितः ॥ १ ॥’

एक तरफ तो एक उचितआचरण और दूसरी ओर अन्य करोड़ों गुण हैं । एक उचितआचरण न होवे तो शेष सर्वगुणोंका समूह विषके समान है । इसलिये पुरुषने समस्त अनुचितआचरणोंको त्याग देना चाहिये । इसी प्रकार जिन आचरणोंसे अपनी मूर्खमें गिन्ती होती है, उन सबका अनुचितआचरणोंमें समावेश होता है । उन सबका लौकिक

शास्त्रमें वर्णन किया है, तदनुसार उपकारका कारण होनेसे यहाँ भी लिखते हैं—

“ राजा ! सो मूर्ख कोनसे ? सो सुन, और उन मूर्खताके कारणोंको त्याग. ऐसा करनेसे तू इस जगत्में निर्दोषरत्नकी भांति शोभा पावेगा.

१ सामर्थ्य होते उद्यम न करे, २ पंडितोंकी सभामें अपनी प्रशंसा करे, ३ वेश्याके वचन पर विश्वास रखे, ४ दंभ तथा आडंबरका भरोसा करे, ५ जूआ, कीमियाआदिसे धन प्राप्त करनेकी आशा रखे, ६ खेतीआदि लाभके साधनोंसे लाभ होगा कि नहीं ? ऐसा शक करे, ७ बुद्धि न होने पर भी उच्च कार्य करनेको उद्यत हो, ८ बणिज होकर एकान्तवासकी रुचि रखे, ९ कर्ज करके घरबारआदि खरीदे, १० वृद्धावस्थामें कन्यासे विवाह करे, ११ गुरुके पास अनिश्चितग्रंथकी व्याख्या करे, १२ प्रकट बातको छिपानेका प्रयत्न करे, १३ चंचल स्त्रीका पति होकर ईर्ष्या रखे, १४ प्रबलशत्रुके होते हुए मनमें उसकी शंका न रखे, १५ धन देनेके पश्चात् पश्चाताप करे, १७ अपढ होते हुए उच्चस्वरसे कविता बोले, १७ बिना अवसर बोलनेकी चतुरता बतावे, १८ बोलनेके समय पर मौन धारण करे, १९ लाभके अवसर पर कलह-क्लेश करे, २० भोजनके समय क्रोध करे, २१ विशेषलाभकी आशासे धन फैलावे, २२ साधारणबोलनेमें क्लिष्ट संस्कृतशब्दोंका

उपयोग करे, २३ पुत्रके हाथमें सर्व धन देकर आप दीन हो जावे, २४ स्त्रीपक्षके लोगोंके पास याचना करे, २५ स्त्रीके साथ खेद होनेसे दूसरी स्त्रीसे विवाह करे, २७ पुत्र पर क्रोधित हो उसकी हानि करे, २७ कामीपुरुषोंके साथ स्पर्धा करके धन उड़ावे, २८ याचकोंकी करी हुई स्तुतिसे मनमें अहंकार लावे, २९ अपनी बुद्धिके अहंकारसे दूसरोंके हितवचन न सुने, ३० 'हमारा श्रेष्ठ कुल है' इस अभिमानसे किसीकी चाकरी न करे, ३१ दुर्लभ द्रव्य देकर कामभोग करे, ३२ पैसा देकर कुमार्गमें जावे, ३३ लोभीराजासे लाभकी आशा करे, ३४ दुष्टअधिकारीसे न्यायकी आशा करे, ३५ कायस्थसे स्नेहकी आशा रखे, ३६ मंत्रीके क्रूर होते हुए भय न रखे, ३७ कृतघ्नसे प्रत्युपकारकी आशा रखे, ३८ अरसिकमनुष्यके सन्मुख अपने गुण प्रकट करे, ३९ शरीर निरोगी होते भ्रमसे दवा खावे, ४० रोगी होते हुए पथ्यसे न रहे, ४१ लोभ वश स्वजनोंको छोड़ दे, ४२ जिससे मित्रके मनमेंसे राग उतर जाय ऐसे वचन बोले, ४३ लाभके अवसर पर आलस्य करे, ४४ क्रद्धिशाली होते हुए कलह क्लेश करे, ४५ जोशीके वचन पर भरोसा रखकर राज्यकी इच्छा करे, ४६ मूर्खके साथ सलाह करनेमें आदर रखे, ४७ दुर्बलोंको सतानेमें शूर-बीरता प्रकट करे, ४८ जिसके दोष स्पष्ट दीखते हैं ऐसी स्त्री पर प्रीति रखे, ४९ गुणका अभ्यास करनेमें अत्यन्त ही अल्प

रुचि रखे, ५० दूसरेका संचित किया हुआ द्रव्य उड़ावे, ५१ मान रख कर राजाके समान डौल बतावे, ५२ लोकमें राजा-
दिककी प्रकट निंदा करे, ५३ दुःख पड़ने पर दीनता प्रकट
करे, ५४ सुख आने पर भविष्यमें होनेवाली दुर्गतिको भूल
जाय, ५५ किंचित् रक्षाके हेतु अधिक व्यय करे, ५६ परीक्षाके
हेतु विष खावे, ५७ किमिया करनेमें धन स्वाहा करे, ५८ श्वय-
रोगी होते हुए रसायन खावे, ५९ अपने आपके बड़प्पनका
अहंकार रखे, ६० क्रोधवश आत्मघात करनेको तैयार होवे,
६१ निरंतर अकारण इधर उधर भटकता रहे, ६२ बाणप्रहार
होनेपर भी युद्ध देखे, ६३ बड़ोंके साथ विरोध करके हानि सहे
६४ धन थोड़ा होने पर भी विशेष आडंबर रखे, ६५ अपने
आपको पंडित समझ कर व्यर्थ बक बक करे, ६६ अपने आपको
शूरवीर समझकर किसीका भय न रखे, ६७ विशेष प्रशंसा
(मिथ्या श्लाघा) कर किसी मनुष्यको त्रास उत्पन्न करे, ६८
हंसीमें मर्मवचन बोले, ६९ दरिद्रीके हाथमें अपना धन सोपे
७० लाभका निश्चय न होते खर्च करे, ७१ अपना हिसाब
रखनेका आलस्य करे, ७२ भाग्यपर भरोसा रख कर उद्यम न
करे, ७३ दरिद्री होकर व्यर्थ बातें करनेमें समय खोवे, ७४
व्यसनासक्त होकर भोजन करना तक भूल जाय, ७५ आप
निर्गुणी होकर अपने कुलकी प्रशंसा करे, ७६ स्वर कठोर होते
हुए गीत गावे, ७७ स्त्रीके भयसे याचकको दान न दे, ७८

कृपणता करनेसे दुर्गति पावे, ७९ जिसके दोष स्पष्ट दीखते हैं उसकी प्रशंसा करे, ८० सभाका कार्य पूर्ण न होते मध्यमें उठ जावे, ८१ दूत होकर संदेशा भूल जावे, ८२ खांसीका रोग होते हुए चोरी करने जावे, ८३ यशकी इच्छासे भोजनका खर्च विशेष रखे, ८४ लोकप्रशंसाकी आशासे अल्प आहार करे, ८५ जो वस्तु थोड़ी होवे, वह अधिक खानेकी इच्छा रखे, ८६ कपटी व मधुरभाषी लोगोंके पाशमें फंस जावे, ८७ वेश्याके प्रेमीके साथ कलह करे, ८८ दो जनें कुछ सलाह करते हों वहां जावे, ८९ अपने ऊपर राजाकी सदा ही कृपा बनी रहेगी ऐसा विश्वास रखे, ९० अन्यायसे सुदशामें आनेकी इच्छा करे, ९१ निर्धन होते हुए, धनसे होनेवाले काम करने जावे, ९२ गुप्तवात लोकमें प्रकट करे ९३ यशके निमित्त अपरिचित व्यक्तिकी जमानत दे, ९४ हितवचन कहनेवालेके साथ वैर करे, ९५ सब जगह विश्वास रखे, ९६ लोकव्यवहार न जाने, ९७ याचक होकर गरम भोजन करनेकी आदत रखे, ९८ मुनि-राज होकर क्रिया पालनेमें शिथिलता रखे, ९९ कुकर्म करते शरमावे नहीं, १०० भाषण करते अधिक हंसे उसे मूर्ख जानो । इस प्रकार शत मूर्ख हैं ।

इसी प्रकार जिस कार्यसे अपना अपयश होवे वह सब त्याग देना चाहिये । विवेकविलासआदि ग्रंथमें कहा है कि— विवेकीपुरुषने सभामें बगासी (जंभाई), हिचकी,

डकार, हास्यआदि करना पडे तो मुंह ढांक कर करना तथा सभामें नाक नहीं खुतरना, हाथ नहीं मरोडना, पलांठी नहीं वालना, पग लम्बे नहीं करना व निन्दा विकथाआदि बुरी चेष्टा नहीं करना । अवसर पर कुलीनपुरुष केवल मुसकरा कर हंसी प्रकट करते हैं, खडखड हंसना अथवा अधिक हंसना सर्वथा अनुचित है । बगल बजानाआदि अंगवाद्य बजाना, निष्प्रयोजन तृणके टुकडे करना, हाथ अथवा पैरसे भूमि खोदना, नखसे नख अथवा दांत घिसना आदि चेष्टाएं अनुचित हैं । विवेकीपुरुषोंने भाट, चारण, ब्राह्मणआदि द्वारा की हुई अपनी प्रशंसा सुनकर अहंकार न करना चाहिये । तथा ज्ञानी पुरुष प्रशंसा करे तो उससे मात्र यह निश्चय करना कि अपनेमें अमुक गुण है, किन्तु अहंकार न करना । दूसरेके वचनोंका अभिप्राय बराबर ध्यानमें लेना तथा नीचमनुष्य अयोग्य वचन बोले तो उसका प्रतिवाद करनेके लिये वैसे ही वचन अपने मुखमेंसे कदापि नहीं निकालना । जो बात अतीत, अनागत तथा वर्तमानकालमें भरोसा रखनेके योग्य न हो, उसमें अपना स्पष्ट अभिप्राय नहीं प्रकट करना । किसी मनुष्यके द्वारा कोई कार्य कराना निश्चित किया हो तो उक्त कार्य उस मनुष्यके सम्मुख प्रथमहीसे किसी दृष्टान्त अथवा विशेष प्रस्तावना द्वारा प्रकट करना । किसीका वचन अपने निश्चित कार्यके अनुकूल हो तो कार्यसिद्धिके अर्थ उसे अवश्य मानना ।

जिसका कार्य अपने द्वारा न बन सकता हो उसे पहिले ही से स्पष्ट कह देना; मिथ्या वचन कहकर व्यर्थ किसीको भटकाना न चाहिये । चतुर मनुष्योंने किसीको कटु वचन न सुनाना । यदि अपने शत्रुओंको ऐसे वचन कहना पड़े तो अन्योक्तिसे अथवा अन्य किसी मिषसे कहना । जो पुरुष माता, पिता, रोगी, आचार्य, पाहुना, भाई, तपस्वी, वृद्ध, बालक, दुर्बल, वैद्य, अपनी संतति, भाईबन्धु, सेवक, बहिन, आश्रित लोग, सगे-संबंधी और मित्रके साथ कलह नहीं करता है वह तीनों लोक-को वशमें करता है । लगातार सूर्यकी ओर नहीं देखना, इसी तरह चन्द्रसूर्यका ग्रहण, बड़े कुएँका पानी और संध्याके समय आकाश न देखना । स्त्रीपुरुषका संभोग, मृगया, नग्नयुवती, जानवरोंकी क्रीडा तथा कन्याकी योनि न देखना चाहिये । विद्वानपुरुषोंको चाहिये कि अपने मुँहकी परछाई तैलमें, जलमें हथियारमें, मूत्रमें अथवा रक्तमें न देखें; कारण कि इससे आयु घटती है । स्वीकार किये हुए वचनका भंग, गई हुई वस्तुका शोक, तथा किसीकी निद्रा का भंग कदापि न करना । किसीके साथ वैर न करते बहुमतमें अपना मत देना । स्वाद रहित कार्य हो तो भी समुदायके साथ करना चाहिये । समस्त शुभ-कार्योंमें अग्रसर होना । यदि मनुष्य कपटसे भी निस्पृहता बतावे तो भी उससे फल पैदा होता है । किसीको हानि पहुँचानेसे बने ऐसा कार्य कदापि करनेको उत्सुक न होना । सु-

पात्र मनुष्योंसे कभी डाह नहीं करना । अपनी जाति पर आये हुए संकटकी उपेक्षा न करना, बल्कि आदर पूर्वक जातिका संप होवे वैसा कार्य करना । क्योंकि ऐसा न करनेसे मान्य-पुरुषोंकी मानखंडना व अपयश होता है । अपनी जातिको छोड़ कर अन्य जातिमें आसक्त होनेवाले मनुष्य कुकर्दम राजाकी भांति मरणान्त कष्ट पाते हैं । परस्परके कलहसे प्रायः ज्ञातियोंका नाश होता है, और यदि संपसे रहें तो जलमें कमलिनीकी भांति वृद्धि पाती हैं । मित्र, साधर्मी, जातिका अगुआ, गुणी तथा अपनी पुत्रहीन बहिन इतने मनुष्योंको दैववश दरिद्रता आजाने पर अवश्य पोषण करना चाहिये । जिसको बडप्पन पसंद हो, उसने सारथीका कार्य, दूसरेकी वस्तुका क्रय विक्रय तथा अपने कुलके अयोग्य कार्य करनेको उद्यत न होना चाहिये

महाभारतआदि ग्रंथोंमें भी कहा है कि— मनुष्यने ब्राह्म-मुहूर्तमें उठना और धर्म तथा अर्थका विचार करना । उदय होते हुए तथा अस्त होते हुए सूर्यको न देखना । मनुष्यने दिवसमें उत्तरदिशाको, रात्रिमें दक्षिणदिशाको और कोई आपत्ति होवे तो किसी भी दिशाको मुख करके मलमूत्रका त्याग करना । आचमन करके देवपूजाआदि करना, गुरुको वन्दना करना, इसी प्रकार भोजन करना । हे राजा ! ज्ञानीपुरुषने धन संपादन करनेके लिये अवश्य ही यत्न करना चाहिये । कारण कि धन होने ही से धर्म, कामआदि होते हैं । जितना

धन लाभ होवे उसका चतुर्थभाग धर्मकृत्यमें, चतुर्थभाग संग्रहमें और शेष दो चतुर्थभाग अपने पोषण व नित्यनैमित्तिकक्रियाओंमें लगाना चाहिये । बाल समारना, दर्पणमें मुख देखना तथा दांतन और देवपूजा करना इत्यादि कार्य दुपहर-के प्रथम ही कर लेना चाहिये । अपना हित चाहनेवाले मनुष्य-ने सदैव घरसे दूर जाकर मलमूत्र त्याग करना, पैर धोना तथा झूठन डालना । जो मनुष्य मट्टीके ढेले तोड़ता है, तृणके टुकड़े करता है, दांतसे नख उतारता है तथा मलमूत्र करनेके अनन्तर शुद्धि नहीं करता है वह इस लोकमें अधिक आयु नहीं पा सकता । टूटे हुए आसन पर नहीं बैठना, टूटा हुआ कांसी-का पात्र उपयोगमें न लेना, बाल बिखरे हुए रखकर भोजन नहीं करना, नग्न होकर नहीं नहाना, नग्न होकर नहीं सोना, अधिक समय तक हाथ आदि झूठे न रखना, मस्तकके आश्रय-में सर्व प्राण रहता है अतएव मस्तकको झूठे हाथ नहीं लगाना, मस्तकके बाल नहीं पकड़ना तथा प्रहार भी नहीं करना । पुत्र अथवा शिष्यके अतिरिक्त शिक्षाके हेतु किसीको ताड़ना नहीं करना, दोनों हाथोंसे मस्तक कभी न छुजाना तथा अकारण बारम्बार सिर न धोना । ग्रहणके सिवाय रत्रिमें नहाना अच्छा नहीं । इसी प्रकार भोजनके अनन्तर तथा गहरेपानीमें भी नहीं नहाना । गुरुका दोष न कहना, क्रोधित होने पर गुरुको प्रसन्न करना । तथा गुरुनिन्दा श्रवण नहीं करना ।

हे भारत ! गुरु, सती स्त्रियों, धर्मी पुरुषों तथा तपस्वियों-
 की हंसीमें भी निन्दा न करना चाहिये । किसीकी वस्तु न
 चुराना, किंचित्मात्र भी कटु वचन नहीं बोलना, मधुर वचन
 भी मिथ्या न बोलना, पर दोष न कहना, महापापसे पतित
 लोगोंके साथ वार्त्तालाप न करना, एक आसन पर न बैठना,
 उनके हाथका अन्न ग्रहण नहीं करना तथा उनके साथ कोई
 भी कार्य नहीं करना । चतुरमनुष्यने लोकमें निन्दा पाये हुए
 पतित, उन्मत्त, बहुतसे लोगोंके साथ बैर करनेवाले और मूर्ख-
 के साथ मित्रता नहीं करना तथा अकेले मार्ग प्रवास न करना,
 हे राजा ! भयंकर रथमें न बैठना, किनारे पर आई हुई छाया-
 में न बैठना तथा आगे होकर जलके वेगके सन्मुख न जाना ।
 जलते हुए घरमें प्रवेश न करना, पर्वतकी चोटी पर न चढ़ना,
 मुख ढाँके बिना जंभाई, खांसी तथा श्वास न लेना । चलते
 समय ऊंची, इधर उधर तथा दूर दृष्टि न रखना, पैरके आगे
 चार हाथके बराबर भूमि पर दृष्टि रखकर चलना । अधिक न
 हंसना, सीटी आदि न बजाना, शब्द करता वातनिसर्ग न
 करना, दांतसे नख न तोड़ना तथा पग पर पग चढ़ाकर न
 बैठना, दाढ़ी मूँछके बाल न चाबना, बारंबार होंठ
 दांतमें न पकड़ना, झूठा अन्नादि भक्षण न करना तथा
 किसी भी स्थानमें चोरमार्गसे प्रवेश न करना । उन्हाले
 तथा चौमासेकी ऋतुमें छत्री लेकर तथा रात्रिमें अथवा वनमें

जाना हो तो लकड़ी लेकर जाना । जूते, वस्त्र और माला ये तीनों वस्तुएं किसीकी पहिरी हुई हों तो धारण नहीं करना । स्त्रियोंमें ईर्ष्या नहीं करना तथा अपनी स्त्रीका यत्नपूर्वक रक्षण करना, ईर्ष्या रखनेसे आयुष्य घटता है, अतएव उसका त्याग करना । हे महाराज ! संध्यामें जलका व्यवहार, दही और सत्तू वैसे ही रात्रिमें भोजनका त्याग करना, चतुर मनुष्यने अधिक देर तक घुटने ऊंचे करके नहीं सोना, गोदोहिका (उंकड़) आसनसे नहीं बैठना तथा पगसे आसन खैचकर भी न बैठना । बिल्कुल प्रातःकालमें, बिल्कुल संध्याके समय, ठीक मध्यान्हमें, अकस्मात्से अथवा अजानमनुष्यके संगमें कहीं भी गमन न करना । हे महाराज ! बुद्धिशाली पुरुषोंने मलीन-दर्पणमें अपना मुंह आदि न देखना तथा दीर्घायुके इच्छुक मनुष्यने रात्रिमें भी अपना मुख दर्पणमें नहीं देखना चाहिये । हे राजन् ! पंडितपुरुषने एक कमल (सूर्यविकासी कमल) और कुवलय (रक्त कमल) छोड़कर लालमाला धारण नहीं करना, बल्कि सफेद धारण करना । हे राजन् ! सोते देवपूजा करते तथा सभामें जाते पहरनेके वस्त्र भिन्न २ रखना । बोलनेकी तथा हाथ पगकी चपलता, अतिशय भोजन, शय्याके ऊपर दीपक तथा अधमपुरुष और खम्भेकी छाया इतनी वस्तुओंसे अवश्य दूर रहना. नाक खुतरना नहीं, स्वयं अपने जूते नहीं उठाना, सिर पर बोझ नहीं उठाना, पानी बरसते समय न

दौडना, पात्रके टूटनेसे प्रायः कलह होता है, और खाट टूटे तो वाहनका क्षय होता है. जहां श्वान और कुक्कुट (मुर्गा) बसता हो वहां पितृ अपना पिंड नहीं ग्रहण करते. गृहस्थने तैयार किये हुए अन्नसे प्रथम सुवासिनी स्त्री, गर्भिणी, वृद्ध, बालक, रोगी इनको भोजन कराना, तत्पश्चात् आपने अन्न ग्रहण करना. हे पाण्डवश्रेष्ठ ! गाय बैल आदिको घरमें बन्धनमें रख तथा देखनेवाले मनुष्योंको कुछ भी भाग न देकर स्वयं जो मनुष्य अकेला भोजन करता है वह केवल पाप ही भक्षण करता है. गृहकी वृद्धिके इच्छुक गृहस्थने अपनी जातिके वृद्ध मनुष्य और अपने दरिद्री हुए मित्रको अपने घरमें रखना. स्वार्थसाधनके हेतु सदैव अपमानको आगे तथा मानको पीछे रखना, कारण कि स्वार्थसे भ्रष्ट होना मूर्खता है. थोड़ेसे लाभके लिये विशेष हानि न सहना. थोड़ा खर्च करके अधिक बचाना इसीमें चतुराई है. लेना, देना तथा अन्य कर्तव्य कर्म उचित समय पर जो शीघ्र न किये जाय तो उनके अन्दर रहा हुआ रस काल चूस लेता है. जहां जाने पर आदर सत्कार नहीं मिलता, मधुर वार्तालाप नहीं होता, गुणदोषकी भी बात नहीं होती, उसके घर कभी गमन नहीं करना. हे अर्जुन ! बिना बुलाये घरमें प्रवेश करे, बिना पूछे बहुत बोले, तथा बिना दिये आसन पर आपही बैठ जावे वह मनुष्य अधम है । शरीरमें शक्ति न होते क्रोध करे, निर्धन होते मानकी इच्छा करे,

और स्वयं निर्गुणी होते गुणीपुरुषसे द्वेष करे, ये तीनों व्यक्ति जगत्में काष्ठके तुल्य हैं। मातापिताका पोषण न करनेवाला, क्रियाके उद्देश्य-से याचना करनेवाला और मृतपुरुषका शय्यादान लेनेवाला इन तीनोंको पुनः मनुष्य-भव दुर्लभ है. अक्षयलक्ष्मीके इच्छुक मनुष्यने बलिष्ठ पुरुषके सपाटेमें आते समय बेतके समान नम्र होजाना चाहिये, सर्पकी भांति कभी साम्हना नहीं करना. बेतकी भांति नम्र रहनेवाला मनुष्य समय पाकर पुनः लक्ष्मी पाता है, परन्तु सर्पकी भांति साम्हना करनेवाला मनुष्य केवल मृत्यु-पात्र हो सकता है, बुद्धिशालीमनुष्योंने समय पर कछुवेकी भांति अंगोपांग संकुचित कर ताडना सहन करना व अपना समय आने पर काले सांपकी भांति साम्हना करना चाहिये. ऐक्यतासे रहनेवाले लोग चाहे कितनेही तुच्छ हों परन्तु उनको बलिष्ठ लोग सता नहीं सकते; देखो, साम्हनेका पवन होवे तो भी वह एक जत्थेमें रही हुई लताओंको तनिक भी बाधा नहीं पहुंचा सकता. विद्वान् लोग शत्रुको प्रथम बढ़ाकर पश्चात् उसका समूल नाश करते हैं. कारण कि प्रथम गुड खाकर भली भांति बढ़ाया हुआ कफ सुखसे बाहर निकाला जा सकता है। जैसे समुद्र वडवानलको नियमित जल देता है, वैसेही बुद्धिशाली पुरुष सर्वस्व हरण करनेको समर्थ शत्रुको अल्प २ दान देकर प्रसन्न करते हैं. लोग पैरमें घुसे हुए काँटेको जैसे हाथमेंके काँटेसे निकाल डालते हैं, वैसेही चतुरपुरुष एक तीक्ष्णशत्रुसे दूसरे

तक्षिणशत्रुको जीत सकता है. जैसे अष्टापद पक्षी मेघका शब्द सुन उसकी तरफ लछल २ कर अपना शरीर तोड़ डालता है, उस तरह अपनी तथा शत्रुकी शक्तिका विचार न करते जो शत्रु पर धावा करता है, वह नष्ट होजाता है. जैसे कौवीने सुवर्णसूत्रसे कृष्ण-सर्पको नीचे गिराया, उसी तरह चतुरमनुष्यने जो कार्य पराक्रमसे न हो सके उसे युक्तिसे करना. नख तथा सींगवाले जानवर, नदी, शस्त्रधारी पुरुष, स्त्री और राजा इनका कदापि विश्वास न करना चाहिये. सिंहसे एक बगुलेसे एक, मुर्गेसे चार, कौएसे पांच, श्वानसे छः और गधेसे तीन शिक्षा लेना चाहिये. सिंह जैसे सर्व शक्तिसे एक छलांग मारकर अपना कार्यका साधन करता है, उसी प्रकार चतुरपुरुषने थोड़ा अथवा अधिक जो कार्य करना होवे, उसे सर्वशक्तिसे करना. बगुलेकी भांति कार्यका विचार करना, सिंहकी भांति पराक्रम करना, भेड़ियेकी भांति छापा मारना और खरगोशकी भांति भाग जाना चाहिये. १ सर्व प्रथम उठना, २ लड़ना, ३ बंधुवर्गमें खानेकी वस्तुएं वितरण करना, ४ स्त्रीको प्रथम वशमें कर पश्चात् भोगना. ये चार शिक्षाएं मुर्गेसे लेना, १ एकान्तमें स्त्रीसे भोग करना, २ समय पर ठिठाई रखना, २ अवसर आने पर घर बांधना, ४ प्रमाद न करना और ५ किसी पर विश्वास न रखना ये पांच शिक्षाएं कौएसे लेना. १ स्वेच्छानुसार भोजन करना, २ समय पर अल्पमात्रमें संतोष रखना, ३ सुखपूर्वक निद्रा लेना, ४ सहजमें

जागृत होना, ५ स्वामि पर भक्ति रखना और ६ शूरवीर रहना। ये छः शिक्षाएं कुत्तेसे लेना। १ उठाया हुआ बोझा लेजाना, २ शीत तथा तापकी परवाह न रखना, और ३ सदा संतुष्ट रहना, ये तीन शिक्षाएं गधेके पाससे लेना।” इत्यादि।

नीतिशास्त्र आदिमें कहे हुए समस्त उचितआचरणोंका सुश्रावकने सम्यक् रीतिसे विचार करना। कहा है कि—जो मनुष्य हित अहित, उचित अनुचित, वस्तु अवस्तुको स्वयं जान नहीं सकता वह मानो बिना सींगके पशुरूपसे संसार-रूपी वनमें भटकता है। जो मनुष्य बोलनेमें, देखनेमें, हंसनेमें, खेलनेमें, प्रेरणा करनेमें, रहनेमें, परीक्षा करनेमें, व्यवहार करनेमें, शोभनेमें, धनोपार्जन करनेमें, दान देनेमें, हालचाल करनेमें, पढ़नेमें, हर्षित होनेमें और वृद्धि पानेमें कुछ नहीं समझता, वह निर्लज्जशिरोमणि संसारमें किसलिये जीवित रहता होगा ? जो मनुष्य अपने और दूसरेके स्थानमें बैठना, सोना, भोगना, पहिरना, बोलना आदि यथारीतिसे जानता है, वह श्रेष्ठ विद्वान है। अस्तु।

व्यवहार—शुद्धि आदि तीनोंशुद्धिसे धनोपार्जन करने पर इस प्रकार दृष्टान्त हैः—

विनयपुर नगरमें धनवान ऐसा वसुभद्राका “ धनमित्र ” नामक पुत्र था । वह बाल्यावस्थामें मातापिताकी मृत्यु हो जानेसे अत्यन्त दुःखी तथा धनहानि होनेसे अत्यन्त दरिद्री

होगया । तरुण होगया तथापि उसे कन्या न मिली । तब लज्जित होकर वह धनोपार्जन करने गया । भूमिमें गड़ा हुआ धन निकालनेके उपाय, किमिया, सिद्धरस, मंत्र, जलकी तथा स्थलकी मुसाफिरी, भांति भांतिके व्यापार, राजादिककी सेवा इत्यादि अनेक उपाय किये तो भी उसे धन प्राप्ति न हुई जिससे अतिशय उद्विग्न हो उसने गजपुरनगरमें केवली भगवान्को अपना पूर्व भव पूछा । उन्होंने कहा “ विजयपुर नगरमें एक अत्यन्त कृपण गंगदत्त नामक गृहपति रहता था । वह बड़ा मत्सरी था तथा किसीको दान मिलता होता अथवा किसीको लाभ होता तो उसमें भी अंतराय करता था । एक-समय सुन्दर नामक श्रावक उसे मुनिराजके पास लेगया । उसने कुछ भावसे तथा कुछ दाक्षिण्यतासे प्रतिदिन चैत्यवंदन पूजाआदि धर्मकृत्य करना स्वीकार किया । कृपण होनेके कारण पूजाआदि करनेमें वह आलस्य करता था, परन्तु चैत्य-वंदन करनेके अभिग्रहका उसने बराबर पालन किया । उस पुण्यसे हे धनमित्र ! तू धनवान् वाणिकका पुत्र हुआ और हमको मिला । तथा पूर्वभवमें किये हुए पापसे महादरिद्री और दुःखी हुआ । जिस २ रीतिसे कर्म किये जाते हैं, वही उनकी अपेक्षा सहस्रगुणा भोगना पड़ता है, यह विचार कर उचित-आचरणसे रहना चाहिये ।

केवलीके ऐसे वचनोंसे प्रतिबोध पाये हुए धनमित्रने

श्रावकधर्म स्वीकार किया तथा रात्रि और दिवसके प्रथम-प्रहरमें धर्माचरणका अभिग्रह ग्रहण किया । पश्चात् वह एक श्रावकके घर ठहरा । प्रभातकालमें मालीके साथ बागमें पुष्प एकत्रित करके वह घरदेरासरमें भगवानकी परमभक्तिसे पूजा करने लगा, तथा दूसरे, तीसरे आदि प्रहरमें देशविरुद्ध, राज-विरुद्ध, आदिको छोड़ व्यवहारशुद्धि तथा उचितआचरणसे शास्त्रोक्त रीतिके अनुसार व्यापार करने लगा, जिससे उसको सुखपूर्वक निर्वाहके योग्य द्रव्य मिलने लगा और ज्यों २ उसकी धर्ममें स्थिरता हुई त्यों २ उसको अधिकाधिक धन मिलने लगा और धर्मकरणीमें व्यय भी अधिक होने लगा । क्रमशः वह अलग घरमें रहने लगा तथा एक श्रेष्ठीकी कन्यासे विवाह भी कर लिया. एक समय गायोंका समूह जंगलमें जानेको निकला तब वह गुड, तेल आदि बेचने गया । गायोंका गुवाल अंगारे समझकर एक सुवर्णका भंडार फेंक रहा था । उसे देख धनमित्रने कहा— “ इस सुवर्णको क्यों फेंक रहे हो ? ” ग्वालने उत्तर दिया कि “ पूर्व भी हमारे पिताजीने ‘ यह स्वर्ण है ’ ऐसा कहकर हमको ठगा, अब तूभी हमको ठगने आया है ” धनमित्रने कहा— “ मैं असत्य नहीं कहता । ” उसने कहा, “ ऐसा हो तो हमको गुड आदि वस्तु देकर यह सुवर्ण-आदि तू ही ले जा । ” धनमित्रने वैसाही किया । जिससे उसे तीस हजार स्वर्णमुद्राएं मिलीं तथा अन्य भी उसने बहुतसा

धन कमाया जिससे वह भारी श्रेष्ठी होगया । धर्मका माहात्म्य इसी भवमें कितना स्पष्ट दृष्टि आता है ? एक दिन कर्मवश धनमित्र अकेला सुमित्रश्रेष्ठीके घर गया । सुमित्रश्रेष्ठी करोड़-मूल्यका एक रत्नका हार बाहर रखकर कार्यवश घरमें गया व शीघ्रही वापस आया । इतने ही में रत्नका हार अदृश्य हो गया । सुमित्र यह समझकर कि “ यहाँ धनमित्रके बिना और कोई नहीं था अतएव इसीने हार लिया है । ” उसे राजसभामें ले गया । धनमित्र जिनप्रतिमाके अधिष्ठायक समकृतिदेवताका काउस्सग कर प्रतिज्ञा करने लगा, इतने ही में सुमित्रकी कटी-हीमेंसे वह रत्नका हार निकला । जिससे सब लोगोंको बड़ा आश्चर्य हुआ । इस विषयमें ज्ञानीको पूछने पर उन्होंने कहा कि । “ गंगदत्तनामका गृहपति और मगधानामक उसकी भार्या थी । गंगदत्तने अपने श्रेष्ठीकी स्त्रीका एक लक्ष्य मूल्य-वाला रत्न गुप्तरातिसे ग्रहण किया । श्रेष्ठीकी स्त्रीने कई बार मांगा परन्तु अपनी स्त्रीमें मोह होनेसे गंगदत्तने उस पर “ तेरे संबंधियोंहीने उक्त रत्न चुराया है । ” यह कहकर झूठा आरोप लगाया । जिससे श्रेष्ठीकी स्त्री बहुत खिन्न होकर तपस्विनी होगई और मरकर व्यंतर हुई । मगधा मरकर सुमित्र हुआ और गंगदत्त मरकर धनमित्र हुआ । उस व्यंतरने क्रोधसे सुमित्रके आठ पुत्रोंको मार डाला व अभी रत्न हार हरण किया । आगे भी सर्वस्व हरण करेगा व बहुतसे भव तक धैर-

का बदला देगा । अरेरे ! बैरका परिणाम कैसा अपार व असह्य है ? आरोप लगानेसे धनमित्रके सिरपर आरोप आया । धन-मित्रके पुण्यसे आकर्षित हो सम्यग्दृष्टिदेवताने व्यंत्तरसे बला-त्कार पूर्वक वह हार छुड़ाया । ” ज्ञानीके ये वचन सुनकर संवेग पाये हुए राजा तथा धनमित्रने राजपुत्रको मादी पर बिठा दीक्षा ले सिद्धि प्राप्त की इत्यादि

(मूल गाथा.)

मज्झणहे जिणपूआ,
सुपत्तदाणाइजुत्ति भुंजित्ता ॥

पच्चक्खाइ अ गीअत्थ-
अंतिए कुणइ सज्झायं ॥८॥

अर्थः— दुपहरके समय पूर्वोक्तविधिसे उत्तम कमोदके चावल इत्यादिसे तैयार की हुई सम्पूर्ण रसोई भगवान्‌के सन्मुख धरके दूसरी बार पूजाकर, तथा सुपात्रको दानआदि देनेकी युक्ति न भूलते स्वयं भोजन करके गीतार्थगुरुके पास जाना और वहां पच्चखान व स्वाध्याय करना । मध्यान्हकी पूजा तथा भोजनका काल नियमित नहीं । जब तीव्र क्षुधा लगे वही भोजनका काल समझनेकी रूढि है । अतएव मध्यान्हके पाहिले भी ग्रहण किया हुआ पच्चखान पालकर, देवपूजा करके भोजन करे तो दोष नहीं । वैद्यशास्त्रमें तो ऐसा कहा है कि—

याममध्ये न भोक्तव्यं, यामयुग्मं न लङ्घयेत् ।

याममध्ये रसवृद्धि, यामयुग्मं बलक्षयः ॥ १ ॥

प्रहर दिन आनेके पहिले भोजन नहीं करना तथा भोजनके बिना मध्यान्हका उल्लंघन न होने देना । कारण कि, प्रथम-प्रहरमें पहिले दिन खाये हुए अन्नका रस बनता है, इसलिये नवीन भोजन नहीं करना, और बिना भोजन किये मध्यान्हका उल्लंघन करनेसे बल क्षय होता है, अतएव दूसरे प्रहरमें अवश्य भोजन करना चाहिये । सुपात्रको दान आदि करनेकी युक्ति इस प्रकार है:—

श्रावकने भोजनके अवसर पर परमभक्तिसे मुनिराजको निमंत्रणा करके अपने घर लाना अथवा श्रावकने स्वेच्छासे आते हुए मुनिराजको देख उनका स्वागतादिक करना. पश्चात् क्षेत्र संवेगीका भावित है कि, अभावित है ? काल सुभिक्षका है कि दुर्भिक्षका है ? देनेकी वस्तु सुलभ है कि दुर्लभ है तथा पात्र (मुनिराज) आचार्य है, अथवा उपाध्याय, गीतार्थ, तपस्वी, बाल, वृद्ध, रोगी, समर्थ किंवा असमर्थ है इत्यादिका मनमें विचार करना. और स्वर्धा, बडप्पन, डाह, प्रीति, लज्जा, दाक्षिण्य, 'अन्यलोग दान देते हैं अतः मुझे भी उसके अनुसार करना चाहिये' ऐसी इच्छा, प्रत्युपकारकी इच्छा, कपट, विलंब, अनादर, कटुभाषण, पश्चात्ताप आदि दानके दोष उत्पन्न न होने देना. तदनन्तर केवल अपने जीव पर अनुग्रह करनेकी बुद्धिसे

बयालीस तथा दूसरे दोष रहित, सम्पूर्ण अन्न, पान, वस्त्र आदि वस्तु; अनुक्रमसे प्रथम भोजन, पश्चात् अन्य वस्तु इस रीतिसे स्वयं मुनिराजको देना. अथवा आप अपने हाथमें पात्र आदि धारणकर, पासमें खड़ा रहकर अपनी स्त्रीआदिके पाससे दान दिलाना. आहारके बयालीस दोष पिंडविशुद्धिआदि ग्रंथमें देख लेना चाहिये. दान देनेके अनन्तर मुनिराजको वन्दनाकर उन्हें अपने घरके द्वार तक पहुंचाकर आना. मुनिराजका योग न होवे तो “ मेघ बिना वृष्टिके समान जो कहींसे मुनिराज पधारें तो मैं कृतार्थ होजाऊं. ” ऐसी भावना कर मुनिराजके आनेकी दिशाकी ओर देखना. कहा है कि--

जं साहूण न पित्रं, कर्हिपि तं सावया न भुंजति ।

पत्ते भोअणसमए, दारस्सालोअणं कुज्जा ॥ १ ॥

जो वस्तु साधुमुनिराजको नहीं दी जा सकी, वह वस्तु किसी भी प्रकार सुश्रावक नहीं खाते. अतएव भोजनके समय पर द्वारके तरफ दृष्टि रखना चाहिये.

मुनिराजका निर्वाह दूसरी प्रकारसे होता हो तो अशुद्ध-आहार देनेवाले गृहस्थ तथा लेनेवाले मुनिराजको हितकारी नहीं, परन्तु दुर्भिक्षआदि होनेसे जो निर्वाह न होता हो, तो आतुरके दृष्टान्तसे वही आहार दोनोंको हितकारी है. वैसेही “मार्गप्रयाससे थके हुए, रोगी, लोच किये हुए, आगम रूप शुद्ध-वस्तुके ग्रहण करनेवाले मुनिराजको और तपके उत्तर पारणमें दान

दिया हो, उससे बहुत फल होता है. इस प्रकार श्रावक देश तथा क्षेत्र जानकर प्रासुक और एषणीय आहार योगानुसार दे. अशन, पान, स्वादिम, खादिम औषध और भैषज आदि सर्व वस्तुएं प्रासुक व एषणीय होवे, वे मुनिराजको दे, मुनिराजको किस प्रकार निमन्त्रणा करना तथा गोचरी किस प्रकार ग्रहण कराना इत्यादिक विधि 'श्राद्धप्रतिक्रमणवृत्ति' से समझ लेना चाहिये. यह सुपात्रदान ही अतिथिसंविभागव्रत कहलाता है, कहा है कि—

‘पहसंतिल्लिणुं, आगमगाहीसुं तदय कयलोए ।

उत्तरपारणमि अ, दिन्नं सुबहुत्फलं होइ ॥ १ ॥

न्यायोपार्जित तथा कल्पनीय अन्नपान आदि वस्तुका; देश, काल, श्रद्धा, सत्कार और क्रमका पूर्ण ध्यान रखकर, पूर्णभक्तिसे अपनी आत्मा पर अनुग्रह करनेकी बुद्धिसे साधुमुनिराजको दान देना, यही अतिथिसंविभाग कहलाता है । सुपात्रदानसे दिव्य तथा औदारिकआदि वांछित भोगकी प्राप्ति होती है, सर्वसुखकी समृद्धि होती है, तथा चक्रवर्ती-आदिकी पदवी प्रमुख मिलती है और अंतमें थोड़े ही समयमें निर्वाणसुखका लाभ होता है. कहा है कि—

अभयं सुपत्तदानं, अणुकंपाउचिअकित्तिदानं च ।

दोदिवि मुखो भणिओ, तिज्जिवि भोगाअं दिति ॥१॥

१ अभयदान, २ सुपात्रदान, ३ अनुकंपादान, ४ उचितदान और ५ कीर्तिदान ऐसे दानके पांच प्रकार हैं. जिसमें प्रथम दो प्रकारके दानसे भोगसुख पूर्वक मोक्षकी प्राप्ति होती है और अंतिम तीन प्रकारके दानसे केवल भोगसुखादिक ही मिलता है. सुपात्रके लक्षण ये हैं:—उत्तमपात्र साधु, मध्यमपात्र श्रावक और जघन्यपात्र अविरति सम्यग्दृष्टि. वैसे ही कहा है कि—

उत्तमपत्तं साधू, मज्झिमपत्तं च सावया भणिया ।

अविरयसम्मादिट्ठी, जहन्नपत्तं मुणेअब्बं ॥ १ ॥

मिथ्यादृष्टिसहस्रेषु, वरमेको ह्यणुव्रती ।

अणुव्रतिसहस्रेषु, वरमेको महाव्रती ॥ २ ॥

महाव्रतिसहस्रेषु, वरमेको हि तान्त्रिकः ।

तान्त्रिकस्य समं पात्रं न भूतं न भविष्यति ॥ ३ ॥

सत्पात्रं महती श्रद्धा, काले देयं यथोचितम् ।

धर्मसाधनसामग्री, बहुपुण्यैरवाप्यते ॥ ४ ॥

अनादरो विलंबश्च, वैमुख्यं विप्रियं वचः ।

पश्चात्तापश्च पंचापि, सदानं दूषयन्त्यमी ॥ ५ ॥

हजारों मिथ्यादृष्टिकी अपेक्षा एक बारहव्रतधारी श्रावक श्रेष्ठ है, और हजारों बारहव्रतधारी श्रावकोंसे एक पंचमहाव्रतधारी मुनिराज श्रेष्ठ है. हजारों मुनिराजसे एक तत्त्वज्ञानी श्रेष्ठ है. तत्त्वज्ञानीके समान पात्र न हुआ और न होगा. सत्पात्र, महान्श्रद्धा, योग्यकाल, उचितवस्तु आदि धर्मसाधनकी

सामग्री बड़े पुण्यसे प्राप्त होती है. १ अनादर, २ विलम्ब, ३ पराङ्मुखता, ४ कटुवचन और ५ पश्चात्ताप ये पाँचों शुद्ध-दानको भी दूषित करते हैं, १ भौं ऊँची चढ़ाना, २ दृष्टि ऊँची करना, ३ अंतवृत्ति रखना, ४ पराङ्मुख होना, ५ मौन करना और ६ कालविलम्ब करना यह छः प्रकारकी नाही (इन्कार-असम्मति) कहलाती है. १ आंखमें आनंदाश्रु, २ पुलकित (रोमांचित) होना, ३ बहुमान, ४ प्रियवचन और ५ अनु-मोदना ये पाँचों पात्रदानके भूषण हैं. सुपात्रदान और परिग्रहपरिमाणव्रतके पालन ऊपर रत्नसारकुमारकी कथा इस प्रकार है:—

एक महान् संपत्तिशाली रत्नविशालानामक नगरी थी. उसमें यथानाम गुणधारी समरसिंह नामक राजा राज्य करता था. उसी नगरीमें दरिद्रीमनुष्योंके दुःखोंका हरण करनेवाला वसुसार नामक एक धनाढ्य व्यापारी रहता था. उसकी स्त्रीका नाम वसुंधरा था तथा उनके रत्नसमान उत्कृष्ट गुणवान् रत्नसार नामक एक पुत्र था. एक समय वह अपने मित्रोंके साथ वनमें गया. विचक्षणबुद्धि रत्नसारने वहाँ विनयंधर आचार्यको देख उनको वन्दना करके पूछा कि- “हे महाराज ! इस लोकमें भी सुखकी प्राप्ति किस प्रकार हो सकती है ?” उन्होंने उत्तर दिया . “हे दक्ष ! संतोषकी वृद्धि रखनेसे इस लोकमें भी जीव सुखी होता है, अन्य किसीप्रकारसे नहीं. संतोष देशव्यापी तथा सर्वव्यापी

दो प्रकारका है, जिसमें देशव्यापी जो संतोष है उससे गृहस्थ-पुरुषोंको सुख होता है। परिग्रहपरिमाणव्रत अंगीकार करनेसे गृहस्थपुरुषोंको देशव्यापी संतोष बढता है। कारण कि, परिग्रह-परिमाण करनेसे अपार आशा मर्यादामें आजाती है। सर्वव्यापी-संतोषकी वृद्धि तो मुनिराज ही से की जा सकती है इससे अनुत्तरविमानवासी देवताओंसे भी श्रेष्ठ सुखकी इसीलोकमें प्राप्ति होता है। भगवतीसूत्रमे कहा है कि—एकमास पर्यंत दीक्षापर्याय पालनेवाले साधु ग्रहण किये हुए चारित्रके विशुद्धपरिणामसे वाणमंतरकी, दोमास तक पालनेवाले भवनपतिकी, तीन-मास तक पालनेवाले असुरकुमारकी, चार मास तक पालन करनेवाले ज्योतिषीकी, पांचमास तक पालनेवाले चन्द्र-सूर्यकी, छः मास तक पालन करनेवाले सौधर्म तथा ईशान देवताकी, सातमास तक पालनेवाले सनत्कुमारवासी देवताकी, आठमास तक पालनेवाले ब्रह्मवासी तथा लांतकवासी देवताकी, नवमास तक पालनेवाले शुक्रवासी तथा सहस्रार-वासी देवताकी, दशमास तक पालनेवाले आनत आदि चार देवलोकमें रहने वाले देवताकी, ग्यारहमास तक पालनेवाले त्रैवैकवासी देवताकी, तथा बारहमास तक पालनेवाले अनुत्तरपपातिकदेवताकी तेजोलेश्या (मनमें उत्पन्न हुई सुखकी प्राप्ति) का उल्लंघन करते हैं ।

जो मनुष्य संतोषी नहीं, उसको बहुतसे चक्रवर्ती राज्योंसे,

बहुतसे धनसे तथा सर्वभोगोपभोगके साधनोंसे भी सुख उत्पन्न नहीं होता। सुभूमचक्रवर्ती, कोणिक राजा, मम्मण सेठ, हासाग्रहासापति आदि मनुष्य संतोष न रखनेहीसे दुःखी हुए। कहा है कि--अभयकुमारके समान संतोषी मनुष्यको जो कुछ सुख मिलता है वह सुख असंतोषी चक्रवर्ती अथवा इन्द्र-को भी नहीं मिल सकता। ऊपर ऊपर देखनेवाले सब दरिद्री होजाते हैं; परन्तु नीचे नीचे देखनेवाले किम मनुष्यका बड़प्पन वृद्धिको प्राप्त न हुआ ? इससे सुखको पुष्टि देनेवाले सन्तोषको साधनके लिये तू अपनी इच्छाके अनुसार धनधान्यआदि परिग्रहका परिमाण कर। धर्म, नियम लेकर स्वल्पमात्र पालन किया होवे, तो भी उससे अपार फल प्राप्त होता है, परन्तु नियम लिये बिना बहुतसा धर्म पाला हो तो भी उससे अल्प-मात्रही फल मिलता है। देखो ! कुएँमें स्वल्पमात्र झरना होता है परन्तु उसके नियमित होनेसे जल कभी भी नहीं खुटता, और सरोवरका जल किनारे तक भरा हो तो भी वह अनियमित होनेसे सूख जाता है। मनुष्यने नियम लिया होवे तो वह संकट-के समय भी नहीं छूटता और नियमका बन्धन न होवे तो सुदशामें होते हुए भी कभी २ धर्मकृत्य छूट जाता है। इसी-प्रकार नियम लेनेहीसे मनुष्यकी धर्ममें दृढता होती है। देखो ! दामनी(रस्सी)में बांधनेहीसे जानवर भी भलीभांति स्थिर रहते हैं। धर्मका जीवन दृढता, वृक्षका जीवन फल, नदीका जीवन जल,

सुभटका जीवन बल, ठगका जीवन असत्य, जलका जीवन शीतलता और भक्ष्यवस्तुओंका जीवन घृत है। इसलिये चतुर-पुरुषोंने धर्मकृत्यका नियम लेनेमें तथा लिये हुए नियममें दृढ़ता रखनेमें अत्यन्त दृढ़ प्रयत्न करना चाहिये. कारण कि उससे वांछितसुखकी प्राप्ति सुखपूर्वक होती है. ”

रत्नसारकुमारने सद्गुरुका यह कथन सुनकर इस प्रकार सम्यक्त्वसहित परिग्रहपरिमाणव्रत लिया कि: -“ मैं मेरे अधिकारमें एक लाख रत्न, दस लाख सुवर्ण, आठ आठ मूडे (मापविशेष) मोती और प्रवाल (मृंग) के, आठ करोड स्वर्णमुद्रा, दस हजार भार चांदी आदि धातुएं, सौ मूडे धान्य, एक लाख भार शेष किराना, छः दश हजारका गोकुल, पांचसौ घर तथा हाट, चारसौ वाहन, एक हजार घोडे और सौ हाथी रखूंगा. इससे अधिक संग्रह नहीं करूंगा तथा राज्य और राज्यकार्य भी नहीं करूंगा. श्रद्धावन्त रत्नसारकुमार इस प्रकार बांचे अतिचार रहित पांचवें अणुव्रतको अंगीकार कर श्रावकधर्म पालन करने लगा.

एक समय वह पुनः अपने शुद्धहृदय मित्रोंके साथ फिरते २ “रोलंबलोल” नामक बगीचेमें आया. बगीचेकी शोभा देखता हुआ वह क्रीडापर्वत पर गया. वहां उसने दिव्यरूप और दिव्यवेषधारी एक किन्नरके जोड़ेको दिव्यगान करते हुए देखा, उन दोनोंका मुख अश्वके समान और शेष अंग

मनुष्यके समान था, ऐसे अद्भुतस्वरूपको देखकर कुमारने हँस कर कहा कि “ जो ये मनुष्य अथवा देवता होते तो इनका मुख अश्वके समान क्यों होता ? अतएव ये न तो मनुष्य हैं और न देवता; परन्तु कोई अन्य द्वीपमें उत्पन्न हुए तिर्यच जान पड़ते हैं, अथवा किसी देवताके वाहन होंगे ? ” कुमारका यह कर्णकटु वचन सुनकर दुःखित हो किन्नर बोला- “ हे कुमार ! तू कुकल्पना करके मेरी वृथा विडम्बना क्यों करता है ? जगत्में इच्छानुसार कामविलास करनेवाला मैं व्यंतर देवता हूँ, परन्तु तू मात्र तिर्यचके सदृश है. कारण कि तेरे पिताने तुझको एक देवदुर्लभ दिव्यवस्तुसे चाकरकी भांति दूर रखा है.

अरे कुमार ! “ समरांधकार ” नामक एक उत्तम नील-वर्ण अश्व तेरे पिताको पूर्वकालमें किसी दूरद्वीपान्तरमें मिला था. जैसे खराब राजा कृश और वक्रमुख धारी, हलके कानका, बिना ठिकानेका, पगपग पर दंड करनेवाला और क्रोधी होता है, वैसे ही वह अश्व भी कृश तथा वक्रमुख, छोटे कानका, अतिचपल, स्कंध पर बेड़ीरूप चिन्ह वाला और जरा भी प्रहार न सह सके ऐसा है. यद्यपि वह अश्व दुष्ट-राजाके समान है तथापि यह आश्चर्य है कि वह सब लोगोंके मनको आकर्षित करनेवाला तथा अपनी व अपने स्वामीकी ऋद्धिको बढ़ाने वाला है. कहा है कि— ‘ कृश मुख , मध्यम

शरीर वाला (न तो बहुत मोटा और न बहुत पतला), छोटे कान वाला, ऊंचे स्कंध और चाँडेवक्षस्थलवाला, स्निग्ध-रोमवाला, पुष्टपासे (पुष्टे) वाला, विशालपीठवाला और तेजवेगवाला इत्यादि श्रेष्ठ गुणधारक अश्व हो उस पर राजाने बैठना चाहिये. पवनसे भी चपल वह अश्व 'सवारका' मन अधिक आगे दौड़ाता है, कि मैं दौड़ता हूँ ? मानो इसी स्पर्धासे एक दिनमें सौ कोस जाता है. ऐसे लक्ष्मीके अंकुर-रूप अश्व पर जो मनुष्य सवार होता है, वह सात दिनमें अलौकिक वस्तु पाता है, यह बड़े ही आश्चर्यकी बात है ! अरे कुमार ! तू स्वयं अपने घर तककी तो गुप्त बात जानता ही नहीं है, और पंडिताईका अहंकार कर अज्ञानवश वृथा मेरी निन्दा करता है ? जो तू अश्वको प्राप्त कर लेगा, तो तेरा धैर्य, और चतुराई मालूम होगी. " इतना कह वह किन्नर किन्नरीके साथ आकाशमें उड़ गया.

यह अपूर्व बात सुन रत्नसारकुमार घर आया और अपने-को बहुत ठगाया हुआ मान, मनमें म्लान हो शोक करने लगा व घरके मध्यभागमें जा द्वार बंद कर पलंग पर जाकर बैठ गया। तब खिन्न हो पिताने आकर उससे कहा कि, " हे वत्स ! तुझे क्या कष्ट हुआ ? क्या कोई मानसिक अथवा शारीरिक पीडा उत्पन्न हुई ? स्पष्ट कह ताकि मैं उसका उपाय करूं, क्योंकि बिना बीधे तो मोतीकी भी परीक्षा नहीं हो सकती "।

पिताके इन वचनोंसे संतुष्ट हो रत्नसारने शीघ्र द्वार खोला और जो बात हुई थी वह तथा जो कुछ मनमें थी सो स्पष्ट कह दी । पिताने अत्यन्त विस्मित हो कहा कि, “ हे वत्स ! हमारा पुत्र इस सर्वोत्तम अश्वपर बैठकर भूतल पर चिरकाल तक भ्रमण करता रहे और हमको वियोगसे दुःखी करे । ” इस कल्पनासे मैंने आजतक उस अश्वको प्रयत्नके साथ गुप्त रखा, परन्तु अबतो तेरे हाथमें सौंपना ही पड़ेगा परन्तु तुझे उचित जान पड़े वही कर । यह कह पिताने हर्षसे रत्नसारकुमारको उक्त अश्व दे दिया । मांगने पर भी न देना यह प्रीतिके ऊपर अग्नि डालनेके समान है । जैसे निधान मिलनेसे निर्धनको आनंद होता है, उसी प्रकार अश्वप्राप्तिसे रत्नसारकुमारको बहुत प्रसन्नता हुई । श्रेष्ठवस्तु मिलनेपर किसे आनन्द नहीं होता ? पश्चात् उदयपर्वतपर आये हुए सूर्यके समान वह रत्न-जडित सुवर्णकी काठी चढ़ाये हुए उक्त अश्वपर आरोढ़ हुआ । और वय तथा शीलमें समान सुशोभित अश्वारूढ़ श्रेष्ठमित्रोंके साथ नगरसे बाहर निकला । जैसे इन्द्र अपने उच्चैःश्रवानामक अश्वको चलाता है उसी तरह वह कुमार उक्त अनुपम अद्वितीय अश्वको मैदानमें फिराने लगा । कुमारने उस अश्वको आक्षेपसे क्रमशः धौरित, वल्गित, प्लुत और उत्तेजित चारों प्रकारकी गतिसे चलाया । पश्चात् शुक्लध्यान जीवको पंचमगति पर (मुक्ति) पहुंचाता है, उस समय वह जीव

जैसे अन्य समस्तजीवोंको पीछे छोड़ देता है, उसी प्रकार जब कुमारने उसे आस्कंदित नामक पांचवी गतिको पहुंचाया, तो उसने अन्य सर्वअश्वोंको पीछे छोड़ दिया । इतनी ही देरमें श्रेष्ठीके घरमें जो एक पाला हुआ तोता था उसने उस कार्यका तत्त्व विचार कर श्रेष्ठी वसुसारको कहा कि—

“ हे तात ! मेरा भाई रत्नसार कुमार इसी समय अश्वरत्नपर आरूढ़ होकर बड़ेवेगसे जा रहा है, कुमार कौतुक-रसिक व चपल प्रकृति है; अश्व भी हरिणके समान बड़ा ही चालाक व उछल उछल कर चलनेवाला है, और दैवकी गति बिजलीकी दमक-से भी अत्यन्त विचित्र है, इसलिये हम नहीं जान सकते कि इस कृत्यका क्या परिणाम होगा ? सौभाग्यनिधि मेरे भाईका अशुभ तो कहीं भी नहीं हो सकता, तथापि स्नेही मनुष्योंके मनमें अपनी जिस पर प्रीति होती है, उसके विषयमें अशुभ कल्पनाएं हुए बिना नहीं रहती । सिंह जहां जाता है वहीं अपनी प्रभुता चलाता है, तथापि उसकी माता सिंहनीका मन अपने पुत्रके सम्बन्धमें अशुभ कल्पना करके अवश्य दुःखी होता है । ऐसी अवस्थामें भी शक्त्यनुसार यत्न रखना यही ‘ पानी पहिले पाल बांधना ’ यह युक्तिसे अच्छा जान पड़ता है । इसलिये हे तात ! हे स्वामिन् ! यदि आपकी आज्ञा हो तो मैं अतिशीघ्र कुमारकी शोधके लिये जाऊँ । दैव न करे, और कदाचित् कुमारपर कोई आपत्ति आ पड़े, तो मैं हर्षोत्पा-

दक वचन सुनाकर उसकी सहायता भी करूंगा ”

श्रेष्ठीने अपने अभिप्रायानुसार तोतेकी बात सुनकर कहा कि, “ हे श्रेष्ठ तोते ! तूने ठीक कहा—तेरा मन बहुत शुद्ध है. इसलिये हे वत्स ! अब तू शीघ्र जा । और अतितीव्रवेगसे जाने वाले रत्नसारकुमारको बिकटमार्गमें सहायता कर लक्ष्मण-के साथ होनेसे जैसे राम सुखमें वापस आये, उसी प्रकार तेरे समान प्रियमित्र साथ होनेसे वह अपनी इच्छा पूर्ण करके निश्चय सुखपूर्वक यहां आजावेगा । ” श्रेष्ठीकी आज्ञा मिलते ही अपनेको कृतार्थ माननेवाला वह मानवंत तोता, संसारमेंसे जैसे सुबुद्धि मनुष्य बाहर निकलता है, उस प्रकार शीघ्र पींजरे-मेंसे बाहर निकला और बाणके समान तीव्रगतिसे उड़कर शीघ्र ही कुमारको आ मिला । कुमारने अपने लघुभ्राताकी भांति प्रेमसे बुलाकर गोदमें बिठा लिया । उस अश्वने मानो मनुष्यरत्न (रत्नसार) की प्राप्ति होनेसे अपरिमित अहंकार-में आ कर वेगसे गमन कर कुमारके मित्रोंके अश्वोंको नगरकी सीमाके ही भागमें छोड़ दिये । जिससे निरुत्साहित हो वे विलक्ष होकर वहीं खड़े रह गये ।

अतिशय उछल कर तथा शरीरसे प्रायः अधर चलने वाला वह अश्व मानो शरीरमें रज लग जानेके भयसे भूमिको स्पर्श भी नहीं करता था । उस समय नदियां, पर्वत, जंगलकी भूमि-आदि मानो उस अश्वके साथ स्पर्धासे वेगपूर्वक चलती हों इस

प्रकार चारों ओर दृष्टि आती थी । मानो कौतुकसे उत्सुक हुए कुमारके मनकी प्रेरणा ही से झड़पके भूमिका उल्लंघन करने-वाले उस अश्वने अपनी थकावटकी ओर जरा भी ध्यान नहीं पहुंचाया । इस तरह वह अत्यंत भिन्नसैन्य युक्त महाभयंकर 'शबरसेना' नामक घोरवनमें आया । वह वन सुननेवालेको भय व उन्माद करनेवाला, तथा अत्यंत तीक्ष्णजंगलीजानवरोंकी गर्जनासे ऐसा लगता था मानो संपूर्णवनमें अग्रसर यही वन है । गज, सिंह, बाघ, सूअर पांडे आदि मानो कुमारको कौतुक दिखाने ही के लिये चारों ओर परस्पर लड़ रहे थे-शियालोंका शब्द ऐसा मालूम होता था कि मानो अपूर्ववस्तुके लाभ लेनेके व कौतुक देखनेके लिये वे कुमारको शीघ्र बुला रहे हैं । उस वनके वृक्ष अपनी धूजती हुई शाखासे अश्वके द्रुत वेगको देख कर चमत्कार पा नतमस्तक हो रहे थे । स्थान २ पर कुमारका मनोरंजन करनेके निमित्त भिन्नयुवतियां किन्नरियोंकी भांति मधुरस्वरसे उद्भट गीत गा रही थीं ।

आगे जाकर रत्नसारकुमारने हिंडोले पर झूलते हुए एक तापसकुमारको स्नेहभरी दृष्टिसे देखा । वह तापसकुमार मृत्युलोकमें आये हुए नागकुमारके सदृश सुंदर था । उसकी दृष्टि प्रियबांधवके समान स्नेहयुक्त नजर आती थी; और उसे देखते ही ऐसा प्रतीत होता था, कि मानो अब देखनेके योग्य वस्तु न रही । उस तापसकुमारने ज्योंही कामदेवके

सदृश रूपशाली रत्नसारकुमारको देखा त्योंही वरको देखकर जैसे कन्याके मनमें लज्जादि उत्पन्न होते हैं वैसे उसके मनमें लज्जा, उत्सुकता, हर्ष इत्यादि मनोविकार उत्पन्न हुए और वह मनमें शून्य सम हो गया था तथापि किसी प्रकार धैर्य धरकर हिंडोले परसे उतर कर उसने रत्नसारकुमारसे इस प्रकार प्रश्न किये ।

“हे जगद्वल्लभ ! हे सौभाग्यनिधे ! हम पर प्रसन्न दृष्टि रख, स्थिरता धारण कर, प्रमाद न कर और हमारे साथ बात चीत कर. कौनसा भाग्यशाली देश व नगर तेरे निवाससे जगत्में श्रेष्ठ व प्रशंसनीय हुआ ? तेरे जन्मसे कौनसा कुल उत्सवसे परिपूर्ण हुआ ? तेरे सम्बन्धसे कौनसी जाति जुहीके पुष्प समान सुगन्धित हुई ? जिसकी हम प्रशंसा करें. ऐसा त्रैलोक्यको आनंद पहुंचानेवाला तेरा पिता कौन है ? तेरी पूजनीय मान्य माता कौन है ? हे सुन्दरशिरामणि ! जिनके साथ तू प्रीति रखता है, वे सज्जनकी भांति जगत्को आनन्द देनेवाले तेरे स्वजन कौन हैं ? संसारमें जिस संबोधनसे तेरी पहिचान होती है वह तेरा श्रेष्ठ नाम क्या है ? अपने इष्टजनोंके वियोगका तुझे क्या कारण उत्पन्न हुआ ? कारण कि, तू किसी मित्रके बिना अकेला ही दिख पड़ता है. दूसरोंका तिरस्कार करनेवाली इस अतिशय उतावलका क्या कारण है ? और मेरे साथ तू प्रीति करना चाहता है इसका भी क्या कारण है ?”

तापसकुमारका ऐसा मनोहर भाषण भली प्रकार सुनकर अकेला रत्नसारकुमार ही नहीं बल्कि अश्व भी उत्सुक हुआ। जिससे कुमारका मन जैसे वहां रहा वैसे वह अश्व भी वहां स्थिर खड़ा रहा। उत्तम अश्वोंका वर्तवि सवारकी इच्छानुकूल ही होता है। रत्नसार, तापसकुमारके सौंदर्यसे तथा वाक्पटुतासे मोहित होनेके कारण तथा उत्तर देने योग्य बात न होनेसे कुछ भी प्रत्युत्तर न दे सका इतने ही में वह चतुरतोता वाचाल-मनुष्यकी भांति उच्चस्वरसे बोलने लगा, “ हे तापसकुमार ! कुमारका कुलआदि पूछनेका क्या प्रयोजन है ? अभी तूने यहां कोई विवाह तो रचा ही नहीं। उचितआचरणका आचरण करनेमें तू चतुर है, तो भी तुझे उनका वर्णन कहता हूं। सर्वव्रतधारियोंको आगन्तुक अतिथि सर्व प्रकार पूजने योग्य है। लौकिकशास्त्रकारोंने कहा है कि—चारों वर्णोंका गुरु ब्राह्मण है, और ब्राम्हणका गुरु अग्नि है, स्त्रियोंका पति ही एक गुरु है, और सर्वलोगोंका गुरु घर आया हुआ अतिथि है। इसलिये हे तापसकुमार ! जो तेरा चित्त इस कुमार पर हो तो इसकी यथारीति मेहमानी कर, अन्य सर्व-विचारोंको अलग कर दे, ” तोतेकी इस चतुरयुक्तिसे प्रसन्न हो तापसकुमारने रत्नहार सदृश अपनी कमलमाला झट उसके (तोतेके) गलेमें पहिराई और रत्नसारसे कहा कि, “ हे श्रेष्ठकुमार ! तू ही संसारमें प्रशंसा करनेके योग्य है,

कारण कि तेरा तोता भी वचनचातुरीमें बड़ाही निपुण है. तेरा सौभाग्य सब मनुष्योंसे श्रेष्ठ है. अतएव हे कुमार ! अब अश्व परसे उतर, मेरा भाव ध्यानमें लेकर मेरा अतिथिसत्कार स्वीकार कर, और हमको कृतार्थ कर. बिकसितकमलोंसे सुशोभित और निर्मल जल युक्त यह छोटासा तालाब है, यह समस्त सुन्दर वनका समुदाय है और हम तेरे सेवक हैं, मेरे समान तापससे तेरा क्या मेहमानी हो सकती है ? नग्नक्षपणकके मठमें राजाकी आसना वासना कैसे हो ? तथापि मैं अपनी शक्तिके अनुसार कुछ भक्ति दिजाता हूं. क्या समय पाकर केलेका झाड़ अपने नीचे बैठनेवालेको सुख विश्रांति नहीं देता ? इस लिये शीघ्र कृपा कर आज मेरी विनय स्वीकार कर देशाटन करनेवाले सत्पुरुष किसीकी विनंती किसी समय भी व्यर्थ नहीं जाने देते हैं. ” रत्नसारके मनमें अश्व परसे उतरनेके लिये प्रथमहीसे मनमें विचार आया था, पश्चात् मानो शुभ शकुन हुवे हों, ऐसे तापसकुमारके वचन सुनकर वह नीचे उतरा. चिरपरिचित मित्रके भांति मनसे तो वे पहिले मिले थे, अब उन्होंने एक दूसरेके शरीरको आलिंगन करके मिलाप किया व पारस्परिकप्रीतिको दृढ़ रखनेके हेतुसे एक दूसरेसे हस्तमिलाप कर वे दोनों कुछ देर तक इधर उधर फिरते रहे. उस समय उनकी शोभा वनमें क्रीडा करते हुए दो हाथीके बच्चोंके समान मालूम होती थी. तापस-कुमारने उस वनमेंके पर्वत, नदियां, तालाब, क्रीडास्थल आदि

रत्नसारको बताये. फल, फूलकी समृद्धिसे नतमस्तक हुए बहुत-से अपरिचित वृक्षोंका नाम ले २ कर उसने पहिचान कराई. पश्चात् मार्गश्रम दूर करनेके लिये रत्नसारकुमारने एक छोटे सरोवरमें स्नान किया. तदनन्तर तापसकुमारने उसके सन्मुख निम्नाङ्कित फलादि लाकर रखेः-प्रत्यक्ष अमृतके समान कुछ पकी कुछ कच्ची द्राक्ष, व्रतधारी लोग भी जिनको देखकर भक्षण करनेके लिये अधीर हो जाय ऐसे पके हुए मनोहर आम्रफल, नारियल, केले, सुधाकरीके फल, खजूर, खिरनी, श्रीरामलकीके फल, स्निग्धबीजवाले हारबंध चारोलाके फल, सुन्दर बीजफल, मधुर बिजोरे, नारंगियां सर्वोत्कृष्ट दाडिम, पके हुए साकर नींबू, जामुन, बेर, गोंदे, पीलू, फणस, सिंघाड़े, सकरटेटी, पक्के तथा कच्चे बालुक फल, द्राक्षादिके सरस शरबत, नारियलका तथा स्वच्छ सरोवरका जल, शाकके स्थानमें कच्चा अम्लवेतस, इमली, निम्बू आदि; स्वादिमकी जमह कुछ हरी कुछ सूकी हारबंध सुपारियां, चौड़े २ निर्मल पान, इलायची, लवंग, लवलीफल, जायफल आदि, तथा भोग सुखके निमित्त शत पत्र (कमलविशेष). बकुल, चंपक, केतकी, मालती, मोगरा, कुंद, मुचकुंद, भांति २ के सुगन्धित कमल हर्षक, उत्पन्न हुए कर्पूरके रजःकर्ण, कस्तूरीआदि उपरोक्त वस्तुएं सजा कर रखी. रत्नसारकुमारने तापसकुमारकी की हुई भक्तीकी रचना अंगीकार करनेके हेतु उन वस्तुओं पर आदरसहित एक दृष्टि

फिराई और थोड़ी २ सब वस्तुएं भक्षण करी. पश्चात् तापस-कुमारने तोतेको भी उत्तमोत्तम फल व अश्वको उसके अनुकूल वस्तु खिलाई. ठीक है- महान् पुरुष किसी समय भी उचित-आचरण नहीं छोड़ते. तदनंतर रत्नसारकुमारका अभिप्राय समझ तोता तापसकुमारको प्रीति पूर्वक पूछने लगा कि, “ हे तापसकुमार ! जिसको देखते ही शरीर पुलकित हो जाता है ऐसे इस नवयौवनमें कल्पना भी नहीं की जा सके ऐसा यह तापसव्रत तूने क्यों ग्रहण किया ? कहां तो सर्वसंपदाओंके सुरक्षित कोटके समान यह तेरा सुंदर स्वरूप, और कहां यह संसार पर तिरस्कार उत्पन्न करनेवाला तापसव्रत ? जैसे अरण्यमें मालतीका पुष्प किसीके भोगमें न आकर व्यर्थ सूख जाता है. वैसे ही तूने तेरा यह चातुर्य और सौंदर्य प्रथम ही से तापसव्रत ग्रहण कर निष्फल कैसे कर डाला ? दिव्यअलंकार और दिव्यवेष पहिरने लायक यह कमलसे भी कोमल शरीर अतिशय कठोर बन्कलोंको किस प्रकार सहन कर सकता है ? दर्शककी दृष्टिको मृगजाल सदृश बंधनमें डालनेवाला तेरा यह केशपाश क्रूरजटाबंधको सहने योग्य नहीं. तेरा यह सुन्दर तारुण्य और पवित्र लावण्य यथायोग्य नये नये भोगोपभोगोंसे शून्य होनेके कारण हमको बहुत दया उत्पन्न करता है. इसलिये हे तापसकुमार ! वैराग्यसे, कष्टचातुरीसे, दुर्दैववश हीन-कर्मसे, किसीके बलात्कारसे, किसी महातपस्वीके शापसे अथवा

किस अन्यकारणसे तूने यह महाकठिनतपस्या अंगीकारकी है' सो कह ! ”

पोपटके इस प्रश्न पर तापसकुमार नेत्रोंसे अश्रुधारा गिराता हुआ गद्गदस्वरसे बोला : “हे चतुर तोते ! हे श्रेष्ठ कुमार ! जगत्में ऐसा कौन है जो तुम्हारी समानता कर सके ? कारण कि मेरे समान अनुकंपापात्र पर तुम्हारी दया स्पष्ट दीख रही है, अपने आपके अथवा अपने कुटुम्बियोंके दुःखित होने पर कौन दुःखी नहीं होता ? परन्तु परदुःखसे दुःखी होने-वाले पुरुष जगत्में बिरले ही होंगे, कहा है कि—

शूराः सन्ति सहस्रशः प्रतिपदं विद्याविदोऽनेकशः,

सन्ति भीषतयोऽप्यपास्तघनदास्तेऽपि क्षितौ भूरिशः ।

किन्त्वाकर्ण्य निरीक्ष्य वाऽन्यमनुजं दुःखादितं यन्मनः,

स्ताद्रूप्यं प्रतिपद्यते जगति ते सत्पुरुषाः पञ्चषाः ॥ १४४ ॥

अबलानामनाथानां, दीनानामथ दुःखिनाम् ।

परैश्च परिभूतानां, त्राता कः ? सत्तमात्परः ॥ १४५ ॥

शूरवीर पंडित, अपनी लक्ष्मीसे कुबेरको भी मोल ले लेवें ऐसे श्रीमंत लोग तो पृथ्वी पर पद पद ऊपर सहस्रों दृष्टि आवेंगे परन्तु जिस पुरुषका मन पर दुःखको प्रत्यक्ष देखकर अथवा कानसे श्रवण कर दुःखी होता है ऐसे सत्पुरुष जगत्में पांच छः ही होंगे, स्त्रियों, अनाथ, दीन, दुःखी और भयसे पराभव पाये हुए मनुष्योंकी रक्षा करनेवाले सत्पुरुषोंके सिवाय और कौन

हैं ? अतएव हे कुमार ! मेरा यथार्थ वृत्तांत तेरे समक्ष कहता हूं. वास्तविक प्रीति रखनेवाले पुरुषके सन्मुख कौनसी बात गुप्त रखी जा सकती है ? ” तापसकुमार यह बोल ही रहा था इतनेमें, मदोन्मत्त हार्थीके समान वनको वेगसे समूल उखाड़ डालने वाला, एक सरीखी उछलती हुई धूलके समुदायसे तीनों जगतको अपूर्व घनघोर गर्दमें अतिशय गर्क करनेवाला, महान् भयंकर घूत्कारशब्दसे दिशाओंमें रहनेवाले मनुष्योंके कानको भी जर्जर कर डालनेवाला, तापसकुमारके आत्मवर्णन कहनेके मनोरथरूप रथको बलात्कार तोड़ कर अपने ‘प्रमंजन’ नामको सार्थक करनेवाला अकस्मात् चढ़ आये हुए महानदीके पूरकी भांति समग्रवस्तुओंको डुबानेवाला तथा तूफानी, दुष्ट उत्पातपवनकी भांति असह्य पवन तीव्रवेगसे बहने लगा, और काबेलचोरकी भांति मानो मंत्र ही से, रत्नसार और तोतेकी दृष्टि धूलसे बंद करके वह पवन तापसकुमारको उड़ा ले गया. कुमार व तोतेको केवल उसका निम्नांकित आर्त्तनाद सुन पड़ा. यथा:—

“हाय हाय ! महान् आपदा आ पड़ी !! हे सर्वलोगोंके आधार, अतिशय सुन्दर, सम्पूर्ण लोगोंके मनके विश्रान्तिस्थान, महापराक्रमी, जगतरक्षक कुमार ! इस संकटमेंसे मेरा रक्षण कर, रक्षण कर !” क्रोधसे युद्धातुर हो रत्नसार- “अरे दुष्ट ! मेरे प्राणजीवन तापसकुमारको हरण करके कहां जाता है ?”

ऐसा उच्चस्वरसे कहकर तथा दृष्टिविष सर्प समान विकराल तलवार म्यानमेंसे निकालकर वेगसे उसके पीछे दौड़ा. सत्य ही है शूरवीर लोगोंकी यही रीति है. रत्नसारके कुछ दूर चले जाने पर उसके इस अद्भुत चरित्रसे चकित हो तोतेने कहा, “हे रत्नसारकुमार ! तू चतुर होते हुए मुग्धमनुष्यकी भांति पीछे पीछे क्यों दौड़ता है ? कहां तो तापसकुमार ? और कहां यह तूफानी पवन ? यम जैसे जीवको ले जाता है, वैसे यह अत्यन्त भयंकर पवन तापसकुमारको हरण कर, कृतार्थ हो कौन जाने उसे कहां और किस प्रकार ले गया ? हे कुमार ! इतनी देरमें वह पवन तापसकुमारको असंख्य लक्ष योजन दूर ले जाकर कहीं गायब हो गया. इसलिये तू शीघ्र वापस आ.”

बड़े वेगसे किया हुआ कार्य निष्फल हो जनेसे लज्जित हुआ कुमार तोतेके वचनसे वापिस लौटा और अत्यन्त खिन्न हो इस प्रकार विलाप करने लगा. “हे पवन ! तूने मेरे सर्वस्व तापसकुमारको हरण कर दावाग्रि समान क्रूर बर्त्ताव क्यों किया ? हाय हाय ! तापसकुमारका मुखचन्द्र देखकर मेरे नेत्ररूप नीलकमल कब विकसित होंगे ? अमृतकी लहरके समान स्निग्ध, मुग्ध और मधुर व चित्ताकर्षक दृष्टिविलास किस प्रकार मुझे मिलेंगे ? मैं दरिद्री उसके कल्पवृक्षके पुष्प समान, अमृतको भी तुच्छ करनेवाले बारम्बार मुखसे निकलते हुए वचन अब किस प्रकार सुनूंगा ?” स्त्रियोंके वियोगसे दुःखी मनुष्योंकी

भांति इस प्रकार नानाविध विलाप करनेवाले रत्नसार-कुमारको पोपटने इस रीतिसे यथार्थ बात कही कि—“ हे रत्नसार ! जिसके लिये तू शोक करता है वह वास्तवमें तापसकुमार नहीं, परन्तु किसी मनुष्यकी निजशक्तिसे रूपान्तरमें परिवर्तित की हुई यह कोई वस्तु है, ऐसा मैं सोचता हूं. उसके भिन्न मनो-विकारसे, मनोहर वाणीसे, कटाक्ष, आकर्षकदृष्टिसे और ऐसे ही अन्यलक्षणोंसे मैं तो निश्चय अनुमान करता हूं कि, वह कोई कन्या है. ऐसा न होता तो तेरे प्रश्नसे उसके नेत्र अश्रुओंके क्यों भर गये थे ? यह तो स्त्रीजातिका लक्षण है. उत्तमपुरुषमें ऐसे लक्षण होना संभव ही नहीं. वह घनघोर पवन नहीं था, बल्कि कोई दिव्यस्वरूप था. ऐसा न होता तो उस पवनने अकेले तापसकुमार ही को हरणकर अपनेको क्यों छोड़ दिया?, मैं तो निश्चयपूर्वक कहता हूं कि वह कोई विचारी भली कन्या है और उस पर कोई दुष्टदेवता, पिशाच आदि उपद्रव करते हैं । दुष्टदैवके सन्मुख किसका वश चलता है ? जब वह कन्या दुष्टपिशाचके हाथमेंसे छूटेगी, तब निश्चयसे तुझे ही बरेगी । कारण कि, जिसने प्रत्यक्ष कल्पवृक्षको देख लिया वह अन्य वृक्ष पर प्रीति कैसे रख सकता है? जैसे सूर्यका उदय होते ही रात्रि-रूप पिशाचिकाके हाथमेंसे कमलिनी छूटती है, वैसे ही वह कन्या भी तेरे शुभकर्मका उदय होने पर उस दुष्टपिशाचके हाथमेंसे छूटेगी, ऐसा मैं निश्चय समझता हूं; पश्चात् सौभाग्य-

वश वह कन्या कहीं पर भी तुझे मिलेगी । कारण कि, भाग्य-
शाली पुरुषोंको वांछितवस्तुकी प्राप्ति अवश्य होती है । हे
कुमार ! यद्यपि यह बात मैं कल्पना करके कहता हूं, तथापि
तू इसे मान्य करना । थोड़े ही समयके अनंतर सत्यासत्यका
निर्णय हो जावेगा । इसलिये हे कुमार ! तू सुविचारी होकर
ऐसा विलाप क्यों करता है ? धीरपुरुषको यह बात उचित
नहीं । ”

कर्तव्यज्ञानी रत्नसारकुमारने तोतेकी ऐसी युक्तिसे परि-
पूर्ण वाणी सुनकर शोक करना छोड़ दिया. ज्ञानियोंका वचन
क्या नहीं कर सकता है ? इसके अनन्तर रत्नसारकुमार व
तोता दोनों अश्व पर बैठकर इष्टदेवकी भांति तापसकुमारका
स्मरण करते हुए पूर्वानुसार मार्ग चलने लगे. एक सरीखा
प्रयाण करते हुए उन दोनों जनोंने क्रमशः हजारों विस्तृत वन,
पर्वत, खाने, नगर, सरोवर, नदी आदि पार करके साम्हने एक
अतिशय मनोहरवृक्षोंसे सुशोभित उद्यान देखा. वह उद्यान
ऐसा दीखता था मानो अद्वितीय सुगंधित पुष्पोंमें भ्रमण करते
हुए भ्रमरोंके गुंजारशब्दसे आदर पूर्वक रत्नसारकुमारका
स्वागत कर रहे हैं. दोनों जने उक्त उद्यानमें प्रवेश कर अति-
हर्षित हुए. उस उद्यानमें भांति भांतिके रत्नोंसे सुशोभित एक
श्रीआदिनाथका मंदिर था. वह अपनी फहराती हुई ध्वजासे
दूरहीसे रत्नसारकुमारको बुलाकर यह कह रहा था कि, “ हे

कुमार ! इस स्थानमें तुझे इस भव तथा परभवकी इष्टवस्तुका लाभ होगा. ” कुमार अश्वपरसे उतरा तथा उसे तिलकवृक्षकी पींडमें बांध, कुछ सुगन्धित पुष्प एकत्रित कर तोतेके साथ मंदिरमें गया. व यथाविधि श्रीआदिनाथभगवानकी पूजा करके इस प्रकार स्तुति करने लगा.

श्रीमद्यगादिदेवाय, सेवाहेवाकिनाकिने ।

नमो देवाधिदेवाय, विश्वविश्वैकदृश्वने ॥ १८६ ॥

परमानन्दकन्दाय, परमार्थैकदेशिने ।

परमब्रह्मरूपाय, नमः परमयोगिने ॥ १८७ ॥

परमात्मस्वरूपाय, परमानन्ददायिने ।

नमस्त्रिजगदीशाय, युगादीशाय तायिने ॥ १८८ ॥

योगिनामध्यगम्याय, प्रणम्याय महात्मनम् ।

नमः श्रीशंभवे विश्वप्रभवेऽस्तु नमो नमः ॥ १८९ ॥

“ सम्पूर्ण जगतके ज्ञाता और देवता भी जिसकी सेवा करनेको उत्सुक हो रहते हैं, ऐसे श्रीदेवाधिदेव श्रीआदिनाथ-भगवानको मेरा नमस्कार है । परमानन्दकन्द, परमार्थोपदेशक, परब्रह्मस्वरूप और परमयोगी श्रीआदिनाथभगवानको मेरा नमस्कार है । परमात्मस्वरूप, परमानन्ददाता, त्रिलोकनाथ और जगद्रक्षक ऐसे श्रीयुगादिदेवको मेरा नमस्कार है । महात्मा-पुरुषोंके वन्दन करने योग्य, लक्ष्मी तथा मंगलके निधि तथा योगियोंको भी जिनके स्वरूपका ज्ञान नहीं होता ऐसे श्रीआ-

दिनाथभगवान्को मेरा नमस्कार है. ” उछाससे जिसके शरीर पर फणस फलके कंटक समान रोमराजि विकसित हुई है ऐसे रत्नसारकुमारने ऊपर लिखे अनुसार जिनेश्वरभगवानकी स्तुति कर. तत्त्वार्थकी प्राप्ति होनेसे ऐसा माना कि, “ मुझे प्रवासका पूर्ण फल आज मिल गया. ”

पश्चात् उसने तृषासे पीडित मनुष्यकी भांति मंदिरके समीपकी शोभारूप अमृतका बारम्बार पान करके तृप्तिमुख प्राप्त किया. तदनन्तर अत्यन्त सुशोभित मंदिरके मत्तवारण-गवाक्ष ऊपर बैठा हुआ रत्नसार, मदोन्मत्तऐरावतहस्ती पर बैठे हुए इन्द्रकी भांति शोभने लगा व उसने तोतेको कहा कि, “ उक्त तापसकुमारका हर्ष उत्पन्न करनेवाला शोध अभी तक क्यों नहीं लगता ? ” तोता बोला- “ हे मित्र ! विषाद न कर. हर्ष धारण कर. शुभशकुन दृष्टि आते हैं जिससे निश्चय आज तापस-कुमारकी प्राप्ति होगी. ” इतनेहीमें दिव्यवस्त्रोंसे सुसज्जित सर्व-दिशाओंको प्रकाशित करती हुई एक सुन्दर स्त्री सन्मुख आई. वह मस्तक पर रत्नसमान शिखाधारी, परम मनोहर, सुन्दर-पंखोंसे सुशोभित, मधुर केकीरवयुक्त, अपनी अलौकिकछविसे अन्य सर्वमयूरोंको हरानेवाले तथा इन्द्रके अश्वसे भी तीव्रगति एक दिव्यमयूर पर अरूढ थी. उसके शरीरकी कान्ति दिव्य थी. स्त्रीधर्मकी आराधना करनेमें निपुण वह स्त्री प्रज्ञप्तिदेवीके समान दीखती थी. कमलिनीकी भांति उसके सर्वांगसे कमल-

पुष्पके समान सुगन्धी वृष्टि होती थी. उसकी सुन्दर युवावस्था देदीप्यमान हो रही थी. और उसका लावण्य अमृतके समान लगता था. साक्षात् रंभाके समान उस स्त्रीने श्रीआदिनाथ-भगवानको वन्दना की और पश्चात् वह मयूरके ऊपर बैठकर ही नृत्य करने लगी. उसने एक निपुण नर्तकीके समान चित्ताकर्षक हस्तपल्लवको कंपा कर, अनेक प्रकारके अंगविश्लेषसे तथा मन-का अभिप्राय व्यक्त करनेवाली अनेकचेष्टासे और अन्य भी नृत्यके विविधप्रकारसे मनोहर नृत्य किया. उस नृत्यको देख कर कुमार व तांतेको इतना चमत्कार प्राप्त हुआ कि वे मंत्र-मुग्धसे होगये। वह मृगलोचनी स्त्री भी सुस्वरूपकुमारको देख कर उल्लाससे विलास करती हुई बहुत समय तक आश्चर्यचकित-सी हो रही. पश्चात् कुमारने उससे कहा “ हे सुन्दर स्त्री ! जो तुझे खेद न होवे तो मैं कुछ पूछना चाहता हूं. ” उसने उत्तर दिया- “ पूछो, कोई हानि नहीं. ” तब कुमारने उसका सर्व वृत्तान्त पूछा. उस स्त्रीने वाक्चातुरीसे प्रारम्भसे अन्त तक अपना मनोवेषक वृत्तान्त कह सुनाया. यथा:—

“सुवर्णकी शोभासे अलौकिकसौन्दर्यको धारण करने-वाली कनकपुरीनगरीमें, अपने कुलको देदीप्यमान करनेवाला कनकध्वज (स्वर्णपताका) के समान कनकध्वज नामक राजा था. उसने अपनी प्रसन्नदृष्टिसे तृणको भी अमृत समान कर दिया. ऐसा न होता तो उसके शत्रु दांतमें तृण पकड़ उसका

स्वाद लेनेसे मृत्यु टालकर किस प्रकार जीवित रहते ? प्रशंसाके योग्य गुणवती तथा इन्द्राणीके समान सुन्दर स्वरूपशाली कुसुमसुन्दरी नामक उसकी राजमहिषी थी. वह एक दिन सुखनिद्रामें सो रही थी इतनेमें उसे एक सुन्दर कन्याकी प्राप्ति करानेवाला स्वप्न दृष्टिमें आया. उसके स्वप्नमें ऐसा सम्बन्ध था कि मनमें रति और प्रीति इन दोनोंका जोड़ा कामदेवकी गोदमेंसे उठकर मानों प्रीतिसे उसकी गोदमें आकर बैठा. शीघ्र जाग्रत हुई कुसुमसुन्दरीने विकसितकमलकी भांति अपने नेत्र खोले. भारी जलप्रवाहसे भराई हुई नदीकी भांति उसका हृदय अकथनीय आनन्दप्रवाहसे परिपूर्ण हो गया. उसने स्वप्नका यथावत् वर्णन राजासे कह सुनाया. स्वप्नविचारके ज्ञाता राजाने उसका यह फल बताया कि, “हे सुन्दरि! विधाताकी सृष्टिमें सर्व श्रेष्ठ व जगत्में सारभूत ऐसा एक कन्याका जोड़ा तुझे प्राप्त होगा.” यह सुन कन्याका लाभ होते भी रानीको अपार हर्ष हुआ. ठीक है, चाहे पुत्र हो या पुत्री, परन्तु जो सर्वमें श्रेष्ठ हो तो किसको न भावे ? अस्तु, कुसुमसुन्दरी गर्भवती हुई. क्रमशः गर्भके प्रभावसे उसका शरीर फीका(पांडु) पड़ गया. मानो गर्भ पवित्र होनेके लिये पाण्डुवर्णके मिषसे वह निर्मल हुई हो. गर्भमें जड़को (जलको) रखनेवाली कादंबिनी (मेघमाला) जो कृष्णवर्ण हो जाती है, तो गर्भमें जड़ (मूढ)-को न रखनेवाली कुसुमसुन्दरी पाण्डुवर्ण हुई यह योग्य ही

है । जिस प्रकार श्रेष्ठनीति कीर्ति और लक्ष्मीरूप जोड़ेको प्रसव करती है उसी भांति यथासमय कुसुमसुन्दरीने एकही समय पा कन्याएं प्रसव कीं. राजाने एकका अशोकमंजरी व दूसरीका तिलकमंजरी नाम रखा. वे दोनों कन्याएं पांच धाय-माताओंसे प्रतिपालित होती हुई मेरुपर्वतस्थित कल्पलताओंकी भांति बढने लगी. कुछ ही कालमें वे दोनों समस्तकलाओंमें कुशल हो गई । एक तो उन कन्याओंके रूपसौंदर्यमें प्रथम ही कोई कमी नहीं था, तथापि स्वाभाविक सुन्दर वनश्री जैसे वसन्तऋतुके आगमनसे विशेष शोभायमान होती है, वैसे ही वे नवयौवनअवस्थाके आनेसे विशेष शोभने लगीं. मानो कामदेवने जगत्को जितनेके लिये दोनों हाथोंमें धारण करनेके लिये दो खड्ग ही उज्ज्वल कर रखें हों ऐसी उन कन्याओंकी शोभा दिखती थी. सर्पकी दो जिह्वा समान अथवा क्रूर ग्रहके दो नेत्रोंके समान जगत्को क्षोभ (कामविकार) उत्पन्न करने-वाली उन दोनों कन्याओंके सन्मुख अपना मन बश रखनेमें किसीका भी धैर्य स्थिर न रहा, सुखमें, दुखमें, आनन्दमें अथवा विषादमें एक दूसरेसे भिन्न न होनेवाली, सर्वकार्योंमें तथा व्यवहारोंमें साथ रहनेवाला तथा शील व सर्वगुणोंसे एक समान उन कन्याओंकी जन्मसे बंधी हुई पारस्परिक प्रीति-को जो कदाचित् उपमा दी जाय तो दो नेत्रों ही की दी जा सकती है. कहा है कि—

सहजगिराण सहसोविराण सहहरिसम्भोअवतारणं ॥

नयणाण व धन्नाणं, आजम्मं निच्चलं पिम्मं ॥ १ ॥

अर्थः--साथमें जगनेवाली, साथमें सोनेवाली (बंद होने वाली), साथमें हर्षित होनेवाली और साथमें शोक करनेवाली दो आंखोंकी भांति जन्मसे लेकर निश्चलप्रेमको धारण करने वालोंको धन्य है. ॥ १ ॥

जब वे कन्याएं युवावस्थामें आईं तब राजा विचार करने लगा कि, “ इनको इन्हींके समान वर कौन मिलेगा ? रति प्रीतिका जैसे एक कामदेव वर है, वैसे इन दोनोंके लिये एकही वरकी शोध करना चाहिये । पृथक् २ वर जो कदाचित् इनको मिले तो दोनोंको परस्पर विरह होनेसे प्राणान्त कष्ट होगा. इस जगत्में इनके लिये कौनसा भाग्यशाली वर उचित है ? एक कल्पलताको धारण कर सके ऐसा एक भी कल्पवृक्ष नहीं, तो दोनोंको धारण करनेवाला कहाँसे मिल सकेगा ? जगत्में इनमेंसे एकको भी ग्रहण करने योग्य वर नहीं है. हाय हाय ! हे कनकध्वज ! तू इन कन्याओंका पिता होकर अब क्या करेगा ? योग्य वरका लाभ न होनेसे निराधार कल्पलताके समान इन लोकोत्तर निर्भागी कन्याओंकी क्या गति होगी ? ” इस प्रकार अतिशयचिन्ताके तापसे संतप्त कनकध्वज राजा महीनोंको वर्ष-के समान और वर्षोंको युगसमान व्यतीत करने लगा. शंकरकी दृष्टि सामनेके मनुष्यको जैसे कष्टकारी होती है, वैसेही

कन्या चाहे कितनीही श्रेष्ठ हो, तो भी वह अवश्य अपने पिता-को दुःखदायक होती है ! कहा है कि-पिताको कन्याके उत्पन्न होतेही “ कन्या हुई ” ऐसी भारी चिन्ता मनमें रहती है. क्रमशः “ अब वह किसको देना ? ” ऐसी चिन्ता रहती है. लग्न करनेके अनन्तर “ पतिके घर सुखसे रहेगी या नहीं ? ” यह चिन्ता उत्पन्न होती है, इसलिये कन्याका पिता होना बहुत ही कष्टदायक है, इसमें शक नहीं. इतनेमें कामदेव राजाकी महिमा जगत्में अतिशय प्रसिद्ध करनेके हेतु अपनी सम्पूर्ण ऋद्धिको साथ ले वसन्तऋतु वनके अन्दर उतरा. वह ऐसा लगता था मानो जिसका अहंकार सर्वत्र फल रहा है, ऐसे काम-देवराजाका तीनों लोकोंको जीतनेसे उत्पन्न हुआ यश मनोहर तीन गीतोंसे गा रहा है. तीनों गीतोंमें प्रथम गीत है मलय-पर्वतके ऊपरसे आनेवाले पवनकी सनसनाहट, दूसरा अमरोकी झंकार व तीसरा है कोकिलपक्षियोंका सुमधुर शब्द, उस समय क्रीडारससे अत्यन्त उत्सुक हुई वे दोनों राजकन्याएं मनका आकर्षण होनेसे हर्षित हो वनमें गई. कोई हाथीके बच्चे पर, तो कोई घोड़े पर, कोई मिश्रजातिके घोड़े पर, तो कोई पालखी अथवा रथआदिमें इस प्रकार भांति भांतिके वाहनमें बैठकर बहुत सखियां उनके साथ निकलीं. पालखीमें सुखपूर्वक बैठी हुई सखियोंके परिवारसे शोभायमान दोनों राजकन्याएं ऐसी शोभा दे रही थीं कि मानो विमानमें आरूढ़ व देवियोंके परि-

चार युक्त साक्षात् लक्ष्मी व सरस्वती हो. शोकको समूल नाश करनेवाले अनेक अशोकवृक्ष जिसमें सर्वत्र व्याप्त हैं ऐसे अशोक-वन नामक उद्यानमें वे राजकन्याएं आ पहुंचीं. अन्दरके बिन्दु-के समान भ्रमरोंसे युक्त होनेके कारण नेत्रोंके समान दीखते हुए पुरुषोंके साथ मानो प्रीतिहीसे नेत्रमिलाप करनेवाली उक्त दोनों राजकन्याएं उद्यान देखने लगीं. तरुणी अशोकमंजरी क्रीडा करनेवाली स्त्रीके चित्तको उत्सुक करनेवाली, रक्त अशोक-वृक्षकी शाखामें बंधे हुए हिंडोले पर चढ़ी. उस पर दृढ़ रखने-वाली सुन्दरी तिलकमंजरीने प्रथम हिंडोलेको झूले दिये. स्त्रीके वशमें पड़ा हुआ पति जैसे उसके पादप्रहारसे द्रवित हो शरीर पर विकसित रोमांच धारण करता है, वैसेही अशोकमंजरीके पादप्रहारसे सन्तुष्ट हुआ अशोकवृक्ष विकसितपुष्पोंके मिस-से मानो अपनी रोमावली विकसित करने लगा. आश्चर्यकी बात यह है कि, हिंडोले पर बैठकर भूलनेवाली अशोकमंजरी तरुण-पुरुषोंके मनमें नानाप्रकारके विकार उत्पन्न कर उनके मन और नेत्रोंको भी हिंडोले पर चढ़े हों उस भांति झूलाने लगी. उस समय रुमझुमझन्द करनेवाले अशोकमंजरीके रत्नजडित पैंजन आदि आभूषण मानो टूटनेके भयहीसे आक्रोश करने लगे, ऐसा भास होता था.

क्रीडारसमें निमग्न हुई अशोकमंजरीके तरफ तरुण पुरुष पुलकित होकर, और तरुणस्त्रियां मनमें ईर्ष्या लाकर क्षणमात्र

देख रही थीं, इतनेमें दुर्भाग्यवश प्रचंड पवनके वेगसे अकस्मात् हिंडोला टूट गया और उसके साथ ही लोगोंके मनका क्रीडारस भी नष्ट होगया । शरीरमेंकी नाडी टूटनेसे जैसे लोग आकुलव्याकुल होते हैं वैसे ही हिंडोलेके टूटते ही सब लोग व्याकुल हो हाहाकार करने लगे । इतने ही में मानो आकाशमें कौतुकसे गमन करती होय इस तरह अशोकमंजरी हिंडोले सहित वेगसे आकाशमें जाती हुई दृष्टिमें आई । तब लोग उच्चस्वरसे कोलाहल करने लगे कि, “ हाय हाय ! कोई यमके समान अदृश्यपुरुष इसको हरण किये जा रहा है ! ! ” प्रचंड मनुष्य और बाणोंके समूहको धारण करनेवाले, शत्रुको सन्मुख न टिकने देनेवाले शूरवीर पुरुष झडपसे वहां आये व खड़े रह कर ऊंचीदृष्टिसे अशोकमंजरीका हरण देख रहे थे, परन्तु वे कुछ भी न कर सके । ठीक ही है अदृश्य अपराधीको कौन शिक्षा कर सकता है ?

राजा कनकध्वज कानमें शूल उत्पन्न कर ऐसा कन्याका हरण सुनकर क्षणमात्र वज्रप्रहारसे पीडित मनुष्यकी भांति अतिदुःखित हुआ । “ हे वत्से ! तू कहां गई ? तू मुझे दर्शन क्यों नहीं देती ? हे शुद्धचित्ते ! क्या तूने पूर्वका अपार प्रेम छोड़ दिया ? हाय हाय ! ! ” राजा विरहातुर हो इस प्रकार शोक कर रहा था, कि इतनेमें एक सेवकने आकर कहा-“ हाय हाय ! हे स्वामिन् ! अशोकमंजरीके शोकसे जर्जरित तिलक-

मंजरी जैसे प्रचंडवेगसे वृक्षकी मंजरी गिर जाती है, वैसे मूर्च्छित होकर पड़ी है, वह ऐसी मालूम होती है मानो कंठमें प्राण रखकर अशरण होगई हो ? ” घाव पर क्षार पड़ने अथवा जले हुए स्थान पर छाला होनेके समान यह वचन सुन राजा कनकध्वज कुछ मनुष्योंके साथ शीघ्र ही तिलकमंजरीके पास आया । चंदनादि शीतल उपचार करनेसे बड़े प्रयाससे वह संचैतन्य हुई और विलाप करने लगी—“ मदोन्मत हास्तिके समान गतिवाली मेरी स्वामिनी ! तू कहां है ? मुझ पर अपूर्व प्रेम होते हुए तू मुझे यहां छोड़कर कहां चली गई ? हाय २ ! मुझ अभागिणीके प्राण तेरे वियोगसे शरण रहित और चारों ओरसे बाणद्वारा विधे हुएके समान हुए अब किस प्रकार रहेंगे ? हे तात ! मैं जीवित रह गई इससे बढकर दूसरी कौनसी अनिष्टकी बात है ? मेरी भगिनीका असह्यवियोग मैं अब कैसे सहन करूं ? ” इस प्रकार विलाप करती हुई तिलकमंजरी पागलकी भांति धूलमें लौटने तथा मछलीकी भांति तडपने लगी । जैसे दावानलके स्पर्शसे लता सूखती है, वैसे वह खड़ी २ ही इतनी सूख गई कि किसीको भी उसके जीवनकी आशा न रही. इतनेमें उसकी माता भी वहां आकर इस प्रकार विलाप करने लगी- “ हे दुर्देव ! तुने निर्दयी होकर मुझे ऐसा दुःख क्यों दिया ? मेरी एक पुत्रीको तो तु हरण कर लेगया और दूसरी मेरे देखते २ मृत्युको प्राप्त होगी ? हाय ! हाय ! मैं मारी गई.

हे भोत्रंदेवियो ! वनदेवियो ! आकाशदेवियो ! तुम शीघ्र आओ और मेरी इस कन्याको दीर्घायु करो । ” रानीकी सखियां, दासियां, और नगरकी सती स्त्रियां वहां आकर रानीके दुःखसे स्वयं दुखी होकर उच्चस्वरसे अतिशय विलाप करने लगीं । उस समय वहाँके सर्व मनुष्य शोकातुर थे । “ अशोक ” नाम धारण करनेवाले वृक्ष भी चारों ओरसे शोक करते हों ऐसे मालूम होने लगे- उन लोगोंके दुःखसे अतिशय दुःखी हो वहां न रह सकनेके कारण मानो सूर्य भी उसी समय पश्चिमसमुद्रमें डूब गया (अस्त होगया ।) पूर्वदिशाकी ओरसे फैलते हुए अंधकारको अशोकमंजरीके विरहसे उत्पन्न हुए शोकने मार्ग दिखा दिया जिससे वह तुरन्त ही सुखपूर्वक वहां सर्वत्र प्रसारित होगया । जिससे शोकातुर लोग और भी अकुलाये । मलानवस्तुके कृत्य ऐसे ही होते हैं । थोड़ी देरके अनन्तर अमृतके समान रश्मिधारी सुखदायी चन्द्रमा त्रैलोक्यको मलीन करनेवाले अंधकारको दूर करता हुआ प्रकट हुआ । जैसे सजलमेघ लताओंको तृप्त करता है, वैसे ही मानो चन्द्रमाने मनमें मानो दया लाकर ही अपनी चंद्रिका (चांदनी) रूप अमृतरसकी वृष्टिसे तिलकमंजरीको प्रसन्न की ।

पश्चात् रात्रिके अंतिमग्रहरमें जैसे मार्गकी जानने वाली मुसाफिर स्त्री उठती है, वैसे ही मनमें कुछ विचार करके तिलकमंजरी उठी, और निष्कपटमनसे सखियोंको साथ लेकर

उद्यानके अंदर स्थित गोत्रदेवी चक्रेश्वरीके मंदिरमें शीघ्र गई. और परमभक्तिसे कमलपुष्पोंकी मालाओंसे पूजा करके उसे विनती करी कि:—“हे स्वामिनी ! मैंने जो मनमें कपट रहित भक्ति रखकर सर्वकाल तेरी पूजा, वंदना और स्तुति करी होवे तो आज मेरे ऊपर अनुग्रह कर अपनी पवित्रवाणीसे मेरी बहिनकी शुद्धि बता. हे मातेश्वरी ! अगर यह बात तुझसे न बनेगी तो, “यह समझ ले कि मैंने आजन्म पर्यंत भोजनका त्याग किया.” कारणकि कौन नीतिमान् मनुष्य अपने इष्टव्यक्तिके अनिष्टकी मनमें कल्पना आने पर भोजन करता है ? ”

तिलकमंजरीकी भक्ति, शक्ति और बोलनेकी युक्ति देखकर चक्रेश्वरी देवी प्रसन्न होकर शीघ्र प्रकट हुई. मनुष्य मनकी एकाग्रता करे तो क्या नहीं हो सकता ? देवाने हर्षपूर्वक कहा कि, “हे तिलकमंजरी ! तेरी बहिन कुशल पूर्वक है. हे वत्से ! तू खेदको त्याग कर दे और भोजन कर. एक मासके अंदर तुझे अशोकमंजरीकी शुद्धि मिलेगी और दैवयोगसे उसी समय उसका व तेरा मिलाप भी होगा. जो तू पूछना चाहेकि उसका मिलाप कहाँ व किस प्रकार होगा ? तो सुन-सधन-वृक्षोंके कारण कायरमनुष्य जिसे पार नहीं कर सकता वैसी इस नगरकी पश्चिम दिशामें कुछ दूर पर एक अटवी (वन) है. उस समृद्धअटवीमें राजाका हाथ तो क्या ? परन्तु सूर्यकी किरणें भी कहीं प्रवेश नहीं कर सकती. वहाँके भृंगाल भी अन्तः

पुरवासिनी राजस्त्रियोंकी भांति कभी भी सूर्यका दर्शन नहीं कर सकते. वहां मानो आकाशसे सूर्यका विमान ही उतरा हो ऐसा श्रीऋषभदेवभगवानका एक रत्नजड़ित सुशोभित मंदिर है. आकाशमें शोभित पूर्णचन्द्रकी भांति उस मंदिरमें श्रेष्ठ चन्द्रकान्तमणिकी जिनप्रतिमा विराजमान है. मानो उस प्रतिमाको स्वयं विधाता ही ने कल्पवृक्ष, कामधेनु, कामकुंभ-आदि वस्तुओंसे महिमाका सार लेकर बनाई हो ! हे तिलक-मंजरी ! तू उस प्रशस्त और अतिशयसे जागृत प्रतिमाकी पूजा कर, जिससे तेरी बहिनकी शुद्धि मिलेगी और मिलाप भी होगा. वहां तेरा सर्व प्रकार इष्टलाभ ही होगा. भगवान् जिनेश्वरमहाराजकी सेवासे क्या नहीं हो सकता ? जो तू यह कहे कि मैं इतनी दूर उस मंदिरको किस प्रकार जाऊं व आऊं ? तो हे सुन्दरि ! मैं उसका भी उपाय कहती हूं, सुन. कार्यका उपाय गड़बड़में भली भांति न कहा हो तो कार्य सफल नहीं होता. शंकरकी भांति सर्वकार्य करनेमें समर्थ व हरएक कार्य करनेमें तत्पर चन्द्रचूड़ नामक मेरा एक सेवक देवता है. जैसे ब्रह्माके आदेशसे हंस सरस्वतीको ले जाता है. वैसे ही मेरे आदेशसे वह देव मयूरपक्षीका रूप करके तुझे वांछित स्थानमें ले जावेगा. ”

चक्रेश्वरदेवीके इतना कहते ही एक मधुरकेकारव करने-वाला सुन्दरपक्षधारी मयूर एकाएक प्रकट हुआ. उस अद्वितीय-

गति दिव्यमयूर पक्षीपर बैठकर देवीकी भांति तिलकमंजरी नित्य क्षणमात्रमें जिनमहाराजकी पूजा करनेको आती जाती है, जहां वह आती है, वही यह चित्ताकर्षक बन, वही यह मंदिर, वही मैं तिलकमंजरी और वही यह विवेकी मयूरपक्षी है, हे कुमार ! इस प्रकार मैंने अपना वृत्तान्त कह सुनाया, हे भाग्यशाली ! अब मैं शुद्धमनसे तुझे कुछ पूछती हूं, आज एक मास पूर्ण होगया मैं नित्य यहां आती हूं, जैसे मारवाडदेशमें गंगानदीका नाम भी नहीं मिलता, वैसे मैंने मेरी बहिनका अभीतक नामतक नहीं सुना, हे जगत्श्रेष्ठ ! हे कुमार ! क्या मेरे ही समान रूपवाली कोई कन्या जगत्में भ्रमण करते हुए तेरे कहीं देखनेमें आई है ? '

तिलकमंजरीके इस प्रश्नपर रत्नसारकुमारने मधुरस्वरसे उत्तर दिया कि, 'भयातुर हरिणीकी भांति चंचलनेत्रवाली, त्रैलोक्यवासी सर्वस्त्रियोंमें शिरोमणि, हे तिलकमंजरी ! जगत्में भ्रमण करते मैंने यथार्थ तेरे समान तो क्या बल्कि अंशमात्रसे भी तेरे समान कन्या देखी नहीं, और देखूंगा भी नहीं, कारण कि, जगत्में जो वस्तु होवे तो देखनेमें आवे, न होवे तो कहाँसे आवे ? तथापि हे सुन्दरि ! दिव्यदेहधारी, हिंडोले पर चढ़कर बैठा हुआ, सुशोभित तरुणावस्थामें पहुंचा हुआ, लक्ष्मीदेवीके समान मनोहर एक तापसकुमार शबरसेनावनमें मेरे देखनेमें आया है, वह मात्र वचनकी मधुरता, रूप, आकारआदिसे

तेरेही समान था. हे महामना ! उस तापसकुमारने स्वाभाविक-प्रेमसे मेरा जो आदरसत्कार किया, उस सर्व बातका स्वप्नकी भांति विरह होगया, यह बात जब जब याद आती है तब तब मेरा मन अभीभी टुकड़े होता हो, अथवा जलता हो ऐसा प्रतीत होता है. मुझे ऐसा जान पड़ता है कि तू वही तापसकुमार है अथवा वह तेरी बहिन होगी. कारणकि, दैवगति विचित्र होती है.” कुमार यह कह रहा था इतनेमें उक्त चतुर तोता कलकल-शब्दसे कहने लगाकि, “हे कुमार ! मैंने यह बात प्रथम ही से जान ली थी और तुझे कहा भी था. मैं निश्चयपूर्वक कहता हूं कि वह तापसकुमार वास्तवमें कन्या ही है, और इसकी बहिन ही है. मेरी समझमें मास पूर्ण होगया है, इससे आज किसी भी भांति उसका मिलाप होवेगा. ‘तिलकमंजरीने तोतेके ये वचन सुनकर कहाकि, हे शुक ! जो मैं जगत्में सारभूत मेरी बहिनको देखूंगी, तो तेरी कमलसे पूजा करूंगी.” इत्यादि रत्नसार और तिलकमंजरीने तोतेकी प्रशंसा करी. इतने ही में मधुरशब्द-वाले नेउरसे शोभित, मानो आकाशमेंसे चन्द्रमंडली ही गिरती हो ! ऐसी आंति उत्पन्न करनेवाली, आतिशय लंबा पंथ काटनेसे थकी हुई तथा दूसरी हंसनियां डाहसे, हंस अनुरागदृष्टिसे और कुमारआदि आश्चर्य तथा प्रीतिसे जिसके तरफ देखते रहे हैं ऐसी एक दिव्य हंसिनी रत्नसारकुमारकी गोदमें पड़ लोटने लगी. और मानो असीमप्रीति ही से

कुमारके मुखको देखती हुई तथा भयसे कांपती हुई मनुष्य-भाषासे बोलने लगी कि, “ शक्तिशाली लोगोंकी पंक्तिमें माणिक्य रत्न समान, शरणवत्सल, हे कुमार ! मेरी रक्षा कर । मैं तुझे मेरी रक्षा करनेके सर्वथा योग्य समझकर तेरी शरणमें आई हूं कारणकि, महान्पुरुष शरणागतके लिये वज्रपंजर (वज्रके पिंजरे) के समान है. किसी समय व किसी भी स्थानमें पवन स्थिर हो जाय, पर्वत हिलने लगे, बिना तपाये स्वाभाविक रीति ही से जल अग्निकी भांति जलने लगे, अग्नि बर्फके समान शीतल हो जाय, परमाणुका मेरु बन जाय, मेरु परमाणु हो जाय, आकाशमें अद्वर कमल उगे तथा गंधेको सींग आजाय, तथापि धीरपुरुष शरणागतको कल्यान्त पर्यंत भी नहीं छोड़ते. व शरणमें आये हुए जीवोंकी रक्षा करनेके निमित्त विशालसाम्राज्यको भी रजःकणके समान गिनते हैं. धनका नाश करते हैं, और प्राणको भी तृणवत् समझते हैं.”

यह सुन रत्नसारकुमार उस हंसिनिके कमलसदृश कोमल पैरों पर हाथ फिराकर कहने लगाकि, - “ हे हंसिनी ! भयातुर न हो. मेरी गोदमें बैठे रहते कोई राजा, विद्याधरेश तथा वैमानिकदेवताओंका अथवा भवनपतिका इन्द्र भी तुझे हरण करनेको समर्थ नहीं. मेरी गोदमें बैठी हुई होते तू शेषनागकी कुंचकीके समान श्वेत तेरे युगलपंखोंको क्या धूजाती है ? ” यह कह कुमारने उसे सरोवरमेंसे निर्मल जल और सरस कमल-

तंतु मंगाकर देकर संतुष्ट करी कुमारआदिके मनमें यह संशय आही रहा था कि, “यह कौन है ? कहांसे आई ? किससे भयातुर हुई ? और मनुष्यवाणीसे किस प्रकार बोलती है ?” इतने ही म शत्रुओंके करोड़ों सुभटोंके निम्नोक्त भयंकर वचन उनके कानमें पड़े. “त्रैलोक्यका अंत करने वाले यमको कौन कुपित कर सकता है ? अपने जीवनकी परवाह न करते शेषनागके मस्तक पर स्थित मणिको कौन स्पर्श कर सकता है ? तथा कौन बिना विचार प्रलयकालकी अग्निज्वालाओंमें प्रवेश कर सकता है ?” इत्यादि. ऐसे वचन सुनते ही तोतेके मनमें शंका उत्पन्न हुई, और वह मंदिरके द्वारमें आकर देखने लगा, उसने गंगाके तीव्र-प्रवाहकी भांति, आकाशमार्गमें आती हुई विद्याधरराजाकी महान् शूरवीर सेना उसके देखनेमें आई. तीर्थके प्रभावसे, कुछ दैविकप्रभावसे, भाग्यशाली रत्नसारके आश्चर्यकारी भाग्यसे अथवा उसके परिचयसे, कौन जाने किस कारणसे तोता शूरवीरपुरुषोंका व्रत पालनेमें अग्रसर हुआ. उसने गंभीर और उच्चस्वरसे ललकार कर शत्रुकी सेनाको कहाकि, “अरे विद्याधर-सुभटों ! दुष्टबुद्धिसे कहां दौड़ते हो ? क्या नहीं देखते कि देवताओंसे भी न जिता जा सके ऐसा कुमार सन्मुख बैठा हुआ है ? सुवर्णसदृश तेजस्वी कायाको धारण करनेवाला यह कुमार, जैसे गरुड चारों ओर दौड़नेवाला सर्पोंका मद उतारता है वैसे ही तुम्हारा मदोन्मत्तकी भांति अहंकार क्षण-

मात्रमें उतारेगा. जो इस कुमारको क्रोध चढ़ेगा तो युद्धकी बात तो दूर रही ! परंतु तुमको भागतेर भी भूमिका अंत न मिले.” विद्याधरके सुभट वीरपुरुषके समान तोतेकी ऐसी ललकार सुनकर घबराये, चकित हुए, डर गये और मनमें सोचने लगे कि-यह कोई देवता अथवा भवनपति तोतेके रूपमें बैठा है. यदि ऐसा न होता तो यह इस प्रकार विद्याधरोंको भी ललकारसे कैसे बोलता ? कुमार कैसा भयंकर है ? कौन जाने ? आजतक विद्याधरोंके भयंकर सिंहनाद भी हमने सहन किये हैं, परन्तु आज एक तोतेकी यह तुच्छ ललकार हमसे क्यों नहीं सहन होता है ? जिसका तोता भी ऐसा शूरवीर है कि जो विद्याधरों तकको भय उत्पन्न करता है तो वह कुमार कौन जाने कैसा होगा ? युद्धमें निपुण होने पर भी अपरिचितके साथ कौन युद्ध करे ? कोई तैरनेका अहंकार रखता हो तो भी क्या वह अपारसमुद्रको तैर सकता है ?”

भयभीत हुए, आकुलव्याकुल हुए और पराक्रमसे भ्रष्ट हुए समस्त विद्याधरसुभट तोतेकी ललकार सुनते ही उपरोक्त विचार कर शियालियोंकी भांति भाग गये ! जैसे बालक पिताके पास जाकर कहते हैं वैसे उन सुभटोंने भी अपने राजाके पास जाकर संपूर्ण वृत्तान्त कहा. सुभटोंका वचन सुनते ही विद्याधरराजाके नेत्र क्रोधसे रक्त हो गये और बिजलीके समान इधर उधर चमक मारने लगे और ललाट पर चढ़ाई हुई

भौंहसे उसका मुख भयंकर दीखने लगा. पश्चात् उस सिंह समान वलिष्ठ व कीर्तिमान् राजाने कहा कि, “ हे सुभटों ! शूरवीरताका अहंकार रखते हुए वास्तवमें कायर और अकारण डरनेवाले तुमको धिकार है ! तोता, कुमार अथवा कोई अन्य देवता वा भवनपति वह क्या चीज़ है ? अरे दरिद्रियों ! तुम अब मेरा पराक्रम देखो. ” इस प्रकारसे उच्चस्वरसे धिकार वचन कह कर उसने दश मुंह व बीस हाथ वाला रूप प्रकट किया. एक दाहिने हाथमें शत्रुके कवचको सहजमें काट डालने वाला खड्ग, और एक वामहाथमें ढाल, एकहाथमें मणिधर सर्प सदृश बाणोंका समूह और दूसरे हाथमें यमके बाहुदंडकी भांति भय उत्पन्न करनेवाला धनुष, एक हाथमें मानो अपना उसका मूर्तिमन्त यश ही हो ऐसा गंभीरस्वरवाला शंख और दूसरे हाथमें शत्रुके यशरूपी नाग (हाथी) को बंधनमें डालने-वाला नागपाश, एक हाथमें यमरूप हाथीके दंतसमान शत्रु-नाशक भाला और दूसरे हाथमें भयंकर फरसी, एक हाथमें, पर्वतके समान विशाल मुद्गर और दूसरे हाथमें भयानक पत्र-पाल, एक हाथमें जलती हुई कांतिवाला भिदिपाल और दूसरे हाथमें अतितीक्ष्ण शल्य, एक हाथमें महान भयंकर तोमर और दूसरे हाथमें शत्रुको शूल उत्पन्न करने वाला त्रिशूल, एक हाथमें प्रचंड लोहदंड और दूसरे हाथमें मानो अपनी मूर्तिमंति शक्ति ही हो ? ऐसी शक्ति, एक हाथमें शत्रुका नाश

करनेमें अतिनिपुण पट्टिश और दूसरे हाथमें किसी रातसे फूट न सके ऐसा दुस्फोट, एक हाथमें बैरीलोंको विघ्न करनेवाली शतघ्नी और दूसरे हाथमें परचक्रको कालचक्र समान चक्र; इस प्रकार बीसों हाथोंमें क्रमशः बीस आयुध धारण कर वह बड़ा ही भयंकर हो गया.

वैसे ही, एक मुखसे सांडकी भांति डकारता, दूसरे मुखसे तूफानी समुद्रके समान गर्जना करता, तीसरे मुखसे सिंहके समान सिंहनाद करता, चौथे मुखसे अट्टहास्य (खिलखिला कर हंसना) करता, पांचवें मुखसे वासुदेवकी भांति भारी शंख बजाता, छठे मुखसे मंत्रसाधक पुरुषकी भांति दिव्यमंत्रोंका जप करता, सातवें मुखसे एक बड़े वानरकी भांति हकारव करता, आठवें मुखसे पिशाचकी तरह उच्चस्वरसे भयंकर किलकिल शब्द करता, ननमें मुखसे गुरुकी भांति कुशिष्यरूपी सेनाको तर्जना करता तथा दशवें मुखसे वादी जैसे प्रतिवादीको तिरस्कार करता है, वैसे रत्नसार-कुमारको तिरस्कार करता हुआ वह भिन्न २ चेष्टा करनेवाले दशमुखोंसे मानो दशों दिशाओंको समकालमें भक्षण करनेको तैयार हुआ हो ऐसा दीखता था. एक दाहिनी और एक बाईं दो आंखोंसे अपनी सेनाके तरफ अवज्ञा और तिरस्कारसे देखता, दो आंखोंसे अपनी भुजाओंको अहंकार व उत्साहसे देखता, दो आंखोंसे अपने आयुधोंको हर्ष व उत्कर्षसे देखता, दो आंखोंसे तोतेको आक्षेप और दयासे देखता, दो आंखोंसे

हंसिनीकी तरफ प्रेम व समझावटसे देखता, दो आंखोंसे तिलक-
मंजरीकी तरफ अभिलाषा व उत्सुकतासे देखता, दो आंखोंसे
मयूरपक्षीकी और इच्छा व कौतुकसे देखता, दो आंखोंसे
जिनेश्वरभगवानकी प्रतिमा तरफ उल्लास व भक्तिसे देखता,
दो आंखोंसे कुमारके तरफ डाह और क्रोधसे देखता तथा दो
आंखोंसे कुमारके तेजको भय तथा आश्चर्यसे देखता हुआ वह
विद्याधरराजा मानो अपनी अपनी बीस भुजाओंकी स्पर्धा
ही से अपनी बीस आंखोंसे ऊपरोक्त कथनानुसार पृथक्-पृथक् बीस
मनोविकार प्रकट करता था. पश्चात् वह यमकी भांति किसीसे
वशमें न होवे ऐसा प्रलयकालकी भांति किसीसे सहा न जावे
ऐसा और उत्पातकी भांति जगत्को क्षोभ उत्पन्न करनेवाला
होकर आकाशमें उछला.

उसके महान् भयंकर और अद्भुत साक्षात् रावणके समान
स्वरूपको देखकर तोता डरा. ठीक ही है, ऐसे क्रूरस्वरूपके
सन्मुख कौन खड़ा रह सकता है ? दावाग्निको जलती हुई
ज्वालाको पीनेकी कौन मनुष्य इच्छा करता है ? अस्तु,
भयभीत तोता श्रीरामके समान रत्नसारकुमारकी शरणमें गया.
अनन्तर विद्याधरराजाने इस प्रकार ललकार की- “हे कुमार !
दूर भाग जा, चरना अभी नष्ट हो जावेगा. अरे दुष्ट ! निर्लज्ज !
अमर्याद ! निरंकुश ! तू मेरे जीवनकी सर्वस्व हंसिनीको गोदमें
लेकर बैठा है ? अरे ! तुझे बिलकुल किसीका भय या शंका

नहीं ? जिससे तू अभीतक मेरे सन्मुख खड़ा है. हे मूर्ख ! सदैव दुःखी जीवको भांति तू शीघ्र मरेगा.”

जिस समय वह उक्त तिरस्कार वचन बोल रहा था उस समय तोता शंकासे, मयूर कौतुकसे, कमलनयनी तिलकमंजरी त्राससे और हंसिनी संशयसे कुमारके मुख तरफ देख रही थी. इतनेमें कुमारने किंचित् हंस कर कहा- “अरे ! तू वृथा क्यों डराता है ? यह डर किसी बालकके सन्मुख चलेगा, वीरके सन्मुख नहीं. अन्य पक्षी तो ताली बजानेसे ही डर जाते हैं, परंतु नगारा बजने पर भी ढिठाई रखनेवाला मठके अंदर रहनेवाला कपोत बिलकुल नहीं डरता है. इस शरणमें आई हुई हंसिनीको कल्पांत हो जाने पर भी मैं नहीं छोड़ सकता. इतने पर भी सर्पके मस्तक पर स्थित मणिकी भांति तू इसकी इच्छा करता है, इसलिये तुझे धिक्कार है. इसकी आशा छोड़कर तू शीघ्र यहांसे भाग जा, अन्यथा मैं तेरे दशमस्तकोंसे दश-दिक्पालोंको बलि दूंगा.”

इतने ही में रत्नसारकुमारको सहायता करनेके इच्छुक चन्द्रचूडदेवताने मयूरपक्षीका रूप त्याग शीघ्र अपना देवरूप बनाया. और हाथमें भांतिरके आयुध धारण करके कुमारके पास आया. पूर्वभवके किये हुए कर्मोंकी बलिहारी है ! उसने कुमारको कहा- “हे कुमार तू तेरी इच्छाके अनुसार युद्ध कर, मैं तुझे शस्त्र दूंगा व तेरे शत्रुको चूर्ण कर डालूंगा.” यह सुन

लोहकवच तथा कुबेरका पक्ष मिलनेसे तक्षकादिककी भांति कुमारको द्विगुण उत्साह हुआ और हंसिनीको तिलकमंजरीके हाथमें देकर, स्वयं तैयार हो विष्णु जैसे गरुड पर चढ़ते हैं वैसे समरान्धकार अश्व पर चढ़ा. तब चन्द्रचूडने शीघ्र सेवककी भांति कुमारको गाण्डीवको तुच्छ करनेवाला धनुष्य और बाणोंके तर्कश्र दिये. उस समय रत्नसारकुमार देदीप्यमान कालकी भांति प्रचण्ड भुजदण्डमें धारण किये हुए धनुष्यका भयंकर टंकार शब्द करता हुआ आगे बढ़ा. पश्चात् दोनों योद्धाओंने धनुष्यकी टंकारसे दशों दिशाओंको बहरी कर डालें ऐसा बाणयुद्ध प्रारंभ किया. दोनों जनोंके हाथ इतने कुशल थे कि कोई उनका तर्कश्रमेंसे बाण निकालना, धनुष्यको जोड़ना और छोड़ना देख ही नहीं पाता था, केवल एक सरीखी जो बाणवृष्टि हो रही थी वह तोतेआदिके देखनेमें न आई.

ठीक ही है, जलसे पूर्ण नवीनमेघ वृष्टि करे तब वृष्टिकी धाराका पूर्वापर क्रम कैसे ज्ञात हो सकता है ? बाण फेंकनेमें स्वाभाविक हस्तचातुर्य धारण करनेवाले और कभीभी आकुल-व्याकुल न होंवे ऐसे उभयवीरोंके केवल बाणही परस्पर प्रहार करते थे परन्तु उनके शरीरमें एकभी बाणने स्पर्श नहीं किया, अत्यन्त क्रोधित हुए उन दोनों महायोद्धाओं बहुत समय तक सेछ, गावल, तीरी, तोमर, तबल, अर्द्धचन्द्र, अर्द्धनाराच, नाराच-आदि नानाप्रकारके तीक्ष्णबाणोंसे युद्ध होता रहा. परन्तु

दोनोंमें से कोई भी न था। एकही समान दो कुशल जुआरी होवे तो उनमें परस्पर विजयका जैसे संशय रहता है, ऐसीही गति इन दोनोंकी थी। ठीक ही है, एक विद्याके बलसे और दूसरा देवताके बलसे बलिष्ठ हुए, बालि और रावणके समान उन दोनों योद्धाओंमें किसकी विजय होगी, यह शीघ्रही कैसे निश्चय किया जा सकता है ? सुनीतिसे उपाजित धन जैसे क्रमशः चढ़ती दशमें आता है, वैसे नीति और धर्मका विशेष बल होनेसे रत्नसारकुमारका अनुक्रमसे उत्कर्ष हुआ। उससे हतोत्साह हो विद्याधर राजाने अपना पराजय हुआ समझ संग्राम करनेकी सीधी राह छोड़ दी, और वह अपनी सर्वशक्तिसे कुमार पर टूट पड़ा। बस भुजाओंमें धारण किये हुए विविध-शस्त्रोंसे कुमारको प्रहार करनेवाला वह विद्याधरराजा सह-स्रार्जुनकी भांति असह्य प्रतीत होने लगा। शुद्धचित्त रत्नसार-कुमार “अन्यायसे संग्राम करनेवाले किसी भी पुरुषकी जीत कभी नहीं होती” यह सोच बहुत उत्साहित हुआ। विद्याधरराजाके किये हुए सर्वप्रहारोंसे अश्वरत्नकी चालाकीसे अपनी रक्षा करनेवाले कुमारने शीघ्र क्षुरप्रनामक बाण हाथमें लिया। व शस्त्रभेदनकी रीतिमें दक्ष होनेके कारण उसने, जैसे उस्तरेसे बाल काटे जाते हैं वैसे उसके सर्व शस्त्र तोड़ डाले। साथही एक अर्द्धचन्द्रबाणसे विद्याधरराजाके धनुष्यके भी दो टुकड़े कर दिये, और दूसरे अर्द्धचन्द्रबाणसे

उसकी अभेद्य छातीमें प्रहार किया, बड़ाही आश्चर्य है कि एक वणिक्कुमारमें भी ऐसा अलौकिक पराक्रम था, विद्याधर-राजाकी छातीसे रक्तका झरना वह निकला, प्रहारसे दुःखित व शस्त्र रहित होनेसे वह पानखर क्रतुमें पत्र होते हुए पीपल-वृक्षके समान होगया, इस अवस्थामें भी उसने बहुरुपिणी विद्या द्वारा वेग बहु होनेके लिये क्रोधित हो बहुतसे रूप प्रकट किये, वे असंख्यरूप पवनके तूफानकी भांति संपूर्ण जगत्को बड़े भयानक हुए, प्रलयकालके भयंकर बादलोंके समान उन रूपोंसे सर्व प्रदेश रुकाहुआ होनेसे आकाश इतना भयानक हो गया कि देखा नहीं जा सकता था, कुमारने जहां २ अपनी दृष्टि फेरी वहां उसे भयंकर भुजाओंके समुदाय युक्त विद्याधर-राजा नजर आया, परन्तु उसे लेश मात्रभी भय न हुआ, धीर-पुरुष कल्पान्त काल आ पडने पर भी कायर नहीं होते,

पश्चात् कुमारने बेनिशान चारों ओर बाणवृष्टि शुरू करी, ठीक ही है, संकट समय आने पर धीरपुरुष अधिक पराक्रम प्रकट करते हैं, कुमारको भयंकर संकटमें फंसा हुआ देखकर चन्द्रचूडदेवता हाथमें विशाल मुद्गर लेकर विद्याधरराजाको प्रहार करनेके लिये उठा, गदाधारी भीमसेनकी भांति भयंकर रूपधारी चन्द्रचूडदेवताको आता देख दुःशासन समान विद्याधरराजा बड़ा क्षुभित हुआ, तथापि वह धैर्यके साथ अपने सर्वरूपसे, सर्वभुजाओंसे, सर्वशक्तिसे और सर्व तरफसे

देवताको प्रहार करने लगा. देवताकी अचिन्त्य शक्ति व कुमारके अद्भुतभाग्यसे चन्द्रचूड पर किये हुए शत्रुके सर्व प्रहार कृतघ्न मनुष्य पर किये हुए उपकारकी भांति निष्फल हुए. जैसे इन्द्र वज्रसे पर्वतको प्रहार करता है वैसे क्रोधसे दुर्धर हुए चद्रचूडने विद्याधरराजाके मुख्य स्वरूप पर प्रहार किया, तब कायर मनुष्योंके प्राण निकल जावे ऐसा भयंकर शब्द हुआ. विद्याचलसे अहंकारी हुए, त्रैलोक्यविजयी सत्ताधारी वासुदेव समान विद्याधर राजाकी वज्रके सदृश मजबूत मस्तक उस प्रहारसे विदीर्ण नहीं हुआ. तथापि भय पाकर उसकी बहुरूपिणी महाविद्या कौण्ठिके समान शक्ति भाग गई. वास्तवमें देवताओंकी सहायता आश्चर्यकारी होती है इसमें कुछ शक नहीं.

“यह कुमार स्वभाव ही से शत्रुओंको राक्षस समान भयंकर लगता था, और उसमें भी अग्निको सहायक जैसे पवन मिलता है, वैसे इसे अजेय देवता सहायक मिला है.” यह विचार कर विद्याधरराजाकी विद्या भाग गई. कहा है कि जो भागे सो जावे. पैदलका स्वामी वह विद्याधरराजा अपनी भागी हुई इष्टविद्याको देखनेके लिये उसके पीछे त्रिवेगसे दौड़ता गया. संयोगनिष्ठ (परस्पर संयोगसे बने हुए) दो कार्योंमें जैसे एकका नाश होनेसे दूसरेका भी नाश हो जाता है, वैसेही विद्याका लोप होतेही विद्याधरराजाका भी लोप होगया. कहाँ

तो सुकुमार कुमार और कहाँ वह कठोर विद्याधर. तथापि कुमारने विद्याधरको जीता, इसका कारण यह है कि जहाँ धर्म हो वहीं जय होता है। विद्याधरराजाके सेवक भी उसके साथ ही भाग गये. ठीकही है दीविके बुद्ध जाने पर क्या पीछे उसकी प्रभा रहती है ? तदनंतर जैसे राजा सेवकके साथ महलमें आता है, वैसे कुमार दुर्जयशत्रुको जीतनेसे उत्कर्ष पाये हुए देवताके साथ प्रासादमें आया. कुमारका अतिशय चमत्कारिक चरित्र देखकर तिलकमंजरी हर्षसे पुलकित हो मनमें विचार करने लगीकि, “त्रैलोक्यमें शिरोमणीके समान यह तरुणकुमार पुरुषोंमें रत्न है. इसलिये भाग्यवश मेरी बहिन जो अभी मिल जाय तो ऐसे पतिका लाभ होवे.” इस प्रकार विचार करती, मनमें उत्सुकता, लज्जा और चिन्ता धारण करने वाली तिलकमंजरीके पाससे कुमारने बालिकाकी भांति हंसिनीको उठा ली.

हंसिनी कहती है कि, “धीरशिरोमणी, सर्वकार्यसमर्थ, धीररत्न हे कुमारराज ! तू चिरकाल जीवित व विजयी रह. हे क्षमाशील कुमार ! दीन, दरिद्री, भयातुर और अनार्य ऐसा मैंने अपने लिये तुझे बहुत खेद उत्पन्न किया, उसके लिये क्षमा कर. वास्तवमें विद्याधरराजाके समान मुझ पर उपकार करनेवाला कोई नहीं. कारण कि, उसीके भयसे मैं अनंत-पुण्योंसे भी अलभ्य तेरी गोदमें आकर बैठी. धनवानपुरुषके

प्रसादसे जैसे निर्धनपुरुष सुखी होता है, वैसेही हमारे सदृश परार्थीन व दुःखी जीव तेरे योगसे चिरकाल सुखी रहें ।”

कुमार बोला— हे मधुरभाषिणी हंसिनी ! तू कौन है ? विद्याधरने तुझे किस प्रकार हरण की ? और यह मनुष्य वाणी तू किस प्रकार बोलती है ? सो कह.”

हंसिनीने उत्तर दिया—“हे कुमार ! विशालजिनमंदिरसे सुशोभित वैताल्यपर्वतेक शिखरको अलंकारभूत “रथनूपुर-चक्रवाल ” नामकनगरीका रक्षक और स्त्रियोंमें आसक्त “तरुणी-मृगाङ्ग” नामक विद्याधर राजा है. एक वक्त उसने आकाश-मार्गसे जाते हुए कनकपुरीमें मनोवेधक अंगचेष्टा करनेवाली “अशोकमंजरी” नामक राजकन्या देखी. समुद्र चन्द्रमाको देखकर जैसे उमड़ता है वैसेही हिंडोले पर क्रीडा करती हुई साक्षात् देवाङ्गना समान उस कन्याको देखकर वह कामातुर हो गया. पश्चात् उसने तूफानी पवन उत्पन्न करके हिंडोले सहित उस राजकन्याको हरण की. और शबरसेना नामक धोर-वनमें रखी, वहां वह हरिणीकी भांति भय पाने लगी व टिटहरीके समान आक्रंद करने लगी. विद्याधरराजाने उसको कहा. “हे सुन्दरि ! तू भयसे क्यों कांपती है ? इधर उधर क्यों देखती है ? और आक्रंद भी क्यों करती है ? मैं कोई बन्दी-गृहमें रखने वाला चोर कि परस्त्रीलंपट नहीं, परन्तु तेरे असीम-भाग्यसे तेरे वशीभूत हुआ एक विद्याधरराजा हूं. मैं तेरा

दास होकर तुझसे प्रार्थना करता हूँ कि मेरे साथ पाणिग्रहण कर और समग्रविद्याधरोंकी स्वामिनी बन .” “अग्निके सदृश दूसरों पर उपद्रव करनेवाले कामांधलोग ऐसी दुष्ट और अनिष्ट चेष्टा करके पाणिग्रहण करनेकी इच्छा करते हैं, इनको अतिशय धिक्कार है !!” इस प्रकार विचारमग्न अशोकमंजरीने उसका कुछ भी उत्तर नहीं दिया. जिसकी अनिष्टचेष्टाएं प्रकट दाखती हो उसको कौन सत्पुरुष उत्तर देता है? “मातापिता तथा स्वजनके विरहसे इसको अभी नवीन दुःख हुआ है, तथापि अनुक्रमसे सुखसे यह मेरी इच्छा पूर्ण करेगी.” ऐसी आशा मनमें रखकर विद्याधरराजाने, शास्त्री जैसे अपने शास्त्रका स्मरण करता है, वैसे ही अपना संपूर्ण काम परिपूर्ण करने-वाली सुन्दर विद्याका स्मरण किया. कन्याका स्वरूप गुप्त रखनेके हेतु विद्याके प्रभावसे उसने राजकन्याको नटकी भांति एक तापसकुमारके स्वरूपमें कर दी. सानहीन, बालबुद्धि विद्याधरराजा बड़ी देर तक अशोकमंजरीको मनाता रहा. परन्तु उसे उसके बचन तिरस्कारसे मालूम होते थे, सर्व अन्योपचार आपत्तिमय प्रीतिसे लगते व प्रेमालाप पाप-वर्णसे लगते थे. विद्याधरराजाके सर्व उपाय, राखमें हवन करने, जलप्रवाहमें लघुनीति करने, क्षारयुक्तभूमिमें बौने, सींचनेकी भांति निष्फल हुए. तो भी उसने मनाना नहीं छोड़ा. उन्मादरोमी मनुष्यकी भांति कामीपुरुषोंका हठ अवर्णनीय

होता है. वह दुष्ट एक समय किसी कार्यके निमित्त अपने नगरको गया. उस समय उक्त वेषधारी तापसकुमारने हिंडोले पर क्रीड़ा करते हुए तुझे देखा. वह तुझ पर विश्वास रख कर अपना वृत्तान्त कह रहा था, कि इतने ही में विद्याधरराजाने वहां आकर पवन जैसे आकके कपासको हरण करता है, उसीप्रकार उसे हरण कर गया, और मणिरत्नोंसे देदीप्यमान अपने दिव्यमंदीरमें ले जाकर क्रोधपूर्वक उसको कहने लगा कि, “अरे देखनेमें भोली ! वास्तवमें चतुर ! और बोलनेमें सयानी ! तू कुमार अथवा अन्य किसीके भी साथ तो प्रेमसे वार्तालाप करती है, और तुझपर मोहित मुझको उत्तर तक नहीं देती है । अब भी मेरी बात स्वीकार कर. हठ छोड़ दे, नहीं तो दुखदायी यमके समान मैं तुझपर रुष्ट हुआ समझ. ” यह वचन सुन मनमें धैर्य धारण कर अशोकमंजरीने कहा— “अरे विद्याधरराजा ! छलबलसे क्या लाभ होगा ? छली व बली लोग चाहे राज्यक्राद्धिआदिको साधन कर सकते हैं , परन्तु प्रेमको कभी भी नहीं साध सकते. उभयव्यक्तियोंके चित्त प्रसन्न होवे तभी ही चित्तरूपभूमिमें प्रेमांकुर उत्पन्न होते हैं. घृतके बिना जैसे मोदक , वैसेही स्नेहके बिना स्त्री-पुरुषोंका सम्बन्ध किस कामका ? ऐसा स्नेह रहित संबंध तो जंगलमें परस्पर दो लकड़ियोंका भी होता है. इसलिये मूर्खके सिवाय अन्य कौन व्यक्ति स्नेहहीन दूसरे मनुष्यकी मनवार

करता है ? स्नेहका स्थान देखे बिना हठ पकडने वाले मतिमन्द-मनुष्योंको अधिकार है !” वह अंकुश रहित विद्याधरराजा अशोक-मंजरीके ये वचन सुन कर अत्यन्त क्रोधित हुआ. और शीघ्र म्यान-मेंसे खड्ग बाहर निकाल कर कहने लगा कि- “अरेरे ! मैं अभी हा तेरा वध करूंगा ! मेरी निंदा करती है !!” अशोकमंजरी बोली- “अनिष्टमनुष्यके साथ सम्बन्ध करनेकी अपेक्षा मृत्यु मुझे पसंद है. जो तेरी इच्छा मुझे छोड़नेकी न होवे तो तू अन्य कोई भी विचार न करते शीघ्र मेरा वध कर.” पश्चात् अशोकमंजरीके पुण्योदयसे उसके मनमें विचार उत्पन्न हुआ कि, “हाय हाय ! अधिकार है !! मैंने यह क्या दुष्ट कार्य सोचा ? अपना जीवन जिसके हाथमें होनेसे जो जिवनकी स्वामिनी कहलाती है, उस प्रियस्त्रीके लिये कौन पुरुष क्रोधवश ऐसा घातकीपन आचरण करता है ? सामोपचार ही से सर्व जगह प्रेम उत्पन्न होना संभव है. उसमें भी स्त्रियों पर यह नियम विशेष करके लगता है, पांचालनामकनीतिशास्त्रके कर्त्ताने भी कहा है कि—“स्त्रियोंके साथ बहुतही सरलतासे काम लेना चाहिये.” कृपणोंका सरदार जैसे अपना धन भंडारमें रखता है, वैसेही विद्याधरराजाने उपरोक्त विचार करके मनमें उल्लास लाकर अपना खड्ग शीघ्र म्यानमें रख लिया; और नईसृष्टिकर्त्ताके समान हो कामकरीविद्यासे अशोकमंजरीको मनुष्यभाषा बोलने वाली हंसिनी बनाई. और माणिक्यरत्नमय मजबूत पींजरेमें उसे रखकर पूर्वानुसार

उसे प्रसन्न करता रहा. उसकी स्त्री कमलाके मनमें कुछ संशय उत्पन्न हुआ, इससे उसने सचेत रहकर एक समय अपने पतिको हंसिनीके साथ चतुराईसे भरे हुए मधुर वचन बोलते हुए स्पष्टतया देखा. जिससे उसको डाह व मत्सर उत्पन्न हुआ. इसमें आश्चर्य ही क्या ? स्त्रियोंकी प्रकृति ऐसी ही होती है. अन्तमें उसने अपनी सखीतुल्य विद्याके द्वारा हंसिनीका संपूर्ण वृत्तान्त ज्ञात किया, और हृदयमें बिंधे हुए शल्यकी भांति उसे पीजरेमेंसे निकाल बाहर कर दी. यद्यपि कमलाने उसे सौतियाडाहसे निकाल दी, किन्तु भाग्ययोगसे हंसिनीको वही अनुकूल हुआ. नरकसमान विद्याधरराजाके बंधनसे छूटते ही वह शबरसेनावनकी ओर अग्रसर हुई. “विद्याधर पीछा करेगा” इस भयसे बहुत घबराती हुई धनुष्यसे छूटे हुए बाणकी भांति वेगसे गमन करनेके कारण वह थक गई, और अपने भाग्योदयसे विश्राम लेनेके लिये यहां उतरी और तुझे देखकर तेरी गोदमें आ छिपी. हे कुमारराज ! मैं ही उक्त हंसिनी हूं, और जिसने मेरा पीछा किया था व जिसको तूने जीता वही वह विद्याधरराजा है । ”

तिलकमंजरी यह वृत्तान्त सुन, बहिनके दुःखसे दुःखी हो बहुत विलाप करने लगी । स्त्रियोंकी रीति ऐसी ही होती है । पश्चात् वह बोली- “ हाय हाय ! हे स्वामिनी ! भयकी मानो राजधानीके समान अटवीमें तू अकेली किस प्रकार रही ? दैव-

की विचित्र गतिको धिक्कार है ! वहिन ! आजतक सुखमें रही हुई तूने देवांगनाओंके तिर्यचके गर्भमें रहनेके समान, असह्य व अतिदुःखदार्थी पंजरवास किस प्रकार सहन किया ? हाय हाय ! ज्येष्ठभगिनी ! इसीभवमें ही तुझे तिर्यचपन प्राप्त हुआ । दैव नटकी भांति सुपात्रकी भी विडम्बना करता है, अतः उसे धिक्कार है ! वहिन ! पूर्वभवमें तूने कौतुकवश किसीका वियोग कराया होगा और मैंने उस बातकी उपेक्षा की होगी, उसीका यह अकथनीय फल मिला है । हाय ! दुर्देवसे उत्पन्न हुआ अथवा मानो मूर्तिमंत दुर्भाग्य ही हो, ऐसा तेरा यह तिर्यचपन कैसे दूर होगा ? “ वह इस तरह विलाप कर ही रही थी कि इतनेमें सन्मित्रकी भांति खेद दूर करनेवाले चन्द्रचूड-देवताने उस हंसिनी पर जल छिड़क कर उसे अपनी शक्तिसे पूर्ववत् कन्या बनाई । कुमारआदिको हर्ष उत्पन्न करनेवाली वह कन्या उस समय ऐसी दमकने लगी मानो नई सरस्वती ही उत्पन्न हुई है अथवा लक्ष्मी ही समुद्रमेंसे निकली है ! उसी समय दोनों वहिनोंने हर्षसे रोमांचित हो एक दूसरेको गाढ़ आलिगन कर लिया । प्रेमकी यही रीति है ।

रत्नसारकुमारने कौतुकसे कहा— “ हे तिलकमंजरी ! हमको इस कार्यके उपलक्षमें पारितोषिक अवश्य मिलना चाहिये, हे चन्द्रमुखी ! कह क्या देना चाहती है ? जो कुछ देना हो वह शीघ्र दे, धर्मकी भांति औचित्यदान लेनेमें विलम्ब कौन

करे ? औचित्यादि दान, ऋण उतारना, शर्त, निश्चित वेतन लेना, धर्म और रोग अथवा शत्रुका नाश इतने कार्य करनेमें बिलकुल समय न खोना चाहिये । क्रोधका गुस्सा आया होवे, नदीके पूरमें प्रवेश करना होवे, कोई पापकर्म करना होवे, अजीर्ण पर भोजन करना होवे और किसी भयके स्थानमें जाना हो तो समय बिताना यही श्रेष्ठ है याने इतने कार्य करना होवें तो आजका कल पर रख छोड़ना चाहिये । ”

कुमारके विनोद वचन सुन तिलकमंजरीके मनमें लज्जा उत्पन्न हुई, शरीर कांपने लगा, पसीना छूट गया तथा शरीर रोमांचित होगया । वह स्त्रियोंके लीलाविलास प्रकट करने लगी तथा कामविकारसे अतिपीडित होगई तो भी उसने धैर्य धरकर कहा—“हमारे ऊपर आपने महान् उपकार किये हैं अतएव मैं समझती हूं कि सर्वस्व आपको अर्पण करनेके योग्य है । इसलिये हे स्वामिन् ! मैं आपको यह एक वस्तुदानका निमित्तमात्र देती हूं, ऐसा समझिये । ” ऐसा कह हर्षित तिलकमंजरीने, मानो अपना साक्षात् मन हो ऐसा मनोहर मोतीका हार कुमारके गलेमें पहिरा दिया व कुमारने भी सादर उसे स्वीकार किया । अपने इष्टमनुष्यकी दी हुई वस्तु स्वीकारनेको प्रेरणा करनेवाली प्रीति ही होती है । अस्तु, तिलकमंजरीने अपने वचनके अनुसार तोतेकी भी कमलपुष्पोंसे पूजा की । उस समय उचितआचरणमें निपुण चन्द्रचूडने कहा

कि-हे कुमार ! प्रथम ही से तेरे भाग्यकी दी हुई यह दोनों कन्याएं मैं अभी तुझे देता हूं । मंगलकार्योंमें अनेकों विघ्न आते हैं, इसलिये तू इनका शीघ्र पाणिग्रहण कर । ” यह कहकर वह वर और कन्याओंको अत्यन्त रमणीक तिलकवृक्षके कुंजमें ले गया । चक्रेश्वरीदेवीने रूप बदलकर शीघ्र वहां आ प्रथम ही से सर्व वृत्तान्त जान लिया था अतएव वह विमानमें बैठकर शीघ्र वहां आ पहुंची । वह विमान पवनसे भी अधिक वेगवाला था । उसमें रत्नोंकी बड़ी बड़ी घंटाएं टंकारशब्द कर रही थीं, रत्नमय सुशोभित घूघरियोंसे शब्द करनेवाली सैकड़ों ध्वजाएं उसमें फहरा रहीं थीं, मनोहर माणिक्य-रत्न-जडित तोरनसे वह बड़ा सुन्दर होगया था, उसकी पुतलियें नृत्य, गीत और वाजिंत्रके शब्दसे ऐसी भासित होरहीं थी मानो बोलती हों, अपार पारिजातआदि पुष्पोंकी मालाएं उसमें जगह जगह टंगी हुई थीं, हार, अर्धहारआदिसे वह बड़ा भला मालूम होता था, सुन्दर चामर उसमें उछल रहे थे, सर्वप्रकारके मणिरत्नोंसे रचा हुआ होनेके कारण वह अपने प्रकाशसे साक्षात् सूर्यमंडलकी भांति निबिडअंधकारको भी नष्ट कर रहा था । ऐसे दिव्यविमानमें चक्रेश्वरी देवी बैठी, तब उसकी बराबरीकी अन्य भी बहुतसी देवियां अपने २ विविध-प्रकारके विमानमें बैठकर उसके साथ आई तथा बहुतसे देवता भी सेवामें तत्पर थे । वर तथा कन्याओंने गोत्रदेवीकी भांति चक्रेश्वरी

देवीको नमन किया। तब उसने पतिपुत्रवाली वृद्धा स्त्रीकी तरह यह आशीष दिया-हे वधूवरो ! तुम सदैव प्रीति सहित साथ रहो और चिरकाल सुख भोगो, पुत्र पौत्रादिसंततिसे जगत्में तुम्हारा उत्कर्ष हो । ” पश्चात् उसने स्वयं अग्रसर होकर चौरीआदि सर्व विवाहसामग्री तैयार करी, और देवांगनाओंके धवलगीत गाते हुए यथाविधि महान् आडंबरके साथ उनका विवाहोत्सव पूर्ण किया। देवांगनाओंने उस समय तोतेको वरके छोटे भाईके समान मान कर उसके नामसे धवलगीत गाये महान् पुरुषोंकी संगतिसे ऐसा आश्चर्यकारी फल होता है। उन कन्याओं व कुमारके पुण्यका अद्भुत उदय है कि जिनका विवाहमंगल स्वयं चक्रेश्वरीदेवीने किया। पश्चात् उसने सौधर्मावतंसक विमानके सदृश वहां एक रत्नजडित महल बना कर उनको रहनेके लिए दिया। वह महल विविध प्रकारकी क्रीड़ा करनेके सर्व स्थान पृथक् २ रचे हुए होनेसे मनोहर दीखता था। सात मंजिल होनेसे ऐसा भास होता था मानो सातद्वीपोंकी सातलीक्ष्मणोंका निवास स्थान हो, हजारों उत्कुष्ट झरोखोंसे ऐसा शोभा देता था मानो सहस्र-नेत्रधारी इन्द्र हो, चित्ताकर्षक मत्तवारणोंसे विंध्यपर्वतके समान दीखता था, किसी २ स्थानमें कर्केतनरत्नोंका समूह जड़ा हुआ था जिससे गंगानदीके समान मालूम होता था, कहीं कहीं बहुमूल्य वैडूर्यरत्न जड़े हुए होनेसे जमुनानदीसा प्रतीत होता था, कोई कोई स्थान पद्मरागरत्न जडित होनेसे संध्याके समान

रक्तवर्ण हो रहा था, कोई कोई जगह स्वर्णका कार्य होनेसे मेरुपर्वत की शाखासा प्रतीत होता था, कहीं हारिरत्न लगे हुए होनेसे हरीधास युक्त भूमिसी मनोवेधक शोभा हो रही थी, किसी जगह आकाशके समान पारदर्शक स्फटिकरत्न जड़े होनेसे स्थल होत हुए आकाशकी भांति भ्रांति होती थी, कोई स्थानमें सूर्य-कान्तमणि सूर्यकिरणके स्पर्शसे आग्निधारण कर रही थी तथा किसी जगह चन्द्रकान्तमणि चन्द्रकिरणके स्पर्शसे अमृत वर्षा कर रही थी। सारांश यह कि वह महल इतना दिव्य था जिसका वर्णन ही नहीं किया जा सक्ता।

रत्नसारकुमार दोगुंदकदेवताकी भांति दोनों स्त्रियोंके साथ उक्त महलमें नानाप्रकारका विषयसुख भोगने लगा। मनुष्यभवमें सर्वार्थसिद्धिपन (सर्वार्थसिद्धिविमानका सुख) पाना यद्यपि दुर्लभ है, तथापि कुमारने तीर्थकी भक्तिसे दिव्य-ऋद्धिके उपभोग तथा दो सुंदर स्त्रियोंके लाभसे वर्तमान भव-ही में प्राप्त किया। गोभद्रदेवताने शालिभद्रको पिताके सम्बन्धमें संपूर्ण भोग दिये इसमें क्या आश्चर्य ? परंतु यह तो बड़ी ही आश्चर्यकी बात है कि चक्रेश्वरीके साथ कुमारका मातापुत्र-आदि किसी जातिका सम्बन्ध न होते उसने उसे परिपूर्ण भोग दिये। अथवा पूर्वभवके प्रबलपुण्यका उदय होनेपर आश्चर्य ही क्या है ? भरतचक्रवर्तीने मनुष्यभव ही में क्या चिरकाल तक गंगादेवीके साथ कामभोग नहीं भोगा था ?

एक समय चक्रेश्वरीकी आज्ञासे चंद्रचूड़देवताने कनकध्वज राजाको वरवधूकी बधाई दी. वह पुत्रियोंको देखनेकी दीर्घकालकी उत्कंठासे तथा पुत्रियोंकी प्रीतिनें शीघ्र प्रेरणा करनेसे सेनाके साथ रवाना हुआ व कुछ दिनके बाद वह अंतःपुर, मांडलिक राजा-गण, मंत्री, श्रेष्ठी आदि परिवार सहित वहां आ पहुंचा.

श्रेष्ठाशिष्य जैसे गुरुको नमस्कार करते हैं, वैसे कुमार, तोता, कन्याओंआदिने शीघ्र सन्मुख आ राजाको प्रणाम किया. बहुत कालसे माताको मिलनेकी उत्सुक दोनों राजकन्याएं, बछड़ियां जैसे अपनी माताको प्रेमसे आ मिलती हैं, ऐसे अनुपम प्रेमसे आ मिलीं. जगत्श्रेष्ठ रत्नसारकुमार तथा उस दिव्यऋद्धिको देखकर राजादिने वह दिन बड़ा अमूल्य माना. पश्चात् कुमारने देवीके प्रसादसे सबकी भलीभांति मेहमानी की. जिससे यद्यपि राजा कनकध्वज अपनी नगरीको वापस जानेको उत्सुक था. तोभी वह पूर्व उत्सुकता जाती रही. ठीक ही है, दिव्यऋद्धि देखकर किसका मन स्थिर नहीं होता ? राजा व उसके संपूर्ण साथियोंको कुमारकी की हुई भांति भांतिकी मेहमानीसे ऐसा प्रतीत हुआ मानों अपने दिन सुकार्यमें व्यतीत हो रहे हैं.

एकसमय राजानें कुमारको प्रार्थना करी कि, “हे सत्पुरुष ! जैसे तूने मेरी इन दो कन्याओंको कृतार्थ कर दी, वैसे ही पदार्पण कर मेरी नगरीको भी पवित्र कर. ” तदनुसार कुमारके

स्वीकार कर लेने पर, राजा, रत्नसारकुमार, दो राजकन्याएं तथा अन्य परिवार सहित अपनी नगरीकी ओर चला. उस समय विमानमें आरूढ़ हो साथमें चलनेवाली चक्रेश्वरी, चन्द्र-चूड़आदि देवताओंने मानों भूमिमें व्याप्त सेनाकी स्पर्धा ही-से स्वयं आकाशको व्याप्त कर दिया. जैसे सूर्यकिरणोंके न पहुंचनेसे भूमिको ताप नहीं लगता उसी भांति ऊपर विमानोंके चलनेसे इन सर्वजनोंको मानों सिर पर छत्र ही धारण किया हो, वैसे ही बिलकुल ताप न लगा. क्रमशः जब वे लोग नगरी-के समीप पहुंचे तब वरवधूओंको देखनेके लिये उत्सुकलोगोंको बड़ा हर्ष हुआ. राजाने बड़े उत्सवके साथ वरवधूओंका नगरमें प्रवेश कराया. उस समय स्थान २ में केशरका छिटकाव किया हुआ होनेसे वह नगरी तरुणस्त्रीके समान शोभायमान, घुटने तक फूल बिछाये हुए होनेसे तीर्थंकरकी समवसरण भूमिके समान तथा उछलती हुई ध्वजारूप भुजाओंसे मानो हर्षसे नाचही रही हो ऐसी दीखती थी, ध्वजाकी घूघरियोंके मधुर-स्वरसे मानों गीत गा रही थी तथा देदीप्यमान तोरणकी पंक्ति ऐसी थी मानो जगत्की लक्ष्मीका क्रीडास्थल हो. नगरवासी लोग ऊंचे २ मंच पर बैठ कर मधुर गीत गा रहे थे. सौभाग्य-वती स्त्रियोंके हंसते हुए मुखसे पद्मसरोवरकी शोभा आ रही थी तथा स्त्रियोंके कमलवत् नेत्रोंसे वह नगरी नीलकमलके वन सदृश दीखती थी.

ऐसी सुन्दरनगरीमें प्रवेश करनेके अनन्तर राजाने कुमार को अनेकजातिके अश्व, दास, दासियां, धनआदि बहुतसी वस्तुएं भेंट कीं. तदनन्तर कुमार अपनी दोनों स्त्रियोंके साथ वहीं एकमहलमें रहने लगा. उक्त तोता कौतुकके साथ व्यासकी भांति हमेशा कुमारके साथ समस्यापूर्ति, आख्यायिका, प्रहेलिकाआदि भांति भांतिके विनोद किया करता था. कुमारने देदीप्यमान श्रेष्ठलक्ष्मीकी प्राप्तिसे भानो मनुष्य सदेह स्वर्ग चला गया हो, इस प्रकार पूर्वकी कोई भी बात स्मरण नहीं की. वह नानाप्रकारके कामविलास भोगते एक वर्ष सहजहीमें व्यतीत होगया.

दैवयोगसे एक समय नीच लोगोंको हर्ष देनेवाली रात्रिके वक्त कुमार पोपटके साथ बहुत देर तक वार्तालापरूप अमृतका पान कर रत्नजाडित श्रेष्ठ शय्यागृहमें सो रहा था. जब अंधकारसे समस्तलोगोंकी दृष्टिको दुःख देनेवाला मध्यरात्रिका समय हुआ तब सब पहरेदार भी निद्रावश होगये. इतनेमें दिव्य-आकारधारी, देदीप्यमान और मूल्यवान शृंगारसे सुसजित, चोरगतिसे चलनेवाला व हाथमें नग्न तलवार धारण किये हुए कोई क्रोधी पुरुष, मनुष्योंके नेत्रोंकी भांति राजमहलके सर्व द्वार बन्द होते हुए भी, न जाने किस प्रकार वहां आ पहुंचा. वह चुपचाप शय्यागृहमें घुसा, तो भी दैवकी अनुकूलतासे शीघ्रही कुमार जागा. ठीकही है, सत्पुरुषोंकी निद्रा स्वल्प व शीघ्र

जागृत होनेवाली होती है. कुमार यह विचार कर ही रहा था कि “ यह कौन है ? और किस लिये व किस प्रकार शय्यागृह में घुसा ? ” इतनेहीमें उस पुरुषने उच्चस्वरसे कहा— “ अरे कुमार ! जो तू शूरवीर होवे तो संग्राम करनेके लिये तैयार हो. जैसे सिंह धूर्तशृंगालके झूठे पराक्रमको सहन नहीं करता, वैसे तेरे समान एक वणिकके झूठे पराक्रमको क्या मैं सह सकता हूं ? ” यह बोलते २ ही वह पुरुष तोतेका सुन्दर पींजरा उठा उतावलसे चलने लगा. कपटीमनुष्योंके कपटके सन्मुख बुद्धि काम नहीं देती. अस्तु, कुमार भी क्रोध आजानेसे म्यानमेंसे तलवार बाहर निकाल उसके पीछे दौड़ा, आगे २ वह पुरुष और पीछे २ कुमार दोनों जल्दी जल्दी चलते एक दूसरेको देखते मार्गमें आये हुए कठिन प्रदेश, घरआदिको सहजमें उल्लंघन करते हुए आगे बढ़ते ही जा रहे थे.

जैसे दुष्ट चौकीदार (भूमिहार) मुसाफिरको आड़े मार्गसे ले जाता है वैसेही वह दिव्यपुरुष कुमारको बहुतही दूर कहीं ले गया और अन्तमें किसीप्रकार कुमारके हाथ आया. कुमार क्रोधवश उसे पकड़ने लगा इतनेहीमें वह देखतेही देखते गरूडकी भांति आकाशमें उड़ गया. व कुछ दूर जाकर अदृश्य होगया. कुमार विचार करने लगा कि— “ निश्चय यह मेरा कोई शत्रु है. कौन जाने विद्याधर, देव कि दानव है ? कोई भी हो. मेरा यह क्या नुकसान करनेवाला था ? परन्तु मेरे तोतेरूपी

रत्नको हरण करनेसे यह आज तक मेरा शत्रु था, वह अब चोर भी होगया। हाय ! ज्ञानियोंमें श्रेष्ठ, धीर, शूरवीर शुक ! तेरे समान प्रियमित्रके बिना सुभाषण सुनाकर अब मेरे कानोंको कौन सुख देगा ? हे धीरशिरोमणि ! दुर्दशाके समय तेरे सिवाय अन्य कौन मेरी सहायता करेगा ? ”

क्षणमात्र इस प्रकार खेद करके कुमार पुनः विचार करने लगा कि— “विषभक्षण करनेके समान यह खेद करनेसे क्या शुभ परिणाम होवेगा ? नाश हुई वस्तुकी प्राप्ति योग्य उपाय करनेहीसे सम्भव है, चित्तकी स्थिरताह्रासे उपायकी योजना हो सकती है, अन्यथा नहीं। मंत्रआदि भी चित्तकी स्थिरता बिना कदापि सिद्ध नहीं होते। अतएव मैं अब यह निर्धारित करता हूँ कि— “मेरे प्रियतोतेके मिले बिना मैं वापस नहीं फिरूंगा। ” तदनुसार कुमार तोतेकी शोधमें भ्रमण करने लगा। चोर जिस दिशाकी ओर गया था उसी ओर वह भी कितनीही दूर तक चला गया; परन्तु कुछ भी पता नहीं लगा। ठीकही है, आकाशमार्गमें गये हुएका पता जमीन पर कैसे लगे ? अस्तु, तथापि आशाके कारण कुमार शोध करनेमें विचलित नहीं हुआ। सत्पुरुषोंकी अपने आश्रितोंमें कितनी प्रीति होती है ? तोतेने देशाटनमें साथ रह अवसरोचित मधुरभाषणसे कुमारके सिर पर जो ऋण चढ़ाया था, वह ऋण उसकी शोधमें अनेक क्लेश सहनकर कुमारने उतार दिया इस प्रकार भ्रमण करते हुए पूरा एक दिन व्यतीत होगया।

दूसरे दिन स्वर्गके समान एक नगर सन्मुख दिखाई दिया। वह नगर गगनस्पर्शी स्फटिकमय कोटसे चारों ओरसे घिरा हुआ था, उसकी प्रत्येकपोलमें माणिक्यरत्नके दरवाजे थे, रत्नजडित विशाल महलोंके समुदायसे वह नगर रोहण-पर्वतकी बराबरी करता था, महलों पर सहस्रों श्वेतध्वजाएं फहरा रही थीं, जिससे वह सहस्रमुखी गंगासा मालूम होता था। भ्रमर जैसे कमलकी सुगंधीसे आकर्षित होता है वैसे नगरकी बिशेष शोभासे आकर्षित हो रत्नसारकुमार उसके समीप आया। चंदनके दरवाजेसे सुगन्धी फैल रही थी तथा जगत्की लक्ष्मीका मानों मुख ही हो ऐसे गोपुरद्वारमें कुमार प्रवेश करने लगा इतनेमें द्वारपालिकाकी भांति कोट पर बैठी हुई एक सुंदरमैनाने कुमारको अन्दर प्रवेश करते बहुत ही मना किया। इससे कुमार बड़ा चकित हुआ। उसने उच्चस्वरसे पूछा—“हे सुन्दरसारिके ! तू मुझे क्यों मना करती है ?” मैनाने उत्तर दियाः—“हे महान् पंडित ! तेरे हित ही के लिये मना करती हूं। जो तुझे जीवनकी इच्छा हो तो इस नगरमें प्रवेश मत कर, तू यह मत समझ कि यह मैना मुझे वृथा मना करती है। मैं जातिकी तो पक्षी हूं, तथापि क्या पक्षीजातिमें उत्तमता होती ही नहीं है ? उत्तम जीव बिना हेतु एक वचन भी नहीं बोलते, अब मैं जो तुझे रोकती हूं उसका कारण जाननेकी इच्छा होवे तो सुनः—

इस रत्नपुरनगरमें पराक्रम व प्रभुतासे मानो प्रतिपुरन्दर (दूसरा इन्द्र) ही हो ऐसा पुरन्दर नामक राजा पूर्व हुआ. उस समय मानो नगरके मूर्तिमंत दुर्भाग्य ही के समान एक चोर भांति २ के वेष करके नगरमें चोरियां करता था. वह मन चाहे विचित्रभांतिकी सेंध लगाता था. और अपार धनसे परिपूर्ण पात्र उठा ले जाता था. किनारेके वृक्ष जैसे नदीके तीव्र जलप्रवाहको नहीं रोक सकते, वैसे कोतवाल तथा दूसरे नगररक्षक आदि बड़े २ योद्धा उसे नहीं रोक सके. एक दिन राजा सभामें बैठा था, उस समय नगरवासियोंने आ प्रणाम कर चोरका उपद्रव भली प्रकार कह सुनाया. जिससे राजाको क्रोध आया, उसके नेत्र लाल हो गये, और उसी समय उसने मुख्य कोतवालको बुला कर, भला बुरा कहा. कोतवाल बोला "हे स्वामिन् ! असाध्यव्याधिमें जैसे कोई भी उपाय नहीं चलता, वैसे मेरा अथवा मेरे आधीनस्थ कर्मचारियोंका उस बुलन्द चोरके सन्मुख कोई भी उपाय नहीं चलता. अतएव जो आप उचित समझें वह करिए." अन्तमें महान् पराक्रमी व यशस्वी पुरन्दरराजा स्वयं गुप्तरीतिसे चोरकी शोध करने लगा. अकस्मात् एक दिन राजाने उक्त चोरको चोरीके माल सहित देखा. ठीक है, प्रमाद- का त्याग करके प्रयत्न करनेवाले पुरुष क्या नहीं कर सकते हैं? धूर्त बगुला जैसे चुपचाप मछलीके पीछे २ जाता है उसी भांति उस बातका पूर्ण निर्णय करने तथा उसका स्थान आदि

जान लेनेके हेतु गुप्तरीतिसे राजाने उसका पीछा किया. उस धूर्त चोरने किसी प्रकार शीघ्र राजाको पहिचान लिया. दैवकी अनुकूलतासे क्या नहीं हो सकता ? उस शठ चोरने क्षण मात्र-में राजाकी दृष्टि चुका कर एक मठमें प्रवेश किया. उस मठमें कुमुद नामक एक तपस्वी रहता था. वह गाढ़निद्रामें सो रहा था. वह शठ चोर अपने जीवको भाररूप चोरीका माल वहां छोड़ कहीं भाग गया. राजा इधर उधर उसकी खोज करता हुआ मठमें घुसा, वहां चोरीके माल सहित तापसको देखा. राजाने क्रोधसे कहा—दुष्ट और चोर, हे दंडचर्मधारी तापस! चोरी करके अब तू कपटसे सो रहा है ! झुठी निद्रा लेनेवाले ! मैं अभी तुझे दीर्घनिद्रा (मृत्यु) देता हूं. ”

राजाके वज्रसमान कठोर वचनोंसे तापस भयभीत हुआ व घबराकर जागृत हुआ था, तो भी उत्तर न दे सका, निर्दयी-राजाने सुभटोद्वारा बंधाकर उसे सेवरे शूली पर चढ़ानेका हुक्म किया. अरेरे! अविचारीकृत्यको धिक्कार है ! तापसने कहा—“हाय हाय! हे आर्यपुरुषो ! मैं बिना चोरी किये ही सोध न करनेके कारण मारा जाता हूं” यद्यपि तापसका यह कथन सत्य था तथापि उस समय विशेष धिक्कारका पात्र हुआ. जब दैव प्रतिकूल होता है तब कौन अनुकूल रहे? देखो! राहु चंद्रमाको अकेला देख कर उसका ग्रास करता है, तब कोई भी उसकी सहायता नहीं करता. पश्चात् विकराल यमदूतोंके समान उन

सुभटोंने उक्त तापसका मुंडन करा, गधे पर चढ़ाया तथा अन्य भी बहुतसी बिड़बनाएं करके प्राणघातक शूली पर चढ़ा दिया. अरेरे! पूर्वभ्रममें किये हुए बुरे कर्मोंका कैसा भयंकर परिणाम होता है? तापस स्वभावसे शान्त था तथापि उस समय उसे बहुत क्रोध आया, जल स्वभावसे शीतल है तो भी तपानेसे वह बहुत उष्ण हो ही जाता है. वह तापस तत्काल मृत्युको प्राप्त होकर राक्षसयोनिमें गया. मृत्युके समय रौद्रध्यानमें रहनेवाले लोगों- को व्यंतर ही की गति प्राप्त होती है. हीनयोनिमें उत्पन्न हुए उस दुष्टराक्षसने रोषसे क्षणमात्रसे अकेले राजाको मार डाला. अरेरे! बिना विचारे कार्य करनेसे कैसा बुरा परिणाम होता है? तत्पश्चात् उसने नगरवासी सर्वलोगोंको निकाल बाहर किया. राजाके अविचारीकृत्यसे प्रजा भी पीड़ित है. वही राक्षस अभी भी जो कोई नगरके अन्दर प्रवेश करता है, उसको क्षणमात्रमें मार डालता है. इसलिये हे वीरपुरुष ! तेरे हितकी इच्छासे मैं यमके मुख सदृश इस नगरीमें प्रवेश करते तुझे रोकती हूं.

मैनाका ऐसा हितकारी वचन सुन कर व उसकी वाक्यदुतासे कुमारको आश्चर्य हुआ, परन्तु राक्षससे वह लेशमात्रभी न डरा, विवेकीपुरुषने कोई कार्य करते समय उत्सुक, कायर तथा आलसी न होना चाहिये. इस पर भी कुमार उस नगरमें प्रवेश करनेको बहुत उत्सुक हुआ. व राक्षसका पराक्रम देखनेके कौतुकसे संग्रामभूमिमें उतरनेकी भांति शीघ्र नगरीमें घुसा । आगे जाकर

उसने देखा कि, कहीं मलयपर्वतके समान चंदनकाष्ठके ढेर पड़े हैं, कहीं युगलियेको चाहिये वैसे पात्र देनेवाले भृंगांगकल्पवृक्ष की भांति सुवर्णके, चांदीके तथा अन्यपात्रोंके ढेर पड़े थे; खलियानमें पड़े हुए धान्यके ढेरके समान वहां किसी जगह कपूरसालआदि धान्यके ढेर लग रहे थे, कोई स्थानमें अपार सुपारीआदि किराने पड़े हुए थे, किसी ओर हलवाइयोंकी दुकानोंकी पंक्तियां थीं, किसी ओर सितांशु चंद्रमाकी भांति श्वेतकपड़ेवालोंकी दुकानें थीं; किसी ओर घनसारवाले निधिकी भांति कपूरआदि सुगन्धित वस्तुओंकी दुकानें थीं, कहीं हिमालयपर्वतकी भांति नानाप्रकारकी औषधियोंका संग्रह रखनेवाली गांधीकी दुकानें थीं; अभव्यजीवोंकी धर्मक्रिया जैसे भाव रहित होती है, वैसे कहीं भाव रहित अकलकी दुकानें थीं; सिद्धांतकी पुस्तकें जैसे सुवर्ण (श्रेष्ठ हस्ताक्षर)-से भरी होती हैं, वैसी कहीं सुवर्णसे भरी हुई सराफोंकी दुकानें थीं, कहीं अनंतमुक्ताढ्य (अनंतसिद्धोंसे शोभित) मुक्तिपदकी भांति अनंतमुक्ताढ्य (अपार मोतियोंसे सुशोभित) मोतियोंकी दुकानें थीं; कहीं विद्रूम पूर्ण बनोंके सदृश विद्रूम पूर्ण (प्रवालसे भरी हुई) प्रवालकी दुकानें थीं; कहीं रोहणपर्वतकी भांति उत्तमोत्तम रत्नयुक्त जवाहरातकी दुकानें थीं; किसी किसी स्थानमें आकाशके समान देवताधिष्ठित कुत्रिकाण दुकानें थीं; सोये हुए अथवा प्रमादी मनुष्यका मन जैसे शून्य

देखता है उसी प्रकार उस नगरीमें सब जगह शून्यता थी; परन्तु विष्णु जहां जावे वहां लक्ष्मी उसके साथ रहती है, उस तरह वहां स्थान स्थानमें लक्ष्मी विराज रही थी ।

बुद्धिशाली रत्नसारकुमार उस रत्नमयनगरीको देखता हुआ इन्द्रकी भांति राजमहलमें गया । क्रमशः गजशाला, अश्वशाला, शस्त्रशाला आदिको पार कर वह चक्रवर्त्तिकी भांति चंद्रशाला (अंतिम मंजल) में पहुंचा । वहां उसने इन्द्रकी शय्याके समान अत्यन्त मनोहर एक रत्नजडित शय्या देखी । वह साहसी और अभय कुमार निद्रावश हो थकावट दूर करनेके लिये अपने घरकी भांति हर्ष पूर्वक उस शय्यापर सो गया । इतनेमें मनुष्यके पैरकी हालचाल सुन कर राक्षस क्रुद्ध हुआ, और वीर शिकारी जैसे सिंहके पीछे जाता है वैसे वह कुमारके पास आया । और उसे सुखपूर्वक सोता हुआ देखकर उसने मनमें विचार किया कि, जो बात अन्य कोई व्यक्ति मनमें भी नहीं ला सकता, वही बात इसने सहज कौतुकसे करली, ठिठाईके कार्य विचित्र ही प्रकारके होते हैं । इस शत्रुको अब किस मारसे मारूं? फलकी भांति नखसे इसका मस्तक तोड़ डालूं? अथवा गदासे इसका एकदम चूर्ण कर डालूं? किंवा छुरीसे खरबूजेकी भांति इसके डुकड़े कर डालूं? अथवा जलते हुए नेत्रसे निकलती हुई अग्निसे जैसे कामदेवको शंकरने भस्म करडाला उसी प्रकार इसे जला डालूं? अथवा गेंदकी भांति इसे आकाश-

में फेंक दूँ ! अथवा इसी प्रकार सोता हुआ उठाकर स्वयंभूरमण-समुद्रमें डाल दूँ ? किंवा अजगरकी भांति इसे निगल जाऊँ ? या यहां आकर सोये हुए मनुष्यको न मारूँ ? शत्रु भी घर आवे तो उसका अतिथिसत्कार करनाही चाहिये. कहा है कि—सत्पुरुष अपने घर आवे हुए शत्रुकी भी मेहमानी करते हैं । शुक्र गुरुका शत्रु है, और मीनराशि गुरुका स्वगृह कहलाती है, तो भी शुक्र जब मीनराशिमें आता है तब गुरु उसको उच्च-स्थान देता है. अतएव यह पुरुष जागृत होवे वहां तक अपने भूतसमुदायको बुलाउं. पश्चात् जो उचित होगा, करूंगा. ”

राक्षस यह विचारकर वहांसे चला गया व बहुतसे भूतों-को बुला लाया. तो भी कन्याका पिता जैसे कन्यादान करके निश्चित हो सो रहता है वैसे कुमार पूर्वहीकी भांति सोरहा था. यह देख राक्षसने तिरस्कारसे कहा— “ अरे अमर्याद ! मूढ ! बेशरम ! निडर ! तू शीघ्रही मेरे महलमेंसे निकल जा, अन्यथा मेरे साथ युद्ध कर. ” राक्षसके इन तिरस्कारवचनोंसे तथा भूतोंके किलकिलशब्दसे कुमारकी निद्रा भंग होगई. उसने सुस्तीमें होते हुए ही कहा कि, “ अरे राक्षसराज ! भोजन करते मनुष्यके भोजनमें अन्तराय करनेकी भांति, सुखसे सोये हुए मेरे समान विदेशीमनुष्यकी निद्रामें तूने क्यों भंग किया ? १ धर्मकी निंदा करनेवाला, २ पंक्तिका भेद करनेवाला, ३ अकारण निद्राभंग करनेवाला, ४ चलती हुई कथामें अन्तराय

करनेवाला, और ५ अकारण रसोई करनेवाला, ये पांचों मनुष्य महान् पातकी हैं। इसलिये मुझे पुनः निद्रा आजावे इस हेतुसे ताजा घृतके मिश्रण युक्त शीतल जलसे मेरे पैरके तलुवे मसल । ” कुमारके ये वचन सुनकर राक्षसने मनमें विचार किया कि, “ इस पुरुषका चरित्र जगत्से कुछ पृथक्ही दिखाई दे रहा है ! इसके चरित्रसे इन्द्रका भी हृदय थरथर कांपे, तो फिर अन्य साधारणजीवोंकी बातही कौनसी ? बड़े आश्चर्यकी बात है कि, यह मेरे द्वारा अपने पैरके तलुवे मसलवानेका विचार करता है ! यह बात सिंह पर सवारी करके जानेके समान है। इसमें शक नहीं कि इसकी निडरता कुछ अद्भुतही प्रकारकी है ! इसका कैसा बड़ा साहस ? कैसा भारी पराक्रम ? कैसी ठीठता ? और कैसी निडरता ? विशेष विचार करनेमें क्या लाभ है ? सम्पूर्ण जगत्में शिरोमणिके सदृश सत्पुरुष आज मेरा अतिथि हुआ है, अतएव एक बार मैं इसके कहे अनुसार करूं । ”

ऐसा चिन्तन करके राक्षसने घृतयुक्त शीतल जलके द्वारा अपने कोमलहाथोंसे कुमारके पगके तलुवे मसले। किसी समय भी देखने, सुनने अथवा कल्पना तक करनेमें जो बात नहीं आती वही पुण्यशाली पुरुषोंको सहजमें मिल जाती है। पुण्यकी लीला कुछ पृथक्ही है ! “ राक्षस सेवककी भांति अपने पगके तलुवे मसल रहा है ” यह देख कुमारने शाघ्र उठकर प्रीतिसे कहा कि, “ हे राक्षसराज ! तू महान् सहनशील है,

इसलिये मुझ अज्ञानीमनुष्यसे जो कुछ अपमान हुआ है उसे क्षमा कर. हे राक्षसराज ! तेरी भाक्तिको देखकर मैं बहुत प्रसन्न हुआ हूँ, अतएव तू वर मांग. तेरा कोई कष्टसाध्य कार्य होगा, तो भी मैं क्षणमात्रमें कर दूंगा इसमें शक नहीं. ” कुमारके इन वचनोंसे चकित हो राक्षस मनमें सोचने लगा कि, “ अरे ! यह तो विपरीत बात होगई ! देवता होते हुए मुझ पर यह मनुष्य प्राणी प्रसन्न हुआ ! मुझे न बन सके ऐसा कष्टसाध्य कार्य यह सहजमें कर डालनेकी इच्छा करता है ! बड़ेही आश्चर्यकी बात है कि, नवाणका जल कुएँमें प्रवेश कराना चाहता है ! आज कल्पवृक्ष अपने सेवकके पाससे अपना वांछित पूर्ण करनेकी इच्छा करता है, सूर्य भी प्रकाशके निमित्त किसी अन्यकी प्रार्थना करने लगा ! मैं श्रेष्ठदेवता हूँ यह मनुष्य मुझे क्या दे सकता है ? तथा मेरे समान देवता इससे क्या मांगें ? तो भी कुछ मांगूँ ? यह विचारकर राक्षसने उच्चस्वरसे कहाकि, “जो दूसरोंको इच्छित वस्तु दे, ऐसा पुरुष त्रैलोक्यमें भी दुर्लभ है. इससे मांगनेकी इच्छा होते हुए भी मैं क्या मांगूँ ? “मैं मांगूँ ” ऐसा विचार मनमें आतेही मनमेंके समस्त सद्गुण और “मुझे दो” यह वचन मुखमेंसे निकालते ही शरीरमेंके समस्त सद्गुण मानो डरसे भाग जाते हैं. दोनों प्रकारके मार्गण (बाण और याचक) दूसरोंको पीड़ा करने-वाले तो हैं ही; परन्तु उसमें आश्चर्य यह है कि, प्रथम तो

शरीरमें प्रवेश करने ही पर पीडा करता है, परन्तु दूसरा तो देखते ही पीडा उत्पन्न कर देता है. अन्य वस्तुसे धूल हलकी, धूलसे तृण हलका, तृणसे रूई हलकी, रूईसे पवन हलका, पवनसे याचक हलका, और याचकसे हलका याचकको ठगने वाला है. कहा है कि—हे माता ! किसीके पास मांगने जावे ऐसे पुत्रको तू मत जनना. तथा कोई मांगने आवे उसकी आशा भंग करनेवाले पुत्रको तो गर्भमें भी धारण मत कर. इसलिये हे उदार, जगदाधार रत्नसारकुमार ! यदि मेरी मांगनी वृथा न जाय तो मैं कुछ मांगूँ.” रत्नसारने कहा “अरे राक्षस-राज ! मन, वचन, काया, धन, पराक्रम, उद्यम अथवा जीविका भोग देनेसे भी तेरा कार्य सधे तो मैं अवश्य करूँगा.” यह सुन राक्षसने आदर पूर्वक कहा- “हे भाग्यशाली श्रेष्ठीपुत्र ! यदि ऐसा ही है तो तू इस नगरीका राजा हो. हे कुमार ! तेरेमें सर्वोत्कृष्ट सद्गुण हैं, यह देख मैं तुझे हर्षपूर्वक यह समृद्ध राज्य देता हूँ, उसे तू इच्छानुसार भोग. मैं तेरे वशमें हो गया हूँ, अतएव सदैव सेवककी भांति तेरे पास रहूँगा, और दिव्यऋद्धि, दिव्यभोग, सेनाआदि अन्य जिस वस्तुकी आवश्यकता होगी वह दूँगा. मनमें शत्रुता रखनेवाले समस्त-राजाओंको मैंने जड़ मूलसे नष्ट कर दिये हैं, अतएव अन्य अग्नि तो जलसे बुझती है, परन्तु तेरी प्रतापरूप नवीन अग्नि शत्रुओंकी स्त्रियोंके अश्रुजलसे वृद्धि पावे. हे कुमारराज ! मेरी

तथा अन्यदेवताओंकी सहायतासे सम्पूर्ण जगत्में तेरा इन्द्रकी भांति एक-छत्र राज्य हो. लक्ष्मीसे इन्द्रकी समानता करते, इस लोकमें साम्राज्य भोगते हुए तेरा देवांगनाएं भी स्वर्गमें कीर्ति गान करें.”

रत्नसारकुमार मनमें विचार करने लगा कि, “मेरे पुण्योदयसे यह राक्षस मुझे राज्य देता है। मैंने तो पूर्वमें साधु मुनि-राजके पास परिग्रह परिमाण नामक पांचवां अणुव्रत ग्रहण किया है, तब राज्यग्रहणका भी नियम किया है, और अभी मैंने इस राक्षसके सन्मुख स्वीकार किया है कि, “जो तू कहेगा वही मैं करूंगा ” यह बड़ा संकट आ पड़ा ! एक तरफ गड्ढा और दूसरी तरफ डाकू, एक तरफ शेर और दूसरी तरफ पर्वत-का गहरा गड्ढा, एक तरफ पारधी और दूसरी तरफ पाश ऐसी कहावतोंके अनुसार मेरी दशा होगई है. जो व्रतका पालन करता हूं, तो राक्षसकी मांग वृथा जाती है, और राक्षसकी मांग पूरी करूं तो स्वीकार किये हुए व्रतका भंग होता है। हाय ! अरे रत्नसार ! तू महान् संकटमें पड़ गया !! दूसरा चाहे कुछ भी मांगे तो भी कोई भी उत्तमपुरुष तो वही बात स्वीकार करेगा कि जिससे अपने व्रतका भंग न हो। कारण कि, व्रत भंग हो जाने पर बाकी रहा ही क्या ? जिससे धर्मको बाधा आवे ऐसी सरलता किस कामकी ? जिससे कान टूट जावे, ऐसा सुवर्ण हो तो भी वह किस कामका ? जहां तक दांत पड़ना संभव नहीं,

वहां तक ही कपुर खाना चाहिये । विचक्षण पुरुषोंने सरलता, शरम, लोभआदि गुण शरीरके समान बाह्य समझना; और स्वीकार किया हुआ व्रत अपने जीवके समान मानना चाहिये । तुम्बेका नाश होने पर नदीकिनारे जानेसे क्या प्रयोजन ? राजाका नाश होने पर योद्धाओंका क्या प्रयोजन ? मूल जल जाने पर विस्तारका क्या प्रयोजन ? पुण्यका क्षय होजाने पर औषधिका क्या प्रयोजन ? चित्त शून्य होजाने पर शास्त्रोंका क्या प्रयोजन ? हाथ कट जाने पर शस्त्रोंका क्या प्रयोजन ? वैसे ही अपने स्वीकार किये हुए व्रतके खंडित होने पर दिव्य ऐश्वर्य सुखआदिका क्या प्रयोजन ? ”

यह विचार कर उसने राक्षसको परम आदरसे तेजदार और सारभूत बचन कहा कि, “ हे राक्षसराज ! तूने कहा सो उचित है, परन्तु पूर्वकालमें मैंने गुरुके पास नियम स्वीकार किया है कि, महान् पापोंका स्थान ऐसा राज्यको ग्रहण नहीं करूंगा । यम और नियम इन दोनोंकी विराधना करी होवे तो ये तीव्र दुःख देते हैं । जिसमें यम तो आयुष्यके अंत ही में दुःख देता है, परन्तु नियम जन्मसे लेकर सदैव दुःखदायी है । इसलिये हे सत्पुरुष ! मेरा नियम भंग न हो ऐसा चाहे जो कष्ट-साध्य कार्य कह उसे मैं शीघ्र करूंगा । ” राक्षसने क्रोधसे कहा कि- “ अरे ! व्यर्थ क्यों गाल बजाता है ? मेरी प्रथम मांग तो व्यर्थ गई और अब दुसरीबार मांग करनेको कहता है ! अरे

पापी ! जिसके लिये संग्रामआदि पापकर्म करना पड़े, उस राज्यका त्याग करना उचित है, परन्तु देवोंके दिये हुए राज्यमें पाप कहाँसे होवे ? अरे मूढ़ ! मैं समृद्ध राज्य देता हूँ, तो भी तू लेनेका आलस्य करता है ? अरे ! सुगंधित घृत पाते हुए खाली “बू-बू” ऐसा शब्द करता है ? रे मूर्ख ! तू बड़े अभिमानसे मेरे महलमें गाढनिद्रामें सो रहा था ! और मेरेसे पांवके तलुवे भी मसलवाये !! हे मृत्युवश अज्ञानी ! तू मेरे कथनको हितकारी होते हुए भी नहीं मानता है, तो अब देख कि मेरे फलदायी क्रोधके कैसे कड़वे फल हैं ? ”

यह कह जैसे गिद्धपक्षी मांसका टुकड़ा उठाकर जाता है वैसे वह राक्षस शीघ्र कुमारको अपहरण कर आकाशमें उड़ गया । और क्रोधसे कुमारको धोरसमुद्रमें डाल दिया । जब मैनाकपर्वतकी भांति कुमार समुद्रमें गिरा तब वज्रपातके समान भयंकर शब्द हुआ व मानो कौतुक ही से वह पातालमें जाकर पुनः ऊपर आया । जलका स्वभाव ही ऐसा है. पश्चात् जड (जल) मय समुद्रमें अजड (ज्ञानी) कुमार कैसे रह सकेगा ? मानो यही विचार करके राक्षसने अपने हाथसे उसे बाहर निकाला और कहा कि- “ हे हठी और विवेक शून्य कुमार ! तू व्यर्थ क्यों मरता है ? राज्यलक्ष्मीको क्यों नहीं अंगीकार करता ? अरे निंघ ! देवता होते हुए मैंने तेरा निंघ वचन कबूल किया और तू कुछ मानवी होते हुए मेरा हित-

कारी वचन भी नहीं मानता है ? ओर ! अब तू मेरा वचन शीघ्र मान, अन्यथा धोबी जैसे वस्त्रको पछाड़ता है, उसी तरह तुझे पत्थरपर बारम्बार पछाड़ २ कर यमके घर पहुंचा दुंगा इसमें संशय नहीं । देवताका कोप व्यर्थ नहीं जाता और उसमें भी राक्षसका तो कदापि नहीं जाता । ” यह कह वह क्रोधी राक्षस कुमारके पैर पकड़ उसका सिर नीचे करे हुए पछाड़नेके लिये शिलाके पास ले गया । तब साहसीकुमारने कहा- “ ओर राक्षस ! तू मनमें विकल्प न रखते चाहे सो कर. मुझे बारबार क्या पूछता है ? सत्पुरुषोंका वचन एकही होता है. ”

पश्चात् अपने सत्त्वका उत्कर्ष होनेसे कुमारको हर्ष हुआ. उसका शरीर रोमांचित होगया और तेज तो ऐसा दीखने लगा कि कोई सहन न कर सके. इतनेमें राक्षसने जादूगरकी भांति अपना राक्षसरूप हटाकर शीघ्र दिव्यआभूषणोंसे देदीप्यमान अपना वैमानिकदेवताका स्वरूप प्रकट किया, भेघके जलकी वृष्टि-की भांति उसने कुमार पर पुष्पवृष्टि करी और भाटचारणकी भांति सन्मुख खड़े होकर जयध्वनि की, और आश्चर्यसे चकित कुमारको कहने लगा कि, “ हे कुमार ! जैसे मनुष्योंमें श्रेष्ठ चक्रवर्ती वैसे तू सत्त्वशाली पुरुषोंमें श्रेष्ठ है. तेरे समान पुरुष-रत्न और अप्रतिम शूरवीरके होनेसे पृथ्वी आज वास्तवमें रत्न-गर्भा और वीरवती हुई है. जिसका मन मेरुपर्वतके समान निश्चल है, ऐसे तूने गुरुके पास धर्म स्वीकार किया, यह बहुत

ही उत्तम किया. इन्द्रका सेनापति हरिणगमेपी नामक श्रेष्ठ-देवता अन्यदेवताओंके सन्मुख तेरी प्रशंसा करता है, वह योग्य है. ”

यह सुन रत्नसारकुमारने चकित हो पूछा कि, “हरि-णगमेपी देवता मुझ तुच्छ मनुष्यकी प्रशंसा क्यों करता है ?” देवताने कहा—“सुन. एक समय नये उत्पन्न हुए होनेके कारण साधमेन्द्र और ईशानेन्द्र इन दोनोंमें विमानके विषयमें विवाद हुआ. सौधमेन्द्रके विमान बत्तीस लाख, और ईशानेन्द्रके अट्ठावीस लाख होते हैं. वे परस्पर विवाद करने लगे. उन दोनोंमें दो राजाओंकी भांति बाहुयुद्ध आदि अन्य भी बहुतसे युद्ध अनेक बार हुए तिर्यचोंमें कलह होता है तो मनुष्य शीघ्र उन्हें शांत करते हैं; मनुष्योंमें कलह होता है तो राजा समझाते हैं; राजाओंमें कलह होता है तो देवता समाधान करते हैं; देवताओंमें कलह होता है तो उनके इन्द्र मिटाते हैं; परन्तु जो इन्द्र ही परस्पर कलह करे तो वज्रकी अग्निके समान उनको शांत करना कठिन है. कौन व किस प्रकारसे उनको रोक सकता है ? पश्चात् महत्तरदेवताओंने माणवकस्तंभ परकी अरिहंतप्रतिमाका आधि, व्याधि, महादोष और महावैरका नाशक न्हवणजल उन पर छिड़का, जिससे वे दोनों शीघ्र शांत हो गये. न्हवणजलकी ऐसी महिमा है कि, उससे कोई कार्य असंभव नहीं. पश्चात् उन दोनोंने पारस्परिक वैर त्याग

दिया। तब उनके मंत्रियोंने कहा कि, “पूर्वकी व्यवस्था इस प्रकार है”— दक्षिणदिशामें जितने विमान हैं वे सब सौधर्म इन्द्रके हैं, और उत्तरदिशामें जितने हैं उन सब पर ईशानइन्द्रकी सत्ता है। पूर्वदिशा तथा पश्चिमदिशामें सब मिलकर तेरह गोलाकार इन्द्रक विमान हैं, वे सौधर्मइन्द्रके हैं। उन्हीं दोनों दिशाओंमें त्रिकोण और चतुष्कोण जितने विमान हैं, उनमें आधे सौधर्मइन्द्रके और आधे ईशानइन्द्रके हैं। सनत्कुमार तथा माहेन्द्रदेवलोकमें भी यही व्यवस्था है। सब जगह इन्द्रकविमान तो गोलाकार ही होते हैं’ मंत्रियोंके वचनानुसार इस प्रकार व्यवस्थाकर दोनों इन्द्र चित्तमें स्थिरता रख, बैर छोड़ परस्पर प्रीति करने लगे। इतनेमें चन्द्रशेखर देवताने हरिणगमेषी देवताको सहज कौतुकसे पुछा कि—“संपूर्ण जगतमें लोभके सपाटेमें न आवे ऐसा कोई जीव है ? अथवा इन्द्रादिक भी लोभवश होते हैं तो फिर दूसरेकी बात ही क्या ? जिस लोभने इन्द्रादिकको भी सहज ही में धरके दास समान वशमें कर लिये, उसका तीनों जगतमें वास्तवमें अद्भुत एकछत्र साम्राज्य है।” तब नैगमेषीदेवताने कहा कि— “हे चन्द्रशेखर ! तू कहता है वह बात सत्य है, तथापि ऐसी कोई भी वस्तु नहीं कि जिसकी पृथ्वीमें बिलकुल ही सत्ता न हो। वर्तमान ही में श्रेष्ठिवर्यश्रीवसुसारका “रत्नसार” नामक पुत्र पृथ्वी पर है, वह किसी भी प्रकार लोभवश होने वाला नहीं। यह बात बि-

लकुल निःसंशय है । उसने गुरुके पास परिग्रहपरिमाणव्रत ग्रहण किया है । वह अपने व्रतमें इतना दृढप्रतिज्ञ है कि सर्व देवता व इन्द्र भी उसे चलायमान नहीं कर सकते ! दूर तक प्रसरे हुए अपार लोभरूप जलके तीव्रप्रवाहमें अन्य सब तृणसमान बहते जावें ऐसे हैं; परन्तु वह कुमार मात्र ऐसा है कि जो कृष्ण-चित्रकलताकी भांति भीगता नहीं । ”

जैसे सिंह दूसरेकी गर्जना सहन नहीं कर सकता वैसे ही चन्द्रशेखरदेवता नैगमेषीदेवताका वचन सहन न कर सका और तेरी परीक्षा करनेके लिये आया । पिंजरे सहित तेरे तोते-को हर लेगया । एक नई मैना तैयार की, एक शून्य नगर प्रकट किया, और एक भयंकर राक्षसरूप बनाया, उसीने तुझे समुद्र-में फेंका, और दूसरा भी डर बताया । पृथ्वीमें रत्नके समान हे कुमार! मैं वही चन्द्रशेखर देवता हूं । इसलिये हे सत्पुरुष! तू मेरे इन सर्व दुष्टकर्मोंकी क्षमा कर, और देवताका दर्शन निष्फल नहीं जाता, इसलिये मुझे कुछ भी आदेश कर, ” कुमारने देवताको कहा “ श्रीधर्मके सम्यक्प्रसादसे मेरे संपूर्ण कार्य सिद्ध हुए हैं, इसलिये मैं अब तुझसे क्या मांगूं ! परन्तु हे श्रेष्ठदेवता ! तू नंदीश्वरआदि तीर्थोंमें यात्राएं कर जिससे तेरा देवताभव सफल होगा । ” चन्द्रशेखरदेवताने यह बात स्वीकार की, तोतेका पींजरा कुमारके हाथमें दिया, और कुमारको उठाकर शीघ्र ही कनक-पुरीमें ला रक्खा । पश्चात् चन्द्रशेखरदेवता राजादिके सन्मुख

कुमारकी महिमा वर्णनकर अपने स्थानको गया । इधर रत्नसार-
ने भी किसी प्रकार राजाकी आज्ञा ले दोनों स्त्रियोंके साथ उसे
अपने नगरकी ओर प्रयाण किया । सामन्त, मंत्रीआदि राज-
पुरुष कुमारके साथ उसे पहुंचाने आये । जिससे मार्गमें सभी
पुरुष कुमारको राजपुत्र समझने लगे । मार्गमें आये हुए राजा-
ओंने स्थान २ पर उसका सत्कार किया । क्रमशः कितने ही
दिनके बाद वह रत्नविशालानगरीमें आ पहुंचा । राजा समर-
सिंह भी इसकी ऋद्धिका विस्तार देखकर बहुतसे श्रेष्ठियोंके
साथ अगवानीको आया व बड़े समारम्भसे कुमारका नगरी-
में प्रवेश कराया । पूर्वपुण्यकी पटुता कैसी विलक्षण है ? पार-
स्परिक आदर सत्कारादि होजानेके अनन्तर चतुर तोतेने रा-
जादिके सन्मुख संपूर्ण वृत्तान्त कह सुनाया । जिसे सुन उन
सबको बड़ा चमत्कार उत्पन्न हुआ, व कुमारकी प्रशंसा करने
लगे ।

एक समय उद्यानमें ' विद्यानन्द ' नामक आचार्यका
समवसरण हुआ । राजा रत्नसारकुमार आदि हर्षपूर्वक उनको
बंदना करने गये । आचार्यमहाराजने उचित उपदेश दिया ।
पश्चात् राजाने आचार्यमहाराजसे रत्नसारकुमारका पूर्व भव
पुछा, तब चतुर्ज्ञानी विद्यानन्दाचार्य इस प्रकार कहने लगे-

“ हे राजन् ! राजपुरनगरमें धनसे संपूर्ण और सुन्दर
श्रीसार नामक राजपुत्र था । एक श्रेष्ठपुत्र, दूसरा मंत्रीपुत्र और

तीसरा क्षत्रियपुत्र ऐसे राजपुत्रके तीन मित्र थे । धर्म, अर्थ और कामसें जैसे उत्साह शोभता है, वैसे वह राजपुत्र तीनों-मित्रोंसे मूर्तिमंत उत्साहके समान शोभता था । चारोंमें जो क्षत्रियपुत्र था वह शेष तीनोंमित्रोंका कलाकौशल देखकर अपने आपकी निंदा किया करता था और ज्ञानको मान देता था । एकसमय रानीके महलमें किसी चोरने सेंध लगाई । सुभटोंने उसे माल सहित पकड़ लिया । क्रोध पाये हुए राजाने उसे शूली पर चढ़ानेका आदेश किया । जल्लाद लोग उसे लेजाने लगे; इतनेमें दयालु श्रीसारकुमारने हरिणीकी भांति भयभीत दृष्टिसे इंधर उधर देखते उस चोरको देखा और यह कह कर कि “ मेरी माताका द्रव्य हरण करनेवाला यह चोर है, इसलिये मैं स्वयं इसका वध करूंगा । ” श्रीसार जल्लादोंके पाससे उसे अपने अधिकारमें ले नगरीके बाहर गया व उदार व दयालु राजकुमारने उसे “ फिर कभी चोरी मत करना ’ यह कह चुपचाप छोड़ दिया । सत्पुरुषोंकी अपराधी मनुष्य पर भी अद्भुत दया होती है । मनुष्योंके सब कहीं पांच मित्र होते हैं तो पांच शत्रु भी होते हैं । यही दशा कुमारकी भी थी । इससे किसीने चोरके छोड़ देनेकी बात राजाके कानमें डाली । “ आज्ञाभंग करना यह राजाका बिना शस्त्रका वध कहलाता है । ” ऐसा होनैसे रुष्ट हुए राजाने श्रीसारका बहुत तिरस्कार किया जिससे दुःखित व क्रोधित हो कुमार नगरसे बाहर निकल गया ।

मानीपुरुष अपनी मानहानिको मृत्युसे भी बदतर अनिष्ट मानते हैं. ज्ञान, दर्शन और चारित्र्य जैसे मव्यजीवोंको आ मिलते हैं, वैसे नित्य मित्रता रखनेवाले तीनों मित्र श्रीमारको आमिले. कहा है कि— संदेशा भेजनेके समय दूतकी, संकट आनेपर बान्धवोंकी, आपत्ति आपडने पर मित्रोंकी और धन चला जावे तब स्त्रीकी परीक्षा की जाती है. मार्गमें जंगल आया तब वे चारों व्यक्ति एक राहगारों (काफला) के दलके साथ चल रहे थे, परन्तु कर्मकी विचित्रगतिसे उनका साथ छूटजानेसे मार्ग भूल गये. तीनदिन तक क्षुधातृषासे पीडित हुए इधर उधर भटकते एक गांवमें आये, और भोजनकी तैयारी करने लगे. इतनेमें जिनका भव थोड़ा बाकी रहा है ऐसे एक जिनकल्प मुनिराज उनके पास भिक्षा लेने तथा उनको उत्कृष्ट वैभव देनेके लिये आये. राजकुमार भद्रकस्वभाव था इससे उसने उच्च-भावसे मुनिराजको भिक्षा दी, और भोगफल कर्म उपार्जित किया. मुनिराजको भिक्षादेनेसे दो मित्रोंको हर्ष हुआ. उन्होंने मन, वचन, कायासे धर्मका अनुमोदन किया. ठीक ही है, समानमित्रोंने समान ही पुण्य उपार्जन करना उचित है. सब दे दो, ऐसा योग फिर हमको कब मिलेगा ?' इस प्रकार दोनों मित्रोंने अपनी अधिक श्रद्धा बतानेके लिये कपट वचन कहे.

क्षत्रियपुत्रका स्वभाव तुच्छ था, इससे वह दानके समय बोला कि, हे कुमार ! मुझे बड़ी भूख लगी है अतएव कुछ तो

रख लो. इस प्रकार वृथा दानमें अंतराय करके भोगान्तराय कर्म बांधा. पश्चात् राजाके बुलानेसे वे अपने २ स्थानको गये और हर्षित हुए. उन चारोंको क्रमशः राजकुमारको राज्य, श्रेष्ठपुत्रको श्रेष्ठपद, मंत्रीपुत्रको मंत्रीपद और क्षत्रियपुत्रको सेनानायकका पद मिला. वे अपना २ पद भोगकर क्रमशः मृत्युको प्राप्त हुए. सत्पात्रदानके प्रभावसे श्रीसारकुमार रत्नसार हुआ. श्रेष्ठपुत्र और मंत्रीपुत्र इसकी स्त्रियां हुई. कारण कि कपट करनेसे स्त्रीभव प्राप्त होता है. क्षत्रियपुत्र तोता हुआ. कारण कि दानमें अन्तराय करनेसे तिर्यचपन प्राप्त होता है. तोतेमें जो बड़ी चतुरता है, वह पूर्वभवमें ज्ञानको बहुत मान दिया था उसका कारण है. श्रीसारका छुड़ाया हुआ चोर तापसव्रत पालनकर इसे सहायता करनेवाला चन्द्रचूड देवता हुआ.

राजाआदि लोगोंने मुनिराजके ये वचन सुनकर पात्रदानको आदरणीय मान सम्यक्क्रीतिसे जैनधर्मका पालन करना अंगीकार किया. सत्य ही है, तत्त्वका ज्ञान होजानेपर कौन आलस्य करता है ? सत्पुरुषोंका स्वभाव जगतमें सूर्यके समान शोभायमान होता है. कारण कि, सूर्य जैसे अंधकारका नाश कर लोगोंको सन्मार्गसे लगाता है, वैसे ही सत्पुरुष भी अज्ञानान्धकारको दूर करके लोगोंको सन्मार्गसे लगाते हैं.

अत्यन्त पुण्यशाली रत्नसारकुमारने अपनी दो स्त्रियोंके साथ चिरकाल उत्कृष्ट सुख भोगे. अपने भाग्य ही से इच्छित द्रव्य

मिलजानेसे उसने धर्म और काम इन दो पुरुषार्थों ही का परस्पर बाधा न आवे इस रीतिसे सम्यक्प्रकारसे साधन किया. उसने रथयात्राएं, तीर्थयात्राएं, अरिहंतकी चांदीकी, सुवर्णकी तथा रत्नकी प्रतिमाएं, उनकी प्रतिष्ठाएं, जिनमंदिर, चतुर्विध संघका वात्सल्य, अन्य दीनजनोंपर उपकारआदि उत्तमोत्तम कृत्य चिरकाल तक किये. ऐसे श्रेष्ठ कृत्य करना यही लक्ष्मीका फल है. उसके सहवाससे उसकी दोनों स्त्रियां भी उसीके समान धर्म-निष्ठ हुई. सत्पुरुषोंके सहवाससे क्या नहीं होता ? अन्तमें आयुष्य पूर्ण होनेपर दोनों स्त्रियोंके साथ शुभध्यानसे देह त्यागकर बारहवें अच्युतदेवलोकमें गया. यह गति श्रावकके लिये उत्कृष्ट मानी गई है. रत्नसारकुमारका जीव वहांसे च्यव कर महाविदेहक्षेत्रमें अवतरेगा, और जैनधर्मकी सम्प्रकृतिसे आराधना कर शीघ्र मोक्षसुख प्राप्त करेगा । इस प्रकार उपरोक्त चरित्रको बराबर ध्यानमें लेकर भव्यजीवोंने पात्रदानमें तथा परिग्रहपरिमाणव्रत आदरनेमें पूर्ण प्रयत्न करना चाहिये.

साधुआदिका योग होवे तो ऊपरोक्त कथनानुसार यथा-विधि पात्रदान अवश्य करे. वैसे ही भोजनके समय पर अथवा पहिले आये हुए साधर्मियोंको भी यथाशक्ति अपने साथ भोजन करावे । कारण कि, साधर्मी भी पात्रही कहलाता है. साधर्मि-वात्सल्यकी विधिआदिका वर्णन आगे करेंगे. इसी प्रकार दूसरे भी भिखारीआदि लोगोंको उचित दान देना, उनको निराश

करके पीछे नहीं फेरना. कर्मबन्धन नहीं कराना. धर्मकी अव-
 हेलना भी न कराना. अपने मनको निर्दय न रखना. भोजनके
 समय द्वार बन्द करना आदि महान् अथवा दयालुपुरुषोंका
 लक्षण नहीं है. सुननेमें भी ऐसा आता है कि, चित्रकूटमें चित्रां-
 गद राजा था. उस पर चढ़ाई कर शत्रुओंने चित्रकूट गढ़ घेर
 लिया. शत्रुओंके अन्दर घुस आनेका बड़ा डर होते हुए भी
 राजा चित्रांगद प्रतिदिन भोजनके समय पोलका दरवाजा खुल-
 वाता था. गणिकाने यह गुप्त भेद प्रकट कर दिया जिससे
 शत्रुओंने गढ़ जीत लिया.....इत्यादि. इसलिये श्रावकने और
 विशेष करके ऋद्धिवन्तश्रावकने भोजनके समय कदापि द्वार
 बन्द नहीं करना चाहिये. कहा है कि--अपने उदरका पोषण
 कौन नहीं करता ? परन्तु पुरुष वही है जो बहुतसे जीवोंका
 उदर पोषण करे. इसलिये भोजनके समय आये हुए अपने
 बान्धवादिको अवश्य जिमाना चाहिये. भोजनके अवसर पर
 आये हुए मुनिराजको भक्तिसे, याचकोंको शक्तिके अनुसार और
 दुःखीजीवोंको अनुकंपासे सन्तुष्ट करनेके अनंतरही भोजन करना
 उचित है. आगममें भी कहा है कि--सुश्रावक भोजन करते समय
 द्वार बंद न करे. कारण कि, जिनेन्द्रोंने श्रावकोंको अनुकम्पादान
 की मनाई नहीं करी है. श्रावकको चाहिये कि भयंकर भवसागर-
 में दुःखसे पीड़ितजीवोंके समुदायको देखकर मनमें जाति पांति
 अथवा धर्मका भेद न रखते द्रव्यसे अन्नादिक देकर तथा भाव-

से सन्मार्गमें लगाकर यथाशक्ति अनुकम्पा करे. श्रीभगवती-
 प्रमुखसूत्रोंमें श्रावकके वर्णनके प्रसंगमें “ अवंगुअदुआरा ” यह
 विशेषण देकर “ श्रावकने साधुआदि लोगोंके प्रवेश करनेके
 लिये हमेशा द्वार खुला रखना ” ऐसा कहा है तीर्थकरोंने भी
 सांवत्सरिक दान देकर दीनलोगोंका उद्धार किया. विक्रम-
 राजाने भी अपने राज्यके सर्वलोगोंको ऋण रहित किया, जिस-
 से उसके नामका संवत् चला. दुष्कालआदि आपत्तिके समय
 लोगोंको सहायता देनेसे महान् फल प्राप्त होता है. कहा है
 कि--शिष्यकी विनयसे, योद्धाकी समरभूमिमें, मित्रकी संकटके
 समय और दानकी दुर्भिक्ष पड़नेसे परीक्षा होती है. संवत्
 १३१५ में दुर्भिक्ष पड़ा था, तब भद्रेश्वरनगरनिवासी श्रीमाल-
 जातिके जगडुशाहने एक सौ बारह सदावर्त स्थापित कर दान
 दिया था. कहा है कि--दुर्भिक्षके समय हम्मीरने बारह, वीसल-
 देवने आठ, बादशाहने एकवीस और जगडुशाहने एक हजार
 धान्यके मूडे (माप विशेष) दिये. उसी प्रकार अणहिल्लपुर-
 पाटणमें “ सिंघाक ” नाम एक बड़ा सराफ हुआ था. उसने
 अश्व, गज, बड़े २ महल आदि अपार ऋद्धि उपार्जन करी थी.
 संवत् १४२९ में उसने आठ मंदिर बंधाये और महायात्राएं
 करीं. एक समय उसने ज्योतिषीके कहने परसे भविष्यमें आने-
 वाले दुर्भिक्षका हाल सुना और दो लाख मन धान्य संग्रह करके
 रखा जिससे दुर्भिक्ष पड़ने पर भावकी तेजीसे उसे बहुत लाभ

हुआ, तब उसने चौबीस हजार मन धान्य अनाथलोगोंको दिया, एक हजार बन्धियोंको छुड़ाया, छप्पन राजाओंको छुड़ाया, जिनमंदिर खुलवाये, श्रीजयानन्दसूरि तथा श्रीदेव-सुन्दरसूरिके पगले स्थापित किये इत्यादि उसके बहुतसे धर्म-कृत्य प्रसिद्ध हैं. इसलिये श्रावकने विशेषकर भोजनके समय अनुकम्पादान अवश्य करना चाहिये. दरिद्रीमनुष्यने भी घरमें अन्नआदि इतना बनाना कि, जिससे कोई गरीब आवे तो यथाशक्ति उसकी आसना वासना की जा सके. इसमें कोई विशेष स्वर्च भी नहीं होता. कारण कि, गरीबलोगोंको थोड़ेही-में सन्तोष हो जाता है. कहा है कि-कवल (ग्रास) में से एक दाना नीचे गिर पड़े तो हाथीके आहारमें तो उससे क्या कमी हो सकती है ? परन्तु उसी एक दाने पर कीड़ीका तो सम्पूर्ण कुटुम्ब निर्वाह कर लेता है. दूसरे उपरोक्त कथनानुसार ऐसा निरवद्य आहार किंचित अधिक तैयार किया हो तो उससे सुपात्र-का योग मिल जाने पर शुद्ध दान भी दिया जा सकता है ।

इसी प्रकार माता, पिता, बन्धु, भगिनी, पुत्र, कन्या, पुत्रवधू, सेवक, रोगी, कैदी तथा गाय आदि जानवरोंको उचित भोजन दे, पंचपरमेष्ठीका ध्यानकर तथा पक्षिखान और मयान-का यथोचित उपयोग रख करके रुचिके अनुसार भोजन करना. कहा है कि -उत्तमपुरुषोंने प्रथम पिता, माता, बालक, गर्भिणी, वृद्ध, और रोगी इनको भोजन करा पश्चात् स्वयं भोजन करना.

धर्मज्ञानी पुरुषने सर्व जानवर तथा बन्धनमें रखे हुए लोगोंकी सार सम्हाल करके पश्चात् भोजन करना चाहिये. भोजनमें सदैव सात्म्य वस्तु व्यवहारमें लेना चाहिये. आहार, पानी आदि वस्तु स्वभावके प्रतिकूल हों तो भी किसीको वे अनुकूल होती हैं, इसे सात्म्य कहते हैं. जन्मसेही प्रामाणिक विष भक्षण करनेकी आदत डाली होवे तो वह विषही अमृत समान होता है; और वास्तविक अमृत हो तो भी किसी समय उपयोग न करनेसे प्रकृतिको अनुकूल न हो तो वही विष समान होजाता है, ऐसा नियम है, तथापि पथ्यवस्तुका सात्म्य न हो तो भी उसीको उपयोगमें लेना, और अपथ्य वस्तु सात्म्य होवे तो भी न वापरना चाहिये “ बलिष्ठ पुरुषको सर्व वस्तुएं पथ्य (हितकारी) हैं. ” ऐसा सोचकर कालकूट विष भक्षण करना अनुचित है. विषशास्त्रका जाननेवाला मनुष्य सुशिक्षित होता है, तोभी किसी समय विष खानेसे मृत्युको प्राप्त होजाता है. और भी कहा है कि-जो गलेके नीचे उतरा वह सब अशन कहलाता है. इसीलिये चतुरमनुष्य गलेके नीचे उतरे वहां तक क्षणमात्र सुखके हेतु जिन्हाकी लोलुपता नहीं रखते. ऐसा वचन है, अतएव जिन्हाकी लोलुपता भी छोड़ देनी चाहिये. तथा अभक्ष्य, अनंतकाय और बहुत सावद्य वस्तु भी व्यवहारमें न लाना चाहिये. अपने अग्निबलके अनुसार परिमित भोजन करना चाहिये. जो परिमित भोजन करता है, वह बहु भोजन करनेके समान

है. अतिशय भोजन करनेसे अर्जाणि, वमन, विरेचन (अतिसार) तथा मृत्यु आदि भी सहज हीमें होजाते हैं. कहा है कि-हे जीभ ! तू भक्षण करने व बोलनेका परिमाण रख. कारण कि, अतिशय भक्षण करने तथा अतिशय बोलनेका परिणाम भयंकर होता है. हे जीभ ! जो तू दोषरहित तथा परिमित भोजन करे, और जो दोष रहित तथा परिमित बोले, तो कर्मरूप वीरोंके साथ लड़नेवाले जीवसे तुझीको जयपत्रिका मिलेगी; ऐसा निश्चय समझ. हितकारी, परिमित और परिपक्व भोजन करनेवाला, बाईं करवटसे सोनेवाला, हमेशा हिरने फिरनेका परिश्रम करनेवाला, विलम्ब न करते मलमूत्रका त्याग करनेवाला और स्त्रियोंके सम्बन्धमें अपने मनको वशमें रखनेवाला मनुष्य रोगोंको जीतता है. व्यवहारशास्त्रादिकके अनुसार भोजन करनेकी विधि इस प्रकार है:—

अतिशय प्रभातकालमें, बिल्कुल सन्ध्याके समय, अथवा रात्रिमें तथा गमन करते भोजन न करना. भोजन करते समय अन्नकी निन्दा न करना, बायें पैर पर हाथ भी न रखना तथा एक हाथमें खानेकी वस्तु लेकर दूसरे हाथसे भोजन न करना. खुली जगहमें, धूपमें, अन्धकारमें अथवा वृक्षके नीचे कभी भी भोजन न करना. भोजन करते समय तर्जनी अंगुली खड़ी न रखना. मुख, वस्त्र, और पग धोये बिना, नमनावस्थासे, मैले वस्त्र पहिरकर तथा बायां हाथ थालीको लगाये बिना भोजन न

करना. एकही वस्त्र पहिरकर, सिर पर भीगा हुआ वस्त्र लपेट कर, अपवित्र शरीरसे तथा अतिशय जिन्हालोलुपता रखकर भोजन न करना. पैरमें जूते पहिरकर, चित्त स्थिर न रखकर, केवल जमीन पर अथवा पलंग पर बैठकर, उपदिशा अथवा दक्षिणदिशाको मुख करके तथा पतले आसन पर बैठकर भोजन न करना. आसन पर पग रखकर तथा श्वान चाँडाल और पतितलोगोंकी दृष्टि पड़ती हो ऐसे स्थानमें भोजन न करना. फूटे हुए तथा मलीनपात्रमें भी भोजन न करना. अपवित्र वस्तुओं द्वारा उत्पन्न हुआ, गर्भहत्या आदि करने वाले लोगोंका देखा हुआ, रजस्वला स्त्रीका स्पर्श किया हुआ तथा गाय, श्वान, पक्षी आदि जीवोंका संधा हुआ अन्न भक्षण न करना. जो भक्ष्य वस्तु कहाँसे आई यह ज्ञात न हो तथा जो वस्तु अजानी हो उसे भक्षण न करना. एक बार पकाया हुआ अन्न पुनः गरम किया हो तो भक्षण न करना तथा भोजन करते समय मुखसे किसीप्रकारका शब्द अथवा ढेढा बाँका मुख न करना चाहिये. भोजन करते समय पडोसियोंको भोजन करनेके लिये बुला कर प्रीति उत्पन्न करना. अपनेइष्टदेवका नाम स्मरण करना तथा सम, चौड़े, विशेष ऊँचा व नीचा न हो ऐसे स्थिर आसन पर बैठकर अपनी मौसी, माता, बहिन अथवा स्त्री आदि द्वारा तैयार किया हुआ तथा पवित्र व भोजन किये हुए लोगों द्वारा आदर पूर्वक परोसा हुआ अन्न एकान्तमें दाहिना स्वर बहता

हो उस समय भक्षण करना. भोजन करते वक्त मौन करना. तथा शरीर सीधा रखना और प्रत्येक भक्ष्यवस्तुको खंघना; कारण कि, उससे दृष्टिदोष टलता है. अधिक खारा, अधिक खट्टा, अधिक गरम अथवा अधिक ठंडा अन्न भक्षण न करना. अधिक शाक न खाना. अतिशय मीठी वस्तु न खाना तथा रुचिकर वस्तु भी अधिक न खाना चाहिये. अतिशय उष्ण अन्न रसका नाश करता है, अतिशय खट्टा अन्न इन्द्रियोंकी शक्ति कम करता है, अतिशय खारा अन्न नेत्रोंको विकार करता है; और अतिशय स्निग्ध अन्न ग्रहणी (आमाशयकी छट्टी थैली)-को बिगाड़ता है. कड़वे और तीक्ष्ण आहारसे कफका, तूरे और मीठे आहारसे पित्तका, स्निग्ध और उष्ण आहारसे वायुका तथा उपवाससे शेषरोगोंका नाश करना चाहिये. जो पुरुष शाकभाजी अधिक न खावे, घृतके साथ अन्न खावे, दूध आदि स्निग्ध वस्तुका सेवन करे, अधिक जल न पीवे, अजीर्ण पर भोजन न करे, मूत्रल तथा विदाही वस्तुका सेवन न करे, चलते हुए भक्षण न करे, और खाया हुआ पचजाने पर अवसरसे भोजन करे, उसे यदि कभी शरीर रोग होता है तो बहुत ही थोड़ा होता है।

नीतिवान पुरुष प्रथम मधुर, मध्यमें तीक्ष्ण और अन्तमें कड़वा ऐसा दुर्जनकी मित्रताके सदृश भोजन चाहते हैं. शीघ्रता न करते प्रथम मधुर और स्निग्धरस भक्षण करना, मध्यमें

पतला, खट्टा और खारा रस भक्षण करना तथा अन्तमें कड़ुवा और तीखारस भक्षण करना चाहिये प्रथम पतले रस, मध्यमें कड़वे रस और अंतमें पुनः पतला रस भक्षण करना चाहिये, इससे बल और आरोग्य बढ़ता है. भोजनके प्रारंभमें जल पीनेसे अग्नि मंद होती है, मध्यभागमें जलपान रसायनके समान पुष्टि देता है, और अंतमें पीनेसे विषके समान हानिकारक होता है। मनुष्यने भोजन करनेके बाद सर्वरससे भरे हुए हाथसे जलका एक कुल्ला प्रतिदिन पीना. पशुकी भांति मनमाना जल नहीं पीना चाहिये, झूठा बचा हुआ भी न पीना; तथा खोबसे भी न पीना. कारणािक, परिमित जल पीना ही हितकर है. भोजन कर लेनेके बाद भीगे हुए हाथसे दोनों गालोंको, बायें हाथको अथवा नेत्रोंको स्पर्श न करना; परंतु कल्याणके लिये दोनों घुटनोंको स्पर्श करना चाहिये. भोजनके उपरांत कुछ समय तक शरीरका मर्दन, मलमूत्रका त्याग, बोझा उठाना, बैठे रहना, नहाना आदि न करना चाहिये. भोजन करके तुरंत बैठ रहनेसे मेदसे पेट बढ जाता है; चिता सोरहनेसे बलवृद्धि होती है; बाईं करवट सो रहनेसे आयुष्य बढ़ती है और दौड़नेसे मृत्यु सन्मुख आती है. भोजनोपरांत तुरत बाईं करवट सो रहना; किन्तु निद्रा नहीं लेना चाहिये, अथवा सो पद चलना चाहिये. यह भोजनकी लौकिकविधि है. सिद्धांतमें कही हुई विधि इस प्रकार है:—

सुश्रावक निरवध, निर्जीव से और अशक्त होतो परिचमिश्र आहारसे निर्वाह करनेवाले होते हैं. श्रावकने साधुकी भांति सरसर अथवा चवचव शब्द न करते, अधिक उतावल व अधिक स्थिरता न रखते, नीचे दाना अथवा घिंदु न गिराते तथा मन, वचन, कायाकी यथोचित गुप्ति रखकर उपयोगसे भोजन करना चाहिये.

जिस प्रकार गाड़ी हांकनेके कार्यमें अभ्यंजन (पड़येमें तैलादि) लेप लगाया जाता है, उसी अनुसार संयमरूप रथ चलानेके लिये साधुओंको आहार कहा गया है. अन्यगृहस्थोंका अपने लिये किया हुआ तीक्ष्ण, कड़वा, तूरा, खट्टा, मीठा अथवा खारा जैसा कुछ अन्न मिले वह साधुओंने मांठे घृतकी भांति भक्षण करना. इसीतरह रोग, मोहका उदय, स्वजनआदिका उपसर्ग होने पर, जीवदयाके रक्षणार्थ, तपस्याके हेतु तथा आयुष्यका अन्त आने पर शरीरको त्याग करनेके लिये आहारको त्याग करना चाहिये, यह विधि साधु आश्रित है. श्रावक आश्रयी विधि भी यथायोग्य जानना चाहिये. अन्यस्थानमें भी कहा है कि—विवेकी पुरुषने शक्ति होवे तो देव, साधु, नगरका स्वामी, तथा स्वजन संकटमें पड़ा हो, अथवा सूर्य और चन्द्रका ग्रहण लगा हो, तब भोजन न करना। इसी प्रकार अजीर्णसे रोग उत्पन्न होते हैं, इसलिये अजीर्ण नेत्रविकारआदि रोग हुए हों तो भोजन न करना चाहिये. कहा है कि—ज्वरके प्रारंभमें शक्ति कम न

हो उतने लंघन करना. परंतु वायुसे, थकावटसे, क्रोधसे, शोकसे, कामविकारसे और ग्रहार होनेसे उत्पन्न हुए ज्वरमें लंघन न करना चाहिये, तथा देव, गुरुको वन्दनादिकका योग न होवे; तीर्थ अथवा गुरुको वन्दना करना होवे, विशेष व्रत पचखान लेना होवे, महान् पुण्यकार्य आरम्भ करना होवे उस दिन व अष्टमी, चतुर्दशीआदि श्रेष्ठपर्वके दिन भी भोजन नहीं करना चाहिये. मासक्षमण आदि तपस्यासे इस लोक परलोकमें बहुत गुण उत्पन्न होते हैं. कहा है कि—तपस्यासे अस्थिर कार्य हो वह स्थिर, टेढ़ा हो वह सरल, दुर्लभ हो वह सुलभ तथा असाध्य हो वह सुसाध्य हो जाता है । वासुदेव, चक्रवर्ती-आदि लोगोंके समानदेवताओंको अपना सेवक बना लेना आदि इसलोकके कार्य भी अहुम आदि तपस्या ही से सिद्ध होते हैं; अन्यथा नहीं

सुश्रावक भोजन करनेके उपरांत नवकार स्मरण करके उठे और चैत्यवन्दनविधिसे योगानुसार देव तथा गुरुको वन्दना करे. उपस्थितगाथामें “सुपत्तदाणाइजुत्तिए” इस पदमें आदि शब्दका ग्रहण किया है इससे यह सर्व विधि सूचित की गई है ।

अब गाथाके उत्तरार्द्धकी व्याख्या करते हैं—भोजन करनेके बाद दिवसचरिम अथवा ग्रंथिसहित आदि गुरु-प्रमुखको दो बार वन्दना करके ग्रहण करना. और गीतार्थ-

मुनिराज अथवा गीतार्थश्रावक, सिद्धपुत्रआदिके पास योग्यता-नुसार पांच प्रकारकी सज्ज्ञाय करना. १ वाचना, २ पृच्छना, ३ परावर्त्तना, ४ धर्मकथा, और ५ अनुप्रेक्षा, ये सज्ज्ञायके पांच प्रकार हैं। जिसमें निर्जराके लिये यथायोग्य सूत्रआदिका दान करना अथवा ग्रहण करना, उसे वाचना कहते हैं। वाचनामें कुछ संशय रहा हो वह गुरुको पूछना उसे पृच्छना कहते हैं। पूर्वमें पढ़े हुए सूत्रादिक भूल न जावें उसके लिये पुनरावृत्ति करना उसे परावर्त्तना कहते हैं। जम्बूस्वामीआदि स्थविरोंकी कथा सुनना अथवा कहना उसे धर्मकथा कहते हैं। मनही में बारम्बार सूत्रादिकका स्मरण करना उसे अनुप्रेक्षा कहते हैं। यहां गुरुमुखसे सुने हुए शास्त्रार्थका ज्ञानीपुरुषोंके पास विचार करनारूप सज्ज्ञाय विशेषकृत्यके समान समझना चाहिये। कारण कि “ भिन्न २ विषयके ज्ञाता पुरुषोंके साथ शास्त्रार्थके रहस्यकी बातोंका विचार करना ” ऐसा श्री योग-शास्त्रका वचन है। यह सज्ज्ञाय बहुत ही गुणकारी है, कहा है कि, सज्ज्ञायसे श्रेष्ठ ध्यान होता है, सर्व परमार्थका ज्ञान होता है, तथा सज्ज्ञायमें रहा हुआ पुरुष क्षण क्षणमें वैराग्य दशा पाता है। पांच प्रकारकी सज्ज्ञाय ऊपर आचारप्रदीपग्रंथमें उत्कृष्ट दृष्टांतोंका वर्णन किया गया है, इसलिये यहां नहीं किया गया (८)

(६२२)

(मूलगाथा)

संझाइ जिणं पुणरवि,

पूअइ पडिकमइ कुणइ तह विहिणा ॥

विस्समणं सम्पायं,

गिहं गओ तो कहइ धम्मं ॥

संक्षेपार्थः—संध्यासमय पुनः अनुक्रमसे जिनपूजा, प्रतिक्रमण, इसीप्रकार विधीके अनुसार मुनिराजकी सेवा-भक्ति और सज्जाय करे पश्चात् घर जाकर स्वजनोको धर्मोपदेश करे.

विस्तारार्थः—श्रावकके लिये नित्य एकाशन करना, यह उत्सर्गमार्ग है. कहा है कि—श्रावक उत्सर्गमार्गसे सचित्त वस्तुका त्यागी, नित्य एकाशन करनेवाला, ब्रह्मचर्यव्रत पालन करनेवाला होता है, परन्तु जो नित्य एकाशन न कर सके, उसने दिनके आठवें चौघडियेंमें प्रथम दो घडियोंमें अर्थात् दो घडी दिन बाकी रहने पर भोजन करना. अन्तिम दो घडी दिन रहे भोजन करनेसे रात्रि-भोजनके महादोषका प्रसंग आता है. सूर्यास्तके अनंतर रात्रिमें देरसे भोजन करनेसे महान् दोष लगता है. उसका दृष्टान्त सहित स्वरूप श्रीरत्नशेखरस्वरि (प्रस्तुत ग्रन्थकारः) विरचित अर्थदीपिकामें देखो.

भोजन करनेके उपरांत पुनः सूर्योदय होवे, तब तक चौविहार अथवा दुविहार दिवसचरिम पचखान करना चाहिये.

यह पचखान मुख्यतः तो दिन रहते हुए ही करना चाहिये. परन्तु दूसरी प्रकारसे रात्रिमें करे तो भी चल सकता है.

शंका:—दिवसचरिम पचखान निष्फल है. कारण कि, उसका एकाशनआदि पचखानमें समावेश हो जाता है.

समाधान:—ऐसा नहीं, एकाशनआदि पचखानके आठ आगार हैं, और दिवसचरिमके चार आगार हैं. इसलिये आगार का संक्षेप यही दिवसचरिममें विशेष है जिससे वह सफल है, और वह दिन बाकी रहते करनेका है, तथा रात्रिभोजन पचखानका स्मरण करानेवाला है, इसलिये रात्रिभोजनपचखानवालेको भी वह फलदायी है. ऐसा आवश्यकलघुवृत्तिमें कहा है. यह पचखान सुखसाध्य तथा बहुत फलदायक है. इस पर एक दृष्टान्त कहते हैं कि—

दशार्णनगरमें एक श्राविका संध्यासमय भोजन करके प्रतिदिन दिवसचरिम प्रत्याख्यान पालती थी. उसका पति मिथ्यादृष्टि था. वह “ संध्याको जीमनेके बाद रात्रिको कोई कुछ खाता ही नहीं है. इसलिये यह (दिवसचरिम) बड़ा पचखान करती है. ” इस प्रकार उक्त श्राविकाकी नित्य हंसी किया करता था. एकसमय श्राविकाके बहुत मना करते हुए उसने भी हठसे दिवसचरिम प्रत्याख्यान किया. रात्रिमें सम्यग्-दृष्टि देवी परीक्षा करने तथा शिक्षा देनेके लिये उसकी बहिनका रूप कर उसे घेवर (मिठाई विशेष) आदि देने लगा. श्राविका

ने बहुत रोका, तो भी जीभकी लोलुपतासे वह भक्षण करने लगा. इतनेमें देवीने उसके मस्तक पर एक ऐसा प्रहार किया कि जिससे उसकी आंखें बाहर निकल कर भूमि पर गिर पड़ीं. “ मेरा अपयश होगा ” यह विचार श्राविकाने काउस्सग किया. तब उसके कहनेसे देवीने किसीके मारे हुए एक बकरेकी आंखें लाकर उस पुरुषको लगाई. जिससे उसका “ एडकाक्ष ” नाम पड़ा. इस भांति प्रत्यक्ष विश्वास हो जानेसे वह श्रावक हो गया व उसको देखकर बहुतसे लोग भी श्रावक हो गये. कौतुकवश बहुतसे लोग उसे देखनेको आने लगे, जिससे उस नगरका भी नाम “ एडकाक्ष ” पड गया ... इत्यादि.

पश्चात् संध्यासमय अर्थात् अंतिम दो घड़ी दिन रहे तब सूर्यविंबका आधा अस्त होनेके पहिले पुनः यथाविधि तीसरी बार जिनपूजा करना.

इति श्रीरत्नशेखरसूरिविरचित

श्राद्धविधिकौमुदीकी हिन्दीभाषाका दिनकृत्यप्रकाशनामक

प्रथमः प्रकाशः संपूर्णः ।



प्रकाश २, रात्रिकृत्य.

दिनकृत्यके अनन्तर श्रावक मुनिराजके पास अथवा औषध-शालाआदिमें जाकर यतनासे पूंज करके सामायिकआदि षडावश्यकरूप प्रतिक्रमण विधि सहित करे, उसमें स्थापनाचार्यकी स्थापना, सुहृपत्ति, चरवला आदि धर्मोपकरण ग्रहण करना तथा सामायिक करना इत्यादि, इसकी विधिका वर्णन मूल-ग्रंथकार रचित श्राद्धप्रतिक्रमणसूत्रवृत्तिमें किया है. श्रावकने सम्पत्त्वादिकके सर्वातिचारकी शुद्धिके निमित्त तथा भद्रकपुरुषने अभ्यासादिकके निमित्त प्रतिदिन दो बार अवश्य प्रतिक्रमण वैद्यके तीसरे रसायन-औषधके समान है, अतएव अतिचार न लगे हों तो भी श्रावकने यह अवश्य करना चाहिये. सिद्धान्तमें कहा है कि—प्रथम और अंतिम तीर्थकरोंके शासनमें प्रतिक्रमण प्रतिदिन करनेका आवश्यक है, और मध्यके बार्डिस तीर्थकरोंके शासनमें कारण होवे तो प्रतिक्रमण कहा है, 'कारण होय तो' याने मध्यमतीर्थकरके कालमें अतिचार लगा हो तो मध्यान्ह ही को भी प्रतिक्रमण करे, और न लगा हो तो सुबह शामभी न करे. औषधि तीन प्रकारकी कही है, यथा:—१ प्रथम औषधि व्याधि होवे तो मिटावे और न होवे तो नवीन उत्पन्न करे. २ दूसरी औषधि व्याधि होवे तो मिटावे, परन्तु न होवे तो नई पैदा न करे. ३ तीसरी औषधि रसायन अर्थात् पूर्व व्याधि

होवे तो उसे मिटावे और व्याधि न होवे तो सर्वांगको पुष्ट करे तथा सुख व बलकी वृद्धि करे; तथा भविष्यमें होनेवाली व्याधिको रोके. उपरोक्त तीनों प्रकारमें प्रतिक्रमण तीसरी रसायन-औषधिके समान है, जिससे वह अतिचार लगे हों तो उनकी शुद्धि करता है, और न लगे हों तो चारित्रधर्मकी पुष्टि करता है.

शंका—आवश्यकचूर्णमें कही हुई सामायिक विधि ही श्रावकका प्रतिक्रमण है, कारण कि, छः प्रकारका प्रतिक्रमण दो बार अवश्य करना यह सब इसमें आ जाता है । यथा:— प्रथम एक सामायिक कर, पश्चात् क्रमसे २ इरियावही, ३ कायोत्सर्ग, ४ चोवीसत्थो, ५ वंदन और ६ पञ्चक्खान करनेसे छः आवश्यक पूरे होते हैं । इसी प्रकार “ सामाद्य-मुभयसंज्ञं ” ऐसा वचन है, जिससे प्रातः व संध्याको करना ऐसा भी निश्चय होता है ।

समाधान—उपरोक्त शंका ठीक नहीं । कारण कि, सामायिकविधिमें छः आवश्यक और कालनियम सिद्ध नहीं होते । वे इस प्रकार—तुम्हारे (शंकाकारके) अभिप्रायके अनुसार भी चूर्णिकारने सामायिक, इरियावही और वंदन ये तीन ही प्रकट दिखाये हैं; शेष नहीं दिखाये । उसमें भी इरियावही प्रतिक्रमण कहा है, वह गमनागमन संबंधी है, परंतु आवश्यकके चौथे अध्ययनरूप नहीं । कारण कि, गमनागमन तथा

विहार करने पर, रात्रिमें निद्राके अंतमें तथा स्वप्न देखनेके बाद, इसी तरह नावमें बैठना पड़े तो तथा नदी उतरना पड़े तो इरियावही करना, ऐसा वचन है । दूसरे श्रावकको साधुकी भांति इरियावहीमें काउस्सग व चौवीसत्थो जैसे कहे हैं, उसी प्रकार साधुकी भांति प्रतिक्रमण भी क्यों नहीं कहा जाता? इसके अतिरिक्त श्रावकने साधुका योग न होवे तो चैत्य तत्संबंधी पाषधशालामे अथवा अपने घरमें सामायिक तथा आवश्यक (प्रतिक्रमण) करना । इस प्रकार आवश्यकचूर्णिमें भी सामायिकसे आवश्यक पृथक् कहा है । वैसे ही सामायिकका काल भी नियमित नहीं । कारण कि, “ जहां विश्रांति ले, अथवा निर्व्यापार बैठे, वहां सर्वत्र सामायिक करना ” व “ जब अवसर मिले तब सामायिक करना । ” इसमें कुछ भी बाधा नहीं होती, ऐसे चूर्णिके प्रमाणभूत वचन हैं ।

अब “सामाहअमुभयसंज्ञं” ऐसा जो वचन है, वह सामायिक प्रतिमाकी अपेक्षासे कहा है । कारण कि, वहीं सामायिकका नियमित काल सुननेमें आता है । अनुयोगद्वारसूत्रमें तो श्रावकको प्रतिक्रमण स्पष्ट कहा है, यथाः—साधु, साध्वी, श्रावक तथा श्राविका ये सब अपने चित्त, मन, लेश्या, सामान्य अध्यवसाय, तीव्र अध्यवसाय तथा इंद्रियां भी आवश्यक ही में तल्लीन कर तथा अर्थ पर भली भांति ध्यान रख कर आवश्यक ही की भावना करते प्रातःकाल तथा संध्याको आवश्यक करे ।

और भी उसी सूत्रमें कहा है कि, जिस हेतुसे साधु और श्रावकको रात्रि तथा दिवसके अंतभागमें आवश्यक करना पड़ता है अतः प्रतिक्रमणको आवश्यक कहते हैं। इसलिये साधुकी तरह श्रावकने भी श्रीसुधर्मास्वामीआदि आचार्यकी परंपरासे चलता आया हुआ प्रतिक्रमण मुख्यतः दोनों समय करना चाहिये। कारण कि, उससे दिनमें तथा रात्रिमें किये हुए पापोंकी शुद्धि होकर अपार फल प्राप्त होता है। कहा है कि, जीवप्रदेशमेंसे पातकोंको निकाल देनेवाला, कषायरूप भाव-शत्रुको जीतनेवाला, पुण्यको उत्पन्न करनेवाला और मुक्तिका कारण ऐसा प्रतिक्रमण नित्य दो बार करना चाहिये। प्रतिक्रमण ऊपर एक ऐसा दृष्टान्त सुना जाता है कि—

दिल्लीमें देवसीराइप्रतिक्रमणका अभिग्रह पालनेवाला एक श्रावक रहता था। राजव्यापारमें कुछ अपराधमें आजानेसे बादशाहने उसके सर्वांगमें बेडियां डालकर उसे बंदागृहमें डाला। उस दिन लंघन हुआ था, तो भी उसे संध्यासमय प्रतिक्रमण करनेके लिये पहरेदारोंको एक टंक सुवर्ण देना कबूल कर दो घड़ी हाथ लुड़ाये, और प्रतिक्रमण किया। इस प्रकार एक-मासमें उसने साठ टंक सुवर्ण प्रतिक्रमणके निमित्त दिये। नियम पालनमें उसकी ऐसी दृढ़ता जानकर बादशाह चकित होगया, और उसने उसे बंदागृहसे मुक्त कर सिरोपाव दिया तथा पूर्वकी भांति उसका विशेष सन्मान किया। इस तरह प्रतिक्रमण

करनेमें यतना और दृढता रखनी चाहिये ।

प्रतिक्रमणके १ देवसी, २ राइ, ३ पक्खी, ४ चौमासी और ५ संवत्सरी ऐसे पांच भेद हैं । इनका समय उत्सर्ग-मार्गसे इस प्रकार कहा है कि—गीतार्थपुरुष सूर्यबिंबका अर्ध-भाग अस्त होवे तब (दैवसिक प्रतिक्रमण) सूत्र कहते हैं । यह ग्रामा-णिक वचन है, इसलिये देवसीप्रतिक्रमणका समय सूर्यका अर्ध-अस्त है । राइप्रतिक्रमणका काल इस प्रकार है— आचार्य आवश्यक (प्रतिक्रमण) करनेका समय होता है, तब निद्रा त्यागते हैं, और आवश्यक इस रीतिसे करते हैं कि जिससे दश पडिलेहणा करते ही सूर्योदय हो जाय । अपवादमार्गसे तो देवसीप्रतिक्रमण दिनके तीसरे प्रहरसे अर्धरात्रितक किया जाता है, योगशास्त्रकी वृत्तिमें तो देवसीप्रतिक्रमण मध्याह्नसे लेकर अर्धरात्रितक किया जाता है ऐसा कहा है , इसीप्रकार राइप्रतिक्रमण मध्यरात्रिसे लेकर मध्याह्न तक किया जाता है, कहा है कि— “ राइप्रतिक्रमण आवश्यकचूर्णिके अभिप्राया-नुसार उगघाडपोरिसी तक किया जाता है, और व्यवहारसूत्रके अभिप्रायसे पुरिमड्ड (मध्याह्न) तक किया जाता है । ” पाक्षिक-प्रतिक्रमण पखवाडेके अंतमें, चातुर्मासिक चौमासेके अंतमें और सांवत्सरिक वर्षके अंतमें किया जाता है ।

शंका:— पक्खी (पाक्षिक) प्रतिक्रमण चतुर्दशीको किया जाता है कि अमावास्या अथवा पूर्णिमाको ?

उत्तर:-हम कहते हैं कि चतुर्दशीहीको किया जाय. जो अमावास्या अथवा पूर्णिमाको पक्खी प्रतिक्रमण किया जाय तो चतुर्दशी तथा पक्खीके दिन भी उपवास करनेका कहा है, इससे पक्खी आलोचना भी छट्ठसे होजाती है. और ऐसा करनेसे आगमवचनका विरोध आता है. आगममें कहा है कि-“अट्ठम-छट्ठचउत्थं, संवच्छरचाउमासपक्खेसु ” दूसरे आगममें जहां “ पाक्षिक ” शब्द ग्रहण किया है, वहां “ चतुर्दशी ” शब्द पृथक् नहीं लिया, और जहां “ चतुर्दशी ” शब्द ग्रहण किया है वहां “ पाक्षिक ” शब्द पृथक् नहीं लिया. यथा:-“अट्ठमि-चउदसीसु उपवासकरणं ” यह वचन पाक्षिकचूर्णिमें है. “सो अट्ठमिचउदसीसु उपवासं करेइ” यह वचन आवश्यकचूर्णिमें है. “चउत्थछट्ठमकरणे अट्ठमिपक्खचउमासवरिसेअ” यह वचन व्यवहारभाष्यकी पीठिकामें है. ‘अट्ठमिचउदसीनाणपंचमीचउ-मासं’ इत्यादि वचन महानिशीथमें हैं. व्यवहारसूत्रके छट्ठे उद्देशमें “ पक्खस्स अट्ठमी खलु, मासस्स य पक्खिअं सुणे-अब्बं ” इस वचनकी व्याख्या करते हुए वृत्तिकारने “पाक्षिक”-शब्दका अर्थ चतुर्दशीही किया है. जो पक्खी और चतुर्दशी

१ संवत्सरी पर अट्ठम, चौमासी पर छट्ठ और पक्खी पर उपवास करना, २ अष्टमीचतुर्दशीको उपवास करना, ३ सो अष्टमी चतुर्दशीको उपवास करे. ४ अट्ठम तथा पक्खी पर उपवास, चौमासी पर छट्ठ और संवत्सरी पर अट्ठम करना.

भिन्न होते तो आगममें दोनों शब्द पृथक् २ आते, परन्तु ऐसा नहीं है। इससे हम यह निर्णय करते हैं कि पक्षी चतुर्दशीहीके दिन होती है ।

पूर्वकालमें चौमासी पूनमको तथा संवत्सरी पंचमीको करते थे, परन्तु वर्तमानकालमें श्रीकालिकाचार्यकी आचरणासे चौमासी चतुर्दशीको और संवत्सरी चौथको की जाती है; यह बात सर्वसम्मत होनेसे प्रामाणिक है। श्रीकल्पभाष्यआदि-ग्रंथोंमें कहा है कि-किसी भी आचार्यने किसी भी समय मनमें शठता न रखते जो कुछ निरवद्य आचरण किया होवे और अन्य-आचार्योंने उसका जो प्रतिषेध न किया होवे, तो वह बहुमत आचारितही समझना चाहिये। (अनाचरित नहीं।) तीर्थोद्धार-आदि ग्रन्थोंमें भी कहा है कि-शालिवाहनराजाने संघके आदेशसे श्रीकालिकाचार्यद्वारा चतुर्दशीके दिन चौमासी और चौथके दिन संवत्सरी कराई। नौसौ तिरानबेके साल चतुर्विध श्रीसंघने चतुर्दशीके दिन चौमासी प्रतिक्रमण किया। वह आचरणा प्रमाणभूत है। इस विषयका सविस्तृत वर्णन देखना हो तो पूज्यश्रीकुलमंडनस्वरिविरचित 'विचारामृतसंग्रह' देखो।

प्रतिक्रमण करनेकी विधि योगशास्त्रकी वृत्तिमें कही हुई चिरंतनाचार्यकृत गाथाओं पर से निश्चित करना चाहिये यथा: -

पंचविहायारविषु-द्विहेउमिह साहु सावगो वावि ॥

पाडकिमण सह गुरुणा, गुरुविह कुणइ इक्कोऽवि ॥१॥

अर्थः--इस मनुष्यभवमें साधुने तथा श्रावकने भी पंच-विध आचारकी शुद्धि करनेवाला प्रतिक्रमण गुरुके साथ या गुरुका योग न हो तो अकेलेही करना चाहिये ॥१॥

वंदितु चेइयाइ, दाउं चउराइए खमासमणे ॥

भूनिहिअसिरो सयला-इआरमिच्छोकडं देइ ॥२॥

अर्थः--चैत्यको वन्दन कर, चार खमासमण दे भूमि पर मस्तक रख सर्व आतिचारका मिच्छादुकड देना ॥२॥

सामाइअपुव्वमिच्छा--भि ठाइउं काउसग्गमिच्चाइ ॥

सुत्तं भणिअ पलेविअ-भुअ कुप्परधरिअपहिरणओ ॥३॥

घोडगमाईदोसे--हिं विराहिअं तो करेइ उस्सग्गं ॥

नाहिअहो जाणुहुं, चउरंगुलठइअकडिपट्टो ॥ ४ ॥

अर्थः--सामायिक सूत्र कथन कर "इच्छामि ठामि काउस्सग्गं" इत्यादि सूत्र बोलना और पश्चात् भुजाएं लंबी कर तथा कोहनीसे चोलपट्ट धारण कर रजोहरण, या चरवला और मुहपत्ति हाथमें रखकर घोडगआदि दोष टालकर काउस्सग करे. उस समय पहिरा हुआ वस्त्र नाभिसे नीचे और घुटनोंसे चार अंगुल ऊंचा होना चाहिये. ॥ ३-४ ॥

तत्थ य धरेइ हिअए, जहक्कमं दिणकए अईआरे ॥

पारेत्तु णमोकारे--ण पढइ चउवीसथयइंदं ॥ ५ ॥

अर्थः--काउस्सग्ग करते वखत मनमें दिनभरके किये हुए आतिचारोंका चिंतवन करना. पश्चात् नवकारसे काउस्सग्ग पार-कर लोगस्स कहना. ॥५॥

संडासगे पमजिअ, उवविसिअ अलग्गविअयबाहुजुगो ॥

मुहणंतगं च कायं, च पेहए पंचवोसइहा ॥ ६ ॥

अर्थ:-संडासक पूज कर नीचे बैठ दोनों भुजाएं शरीरसे अलग लम्बी कर मुहपत्ति तथा कायाकी पचीस पचीस पाडिलेहणा करना. ॥६॥

उट्ठिअ ठिओ सविणयं, विहिणा गुरुणो करेइ किइकम्मं ॥

बत्तीसदोसरहिअं, पणवीसावस्सगविसुद्धं ॥ ७ ॥

अर्थ:-उठकर खड़े रहकर विधिपूर्वक गुरुको कृतिकर्म (वन्दना) करे. उसमें बत्तीस दोष टालना, और पच्चीस-आवश्यककी विशुद्धि रखना. ॥७॥

अइ संममवणयंगो, करजुअविहिधिरअपुत्तिरयहरणो ॥

परिचित्तिअ अइआरे, जइकमं गुरुपुरो विअडे ॥ ८ ॥

अर्थ:-पश्चात् सम्यक् रीतिसे शरीर नमाकर दोनों हाथमें यथाविधि मुहपत्ति और रजोहरण अथवा चरवला लेकर गुरुके सन्मुख स्पष्टतासे अतिचारोंका चिंतवन करना. ॥८॥

अइ उवविसिअ सुत्तं, सामाअअमाअं पढिय पयओ ।

अब्भुट्ठिअमिह इच्छा इ पढइ दुहउट्ठिओ विहिणा ॥ ९ ॥

अर्थ:- पश्चात् नीचे बैठकर सामायिक आदि सूत्र यतना-से कहे। तत्पश्चात् द्रव्य भावसे उठकर “अब्भुट्ठिअमिह” इत्यादि पाठ विधि पूर्वक कहे।

दाऊण वंदणं तो, पणगाइसु जइसु खामए तिणिग ।

किइकम्मं करिय आयरि-अमाइ गाहातिगं पटए ॥ १० ॥

अर्थ:— पश्चात् वन्दना करके पांचआदि साधु होवे तब तीन आदि साधुओंको खमावे और “आयरिअ” इत्यादि तीन गाथाओंका पाठ कहे ।

इअ सामाइअउस्स-ग्गसुत्तमुच्चरिअ काउसग्गठिओ ।

चित्तइ उज्जोअदुगं, चरित्तअइआरसुद्धिकए ॥ ११ ॥

अर्थ:— इस प्रकार सामायिकसूत्र तथा कायोत्सर्गसूत्रका पाठ कह, चरित्राचारशुद्धिके लिये काउस्सग्ग कर दो लोग-स्सका चिन्तवन करना ॥ ११ ॥

विहिणा पारिअ संम-त्तसुद्धिहेउं च पढइ उज्जोअं ।

इह सव्वलोअअरिहं-तचेइआराहणुस्सग्गं ॥ १२ ॥

काउं उज्जोअगरं, चित्तिअ पागेइ सुद्धसंमत्तो ।

पुक्खरवरदीवडुं, कड्डइ सुअसोहणनिमित्तं ॥ १३ ॥

अर्थ:— तदनंतर यथाविधि काउस्सग्गको पार कर सम्यक्त्वशुद्धिके हेतु प्रकट लोगस्स कहे, वैसे ही सर्वलोक-व्यापी अरिहंतचैत्योंकी आराधनाके लिये काउस्सग्ग कर उसमें एक लोगस्स चिंतवन करे और उससे शुद्धसम्यक्त्व-धारी होकर काउस्सग्ग पारे. तत्पश्चात् श्रुतशुद्धिके लिये पुक्खरवरदी कहे ॥ १२-१३ ॥

पुण पणवीसोस्सासं, उस्सगं कुणइ पारए विहिणा ॥

तो सयलकुसलकिरिआ—फलाण सिद्धाण पढइ थयं ॥ १४ ॥

अर्थः—पश्चात् पचीस उश्वासका काउसग्ग करना व यथाविधि पारना. तत्पश्चात् सकलशुभक्रियाओंका फल पाये हुए सिद्धपरमात्माका स्तव कहना ॥ १४ ॥

अह सुअसमिद्धिहेउं, सुअदेवीए करेइ उस्सगं ॥

चित्तेइ नमोकारं, सुणइ व देई व तीइ थुइं ॥ १५ ॥

अर्थः—पश्चात् श्रुतसमृद्धिके निमित्त श्रुतदेवीका काउ-स्सग्ग करे, और उसमें नवकार चितवन करे. तदनंतर श्रुत-देवीकी स्तुति सुने अथवा स्वयं कहे ॥ १५ ॥

एवं खेत्तसुरीए, उस्सगं कुणइ सुणइ देइ थुइं ॥

पढिऊण पंचमंगलमुवविसइ पमज्ज संडासे ॥ १६ ॥

अर्थः—इसीप्रकार क्षेत्रदेवीका काउस्सग्ग कर उसकी स्तुति सुने अथवा स्वयं कहे, पश्चात् पंचमंगल कह संडासा (संधि) प्रमार्जन करके नीचे बैठे ॥ १६ ॥

पुव्वविहिणेव पेहिअ, पुत्ति दाऊण वंदणं गुरुणो ॥

इच्छामो अणुसङ्घित्ति भणिअ जाणूहिं तो ठाई ॥ १८ ॥

अर्थः—पश्चात् पूर्वोक्त विधि ही से मुहपात्ति पडिलेहण कर गुरुको वंदना करे। तत्पश्चात् “ इच्छामो अणुसङ्घित्ति ” कह घुटनों पर बैठे ॥ १७ ॥

गुरुधुइ गहणे धु ति—णिण चद्धमाणक्खरस्सरा पढः ॥

सकत्थवं थवं पढि—अ कुणइ पच्छित्तउस्सग्गं ॥ १८ ॥

अर्थः— गुरु स्तुति कहे “नमोऽस्तु वद्धमानाय” इत्यादि तीन स्तुति उच्चस्वरसे कहना. पश्चात् नमोत्थुणं कह प्रायश्चित्त-के लिये काउस्सग्ग करना ॥ १८ ॥

एवं ता देविसिअं, राइअमवि एवमेव नवरि तहि ॥

पढमं दाउं मिच्छा—मि दुक्कडं पढइ सकत्थयं ॥ १९ ॥

अर्थः—इस प्रकार देवसीप्रतिक्रमणकी विधि कही. राइ-प्रतिक्रमणकी विधि भी इसीके अनुसार है, उसमें इतना ही विशेष है कि, प्रथम मिच्छामि दुक्कडं देकर पश्चात् शक्रस्तव कहना ॥ १९ ॥

उट्ठिअ करेइ विहिणा, उस्सग्गं चित्ते अ उज्जोअं ॥

बीअं दंसणसुद्धी --इ चित्ते तत्थ इणमेव ॥ २० ॥

अर्थः— उठकर यथाविधि काउस्सग्ग करे, और उसमें लोगस्स चित्तवन करे, तथा दर्शनशुद्धिके लिये दूमरा काउ-स्सग्ग कर उसमें भी लोगस्सका ही चित्तवन करे ॥ २० ॥

तइए निसाइआरं, जहक्कमं चित्तिऊण पारेइ ॥

सिद्धत्थयं पढित्ता, पढज्ज संडासमुवविसइ ॥ २१ ॥

अर्थः... तीसरे काउस्सग्गमें क्रमशः रात्रिमें हुए अतिचारों-का चित्तवन करे, व पश्चात् पारे. तदनंतर सिद्धस्तव कह संडासा प्रमार्जन करके बैठे ॥ २१ ॥

पुठवं व पुत्तिपेहण--वंदणमालोअ सुत्तपढणं च ॥

वंदण खामणवंदण--गाहातिगपढणमुस्सग्गो ॥ २२ ॥

अर्थः—पूर्वकी भांति मुहपत्तिकी पडिलेहणा, वंदना तथा आलोचना और प्रतिक्रमण सूत्रका पाठ करना तत्पश्चात् वंदना, खामणा, पुनः वंदना कर आयरिअ उवज्झाए इत्यादि तीन गाथाएं कह काउस्सग्ग करना ॥२२॥

एत्थ य चिंतइ संजम--जोगाण न होई जेण मे हाणी ॥

तं पडिवज्जामि तवं, छम्मासं ता न काउमलं ॥ २३ ॥

अर्थः—उस काउस्सग्गमें इस प्रकार चिंतवन करे कि, “ जिससे मेरे संयमयोगकी हानि न हो, उस तपस्याको मैं अंगीकार करूं. प्रथम छःमासी तप करनेकी तो मेरेमें शक्ति नहीं ॥ २३ ॥

एगाइ इगुणतीसूणयंपि न सहो न पंचमासमवि ॥

एवं चउ-ति-दु-मासं, न समत्थो एगमासंपि ॥ २४ ॥

अर्थः—छःमासीमें एक दिन कम, दो दिन कम ऐसा करते उन्तीस दिन कम करें तो भी उतनी तपस्या करनेकी मुझमें शक्ति नहीं, वैसे ही पंचमासी, चौमासी, त्रिमासी, द्विमासी तथा एक मासखमण भी करनेकी मेरेमें शक्ति नहीं ॥ २४ ॥

जा संपि तेरसूणं, चउतीसइमाइ णो दुहाणीए ॥

जा चउथं तो आयं-बिलाइ जा पोरिसी नमो वा ॥ २५ ॥

अर्थ:—मासस्वमणमें तेरह कम करे वहां तक तथा सोलह उपवास (चात्तीसभक्त) से लेकर एक एक उपवास (दो दो भक्त) कम करते ठेठ चौथभक्त (एक उपवास) तक तपस्या करनेकी भी मेरेमें शक्ति नहीं ऐसे ही आंबिल आदि, पोरिसी तथा नवकारसी तक चिंतवन करना ॥ २५ ॥

जं सक्कइ तं हिअए, धरेत्तु पारेत्तु पेहए पोत्ति ॥

दाउं वंदणमसढो, तं चिअ पच्चक्खए विहिणा ॥ २६ ॥

अर्थ:—उपरोक्त तपस्यामें जो तपस्या करनेकी शक्ति होवे वह हृदयमें निश्चित करना और काउस्सग्ग पार, मुंहपात्ति पडिलेहण कर लेना. पश्चात् सरलभावसे वंदना देकर जो तपस्या मनमें धारी होवे उसका यथाविधि पचस्नान लेना ॥ २६ ॥

इच्छामो अणुसद्धिंति भणिअ उवविसिअ पढइ तिणिण थुई ॥

मिउसहेण रुक्क-त्थयाइ ता चेइए वंदे ॥ २७ ॥

अर्थ:—पश्चात् “इच्छामो अणुसद्धिं” कह नीचे बैठ कर मृदुस्वरसे तीन स्तुतिका पाठ कहे. तत्पश्चात् “नमोत्थुणं” आदि कह चैत्यवंदन करे ॥ २७ ॥

अह पक्खिअं चउइसिदिणंमि पुव्वं व तत्थ देवसिअं ॥

सुत्तंतं पडिक्कमिउं, तो सम्ममिमं कंमं कुणइ ॥ २८ ॥

अर्थ:—अब चतुर्दशीके दिन करनेका पक्खीप्रतिक्रमण कहते हैं. उसमें प्रथम उपरोक्त कथनानुसार देवसीप्रतिक्रमण

सूत्रके पाठ तक विधि कह प्रतिक्रमण करना पश्चात् आगे कहा जाता है उसके अनुसार अनुक्रमसे भली भांति करना ॥ २८ ॥

मुहपोत्ती वंदणयं, संबुद्धाखामणं तथाऽऽलोए ॥

वंदण पत्तेअक्खा-मणं च वंदणयमह सुत्तं ॥ २९ ॥

अर्थः—प्रथम मुंहपत्तिका पडिलेहन कर लेना, तथा वंदन करना, पश्चात् संबुद्धाखामणा तथा अतिचारकी आलोचना कर बादमें वंदना तथा प्रत्येकखामणा करना, तदनंतर वंदन करके पाक्षिकसूत्र कहना ॥ २९ ॥

सुत्तं अम्भुट्ठाणं, उस्सग्गो पुत्ति वंदणं तहय ॥

पज्जंतिअखामणयं, तह चउरो छोभवंदणया ॥ ३० ॥

अर्थः—पश्चात् प्रतिक्रमणसूत्र कहकर काउस्सग्ग सूत्रका पाठ कह काउस्सग्ग करना. तत्पश्चात् मुंहपत्ति पडिलेहन कर वंदना करके पार्थतिक खामणा करे और चार थोभ-वंदना करे ॥ ३० ॥

पुव्वविहिणेव सव्वं, देवसिअं वंदणाइ तो कुणइ ॥

सिज्जसुरीउस्सग्गे, भेओ संतिथयपढणे अ ॥ ३१ ॥

अर्थः—पश्चात् पूर्वोक्तविधिके अनुसार देवसीप्रतिक्रमण वंदनादिक करना. उसमें सिज्जसुरीका काउस्सग्ग और अजित-शांतिस्तव पाठमें कहना इतना फेरफार है ॥ ३१ ॥

एवं चिअ चउमासे, वरिसे अ जहक्कमं विही णेओ ॥

पक्खचउमासवरिसे-सु नवरि नामंमि नाणत्तं ॥ ३२ ॥

अर्थः—इसी प्रकार चौमासी तथा संवत्सरीप्रतिक्रमणकी विधि जानो, उसमें इतना विशेष कि, पक्खीप्रतिक्रमण होवे तो “पक्खी” चौमासी होवे तो “चौमासी” और संवत्सरी होवे तो “संवत्सरी” ऐसे भिन्न २ नाम आते हैं ॥ ३२ ॥

तह उस्सग्गोज्जोअ, बारस बीसा समंगलं चत्ता ॥

संबुद्धखामणं तिप-णसत्तसाहूण जहसंखं ॥ ३३ ॥

अर्थः—उसी प्रकार पक्खीके काउस्सग्गमें बारह, चौमासीके काउस्सग्गमें बीस और संवत्सरीके काउस्सग्गमें चालीस लोग-स्सका क.उस्सग्ग नवकार सहित चिंतवन करना तथा संबुद्ध-खामणा पक्खी, और चौमासी और संवत्सरीमें क्रमशः तीन, पांच तथा सात साधुओंको अवश्य करना ॥३३॥

हरिभद्रस्वरिकृत आवश्यकवृत्तिमें वन्दनकनिर्युक्तिके अन्दर आई हुई “चत्तारि पाडिकमणे ” इस गाथाकी व्याख्याके अवसरमें संबुद्धखामणके विषयमें कहा है कि, देवसीप्रतिक्रमणमें जघन्य तीन, पक्खी तथा चौमासीमें पांच और संवत्सरीमें सात साधुओंको अवश्य खमाना. प्रवचनसारोद्धारकी वृत्तिमें आई हुई वृद्धसामाचारीमें भी ऐसाही कहा है.

प्रतिक्रमणके अनुक्रमका विचार पूज्य श्रीजयचन्द्रस्वरिकृत प्रतिक्रमणगर्भहेतु नामक ग्रन्थमेंसे जान लेना चाहिये.

उसी तरह आशातना टालनाआदि विधिसे मुनिराजकी अथवा गुणवान तथा अतिशय धर्मिष्ठ श्रावक आदिकी विश्रामणा

(सेवा) करे, विश्रामणा यह उपलक्षण है, इसलिये सुखसंयम-यात्राकी पृच्छाआदि भी करे, पूर्वभवमें पांचसौ साधुओंकी सेवा करनेसे चक्रवर्तीकी अपेक्षा अधिक बलवान हुए बाहुबलिआदि-के दृष्टान्तसे सेवाका फल विचारना. उत्सर्गमार्गसे देखते साधुओंने किसीसे भी सेवा न कराना चाहिये, कारण कि, “ संवाहणा दंतपहोअणा अ ” यह आगमवचनसे निषेध किया है. अपवादमार्गसे साधुओंको सेवा करानी होवे तो साधुहीसे कराना चाहिये. तथा कारणवश साधुके अभावमें योग्य श्रावकसे कराना चाहिये, यदि महान् मुनिराजसेवा नहीं कराते, तथापि मनके परिणाम शुद्ध रख सेवाके बदले उन मुनिराजको खमासमण देनेसे भी निर्जराका लाभ होता है, और विनय भी ऐसा करनेसे किया जाता है. तत्पश्चात् पूर्वमें पढ़े हुए ‘दिनकृत्य’आदि श्रावक-की विधि दिखानेवाले ग्रन्थोंकी अथवा उपदेशमाला, कर्मग्रंथ-आदि ग्रन्थोंका पुनरावर्त्तनरूप, शीलंगआदि रथकी गाथा गिनने-रूप अथवा नवकारकी बलयाकारआवृत्ति आदि स्वाध्याय अपनी बुद्धिके अनुसार मनकी एकाग्रताके निमित्त करना.

शीलंग रथ इस गाथाके अनुसार है:-

करणे ३ जोए ३ सत्ता ४, इंदिअ ५ भूमाइ १० सभणघम्मो अ १०॥

शीलंगसहस्साणं अट्टारसगरस निष्कत्ती ॥१॥

अर्थ:-करण, करावण, अनुमोदन ये तीन करण, इन तीनों-को मन, वचन, और कायाके तीन योगसे गुणा करते नौ हुए.

इन नौको आहार, भय, मैथुन और परिग्रह इन चार संज्ञाओंसे गुणा करते ३६ हुए. उनको चक्षु, स्पर्श, श्रोत्र, रस, और घ्राण इन पांच इन्द्रियोंसे गुणा करते १८० एकसौ अस्सी हुए. उनको पृथिवीकाय, अपकाय, तेउकाय वायुकाय, वनस्पतिकाय, वेइंद्रिय, तेइंद्रिय, चौरेंद्रिय, पंचेंद्रिय और अजीवकाय इन दस भेदके साथ गुणा करते १८०० अठ्ठारहसौ हुए. उनको १ क्षान्ति, २ मार्दव, ३ आर्जव, ४ मुक्ति (निर्लोभता), ५ तप, ६ संयम, ७ सत्य, ८ शौच, (पवित्रता), ९ अकिंचनता (परिग्रह-त्याग) और १० ब्रह्मचर्य (चतुर्थव्रत) इन दश प्रकारके साधु-धर्मसे गुणा करते १८००० अठ्ठारह हजार होते हैं. इस प्रकार शीलांग रथके १८००० अंगोंकी उत्पत्ति जानो. शीलांगरथका भावना पाठ इस प्रकार है:--

जे नो करंति मणसा, निज्जिअआहारसन्नसोईदी ॥

पुढविकायारंभे, खंतिजुआ ते मुणी वंदे ॥१॥ इत्यादि.

इसका विशेष स्वरूप यंत्र परसे जानना.

साधुधर्मरथका पाठ इस प्रकार है:--

१ आहारआदि संज्ञा और श्रोत्रआदि इन्द्रियोंको जीतनेवाले जो मुनि पृथ्वीकायआदिका आरम्भ मनसे भी नहीं करते, उन क्षान्तिआदि दशविध धर्मके पालनेवाले मुनियोंको मैं वन्दना करता हूं.

नै हणैद सयं साहू, मणसा आहारसन्नसंबुडओ ॥

सोइदिअसंवरणो, पुढबिजिए खंतिसंपन्नो ॥१॥ इत्यादि

सामाचारीरथ, क्षमणारथ, नियमरथ, आलोचनारथ, तपो-
रथ, संसाररथ, धर्मरथ, संयमरथ आदिके पाठ भी इसी प्रकार
जानो. विस्तारके कारण यहां नहीं कहे गये हैं.

नवकारकी बलकगणनामें तो पांच पद आश्रयी एक
पूर्वानुपूर्वी, एक पश्चानुपूर्वी और शेष एकसौ अट्ठारह (११८)
अनानुपूर्वियां आती हैं. नवपद आश्रित अनानुपूर्वी तो तीन
लाख बासठ हजार आठसौ अठहत्तर होती हैं. अनानुपूर्वी आदि
गिननेका विचार तथा उसका स्वरूप पूज्य श्रीजिनकीर्त्तिस्मरिभूत
'सटीकपरमेष्ठिस्तव'से जान लेना चाहिये. इस प्रकार नवकार-
गिननेसे दुष्टशाकिनी, व्यंतर, वैरी, ग्रह, महारोगआदिका
शीघ्रही नाश होजाता है. यह इसका इस लोकमें भी प्रत्यक्ष
फल है. परलोकाश्रयी फल तो अनन्त कर्म क्षय आदि है. कहा
है कि-जो पापकर्मकी निर्जरा मासकी अथवा एक वर्षकी तीव्र-
तपस्यासे होती है, वही पापकी निर्जरा नवकारकी अनानुपूर्वी-
गुणनेसे अर्धक्षणमें होजाती है. शीलांगरथआदिकी गणनासे
भी मन, वचन, कायाकी एकाग्रता होती है, और उससे त्रिविध

२ आहारआदि संज्ञाओंका श्रोत्रआदि इंद्रियोंका संवरण करने-
वाले, पृथ्वीकायआदि आरम्भको वर्जनेवाले तथा शान्तिआदि दश-
विध धर्मको पालनेवाले ऐसे साधु मनसे भी हिंसा न करें.

ध्यान होता है. सिद्धान्तमें भी कहा है कि-भंगिकश्रुतकी गणना करनेवाला मनुष्य त्रिविधध्यानमें प्रवृत्त होजाता है.

इस प्रकार स्वाध्याय करनेसे धर्मदासकी भांति अपने आपको कर्मक्षयादि तथा दूसरोंको प्रतिबोधादिक बहुत गुण प्राप्त होता है यथा:--

धर्मदास नित्य सन्ध्यासमय देवसीप्रतिक्रमण करके स्वाध्याय करता था. उसका पिता सुश्रावक होते हुए भी स्वभावहीसे बड़ा क्रोधी था. एकसमय धर्मदासने अपने पिताको क्रोधका त्याग करनेके हेतु उपदेश किया. जिससे वह (पिता) बहुत कुद्ध हो गया और हाथमें लकड़ी ले, दौड़ते रात्रिका समय होनेसे थम्भेसे टकराकर मर गया और दुष्टसर्पकी योनिमें गया. एक समय वह दुष्ट सर्प अन्धकारमें धर्मदासको ढसनेके लिये आ रहा था. इतनेमें स्वाध्याय करनेको बैठे हुए धर्मदासके मुखमें-से उसने निम्नोक्त गाथा सुनी:--

तिष्ठन्पि पुण्वकोडीकयंपि सुकथं मुहुत्तमित्तेण ॥

कोहरगहिओ हणिणं, हहा हवइ भवदुगेवि दुही ॥ १ ॥ इत्यादि.

इस स्वाध्यायके सुनते ही उस सर्पको जातिस्मरण ज्ञान उत्पन्न हुआ, जिससे वह अनशन कर सौधर्मदेवलोकमें देवता हुआ, और पुत्र (धर्मदास) को सर्वकार्योंमें सहायता देने लगा । एक समय स्वाध्यायमें लयलीन होते ही धर्मदासको

केवलज्ञान उत्पन्न हुआ इत्यादि । इसलिये स्वाध्याय अवश्य करना चाहिये ।

पश्चात् श्रावकने सामायिक पारकर अपने घर जाना, और अपनी स्त्री, पुत्र, मित्र, भाई, सेवक, बहीन, पुत्रवधू, पुत्री, पौत्र, पौत्री, काका, भर्ताजा, मुनीम, गुमास्ता तथा अन्य-स्वजनोंको भी उनकी योग्यतानुसार धर्मोपदेश देना । उपदेशमें सम्यक्त्वमूल बारह व्रत ग्रहण करना, सर्व धर्मकृत्योंमें अपनी संपूर्णशक्तिसे यतना आदि रखना, जहां जिनमंदिर तथा साधर्मि न हो ऐसे स्थानमें न रहकर कुसंगतिआदिको त्यागना, नवकारकी गणना करना, त्रिकाल चैत्यवंदन तथा जिनपूजा करना, पञ्चखान आदि अभिग्रह लेना, शक्तिके अनुसार धर्मके सातक्षेत्रोंमें धनका व्यय करना इत्यादि विषय कहना चाहिये, दिनकृत्योंमें कहा है कि— जो पुरुष अपने स्त्री, पुत्र आदिको सर्वज्ञप्रणीत धर्ममें नहीं लगाता है, तो वह (गृहस्थ) इस लोक तथा परलोकमें उनके (स्वजनोंके) किये हुए कुकर्मोंसे लिप्त होता है, कारण कि, लोकमें यही रीति है । जैसे चोरको अन्नपान आदि वस्तुसे सहायता देनेवाला मनुष्य भी चोरीके अपराधमें सम्मिलित किया जाता है, वैसा ही धर्मके विषयमें समझो । इसलिये तत्त्वज्ञाता श्रावकने प्रतिदिन स्त्री, पुत्र आदिको द्रव्यसे यथायोग्य वस्त्रादि देकर तथा भावसे धर्मोपदेश करके उनकी भली बुरी अवस्थाकी खबर लेना चाहिये । ‘‘पोष्य-

पोषकः " ऐसा वचन है, इसलिये श्रावकने स्त्रीपुत्रादिको वस्त्रादि दान अवश्य करना चाहिये । अन्यत्र भी कहा है कि—राष्ट्रका किया हुआ पाप राजाके सिरपर, राजाका किया हुआ पाप पुरोहितके सिरपर, स्त्रीका किया हुआ पाप पतिके सिरपर और शिष्यका किया हुआ पाप गुरुके सिरपर है । स्त्री, पुत्रादि-कुटुंबके लोगोंसे गृहकार्यमें लगे रहने तथा प्रमादिआदि होनेके कारण गुरुके पास जा धर्म नहीं सुना जाता, इसीलिये उपरोक्त कथनानुसार धर्मोपदेश करनेसे वे धर्ममें प्रवृत्त होते हैं । यहां धर्मश्रेष्ठीके कुटुंबका दृष्टांत लिखते हैं कि—

धन्यपुरनगरनिवासी धन्यश्रेष्ठी गुरुके उपदेशसे सुश्रावक हुआ । वह प्रतिदिवस अपनी स्त्री तथा चार पुत्रोंको धर्मोपदेश दिया करता था । अनुक्रमसे स्त्री और पुत्रोंको प्रतिबोध हुआ; परंतु चतुर्थ पुत्र नास्तिककी भांति "पुण्यपापका फल कहाँ है?" ऐसा कहता रहनेसे प्रतिबोधित नहीं हुआ । इससे धन्यश्रेष्ठिके मनमें बड़ा दुःख हुआ करता था । एक समय पड़ोसमें रहने-वाली एक वृद्ध सुश्राविकाको अंतिम समयपर उसने निर्याणा की (धर्म सुनाया) और ठहरावकर रखा कि, " देवता होनेपर तूने मेरे पुत्रको प्रतिबोध करना ।" वह वृद्धस्त्री मृत्युको प्राप्त होकर सौधर्मदेवलोकमें देवी हुई । उसने अपनी दिव्य-कृद्धि आदि बताकर धन्यश्रेष्ठिके पुत्रको प्रतिबोधित किया । इस प्रकार गृहस्वामीने अपने स्त्रीपुत्रआदिको प्रतिबोध करना

चाहिये । इतनेपर भी यदि वे प्रतिबोध न पावे तो फिर गृह-
स्वामीके सिरपर दोष नहीं । कहा है कि—

न भवति धर्मः श्रोतुः सर्वस्यैकान्ततो हितश्रवणात् ।

ब्रुवतोऽनुग्रहनुध्या वक्तुरुचेकान्ततो भवति ॥ १ ॥

सभी श्रोताजनोंको हितवचन सुननेसे धर्मप्राप्ति होती है,
ऐसा नियम नहीं, परंतु भव्यजीवोंपर अनुग्रह करनेकी इच्छासे
धर्मोपदेश करनेवालेको तो अवश्य ही धर्मप्राप्ति होती है ।

(मूल गाथा)

पायं अबंभविरओ,

समए अप्पं करेइ तो निहं ॥

निहोवरमे थीतणु—

असुइत्ताई विचिंतिज्जा ॥ १० ॥

संक्षेपार्थः—तत्पश्चात् सुश्रावक विशेष करके अब्रह्म
(स्त्रीसंभोग) से विरक्त रहकर अवसरमें अल्प निद्रा ले, और
निद्रा उडजावे तब मनमें स्त्रीके शरीरके अशुचिपने आदि का
चिन्तन करे ।

विस्तारार्थः—सुश्रावक स्वजनोंको धर्मोपदेश करनेके
अनंतर एक प्रहर रात्रि बीत जानेके बाद और मध्यरात्रि होनेके
पहिले अपनी शरीरप्रकृतिके अनुकूलसमयपर शय्यास्थानमें
जाकर शास्त्रोक्त विधि प्रमाणें अल्प निद्रा लेवे । निद्रा
लेनेको जाते समय श्रावकने कैसा रहना चाहिये ? वह

कहते हैं— अब्रह्म याने स्त्रीसंभोगसे विरक्त रहना ।
 तात्पर्यः— यावज्जीव ब्रह्मचर्य (चतुर्थ व्रत) पालनेमें
 असमर्थ हो ऐसे युवाश्रावकने भी पर्वतिथिआदि विशेष-
 दिनोंमें ब्रह्मचर्य ही से रहना चाहिये । कारण कि, ब्रह्मचर्यका
 फल बहुत ही भारी है । महाभारतमें भी कहा है कि— हे धर्म-
 राज ! एक रात्रि तक ब्रह्मचर्य पालन करनेवाले ब्रह्मचारीकी
 जो शुभगति होती है, वह शुभगति सहस्रों यज्ञ करनेमें भी
 होती है वा नहीं ? यह कहा नहीं जा सकता ।

उपस्थित गाथामें “निद्रं” विशेष्य है, और “अल्पं” यह
 उसका विशेषण है, तथा ऐसा न्याय है कि, “ कोई भी विधि
 अथवा निषेध का वाक्य विशेषणसहित कहा होवे तो वह विधि
 अथवा निषेध, अपना संबंध विशेषणके साथ रखता है । ”
 इससे “ निद्रा लेना हो तो अल्प लेना ” ऐसा यहां कहनेका
 उद्देश्य है, परंतु “ निद्रा लेना ” यह कहनेका उद्देश्य नहीं ।
 कारण कि, दर्शनावरणीयकर्मका उदय होनेसे निद्रा आती है ।
 इसलिये निद्रा लेनेकी विधि शास्त्र किसलिये करें ? जो वस्तु
 अन्य किसी प्रकारसे प्राप्त नहीं होती, उसकी विधि शास्त्र
 करता है, ऐसा नियम है । इस विषयका प्रथमही एक बार
 वर्णन किया जा चुका है । विशेष निद्रा लेनेवाला मनुष्य इस
 भवसे तथा परमवसे भी भ्रष्ट हो जाता है । चोर, बैरी, धूर्त,
 दुर्जन आदि लोग भी सहज ही में उसपर हमला करसक्ते हैं ।

अल्प निद्रा लेना यह महापुरुषका लक्षण है । आगममें कहा है कि—

अप्पाहारप्पभगिती अप्पनिदा य जे नरा ।

अप्पोवहिउवगरणा देवावि हु तं नमंसंति ॥ १ ॥

जो पुरुष अल्पाहारी, अल्पवचनी, अल्पनिद्रा लेनेवाला तथा उपधि और उपकरण भी अल्प करनेवाला होता है, उसको देवता भी प्रणाम करते हैं ।

नीतिशास्त्रादिकमें निद्रा विधि इस प्रकार कही गई है कि— खटमल (माकण) आदि जीवोंसे भरा हुआ, छोटा, टूटा हुआ, कष्टकारी, मैला, सडेहुए पायेवाला तथा अग्निकाष्ठ (अरणी) का बना हुआ पलंग अथवा चारपाई सोनेके काममें न लेना । सोने तथा बैठनेके काममें चार जोड़ तकका काष्ठ उत्तम है; पर पांच या अधिक जोड़का काष्ठमें सोनेवाले मनुष्य उसके कुलका नाश करता है । अपने पूजनीय पुरुषसे ऊंचे स्थानमें न सोना तथा पैर भीगे हुए रखकर, उत्तर अथवा पश्चिम दिशाको मस्तक करके, बांसके समान लंबा होकर पैर रखनेके स्थानमें मस्तक रखकर न सोना; बालिक हस्तिदंतकी भांति सोना । देवमंदिरमें, बल्मीक (बामला) पर वृक्षके नीचे स्मशानमें तथा उपदिशा (कोणदिशा) में मस्तक करके न सोना । कल्याणकी इच्छा करनेवाले पुरुषने सोते समय मल-मूत्रकी शंका हो तो उसका निवारण करना, मलमूत्र त्यागनेका

स्थान कहां है ? उसे बराबर जानना चाहिये, जल समीप है कि नहीं ? सो तलाश करना, तथा द्वार बराबर बंद करना, इष्टदेवको नमस्कार करके अपमृत्युका भय दूर करना, पवित्र होना, तत्पश्चात् यथारीति वस्त्र पहिर कर रक्षामंत्रसे पवित्र की हुई चौड़ी शय्यामें सर्व आहारका परित्याग करके बाई करवटसे सो रहना । क्रोधसे, भयसे, शोकसे, मद्यपानसे, स्त्री-संभोगसे, बोझा उठानेसे, वाहनमें बैठनेसे तथा मार्ग चलनेसे ग्लानि पाया हुआ, अतिसार, श्वास, हिचकी, शूल, क्षत (घाव) अजीर्ण आदि रोगसे पीडित, वृद्ध, बाल, दुर्बल, क्षीण और तृषातुर आदि पुरुषोंने कभी दिनमें भी सो रहना चाहिये । ग्रीष्मऋतुमें वायुका संचय, हवामें रूक्षता तथा छोटी रात्रि होती है, इस लिये उस ऋतुमें दिनमें निद्रा लेना हितकारी है । परंतु शेष पुरुषोंके शेष ऋतुमें दिनमें निद्रा लेनेसे कफ, पित्त होनेसे निद्रा लेनी योग्य नहीं होती है । अधिक आसक्तिसे तथा बिना अवसर निद्रा लेना अच्छा नहीं । कारण कि वह निद्रा कालरात्रिकी भांति सुख तथा आयुष्यका नाश करती है । सोते समय पूर्वदिशामें मस्तक करे तो विद्याका और दक्षिणदिशामें करे तो धनका लाभ होता है, पश्चिमदिशामें मस्तक करे तो चिंता उत्पन्न हो, तथा उत्तरदिशामें करे तो मृत्यु अथवा हानि होती है ।

आगममें कही हुई विधि इस प्रकार हैः—शयनके समय

चैत्यवन्दन आदि करके देव तथा गुरुको वन्दना करना । चौविहार आदि पञ्चखान ग्रंथिसहित उच्चारण करना, तथा पहिले ग्रहण किये हुए व्रतमें रखेहुए परिमाणका संक्षेप करनारूप देशवकाशिक व्रत ग्रहण करना । दिनकृत्यमें कहा है कि—

“ पाणिवह मुमादत्तं, मेहुणं दिणलाभणत्थदंढं च ।

अंगीकयं च मुत्तं, सव्वं उव्वभोगपरिभोगं ॥ १ ॥

गिहमज्झं मुत्तूणं, दिसिगमणं मुत्तु मसगजूआई ।

वयकाएहिं न करे, न कारवे गंठिसट्ठिएणं ॥ २ ॥

अर्थः—प्राणातिपात, मृषावाद, अदत्तादान, मैथुन और दिन लाभ (प्रातःकाल विद्यमान परिग्रह) ये सर्व पूर्व नियमित नहीं इनका नियम करता हूं। वह इस प्रकारः—एकेद्रियको तथा मशक, जू आदि त्रस जीवोंको छोड़कर शेषका आरंभ और सापराध त्रस जीव संबंधी तथा अन्य प्राणातिपात, सामान्य या स्वप्नादिके संभवसे मनको रोकना अशक्य है, इसलिये ग्रंथि न छोड़ूं वहां तक वचन तथा कायासे न करूं और न कराऊं। इसी प्रकार मृषावाद, अदत्तादान और मैथुनका भी नियम जानो। तथा दिनलाभ भी नियमित नहीं था, उसका अभी नियम करता हूं। उसी तरह अनर्थदंडका भी नियम करता हूं। शयन, आच्छादन आदि छोड़कर शेष सर्व भोगपरिभोगको, घरका मध्यभाग छोड़कर बाकी सर्व दिशि गमनको ग्रंथि न छोड़ूं वहांतक वचनसे तथा कायासे न करूं, न कराऊं ऐसा त्याग करता हूं।

इस रीतिसे देशवकाशिक ग्रहण करनेसे महान् फल प्राप्त होता है, और इससे मुनिराजकी भांति निःसंगपन उत्पन्न होता है । यह व्रत जैसे वैद्यके जीव वानरने प्राणांतकपाला, और उससे उसने दूसरे भवमें सर्वोत्कृष्ट फल पाया, वैसे ही विशेषफलके इच्छुक अन्यमनुष्यने भी मुख्यतः पालना चाहिये । परंतु वैसे पालनेकी शक्ति न होवे तो अनाभोगादि चार आगारोंमेंसे चौथे आगार द्वारा अग्नि सुलगना आदि कारणसे वह (देशवकाशिक) व्रत छोड़े तो भी व्रतभंग नहीं होता । वैद्यके जीव वानरका दृष्टांत श्रीरत्नशेखरसूरीजी (इन्होंने) विरचित आचार-प्रदीपग्रंथमें देखो ।

इसी प्रकार चार शरणाको अंगीकार करना । सर्व जीव-राशिको खमाना । अद्वारह पापस्थानकका त्याग करना । पापकी निंदा करना । पुण्यकी अनुमोदना करना । प्रथम नव-कारकी गणना कर,, जइ मे हुज्ज पमाओ, इमस्स देहस्सिमाइ
रयणीए ॥ आहारमुवहि देहं, सव्वं तिविहेण वोसिरिअं ॥ १ ॥

इस गाथासे तीनवार सागारी अनशन स्वीकार करना, और सोते समय नवकारका चिंतवन करना । एकांतशय्या ही में सोना, परंतु जहां स्त्रीआदिका संसर्ग हो वहां नहीं सोना । कारण कि, विषयसेवनका अभ्यास अनादिकालका है, और वेदका

१ जो इस रात्रिमें इस देहका प्रमाद हो तो यह देह, आहार और उपधि इन सर्वको त्रिविधले वोसिराता हूं । (१)

उदय सहन करना बहुत कठिन है, जिससे कदाचित् कामवासनासे जीव पीड़ित होवे । कहा है कि— जैसे लाखकी वस्तु अग्निके पास रखते ही पिघल जाती है, वैसे ही धीर और दुर्बल शरीरवाला पुरुष होवे तो भी वह स्त्रीके पास होवे तो पिघल जाता है (कामवश होता है) । पुरुष मनमें जो वासना रखकर सो जाता है, उसी वासनामें वह जागृत होनेतक रहता है ऐसा आत्म (सयाने) पुरुषोंका वचन है । अतएव मोहका सर्वथा उपशम करके वैराग्यादिभावनासे निद्रा लेना । वैसा करनेसे कुस्वप्न नहीं आते, बल्कि उत्तमोत्तम धार्मिक ही स्वप्न आते हैं । दूसरे सोते समय शुभ भावना रखनेसे, सोता हुआ मनुष्य पराधीन होनेसे, बहुत आपदा होनेसे, आयुष्य संपन्न होनेसे तथा कर्मकी गति विचित्र होनेसे कदाचित् मृत्युको प्राप्त हो जावे, तो भी शुभ ही गति होवे । कारण कि “ अंतमें जैसी मति, वैसी गति ” ऐसा शास्त्र वचन है । इस विषयमें कपटी साधुद्वारा मारेहुए पोसाती उदाई राजाका दृष्टांत जानो ।

अब उपस्थितगाथाके उत्तरार्द्धकी व्याख्या करते हैं— पश्चात् पिछली रात्रिको निद्रा उड़ जावे, तब अनादिकालके भवके अभ्यासका रससे उदय पानेवाले दुर्जय कामरागको जीतनेके निमित्त स्त्रीके शरीरका अशुचिपनआदि मनमें चिन्तन करना. “ अशुचिपन आदि ” यहां ‘ आदि ’ शब्द कहा है, अतएव जंबूस्वामी, स्थूलभद्रस्वामीआदि बड़े २ ऋषियोंने तथा

सुदर्शनआदि सुश्रावकोंने दुःसाध्य शील पालनेके लिये जो मनकी एकाग्रता करी वह, कषायआदिको जीतनेके लिये जो उपाय किये वे, संसारकी अतिशय विषमस्थिति और धर्मके मनोरथों इन वस्तुओंका चिन्तन करना. उसमें स्त्रीशरीरकी अपवित्रता, निन्द्यपन आदि सर्व प्रसिद्ध हैं। पूज्य श्रीमुनिचन्द्रसरिजीने अध्यात्मकल्पद्रुममें कहा है कि- अरे जीव ! चमडी (त्वचा), अस्थि (हड्डी), मज्जा, आंतरद्वियां, चरबी, रक्त मांस, विष्टा आदि अशुचि और अस्थिर पुद्गलसमूह स्त्रीके शरीरके आकारमें परिणत हुए हैं, उसमें तुझे क्या रमणीय लगता है ? अरे जीव ! विष्टाआदि अपवित्र वस्तु दूरस्थानमें भी जरासी पड़ी हुई देखे, तो तू थू थू करता है, और नाक सिकोडता है. ऐसा होते हुए रे मूर्ख ! उसी अशुचिवस्तुसे भरे हुए स्त्रीके शरीरकी तू कैसे अभिलाषा करता है ? मानो विष्टाकी थेली ही हो ऐसी, शरीरके छिद्रमेंसे निकलते हुए अत्यन्तमलसे मैली (मलीन), उत्पन्न हुए कृमिजालसे भरी हुई, तथा चपलतासे, कपटसे और असत्यतासे पुरुषको ठगनेवाली स्त्रीको उसकी बाहरी सफाईके मोहमें पड़ जो भोगता है, उसे उससे नरक प्राप्त होता है. काम-विकार तीनों लोकोंको विडम्बना करनेवाला है, तथापि मनमें विषय संकल्प न करे तो वह (कामविकार) सहजहीमें जीता जा सकता है. कहा है कि--

काम! जानामि ते मूलं, संकल्पात् किल जायसे ।

तमेव न करिष्यामि, प्रभविष्यसि मे कुतः ? ॥ १ ॥

हे कामदेव ! मैं तेरी जड़ जानता हूँ. तू विषयसंकल्पसे उत्पन्न होता है. इसलिये मैं विषयसंकल्पही न करूँ. जिससे तू मेरे चित्तमें उत्पन्नही न होगा. इस विषयमें स्वयं नईविवाहित आठ श्रेष्ठिकन्याओको प्रतिबोध करनेवाले और निन्यानवे करोड स्वर्णमुद्रा बराबर धनका त्याग करनेवाले श्रीजम्बूस्वामीका, कोशावेश्यामें आसक्त हो साढे बारह करोड स्वर्णमुद्राएं व्ययकर कामविलास करनेवाले तत्काल दीक्षा ले कोशाके महलहीमें चातुर्मान रहनेवाले श्रीस्थूलभद्र-स्वामीका तथा अभयारानीके किये हुए नानाविधि अनुकूल तथा प्रतिकूल उपसर्गसे मनमें लेशमात्र भी विकार न पानेवाले सुदर्शनश्रेष्ठीआदिका दृष्टान्त प्रसिद्ध है; इसलिये उनके सविस्तार कहनेकी आवश्यकता नहीं.

कषायआदि दोषों पर जय—उन दोषोंकी मनमें उलटी भावना आदि करनेसे होता है. जैसे क्रोध पर जय क्षमासे, मान पर निरभिमानपनसे, माया पर सरलतासे, लोभ पर सन्तोषसे, राग पर वैराग्यसे, द्वेष पर मित्रतासे, मोह पर विवेकसे, काम पर स्त्रीके शरीर ऊपर अशुचिभावना करनेसे, मत्सर पर दूसरोंकी बढी हुई संपदा देखनेमें आवे तो भी डाह न रखनेसे, विषय पर इंद्रियदमनसे, मन, वचन, कायाके अशुभ योग पर त्रिगुप्ति-

से, प्रमाद पर सावधान रहनेसे और अविरति पर विरतिसे मुख पूर्वक जय होती है. तक्षकनागके मस्तक पर स्थित मणि ग्रहण करना, अथवा अमृत पान करना, ऐसे उपदेशके समान यह बात होना अशक्य है; ऐसी भी मनमें कल्पना नहीं करना. साधु मुनिराज आदि उन दोषोंका त्याग करके सद्गुणी हुए प्रत्यक्ष दृष्टिमें आ रहे हैं. तथा दृढप्रहारी, चिलातीपुत्र, रोहिणेय-चोर आदि पुरुषोंके दृष्टान्त भी इस विषय पर प्रसिद्ध हैं. कहा है कि—हे लोगों ! जो जगत्में पूजनीय होगये, वे प्रथम अपने ही समान सामान्य मनुष्य थे; यह समझकर तुम दोषका त्याग करनेमें पूर्ण उत्साही होवो ऐसा कोई क्षेत्र नहीं कि, जिसमें सत्पुरुष उत्पन्न होते हैं ! और शरीर इंद्रियां आदि वस्तुएं जैसे मनुष्यको स्वभावतः होती हैं, उस प्रकार साधुत्व स्वाभाविक नहीं मिलता; परन्तु जो पुरुष गुणोंको धारण करता है, वही साधु कहलाता है, इसलिये गुणोंको उपार्जन करो.

अहो ! हे प्रियमित्र विवेक ! तू बहुत पुण्यसे मुझे मिला है. तू मुझे छोड़कर कहीं मत जा. मैं तेरी सहायतासे तुरन्तही जन्म तथा मरणका उच्छेद करता हूँ. कौन जाने ? पुनः तेरा व मेरा मिलाप हो कि न हो. ॥ प्रयत्न-उद्यम करनेसे गुणोंकी प्राप्ति होती है, और प्रयत्न करना अपनेही हाथमें है. ऐसा होते हुए “अमुक बड़ा गुणी है” यह बात कौन जीवित पुरुष सहन कर सकता है ? गुणहीसे सन्मानकी प्राप्ति होती है.

जाति ज्ञातिके आडम्बरसे कुछ नहीं होता. वनमें उत्पन्न हुआ पुष्प ग्रहण किया जाता है, और प्रत्यक्ष अपने शरीरसे उत्पन्न हुआ मल त्याग दिया जाता है. गुणहीसे जगत्में महिमा बढ़ती है. स्थूल शरीर अथवा पकी हुई बड़ी अवस्था (वय) से महिमा नहीं बढ़ती. देखो, केवडेके बड़े और जूने पत्ते अलग रह जाते हैं, पर भीतरके छोटे २ नये पत्तोंको सुगंधित होनेसे सब कोई स्वीकारते हैं. इसी प्रकार जिससे कषायदिककी उत्पत्ति होती हो; उस वस्तुका अथवा उस प्रदेशका त्याग करनेसे उन दोषोंका नाश होजाता है. कहा है कि--जिस वस्तुसे कषायरूप अग्निकी उत्पत्ति होती है, उस वस्तुको त्याग देना, और जिस वस्तुसे कषायका उपशम होता है उस वस्तुको अवश्य ग्रहण करना चाहिये. सुनते हैं कि, स्वभावहीसे क्रोधी चंडरुद्र आचार्य, क्रोधकी उत्पत्ति न होनेके हेतुसे शिष्योंसे अलग रहे थे.

संसारकी अतिशय विषमस्थिति— प्रायः चारों गतिमें अत्यन्त दुःख भोगा जाता है, उस परसे विचारना. जिसमें नारकी और तिर्यच इन दोनोंमें अतिदुःख है वह तो प्रसिद्धही है. कहा है कि--सातों नरकभूमिमें क्षेत्रवेदना और विना शस्त्र-एक दूसरेको उपजाई हुई वेदना भी है. पांच नरकभूमिमें शस्त्रजन्य वेदना है और तीनमें परमाधार्मिकदेवताकी करी हुई वेदना भी है. नरकमें अहर्निश पड़े हुए नारकीजीवोंको आंख बन्द हो इतने काल तक भी सुख नहीं, लगातार दुःखही दुःख है.

हे गौतम ! नारकी जीव नरकमें जो तीव्र दुःख पाते हैं, उसकी अपेक्षा अनन्तगुणा दुःख निगोदमें जानो । तिर्यंच भी चायुक, अंकुश, परोणीआदिकी मार सहते हैं इत्यादि । मनुष्य भवमें भी गर्भवास, जन्म, जरा, मरण, नानाविध पीडा, व्याधि, दरिद्रता आदि उपद्रव होनेसे दुःख ही हैं । कहा है कि— हे गौतम ! अग्निमें तपाकर लालचोल करीहुई सुइयां एक समान शरीरमें चुमानेसे जितनी वेदना होती है. उससे आठ-गुणी वेदना गर्भवासमें हैं । जब जीव गर्भमेंसे बाहिर निकलते ही योनिग्रन्थमें पीलाता है तब उसे उपरोक्त वेदनासे लक्षगुणी अथवा कोटाकोटीगुणी वेदना होती है । बंदीखानेमें कैद, बध, बंधन, रोग, धननाश, मरण, आपदा, संताप, अपयश, निंदा आदि दुःख मनुष्यभवमें हैं । कितनेही मनुष्य मनुष्यभव पाकर घोरचिंता, संताप, दारिद्र्य और रोगसे अत्यंत उद्वेग पाकर मर जाते हैं । देवभवमें भा च्यवन, पराभव, डाह आदि हैं ही । कहा है कि— डाह (अदेखाई), खेद, मद, अहंकार, क्रोध, माया, लोभ इत्यादि दोषसे देवता भी चिपटे हुए हैं; इससे उनको सुख कहाँसे होवे ? इत्यादि ।

धर्मके मनोरथोंकी भावना इस प्रकार करना चाहिये— श्रावकके घरमें ज्ञानदर्शनधारी दास होना अच्छा; परंतु मिथ्यात्वसे भ्रमित बुद्धिवाला चक्रवर्ती भी अन्य जगह होना ठीक नहीं । मैं स्वजनादिकका संग छोड़कर कब गीतार्थ और

(६५९)

संवेगी गुरुमहाराजके चरण-कमलोंके पास दीक्षा लूंगा ? मैं तपस्यासे दुर्बल-शरीर होकर कब भयसे अथवा घोर उपसर्गसे न डरता हुआ स्मशानआदिमें काउस्सर्ग कर उत्तमपुरुषोंकी करणी करूंगा ? इत्यादि ।

इति श्रीरत्नशेखरसुरिविरचित—

आद्धिविधिकौमुदीकी हिंदीभाषाका रात्रिप्रकाशनामक

द्वितीयः प्रकाशः संपूर्णः



प्रकाश ३-पर्वकृत्य.

(मूलगाथा)

पञ्चसु पोसहाई

बंभअणारंभतवविसेसाई ॥

आसोअचित्तअट्टा--

हिअपमुहेसुं विसेसेण ॥११॥

संक्षेपार्थ:- सुश्रावकने पर्वोंमें तथा विशेषकर आश्विनमहीने-
की तथा चैत्रमहीनेकी अट्टाई--(ओली)में पौषधआदि करना,
ब्रह्मचर्य पालना, आरम्भका त्याग करना, और विशेषतपस्या-
आदि करना. (११)

विस्तारार्थ:- 'पौष' (धर्मकी पुष्टि) को 'ध' अर्थात् धारण
करे वह पौषध कहलाता है. श्रावकने सिद्धान्तमें कहे हुए अष्टमी,
चतुर्दशीआदि पर्वोंमें पौषधआदि व्रत अवश्य करना. आगम-
में कहा है कि-जिनमतमें सर्व कालपर्वोंमें प्रशस्त योग है ही.
उसमें भी श्रावकने अष्टमी तथा चतुर्दशीके दिन अवश्यही पौषध
करना. ऊपर "पौषधआदि" कहा है, इसलिये आदिशब्दसे
शरीर आरोग्य न होनेसे अथवा ऐसेही किसी अन्य योग्य कारण-
से पौषध न किया जा सके, तो दो बार प्रतिक्रमण, बहुतसी
सामायिक, दिशाआदिका आतिशय संक्षेपवाला देशावकाशिक-
व्रतआदि अवश्य स्वीकारना. उसी प्रकार पर्वोंमें ब्रह्मचर्यका

पालन करना, आरम्भ त्यागना, उपवास आदि तपस्या शक्त्यानुसार पहिलेसे अधिक करना. गाथामें आदिशब्द है, उससे स्नात्र, चैत्यपरिपाटी, सर्वसाधुओंको वन्दना, सुपात्रदान-आदि करके, नित्य जितना देवगुरुपूजन, दानआदि किया जाता है, उसकी अपेक्षा पर्वके दिन विशेष करना. कहा है कि-- जो प्रतिदिन धर्मक्रिया सम्यक् प्रकारसे पालो, तो अपार लाभ है; परन्तु जो वैसा न किया जा सकता हो तो, पर्वके दिन तो अवश्यही पालो. विजयादशमी (दशहरा), दीपमालिका, अक्षय-तृतीया, आदि लौकिकपर्वोंमें जैसे मिष्टान्नभक्षणकी तथा वस्त्र-आभूषण पहिनेकी विशेष यतना रखी जाती है, वैसे धर्मके पर्व आने पर धर्ममें भी विशेष यतना रखना चाहिये.

अन्यदर्शनी लोग भी एकादशी, अमावस्या आदि पर्वोंमें बहुतसा आरम्भ त्यागते हैं, और उपवासादि करते हैं, तथा संक्रान्ति, ग्रहण आदि पर्वोंमें भी अपनी पूर्णशक्तिसे दानादिक देते हैं. इसलिये श्रावकने तो समस्तपर्वदिवसोंको अवश्य पालना चाहिये. पर्व दिन इस प्रकार हैं:--अष्टमी २, चतुर्दशी २, पूर्णिमा १, और अमावस्या १ ये छः पर्व प्रत्येकमासमें आते हैं, और प्रत्येक पक्षमें तीन (अष्टमी १, चतुर्दशी १, पूनम १ अथवा अमावस्या १) पर्व आते हैं. इसी प्रकार "गणधर श्री-गौतमस्वामीने बीज, पंचमी, अष्टमी, एकादशी और चतुर्दशी" ये पांच श्रुततिथियां (पर्वतिथियां) कही हैं. बीज दो प्रकार-

का धर्म आराधनेके लिये, पंचमी पांच ज्ञान आराधनेके लिये, अष्टमी आठों कर्मोंका क्षय करनेके लिये, एकादशी ग्यारह अंगकी सेवाके निमित्त तथा चतुर्दशी चौदहपूर्वोंकी आराधनाके लिये जानो. इन पांचों पर्वोंमें अमावस्या, पूर्णिमा सम्मिलित करनेसे प्रत्येक पक्षमें छः उत्कृष्ट पर्व होते हैं. सम्पूर्ण वर्षमें तो अष्टाह, चौमासी आदि बहुतसे पर्व हैं.

पर्वके दिन आरम्भका सर्वथा त्याग न हो सके तो भी अल्पसे भी अल्प आरम्भ करना. सचित्त आहार जीवहिसामय होनेसे, वह करनेमें बहुतही आरम्भ होता है, अतएव उपस्थित-गाथामें आरम्भ वर्जनेको कहा है, जिससे पर्वके दिन सचित्त-आहार अवश्य वर्जना, ऐसा समझना चाहिये. मछलियां (सचित्त) आहारकी अभिलाषासे सातवीं नरकभूमिको जाती हैं. इसलिये सचित्त आहार मनसे भी मांगना योग्य नहीं; ऐसा वचन है. इसलिये मुख्यतः तो श्रावकने, सदैव सचित्त आहार त्यागना चाहिये, परन्तु यदि वैसा न कर सके तो पर्वके दिन तो अवश्य ही त्यागना चाहिये. इसी प्रकार पर्वके दिन स्नान करना, बाल समारना, सिर गूंथना, वस्त्र आदि धोना अथवा रंगना, गाड़ी हलआदि जोतना, धान्यआदिके मूडे बांधना, चरखाआदि यंत्र चलाना, दलना, कूटना, पीसना, पान, फल, फूल आदि तोड़ना, सचित्त खडिया, हिरमर्ची आदि बांटना, धान्य आदि लीपना, माटी आदि खोदना, घरआदि बांधना इत्यादि संपूर्ण

आरम्भोंको यथाशक्ति त्याग करना चाहिये. आरम्भ बिना अपने कुटुम्बका निर्वाह न कर सके तो कुछ आरम्भ तो गृहस्थ-को करना पड़ता है, पर सचित्त आहारका त्याग करना अपने हाथमें होनेसे और सहज साध्य होनेसे उसे अवश्य करना चाहिये. विशेष रुग्णावस्थाआदि कारणसे सर्व सचित्तआहारका त्याग न किया जा सके, तो एक दो वस्तुका नाम ले खुली रखकर शेष सर्व सचित्तवस्तुओंका नियम करना.

इसी प्रकार आश्विन तथा चैत्रकी अट्ठाइ, तथा गाथामें प्रमुखशब्द है जिससे, चौमासेकी तथा संवत्सरीकी अट्ठाइ, तीन चातुर्मास (आषाढ, कार्तिक और फाल्गुन) और संवत्सरी आदि पर्वोंमें उपरोक्त विधिके अनुसार विशेष धर्मानुष्ठान करना. कहा है कि--सुश्रावकने संवत्सरीकी, चौमासीकी तथा अट्ठाइकी तिथियोंमें परमादरसे जिनराजकी पूजा, तपस्या तथा ब्रह्मचर्या-दिक गुणोंमें तत्पर रहना. सर्व अट्ठाइयोंमें चैत्र और आश्विनकी अट्ठाइयां शाश्वती हैं. कारण कि, उन दोनों अट्ठाइयोंमें वैमानिक-देवता भी नन्दीश्वरद्वीपआदि तीर्थोंमें तीर्थयात्रादि उत्सव करते हैं. कहा है कि--दो यात्राएं शाश्वती हैं. जिसमें एक चैत्र-मासमें और दूसरी आश्विनमासमें, अट्ठाइ महिमारूप होती हैं. ये दोनों यात्राएं शाश्वती हैं. उनको सम्पूर्ण देवता तथा विद्या-धर नन्दीश्वरद्वीपमें करते हैं. तथा मनुष्य अपने २ स्थानोंमें करते हैं. इसी प्रकार तीन चातुर्मास, संवत्सरी छः पर्व तिथियां

तथा तीर्थकरके जन्मादि कल्याणक इत्यादिमें जो यात्राएं करते हैं वे अशाश्वती हैं. जीवाभिगमसूत्रमें भी इस प्रकार कहा है कि—बहुतसे भवनपति, वाणमंतर, ज्योतिषी और वैमानिक देवता नंदीश्वरद्वीपमें तीन चातुर्मास तथा संवत्सरी पर अपार-महिमासे अट्ठाई महिमा करते हैं.

प्रभात समयमें पञ्चखान करनेके वक्त जो तिथि आवे वही ग्रहण करना. सूर्योदयका अनुसरण कर ही के लोकमें भी दिवस आदि सर्व व्यवहार चलता है. कहा है कि—

चाउम्मासिअ वरिसे, पक्खिअ पंचट्ठमीसु नायव्वा ॥

ताओ तिहीउ जासिं, उदेइ सूरु न अण्णाओ ॥ १ ॥

पूआ पच्चक्खणं पड्डिकमणं तहय नियमगहणं च ॥

जीए उदेइ सूरु, तीइ तिहीए उ कायव्वं ॥ २ ॥

उदयंमि जा तिही सा, पमाणभियरीइ कीरमाणिए ॥

आणाभंगऽणवत्था, मिच्छत्त विराहणं पावे ॥ ३ ॥

पाराशरस्मृति आदि ग्रंथमें भी कहा है कि— जो तिथि सूर्योदयके समय थोड़ी भी होय, वही तिथि संपूर्ण मानना चाहिये, परन्तु उदयके समय न होने पर वह पश्चात् बहुत काल तक हो तो भी संपूर्ण नहीं मानना। श्रीउमास्वाति-वाचकका वचन भी इस प्रकार सुनते हैं कि—पर्वतिथिका क्षय होवे तो उसकी पूर्वकी तिथि करना, तथा वृद्धि होवे तो दूसरी करना, और श्रीवीरभगवान्‌के ज्ञान तथा निर्वाणकल्याणक

लोकानुसरणसे करना. अरिहन्तके जन्मादि पांच कल्याणक भी पर्वतिथिरूप ही समझना चाहिये. दो तीन कल्याणक जिस दिन होंगे तो वह विशेष पर्वतिथि मानो. सुनते हैं कि— सर्व पर्वतिथियोंकी आराधना करनेको असमर्थ कृष्णमहाराजने श्रीनेमिनाथभगवानको पूछा कि, “ हे स्वामिन् ! सारे वर्षमें आराधन करने योग्य उत्कृष्ट पर्व कौनसा है ? ” भगवान्ने कहा— “ हे महाभाग ! जिनराजके पंचकल्याणकसे पवित्र हुई मार्गशीर्ष शुक्ला एकादशी (मौन-एकादशी) आराधना करनेके योग्य है । इस तिथिमें पांच भरत और पांच एरवत मिल कर दश क्षेत्रोंमें प्रत्येकमें पांच २ मिल कर सब पचास कल्याणक हुए. ” पश्चात् कृष्णने मौन, पौषध, उपवासआदि करके उस दिनकी आराधना करी. तत्पश्चात् “ यथा राजा तथा प्रजा ” के न्यायसे सर्वलोगोंमें “ यह एकादशी आराधनेके योग्य है ” यह प्रसिद्धी हुई. पर्व-तिथिके दिन व्रत, पञ्चखानआदि करनेसे महत् फल प्राप्त होता है. कारण कि, उससे शुभगतिकी आयुष्य संचित होती है. आगममें कहा है कि:--

प्रश्न:-- हे भगवन् ! बीजआदि तिथियोंमें किया हुआ धर्मानुष्ठान क्या फल देता है ?

उत्तर:-- हे गौतम ! बहुत फल है. कारण कि, प्रायः इन पर्व-तिथियोंमें परभवकी आयुष्य बंधती है. इसलिये इनमें

भांति भांतिकी तपस्या धर्मानुष्ठान करना, कि जिससे शुभ आयुष्य उपार्जन हो, प्रथम ही से आयुष्य बंधी हुई हो तो पीछेसे बहुतसा धर्मानुष्ठान करनेसे भी वह नहीं टलती, जैसे पूर्व-में राजाश्रेणिकने गर्भवती हरिणीको मारी, उसका गर्भ अलग कर अपने कंधेकी तरफ दृष्टि करते नरकगतिकी आयुष्य उपार्जन करी, पीछेसे उसे क्षायिकसम्यक्त्व हुआ, तो भी वह आयुष्य नहीं टली, अन्यदर्शनमें भी पर्वतिथिकी अभ्यंगस्नान (तैल लगाकर नहाना) मैथुनआदि करना मना किया है, विष्णु-पुराणमें कहा है कि -हे राजेन्द्र ! चतुर्दशी, अष्टमी, अमावस्या, पूर्णिमा और सूर्यकी संक्रान्ति इतने पर्व कहलाते हैं, जो पुरुष इन पर्वोंमें अभ्यंग करे, स्त्रीसंभोग करे, और मांस खावे तो वह मनुष्य मर कर “विष्मूत्रभोजन” नामक नरकको जाता है, मनुस्मृतिमें भी कहा है कि-ऋतुहीमें स्त्रीसंभोग करनेवाला और अमावस्या, अष्टमी, पूर्णिमा और चतुर्दशी इन तिथियोंमें संभोग न करनेवाला ब्राह्मण नित्य ब्रह्मचारी कहलाता है, इसलिये पर्व-के अवसर पर अपनी पूर्णशक्तिसे धर्माचरणके हेतु यत्न करना चाहिये, समय पर थोड़ासा भी पानभोजन करनेसे जैसे विशेष गुण होता है, वैसेही अवसर पर थोड़ाही धर्मानुष्ठान करनेसे भी बहुत फल प्राप्त होता है, वैद्यकशास्त्रमें कहा है कि-शरदऋतु-में जो कुछ जल पिया हो, पौषमासमें तथा माहमासमें जो कुछ भक्षण किया हो और ज्येष्ठ तथा आषाढमासमें जो कुछ निद्रा

ली हो उसी पर मनुष्य जीवित रहते हैं. वर्षा ऋतु (सारधण भाद्रवा) में लवण, शरदऋतु (आसोज-कार्तिक) में जल, हेमन्त (मार्गशीर्ष, पौष) ऋतुमें गायका दूध, शिशिर- (माह, फाल्गुण) ऋतुमें आमलेका रस, वसन्त (चैत्र, वैशाख)- ऋतुमें घी और ग्रीष्म (ज्येष्ठ, आषाढ) ऋतुमें गुड अमृतके समान है. पर्वकी महिमा ऐसी है कि, जिससे प्रायः अधर्मीको धर्म करनेकी, निर्दयको दया करनेकी, अविरतिलोगोंको विरति अंगीकार करनेकी, कृपणलोगोंको धन खर्च करनेकी, कुशील- पुरुषोंको शील पालनेकी और कभी २ तपस्या न करनेवालेको भी तपस्या करनेकी बुद्धि होजाती है यह बात वर्तमानमें सर्व- दर्शनोंमें पाई जाती है. कहा है कि- जिन पर्वोंके प्रभावसे निर्दय और अधर्मी पुरुषोंको भी धर्म करनेकी बुद्धि होती है, ऐसे संवत्सरी और चौमासीपर्वोंकी जिन्होंने यथाविधि आराधना की उनकी जय हो. इसलिये पर्वमें पौषध आदि धर्मानुष्ठान अवश्य करना. पौषधके चार प्रकार आदि विषयोंका वर्णन अर्थ- दीपिका (मूलग्रन्थकारविरचित) में किया गया है.

पौषध तीन प्रकारके हैंः--१ अहोरात्रिपौषध, २ दिवस- पौषध और ३ रात्रिपौषध.

अहोरात्रिपौषधकी विधि इस प्रकार हैः--श्रावकने जिस दिन पौषध लेना होवे, उस दिन सर्व गृहव्यापारका त्याग

करना, और पौषधके सर्व उपकरण ले पौषधशालाको अथवा साधुके पास जाना. पश्चात् अंगका पडिलेहण करके बडीनीति तथा लघुनीतिकी भूमि पडिलेहण करना. तत्पश्चात् गुरुके पास अथवा नवकार गिन करके स्थापनाचार्यकी स्थापना करके हरियावही प्रतिक्रमण करे. पश्चात् एक खमासमणसे वन्दना करके पौषधमुंहपत्तिका पडिलेहण करे. पुनः एक खमासमण दे खडा रहके कहे कि--“इच्छाकारेण संदिसह भगवन् ! पोसहं संदेसावेमि” पुनः एक बार खमासमण देकर कहे कि--“पोसहं ठावेमि” ऐसा कह नवकारकी गणनाकर पौषधका उच्चारण करे यथाः--

करेमि भंते ! पोसहं आहारपोसहं सव्वओ देसओ वा, सरीर-सक्कारपोसहं सव्वओ, बंभचेरपोसहं सव्वओ, अन्वावारपोसहं सव्वओ, चउव्विहे पोसहे ठामि, जाव अहोरत्तं पज्जुवासामि, दुविहं-तिविहेणं मणेणं वायाए काएणं न करेमि न कारवेमि, तस्स भंते! पडि-क्कमामि निंदामि गरिहामि अप्पाणं वोसिामि ।

पश्चात् मुंहपत्ति पडिलेहणकर दो खमासमण देकर सामा-यिक करे । पुनः दो खमासमण देकर जो चौमासा होवे तो काष्ठासनका और शेष आठ मास होवे तो आसनका “वेसणे संदिसा-वेमि और ठाएमि” यह कह आदेश मांगना । तत्पश्चात् दो खमास-मण देकर सज्झाय करे । पश्चात् प्रतिक्रमण कर दो खमासमण दे “ बहुवेलं संदिसावेमि ” यह कहे । तत्पश्चात् एक खमास-

मण दे “ पडिलेहणं करोमि ” यह कहे । तथा मुंहपत्ति, आसन और पाहिरनेके वस्त्रका पडिलेहन कर ले । श्राविका मुंहपत्ति, आसन, ओढनेका वस्त्र कांचली और घाघरेका पडिलेहण करे । पश्चात् एक खमासमण दे “ इच्छकारि भगवन् ! पडिलेहणा पडिलेहावो ” ऐसा कहे । तत्पश्चात् “ इच्छं ” कह कर स्थापनाचार्यका पडिलेहणकर स्थापनकर एक खमासमण देना । उपधि-मुंहपत्तिकी पडिलेहणाकर “उपधि संदिसावेमि और पडिलेहेमि” ऐसा कहे । पश्चात् वस्त्र, कम्बल आदिकी पडिलेहणाकर, पौषधशालाका प्रमार्जनकर कूडा कचरा उठाकर परठ दे । तत्पश्चात् इरियावही प्रतिक्रमणकर गमनागमनकी आलोचना करे व एक खमासमण देकर मंडलीमें बैठे और साधुकी भांति सज्झाय करे । पश्चात् पौणपोरिसी होवे, तब तक पढे, गुणे अथवा पुस्तक बांचे. पश्चात् एक खमासमण दे मुंहपत्ति पडिलेहणकर कालवेला (शुभ समय) होवे वहां तक पूर्वकी भांति सज्झाय करे, जो देववन्दन करना होवे तो “आवस्सइ” कहकर जिनमंदिरमें जा देववन्दन करे, जो आहार करना होवे तो पचखान पूर्ण होने पर एक खमासमण देकर, मुंहपत्ति पडिलेहण कर, पुनः एक खमासमण देकर कहे कि, “पारावह पोरिसी पुरिमड्डो वा चउहार कओ तिहार कओ वा आसि, निव्विएणं आयंचिलेणं एगासणेणं पाणाहारेणं वा जा काइ वेला तीए” इस प्रकार कह, देव वन्दना कर, सज्झाय कर, घर जा, जो घर सौहाथसे अधिक दूर होवे तो

इरियावही प्रतिक्रमणकर, आगमनकी आलोचना कर, सम्भव हो तदनुसार अतिथिसंविभाग व्रत पालन करे. पश्चात् स्थिर आसनसे बैठकर, हाथ, पैर तथा मुखका पडिलेहणकर एक नवकार गणनाकर राग द्वेष न रखते प्रासुकअन्न भक्षण करे. अथवा प्रथमहीसे कह रखे हुए स्वजनका लाया हुआ अन्न भक्षण करे, किन्तु भिक्षा न मांगे. पश्चात् पौषधशालाको जा कर इरियावही प्रतिक्रमण कर, देववन्दन कर, वन्दनादे. तिविहार अथवा चउविहारका पच्चखान करे. जो शरीर चिन्ता करना होवे तो, “आवस्सइ” कहकर साधुकी भांति उपयोग रखता हुआ जीव रहित शुद्धभूमिमें जा, विधिके अनुसार मलमूत्रका त्यागकर, शुद्धताकर पौषधशालाको आवे. पश्चात् इरियावही प्रतिक्रमण कर एक खमासमण देकर कहे कि, “इच्छाकारेण संदिसह भगवन् गमणागमणं आलोउं” पश्चात् “इच्छं” कहकर “आवस्सइ” करके वसतिसे पश्चिम तथा दक्षिणदिशाको जाकर दिशाओंको देखकर “अणुजाणह जस्सुग्गहो” ऐसा कहकर पश्चात् संडासग और स्थांडिल प्रमार्जन करके बडीनीति तथा लघुनीति वोसिराइ (त्याग की) तत्पश्चात् “निसिही” कहकर पौषधशालामें प्रवेश किया. और “आवंतजंतेहि जं खंडिअं जं विराहिअं तस्स मिच्छामि दुक्कडं” ऐसा कहे. पश्चात् पिछला प्रहर हो तब तक सज्जाय करे. तत्पश्चात् एक खमासमण देकर पडिलेहणका आदेश मांगे. दूसरा खमासमण देकर पौषधशाला-

का प्रमार्जन करनेका आदेश मांगे, पश्चात् श्रावकने मुंहपत्ति, आसन, पहिरनेके वस्त्रकी पडिलेहणा करना, और श्राविकाने मुंहपत्ति, आसन, घाघरा, कांचली और ओढे हुए वस्त्रकी पडिलेहणा करना. पश्चात् स्थापनाचार्यकी पडिलेहणा कर, पौषधशालाका प्रमार्जन कर, एक खमासमण दे उपाधि मुंहपत्तिका पडिलेहण कर एक खमासमण दे मंडलीमें घुटनों पर बैठकर सज्जाय करे. पश्चात् वांदणा देकर पञ्चखान करे. दो खमासमण देकर उपाधि पडिलेहणाका आदेश मांगे. पश्चात् वस्त्र, कम्बली आदिकी पडिलेहणा करे । जो उपवास किया होवे तो सर्व उपाधिके अन्तमें पहिरनेका वस्त्र पडिलेहे. श्राविका तो प्रभातकी भांति उपधिका पडिलेहण करे. सन्ध्याकी कालवेला होवे, तब शय्याके अन्दर तथा बाहिर बारह बारह बार मूत्र तथा स्थंडिलकी भूमिका पडिलेहण करले. पश्चात् देवसी प्रतिक्रमण करके योग होवे तो साधुकी सेवा कर एक खमासमण दे पोरिसी हो तब तक सज्जाय करे. पोरिसी पूर्ण होने पर एक खमासमण दे “इच्छाकारेण संदिसह भगवन् ! बहुपडिपुन्ना पोरिसी राइसंथारए ठामि” ऐसा कहे. पश्चात् देव वांदी, मलमूत्रकी शंका होवे तो तपासकर सर्व बाहर उपाधिका पडिलेहण कर ले. घुटनों पर संथारेका उत्तरपट डालकर जहां पैर रखना हो वहांकी भूमिका प्रमार्जन करके धीरे धीरे बिछावे पश्चात् “महाराज आदेश आपो” यह कहता हुआ संथारे पर बैठकर नवकारके अन्तरसे तीन बार

“करेमि भंते ! सामाइअं” कहे. पश्चात् ये चार गाथाएं कहे:-

“अणुजाणह परमगुरू गुणगणयणेहिं भूसिअसरीरा ! ॥

बहुपडिपुन्ना पोरिसि, राईसंथारए ठामि ॥१॥

अणुजाणह संथारं, बाहुवहाणेण वामपासेण ॥

कुक्कुडिपायपसारण अतरंतु पमजए भूमि ॥२॥

संकोइअ संडासं, उव्वट्टंते अ कायपडिलेहा ॥

दब्बाई उबओगं, ऊसासनिहंभणाऽऽलोए ॥३॥

जइ मे इज्ज पमाओ, इमस्स नेहस्सिमाइ रयणीए ॥

आहारमुवहि देहं, सव्वं तिविहेण वोसिरिअं ॥४॥”

तत्पश्चात् “चत्तारि मंगलं” इत्यादि भावनाका ध्यान करके नवकारका स्मरण करता हुआ चरवलाआदिसे शरीरको संथारे पर प्रमार्जन करके बाई करबटसे भुजा सिरहाने लेकर सोवे. जो शरीर चिंताको जाना पडे तो संथारा दूसरेको लगता हुआ रखकर “आवस्सई” कह कर प्रथम पडिलेहण कर कायचिन्ता करे. पश्चात् इरियावही कर गमनागमनकी आलोचना कर जघन्यसे भी तीन गाथाओंकी सज्झाय कर नवकारका स्मरण करता हुआ पूर्ववत् सो रहे. रात्रिके पिछले प्रहरमें जागृत होवे, तब इरियावही प्रतिक्रमण करके कुसुमिणदुसुमिणका काउस्सगग करे. पश्चात् चैत्यवन्दन करके आचार्यआदिको वन्दना कर प्रतिक्रमणका समय होवे तब तक सज्झाय करे. तत्पश्चात् प्रतिक्रमणसे लेकर पूर्ववत् मंडलीमें सज्झाय करने तक क्रिया करे.

जो पौषध पारनेकी इच्छा होवे तो एक खमासमण देकर “इच्छा-
कारेण संदिसह भगवन् ! मुहपत्तिअं पडिलेहेमि” ऐसा कहे. गुरु-
के “पडिलेहह” कहने पर मुंहपत्तिकी पडिलेहणा कर एक खमा-
समण देकर “इच्छाकारेण संदिसह भगवन् ! पोसहं पारूं ? ” कहे
पीछे जब गुरु कहे “पुणोवि कायव्वो” तब यथाशक्ति ऐसा कहकर
खमासमण देकर कहना कि--“ पोसहं पारिअं ” फिर गुरुके
“आयारो न मुत्तव्वो” यह आदेश कहने पर तहत्ति कहकर खडे
रह नवकारकी गणना कर घुटनों पर बैठ तथा भूमिको मस्तक
लगाकर ये गाथाएं कहना: -

“सागरचन्दो कामो, चंदवडिसो सुदंसणो धनो ॥

जेसिं पोसहपडिमा, अखंडिआ जीविअंतेऽवि ॥१॥

धन्ना सलाहणिज्जा, सुलसा आणंइ कामदेवा अ ॥

जास पसंसइ भयवं, ददव्वयत्तं महावीरो ॥२॥”

पश्चात् यह कहे कि “पौषध विधिसे लिया, विधिसे पारा,
विधिसे जो कुछ अविधि, खंडना तथा विराधना मन, वचन,
कायासे होगई हो तो तस्स मिच्छामि दुक्कडं.” सामायिककी
विधि भी इसी प्रकार जानो. उसमें इतनाही विशेष है कि,
‘सागरचन्दो’ के बदलेमें ये गाथाएं कहना:--

सामाइअवयजुत्तो, जाव मणे होइ निअमसंजुत्तो ॥

छिंदइ असुहं कम्मं, सामाइय जत्तिआ वारा ॥१॥

छउमत्थो मूढमणो, कित्तिअमित्तं च संभरइ जीवो ॥

जं च न सुमरामि अहं, भिच्छा मे दुक्कडं तस्स ॥२॥

सामाह्यपोसहसंठिअस्स जीवस्स जाइ जो कालो ॥

सो सफलो बोद्धवो, सेसो संसारफलहेऊ ॥३॥

पश्चात् सामायिक विधिसे लिया इत्यादि कहना. दिवस-पौषध भी इसी रीतिसे जानो. विशेष इतनाही है कि, पौषध-दंडकमें “जाव दिवसं पज्जुवासामि” ऐसा कहना. देवसीप्रति-क्रमण कर लेने पर दिवसपौषध पाला जा सकता है. रात्रि-पौषध भी इसी प्रकार है. उसमें इतनाही विशेष है कि, पौषध-दंडकमें “जाव सेसदिवसं रत्तिं पज्जुवासामि” ऐसा कहना. मध्यान्हके बाद दो घड़ी दिन रहे वहाँ तक रात्रिपौषध लिया जाता है. पौषधके पारणके दिन साधुका योग होवे तो अवश्य अतिथिसंविभाग व्रत करके पारणा करना ।

इस प्रकार पौषधआदि करके पर्वदिनकी आराधना करना चाहिये. इस विषय पर दृष्टान्त है किः--

धन्यपुरमें धनेश्वर नामक श्रेष्ठी, धनश्री नामक उसकी स्त्री और धनसार नामक उसका पुत्र, ऐसा एक कुटुम्ब रहता था. धनेश्वर श्रेष्ठी परम श्रावक था. वह कुटुम्ब सहित प्रत्येक-पक्षमें विशेष आरम्भका त्यागआदि नियमका पालन किया करता था, और “चतुर्दशी, अष्टमी, अमावस्या तथा पूर्णिमा इन तिथियोंमें परिपूर्णपौषधका करनेवाला था.”, जिस प्रकार भगवतीसूत्रमें तुंगिकानगरीके श्रावकके वर्णनके प्रसंगमें कहा

है तदनुसार प्रतिमास छः पर्व तिथियोंमें वह यथाविधि पौषध आदि करता था. एक समय वह अष्टमीका पौषध किये हुए होनेसे रात्रिको शून्यघरमें प्रतिमा अंगीकार करके रहा. तब सौधमेंद्वने उसकी धर्मकी दृढताकी बहुत प्रशंसा करी. जिसे सुन एक मिथ्यादृष्टि देवता उसकी परीक्षा करने आया. प्रथम उसने श्रेष्ठीके मित्रका रूप प्रकट कर “करोड स्वर्णमुद्राओंका निधि है. तुम आज्ञा करो तो वह मैं ले लेऊँ” इस प्रकार अनेक बार श्रेष्ठीको विनंती करी. पश्चात् उस देवताने, श्रेष्ठीकी स्त्रीका रूप प्रकट किया, और आलिंगनआदि करके उसकी बहुत कदर्थना की. तत्पश्चात् मध्यरात्रि होते हुए प्रभातकालका प्रकाश, सूर्योदय तथा सूर्यकिरणआदि प्रकट कर उस देवताने श्रेष्ठीके स्त्री, पुत्र आदिका रूप बना पौषधका पारणा करनेके लिये श्रेष्ठीको अनेक बार प्रार्थना करी. इसीतरह बहुतसे अनुकूल उपसर्ग किये, तो भी सज्ज्ञाय करनेके अनुसार मध्यरात्रि है, यह श्रेष्ठी जानता था, जिससे तिलमात्र भी भ्रममें नहीं पडा. यह देख देवताने पिशाचका रूप बनाया, और चमडी उखाडना, मारना, उछालना, शिला पर पछाडना, समुद्रमें फेंक देना इत्यादि प्राणांतिक प्रतिकूल उपसर्ग किये; तो भी श्रेष्ठी धर्मध्यानसे विचलित नहीं हुआ. कहा है कि-इस पृथिवीको यद्यपि दिग्गज, कच्छप, कुलपर्वत और शेषनागने पकड रखी है; तथापि यह चलती है, परन्तु शुद्ध अन्तःकरणवाले सत्पुरुषोंका अंगीकार

किया हुआ व्रत प्रलय होवे तो भी विचलित नहीं होता। तदनंतर देवताने प्रसन्न होकर धनेश्वर श्रेष्ठीको कहा— “मैं सन्तुष्ट हुआ हूं। इच्छित वर मांग।” तो भी श्रेष्ठीने धर्मध्यान नहीं छोड़ा। तथा अतिशय प्रसन्न होकर देवताने श्रेष्ठीके घरमें करोड़ों स्वर्णमुद्रा तथा रत्नोंकी वृष्टि करी। यह महिमा देखकर बहुतसे लोगोंने पर्व पालन करना शुरू किया। उनमें भी राजाका धोबी, तेली और एक कौटुम्बिक (कृषक नौकर) ये तीनों व्यक्ति, जो भी राजाकी प्रसन्नताके हेतु इन्हें विशेष ध्यान रखना पड़ता था। तो भी छःओं पर्वोंमें वे अपना अपना धंधा बन्द रखते थे। धर्मेश्वरश्रेष्ठी भी नये साधर्मि जान उनको पारणके दिन साथमें भोजन करा, पहिरावणी देकर, तथा इच्छित धन देकर उनका बहुत आदर सत्कार किया करता था। कहा है कि, जैसे मेरुपर्वतमें लगा हुआ तृण भी सुवर्ण होजाता है वैसेही सत्पुरुषोंका समागम कुशीलको भी सुशील कर देता है। एक दिन कौमुदीमहोत्सव होने वाला था, जिससे राज्यपुरुषोंने चतुर्दशीके दिन राजा व रानीके वस्त्र उसी दिन धोकर लानेके लिये उक्त श्रावकधोबीको दिये। धोबीने कहा— “मुझे तथा मेरे कुटुम्बको बाधा नियम होनेसे हम पर्वके दिन वस्त्र धोना आदि आरम्भ नहीं करते।” राजपुरुषोंने कहा कि— “राजके आगे तेरी बाधा क्या चीज है? राजाकी आज्ञा भंग होगी तो प्राणदंड दिया जावेगा।” पश्चात् धोबीके स्वजनोंने तथा अन्यलोगोंने भी

उसे बहुत समझाया. धनेश्वरश्रेष्ठोंने भी “ राजदंड होने-से धर्मकी हीलना आदि न हो” यह सोच ‘रायाभिओगेण’ ऐसा आगार है, इत्यादि युक्ति बताई, तो भी धोबीने ‘दृढताके बिना धर्म किस कामका ?’ यह कह कर अपने नियमकी दृढता नहीं छोड़ी, और ऐसे संकटसमयमें भी किसीका कहना न माना. अपने मनुष्योंके कहनेसे राजा भी रुष्ट हुआ और कहने लगा कि, ‘मेरी आज्ञाका भंग करेगा तो प्रातःकाल इसको तथा इसके कुटुम्बको शिक्षा करूंगा.’ इतनेमें कर्मयोगसे उसी रात्रिको राजाके पेटमें ऐसा शूल हुआ कि, जिससे सारे नगरमें हाहाकार मच गया. इस तरह तीन दिन व्यतीत होगये. धोबीने यथाविधि अपने नियमका पालन किया. पश्चात् प्रतिपदा- (पडवा) के दिन राजा तथा रानीके वस्त्र धोये. और बीजके दिन राजपुरुषोंके मांगते ही तुरंत दे दिये. इसी प्रकार किसी आवश्यकीय कारणसे बहुतसे तैलकी आवश्यकता होनेसे राजाने श्रावकतेलीको चतुर्दशीके दिन घाणी चलानेका हुक्म दिया. तेलीने अपने नियमकी दृढता बताई, जिससे राजा रुष्ट होगया. इतने ही में परचक्र आया. राजाको सेना लेकर शत्रुके सन्मुख जा संग्राममें उतरना पडा. और राजाकी जय हुई. परन्तु राजाके इस कार्यमें व्यग्र होजानेसे तेलकी आवश्यकता न हुई, और तेलीका नियम पूर्ण हुआ. एक समय राजाने अष्टमीके शुभमुहूर्तमें उस श्रावककौटुंबिक (कुनबी-कृषक) को हल चलानेकी आज्ञा दी.

तब उसने अपना नियम कह सुनाया, जिससे राजा क्रुद्ध होगया। परन्तु इतनेहीमें एक सरीखी धाराबंध वृष्टि होने लगी जिससे उसने सुखपूर्वक अपने नियमका पालन किया।

इस प्रकार पर्वका नियम अर्खंडित पालनेसे वे तीनों व्यक्ति क्रमशः मृत्युको प्राप्त होकर छठे लांतकदेवलोकमें चौदह सागरोपम आयुष्पवाले देवता हुए। धनेश्वरश्रेष्ठी समाधिसे मृत्यु पाकर चारहवें अच्युतदेवलोकको गया। उन चारों देवताओंकी बड़ी मित्रता होगई, श्रेष्ठीका जीव जो देवता हुआ था, उसके पास अन्य तीनों देवताओंने अपने च्यवनके अवसर पर स्वीकार कराया था कि- “तूने पूर्वभवकी भांति आगन्तुकभवमें भी हमको प्रतिबोध करना।” पश्चात् वे तीनों पृथक् पृथक् राजकुलोंमें अवतरे। अनुक्रमसे तरुणावस्थाको प्राप्त हो बड़े २ देशोंके अधिपति हो धीर, वीर, और हीर इन नामोंसे जगत्में प्रसिद्ध हुए। धीरराजाके नगरमें एक श्रेष्ठीको सदैव पर्वके दिन परिपूर्ण लाभ हुआ करता था। परन्तु कभी २ पर्वतिथिमें हानि भी बहुत होती थी। उसने एक समय ज्ञानीको यह बात पूछी। ज्ञानीने कहा- “तूने पूर्वभवमें दरिद्रावस्थामें स्वीकार किये हुए नियमोंको दृढतापूर्वक यथाशक्ति पर्वके दिन सम्यक्प्रकारसे पालन किये। परन्तु एक समय धर्मसामग्रीका योग होते भी तू धर्मानुष्ठान करनेमें आलस्यआदि दोषसे प्रमादी हुआ। उसीसे इसभवमें तुझे इस प्रकार लाभ हानि होती है। कहा

है कि— “धर्ममें प्रमाद करनेवाला मनुष्य जो कुछ अपना नुकसान करलेता है, वह चोरके लूटनेसे, अग्निके जलानेसे अथवा ज्वाभमें हार जानेसे भी नहीं होता ” ज्ञानीका यह वचन सुन वह श्रेष्ठी सकुटुम्ब नित्य धर्मकृत्योंमें सावधान होगया, और अपनी सर्वशक्तिसे सर्वपर्वोंकी आराधना करने लगा, व अत्यन्त ही अल्प आरंभ करके तथा बराबर व्यवहारशुद्धि रखकर व्यापारादि बीजप्रमुख पर्वके ही दिन करता था, अन्य समय नहीं. जिससे सर्वग्राहकोंको विश्वास होगया. सब उसीके साथ व्यवहार करने लगे. थोड़े ही समयमें वह करोड़ों स्वर्णमुद्राओंका अधिपति होगया. कौआ, कायस्थ और कूकडा (मुर्गा) ये तीनों अपने कुलका पोषण करते हैं, और वणिक्, श्वान, गज तथा ब्राह्मण ये चारों जने अपने कुलका नाश करते हैं, ऐसी कहावत है. तदनुसार दूसरे वणिक्लोगोंने डाह (अदेखाई) से राजाके पास चुगली खाई कि, ‘इसको करोड़ों स्वर्णमुद्राओंका निधान मिला है.’ जिससे राजाने श्रेष्ठीको धनकी बात पूछी. श्रेष्ठीने कहा— ‘मैंने स्थूलमृषावाद स्थूल-अदत्तादान आदिका गुरुके पास नियम लिया है.” पश्चात् अन्य-वणिकोंके कहनेसे राजाने ‘यह धर्मठग है’ ऐसा निर्धारित कर उसका सर्वधन जप्त करके उसे तथा उसके परिवारको अपने महलमें रखे श्रेष्ठीने मनमें विचार किया कि- ‘आज पंचमी

पर्व है, अतएव किसी भी प्रकारसे आज मुझे अवश्य लाभ होना चाहिये, प्रातःकाल राजाने आपका समस्त भंडार खाली हुए और श्रेष्ठीका घर स्वर्णमोहर तथा रत्नोपरत्नसे परिपूर्ण भरा हुआ देखकर बड़ा आश्चर्य और खेद हुआ. तब उसने श्रेष्ठीको खमा कर पूछा कि- 'हे श्रेष्ठन् ! यह धन तेरे घर किस प्रकार गया ?' श्रेष्ठीने उत्तर दिया- "हे स्वामिन् ! मैं कुछ भी नहीं जानता, परन्तु पर्वके दिन पुण्यकी महिमासे मुझे लाभ ही होता है." तब पर्वकी महिमा सुन कर, जातिस्मरणज्ञान पाये हुए राजाने भी यावज्जीव छःहों पर्व पालनेका नियम लिया. उसीसमय भंडारीने आकर राजाको बधाई दी कि- 'वर्षाकालकी जलवृष्टिसे जैसे सरोवर भरजाते हैं, वैसे अपने समस्त भंडार इसी समय धनसे परिपूर्ण होगये.' यह सुन राजाको बड़ा आश्चर्य व हर्ष हुआ. इतनेमें चंचल कुंडल आदि आभूषणोंसे देदीप्यमान एक देवता प्रकट होकर कहने लगा कि, 'हे राजन् ! तेरा पूर्वभवका मित्र जो श्रेष्ठपुत्र था और अभी जो देवताका भव भोग रहा है, उसे तू पहिचानता है ? मैंने ही पूर्वभवमें तुझको वचन दिया था उससे तुझे प्रतिबोध करनेके लिये तथा पर्वदिवसकी आराधना करनेवाले लोगोंमें शिरोमणि इस श्रेष्ठीको सहायता करनेके लिये यह कृत्य किया. इसलिये तू धर्मकृत्यमें प्रमाद न कर. अब मैं उक्त तेली व कौटुंबिकके जीव जोकि राजा हुए हैं, उनको प्रतिबोध करने जाता हूं.

यह कह कर देवता चला गया. पश्चात् उसने उन दोनों राजाओंको एक ही समय स्वप्नमें पूर्वभव बताया. जिससे उनको भी जातिस्मरण ज्ञान उत्पन्न हुआ. और वे भी श्रावकधर्मकी व विशेष कर पर्यदिवसोंकी सम्यक्क्रीतिसे आराधना करने लगे. पश्चात् उन तीनों राजाओंने देवताके कहनेसे अपने अपने देशमें अमारिकी प्रवृत्ति, सातों व्यसनोंकी निवृत्ति, जगह २ नये नये जिनमंदिर, पूजा, यात्रा, साधर्मिकवात्सल्य, पर्वके पहिले दिन पटहकी उद्घोषणा तथा सर्वपर्वोंमें सब लोगोंको धर्म-कृत्यमें लगाना आदि इस रीतिसे धर्मोन्नति करी कि, जिससे एकछत्र साम्राज्यके समान जैनधर्म प्रवृत्त होगया और उसके प्रभावसे तथा श्रेष्ठीके जीव देवताकी सहायतासे उन तीनों राजाओंके देशोंमें तीर्थंकरकी बिहारभूमिकी भांति अतिवृष्टि, अनावृष्टि, दुर्भिक्ष, स्वचक्र-परचक्र, व्याधि, महामारी तथा दारिद्र्य आदिके उपद्रव स्वप्नमें भी नहीं रहे. ऐसी दुःसाध्य वस्तु कौनसी है कि जो धर्मके प्रभावसे सुसाध्य न होसके ?

इसप्रकार सुखमय और धर्ममय राज्यलक्ष्मीको चिरकाल भोग कर उन तीनों राजाओंने साथमें दीक्षा लेकर महान् तपस्यासे शीघ्र ही केवलज्ञान उपार्जन किया. श्रेष्ठीका जीव देवता, उनकी महिमा स्थान २ में बहुतही बढ़ाने लगा. पश्चात् प्रायः अपना ही दृष्टान्त कह, उपदेश करके पृथ्वीमें सर्व पर्वरूप सम्यक्-धर्मका अतिशय विस्तार किया और बहुतसे भव्यजीवोंका

(६८२)

उद्धार करके स्वयं मोक्षको गये. श्रेष्ठीके जीव देवताने भी अच्युतदेवलोकसे च्यवन कर महाराजा होकर पुनः पर्वकी महिमा सुननेसे जातिस्मरण ज्ञान पाया, और वह भी दीक्षा लेकर मोक्षको गया इत्यादि. (११)

इति श्रीरत्नशेखरसूरिविरचित-

श्राद्धविधिकौमुदीकी हिन्दीभाषाका पर्वकृत्यप्रकाश नामक

तृतीयः प्रकाशः सम्पूर्णः



प्रकाश ४ चातुर्मासिककृत्य.

पङ्चउमासं समुचिअ—

नियमगहो पाउसे विसेसेण ॥

संक्षेपार्थः—श्रावकने प्रत्येक चातुर्मासमें तथा विशेषकर वर्षाकालके चातुर्मासमें उचित नियम ग्रहण करना चाहिये.

विस्तारार्थः—जिस श्रावकने परिग्रहपरिमाण व्रत लिया हो, उसने प्रत्येक चातुर्मासमें पूर्व लिये हुए नियममें संक्षेप करना. जिसने पूर्वमें परिग्रहपरिमाण आदि व्रत न लिया हो, उसने भी प्रत्येकचातुर्मासमें योग्य नियम (अभिग्रह) ग्रहण करना. वर्षाऋतुके चातुर्मासमें तो विशेष करके उचित नियम ग्रहण करनाही चाहिये. उसमें जो नियम जिस समय लेनेसे बहुत फल प्राप्त हो, तथा जो नियम न लेनेसे बहुत विराधना अथवा धर्मकी निन्दा आदि उत्पन्न हो, वे ही नियम उस समय उचित कहलाते हैं. जैसे वर्षाकालमें गाड़ीआदि चलानेकी बाधा लेना तथा बादल, वृष्टिआदि होनेसे, इल्लीआदि पडनेके कारण रायण (खिरनी), आमआदिका त्याग करना उचित नियम है. अथवा देश, पुर, ग्राम, जाति, कुल, वय, अवस्था इत्यादिककी अपेक्षासे उचित नियम जानो. वे नियम दो प्रकारके हैं. एक दुःखसे पाले जा सकें ऐसे तथा दूसरे सुखपूर्वक पाले जा सकें ऐसे, धनवन्त व्यापारी और अविरातलोगोंसे साचित्त रस तथा

शाकका त्याग और सामायिकग्रहण इत्यादि नियम दुःखसे पाले जाते हैं, परन्तु पूजा, दान आदि नियम उनसे सुख पूर्वक पाले जा सकते हैं। दरिद्री पुरुषोंकी बात इससे विरुद्ध है तथापि चित्तकी एकाग्रता होवे, तो चक्रवर्ती तथा शालिभद्रआदि लोगोंने जैसे दीक्षादिके कष्ट सहन किये, वैसेही सब नियम सब लोगोंसे सुख पूर्वक पालन हो सकते हैं, कहा है कि -जय तक धीर पुरुष दीक्षा नहीं लेते तभी तक मेरु पर्वत ऊंचा है, समुद्र दुस्तर है, और कार्यकी गति विषम है, ऐसा होने पर भी पाले न जा सकें ऐसे नियम लेनेकी शक्ति न होवे, तो भी सुख पूर्वक पाले जा सकें ऐसे नियम तो श्रावकने अवश्यही लेना चाहिये, जैसे वर्षाकालमें कृष्ण तथा कुमारपालआदिकी भांति सर्वदिशाओंमें जानेका त्याग करना उचित है, वैसा करनेकी शक्ति न होवे तो जिस समय जिन दिशाओंमें गये बिना भी निर्वाह हो सकता हो, उस समय उन दिशाओंमें जानेका त्याग करना, इसी प्रकार सर्व सचित्त वस्तुओंका त्याग न किया जा सके तो, जिस समय जिस वस्तुके बिना निर्वाह हो सकता हो, उस समय उस वस्तुका नियम लेना, जिस मनुष्यको जिस जगह, जिस समय, जो वस्तु मिलना सम्भव न हो, जैसे कि-दरिद्री पुरुषको हाथी आदि, मरुदेशमें नागरबेलके पानआदि, तथा आमआदि फलकी ऋतु न होने पर वे फल दुर्लभ हैं, इसलिये उस पुरुषने उस स्थानमें, उस समय उसी वस्तुका नियम ग्रहण करना, इस

प्रकार अविद्यमान वस्तुका नियम करनेसे भी विरतिआदि महान् फल होता है ।

सुनते हैं कि--राजगृही नगरीमें एक भिक्षुकने दीक्षा ली, यह देख लोग "इसने बहुतसा धन छोड़कर दीक्षा ली है !" इस प्रकार उसकी हंसी करने लगे. जिससे सुधर्मस्वामीगुरुमहाराजने विहार करनेकी बात करी. तब अभयकुमारने बाजारमें तीन करोड़ स्वर्णमुद्राओंका एक भारी ढेर लगाकर, सब लोगोंको बुलाया और कहा कि, "जो पुरुष कुणआदिका जल, अग्नि और स्त्रीका स्पर्श, ये तीनों यावज्जीव छोड़ दे, वह यह धन ले सकता है." लोगोंने विचार करके कहा कि- "तीन करोड़ धन छोड़ा जा सकता है, परन्तु उक्त जलआदि तीन वस्तुएं नहीं छोड़ी जा सकतीं." पश्चात् मन्त्रीने कहा कि, "अरे मूर्खों ! तो तुम इन द्रमकमुनिकी हंसी क्यों करते हो ? इन्होंने तो जलादि तीन वस्तुओंका त्याग करनेसे तीन करोड़से भी अधिक त्याग किया है." इससे प्रतिबोध पाकर लोगोंने द्रमकमुनिको खमाये. यह अप्राप्तवस्तुको त्यागकरनेका दृष्टान्त है ।

इसलिये अप्राप्यवस्तुका भी नियम ग्रहण करना चाहिये. क्योंकि ऐसा न करनेसे उन वस्तुओंको ग्रहण करनेमें पशुकी भांति अविगतिपन रहता है, और वह नियम ग्रहण करनेसे दूर होता है। भर्तृहरिनें कहा है कि--मैंने क्षमा धारण नहीं की; घरके उचितसुखका (विषयसुखका) संतोषसे त्याग नहीं किया,

असह्य शीत, उष्णता और पवनकी पीडा सही, परंतु तपस्या नहीं करी; अहर्निशि मनमें धनका चिन्तवन किया, परंतु प्राणायाम (ध्यान) करके मुक्तिपदका चिंतवन नहीं किया, सारांश यह कि, हमने ऐसा किया जैसा कि मुनि परंहम उस फलसे न मिले। दिनरातमें दिनको एक बार भोजन करे, तो भी पचखान किये बिना एकाशनका फल नहीं मिलता। लोकमें भी ऐसी ही रांति है कि, कोई मनुष्य किसीका बहुतसा द्रव्य बहुत काल तक वापरे, तो भी कहे बिना उक्त द्रव्यका स्वल्प भी व्याज नहीं मिलता। अप्राप्यवस्तुका नियम ग्रहण किया होवे तो, कदाचित् किसी प्रकार उस वस्तुका योग आजाय तो भी नियम लेनेवाला मनुष्य उसे नहीं ले सक्ता, और नियम नहीं लिया होवे तो ले सक्ता है। इस प्रकार अप्राप्यवस्तुका नियम ग्रहण करनेमें भी प्रत्यक्ष फल दीखता है। जैसे पल्ली-पति बंकचूलको गुरुमहाराजने यह नियम दिया था कि “अजाने फल भक्षण न करना ” जिससे अत्यंत क्षुधातुर होनेपर भी तथा लोगोंने बहुत आग्रह किया तो भी वनमें लगे हुए किंपाक-फल अजाने होनेसे उसने भक्षण नहीं किये। उसके साथियोंने खाये, और वे मरगये।

प्रत्येक चातुर्मासमें नियम लेने का कडा, उसमें चातुर्मास यह उपलक्षण जानो। उससे पक्ष (पखवाडे) के अथवा एक, दो तीन मासके तथा एक दौ या अधिक वर्षके भी नियम

शक्तिके अनुसार ग्रहण करना चाहिये । जो नियम जहां तक व जिस रीतिसे अपने पाला जा सके, वह नियम वहीं तक व उसी रीतिसे लेना । नियम इस प्रकार ग्रहण करना कि, जिससे क्षणमात्र भी नियम बिना न रह सके । कारण कि, विरति करनेमें बड़ाही फलका लाभ है, और अविरतिपनेमें बहुत ही कर्मबंधनादिक दोष हैं । यह बात पहिले ही कही जा चुकी है । पूर्वमें जो नित्य नियम कहे गये हैं, वे ही नियम वर्षाकालके चातुर्मासमें विशेष करके लेना चाहिये । जिसमें दिनमें दो बार अथवा तीन बार पूजा (अष्टप्रकारीआदि पूजा), संपूर्ण देववंदन, जिनमंदिरमें सर्व जिनबिंबोंकी पूजा अथवा वंदना, स्नात्रमहोत्सव, महापूजा, प्रभावनाआदिका अभिग्रह लेना । तथा गुरुको बड़ी वंदना करना, प्रत्येक साधुको वंदना करना, चौबीस लोगस्सका काउस्सगानये ज्ञानका पाठ करना, गुरुकी सेवा, ब्रह्मचर्य, अचित्त पानी पीना, सचित्तवस्तुका त्याग इत्यादि अभिग्रह लेना । तथा बासी, बिदल, पूरी, पापड, बड़ी, सूखा शाक, चवलाई आदि पत्तेकी भाजी, खारिक, खजूर, द्राक्ष, शकर, सोंठ आदि वस्तुका वर्षाकालके चातुर्मासमें त्याग करना । कारण कि, इन वस्तुओंमें नीलफूल, कुंथुए, इली आदि संसक्त जीव उत्पन्न होनेका संभव रहता है । औषधआदिके कार्यमें उपरोक्त कोई वस्तु लेना होवे तो अच्छी प्रकार देखकर बहुत ही यतनासे लेना । उसी प्रकार वर्षाकालके चातुर्मासमें चारपाई, नहाना,

सिरमें फूल आदि गुंधाना, हरा दातौन, जूते आदि वस्तुका यथाशक्ति त्याग करना । भूमि खोदना, वस्त्रआदि रंगना, गाड़ीआदि हांकना, ग्राम परग्राम जाना इत्यादिककी भी बाधा लेना । घर, बाजार, भीति, थंभा, पाट, कपाट, पाटिया, पाटी, छाँका, (शीका) घीके तेलके तथा जलआदिके दूसरे बरतन, ईंधन, धान्य, आदि सर्व वस्तुओंकी नीलफूल आदि जीवकी संसक्ति न होवे, तदर्थ जिसको जैसा योग्य हो तदनुसार किसीको चूना लगाना, किसीमें राख मिलाना तथा मेल निकाल डालना, धूपमें डालना, शरदी अथवा भेज न हो ऐसे स्थानमें रखना इत्यादि यतना करना । जलकी भी दो तीन बार छाननेआदिसे यतना रखना । चिकनी वस्तु गुड, छाँछ, जलआदिको अच्छी तरह ढाँकनेआदिकी भी यतना रखना । ओसामण तथा स्नानका जल आदि नीलफूल लगी हुई न हो ऐसी धूलवाली शुद्धभूमिमें थोड़ा और फैलता हुआ डालना । चूल्हे व दीवेको खुला (उधाडा) न छोड़नेकी यतना रखना । कूटना, दलना, रांधना वस्त्रआदि धोना इत्यादिकाममें भी सम्यक्प्रकारसे देख भाल कर यतना रखना । जिनमंदिर तथा पौषधशाला-आदिकी भी यथोचित रीतिसे समारनाआदिसे यतना रखना । वैसे ही उपधान, मासादिप्रतिमा, कषायजय, इंद्रियजय, योग-विशुद्धि, बीसस्थानक, अमृतआठम, एकादश अंग, चौदह पूर्व आदि तपस्या तथा नमस्कारफलतप, चतुर्विंशतिकातप,

अक्षयनिधितप, दमयंतीतप, भद्रश्रेणीतप, महाभद्रश्रेणीतप, संसारतारणतप, अट्टाइ, पक्षश्रमण, मासश्रमणआदि विशेष तपस्याएं भी यथाशक्ति करना । रात्रिको चौविहार तथा त्रिविहारका पंचखान करना । पर्वमें विगयका त्याग तथा पौषध, उपवासआदि करना । प्रतिदिन अथवा पारणेके दिन अतिथि-संविभागका नियम अवश्य लेना । इत्यादि—

पूर्वाचार्योंने चातुर्मासके जो अभिग्रह कहे हैं, वे इस प्रकार हैं:—ज्ञानाचार, दर्शनाचार, चारित्राचार, तपाचार और वीर्या-चार आश्रयी द्रव्यादिभेदसे अनेकप्रकारके चातुर्मासिक अभिग्रह होते हैं. यथा:—

तत्र ज्ञानाचारमें मूलसूत्र पठनरूप सञ्ज्ञाय करना, व्याख्यान सुनना, सुने हुए धर्मका चिन्तन करना और यथा शक्ति शुक्लपक्षकी पंचमीके दिन ज्ञानपूजा करना (१) दर्शनाचारमें जिनमंदिरमें झाडना, लीपना, गुहलि (स्वस्ति) मांडना आदि, जिनपूजा, चैत्यवन्दन और जिनचिबको उबटन करके निर्मल करना आदि कार्य करना. (२) चारित्राचारमें जोक छुडाना नहीं, जूं तथा शरीरमें रहे हुए गिंडोले नहीं डालना, कीडेवाली बनस्पतिको खार न देना, काष्ठमें अग्निमें तथा धान्यमें त्रसजीवकी रक्षा करना. किसीको कष्ट न देना, आक्रोश न करना, कठोर वचन न बोलना, देवगुरुके सौगंद न खाना, चुगली न करना, दूसरेका अपवाद नहीं करना, माता-

पिताकी दृष्टि चुकाकर काम न करना, निधानका, आदान और पड़ी हुई वस्तुमें यतना रखना, दिनमें ब्रह्मचर्यका पालन करना, रात्रिमें पुरुषने परस्त्रीकी तथा स्त्रीने परपुरुषकी सेवा नहीं करना. धन धान्यआदि नवविधपरिग्रहका जितना प्रमाण रखा होवे उसमें भी संक्षेप करना. दिशापरिमाणव्रतमें भी किसीको भोजना, संदेशा कहलाना, अधोभूमिको जाना इत्यादि वर्जित करना. स्नान, उबटन, धूप, विलेपन, आभूषण, फूल, तांबूल, कपूर, अगर, केशर, कस्तूरीका नाफा और कस्तूरी इन वस्तुओंका परिमाण रखना. मजीठ, लाख, कुसुंबा और नीलसे रंगे हुए वस्त्रका परिमाण करना, तथा रत्न, हीरा, मणि, सुवर्ण, चांदी, मोतीआदिका परिमाण करना. खजूर, द्राक्ष, अनार (दाडिम), उत्तचित्तिय नारियल, केला, मीठा नींबू, जामफल, जामुन, खिरनी, नारंगी, बिजोरा, ककड़ी, अखरोट, वायमफल चक्रोत्रा, टेमरू, बिल्वफल, इमली, बेर, बिल्लुकफल, फूट, ककड़ी, केर, करौंदे, भोरड, नींबू, अम्लवेतस, इनका अथाणा, अंकुर, भांति भांतिके फूल तथा पत्र, सचित्त, बहुवीज, अनंतकाय आदिका भी क्रमशः त्याग करना । तथा विगय और विगयके अन्दर आनेवाली वस्तुका परिमाण करना. वस्त्र धोना, लीपना, खेत खोदना, नहलाना, दूसरेकी जूएं निकालना, कृषि सम्बन्धी भांति भांतिके कार्य, खांडना, पीसना, नहाना, अन्न पकाना, उबटन लगाना इत्यादिकका संक्षेप करना. तथा झूठी साक्षीका त्याग

करना. देशवकाशिक व्रतमें भूमि खोदना, जल लाना, वस्त्र धोना, नहाना, पीना, अग्नि सुलगाना, दीपक करना, पवन करना (पंखीसे हवा करना), लीलोतरी छेदना, वयो-वृद्ध पुरुषों-के साथ अधिक बोलना (विवाद करना), अदत्तादान, तथा स्त्रीने पुरुषके साथ तथा पुरुषने स्त्रीके साथ बैठना, सोना, बोलना, देखना आदिका व्यवहारमें परिमाण रखना. दिशाका परिमाण रखना, तथा भोगोपभोगका भी परिमाण रखना. इसी प्रकार सर्व अनर्थदंडोंका संक्षेप करना, सामायिक, पौषध तथा अतिथिसंविभागमें भी जो छूट रखी हो उसमें प्रतिदिन संक्षेप करना. खांडना, दलना, रांधना, जीमना, खोदना, वस्त्रादि रंगना, कांतना, पीजना, लोढना, घर आदि पुताना, लीपना, झटकना, वाहन पर चढ़ना, लीख आदि देखना, जूते पहिरना, खेत नींदना, काटना, चुनना, रांधना, दलना इत्यादि कार्योंमें प्रतिदिन यथाशक्ति संवर रखना. पढ़ना, जिनमंदिरमें दर्शन करना, व्याख्यान सुनना, गुणना, इतने सब कार्योंमें तथा जिनमंदिरके सर्वकार्योंमें उद्यम करना. तथा वर्षके अन्दर धर्मके हेतु अष्टमी, चतुर्दशी, विशेषतपस्या और कल्याणकतिथिमें उजमणेका महोत्सव करना. धर्मके हेतु गृह-पात्ति, पानीके छनने (गलने) तथा औषध आदि देना. यथा-शक्ति साधर्मिकवात्सल्य करना, और गुरुविनय करना. प्राति-मास सामायिक व प्रतिवर्ष पौषध तथा अतिथिसंविभाग यथा-

शक्ति करना. अब इस विषय पर दृष्टान्त कहते हैं कि:-

विजयपुर नगरमें विजयसेन नामक राजा था. उसके बहुतसे पुत्र थे. उनमेंसे विजयश्रीरानीका पुत्र राज्य सम्हालनेके योग्य हुआ, यह जानकर राजाने उसका सन्मानादि करना छोड़ दिया. ऐसा करनेमें राजाका यह अभिप्राय था कि, "दूसरे पुत्र डाहवश इसका वध न कर डालें." पर इससे राजकुमारको बहुत दुःख हुआ, वह मनमें सोचने लगा कि, "पगसे कुचली हुई धूल भी कुचलनेवालेके मस्तक पर चढ़ती है, अतएव गूंगे-मुंहसे अपमान सहन करनेवाले मनुष्यसे तो धूल श्रेष्ठ है. ऐसा नीतिशास्त्रका वचन है, इसलिये मुझे यहां रहकर क्या करना है ? मैं अब परदेश जाऊंगा. कहा है कि, "जो मनुष्य घरमेंसे बाहर निकलकर सैकड़ों आश्चर्यसे भरे हुए सम्पूर्ण पृथ्वीमंडल-को देखता नहीं, वह कूपमंडूकके समान है. पृथ्वीमंडलमें भ्रमण करनेवाले पुरुष देश देश की भाषाएं जानते हैं, देश-देश-के विचित्र रीति रिवाज जानते हैं और नानाप्रकारके आश्चर्यकारी चमत्कार देखते हैं." यह विचारकर राजकुमार चुपचाप रात्रिके समय हाथमें खड्ग ले बाहर निकला, और स्वच्छन्दता पूर्वक पृथ्वीमें भ्रमण करने लगा. एक समय वनमें फिरता हुआ मध्याह्नके समय क्षुधातृषासे बहुत दुःखित होगया. इतनेहामें सर्वांगमें दिव्य आभूषण पहिरे हुए एक दिव्य पुरुष आया. उसने स्नेह पूर्वक बातचीत करके कुमारको एक सबप्रकारके

उपद्रवका नाश करनेवाला और दूसरा इष्टवस्तुको देनेवाला ऐसे दो रत्न दिये. कुमारने उसको पूछा कि “तू कौन है ?” उसने उत्तर दिया--जब तू अपने नगरको जावेगा तब मुनिराजके वचनसे मेरा चरित्र जानेगा.”

अनन्तर उन रत्नोंके प्रभावसे राजकुमार सर्वत्र यथेष्ट विलास करता रहा. एक समय पडहका उद्धोष सुननेसे उसे ज्ञात हुआ कि- “कुसुमपुरका राजा देवशर्मा आंखके दर्दसे तीव्र वेदना भोग रहा है.” तदनुसार उसने शीघ्र वहां जाकर रत्नके प्रभावसे नेत्र पीड़ा दूर करी. राजाने प्रसन्न होकर राजकुमारको अपना राज्य तथा पुण्यश्री नामक कन्या दे स्वयं दीक्षा ग्रहण कर ली, पश्चात् उसके (राजकुमारके) पिताने भी उसे राज्य दे कर दीक्षा ली. इस प्रकार राजकुमार दो राज्य भोगने लगा. एक समय त्रिज्ञानी देवशर्मारार्जुनने कुमारको पूर्वभवका वृत्तान्त कहा. यथाः--क्षेमापुरीमें सुव्रत नामक श्रेष्ठी था, उसने गुरुके पास अपनी शक्तिके अनुसार चतुर्माससंबंधी नियम लिये थे. उसका एक नौकर था, वह भी प्रत्येक वर्षाकालके चातुर्मासमें रात्रिभोजन तथा मद्यमांसादि सेवनका नियम करता था. मरनेपर वही चाकर तू राजकुमार हुआ है, और सुव्रतश्रेष्ठीका जीव महान् क्रद्धिशाली देवता हुआ है. उसने पूर्वभवकी प्रीतिसे तुझे दो रत्न दिये.’ इस प्रकार पूर्वभव सुनकर कुमारको जातिस्मरणज्ञान उत्पन्न हुआ. तथा वह अनेकप्रकारके

नियमोंका पालन करके स्वर्गको गया, वहाँसे च्यवन कर महा-विदेहमें सिद्ध होवेगा इत्यादि.

लौकिकग्रंथमें भी यह बात कही है. यथा:— वशिष्टऋषिने पूछा कि- 'हे ब्रह्मदेव ! विष्णु क्षीरसमुद्रमें किस प्रकार निद्रा लेते हैं ? और वे निद्रा ले उस समय कौनसी २ चीजोंको त्यागना ? और उन वस्तुओंके त्यागसे क्या क्या फल होता है ?', ब्रह्मदेवने उत्तर दिया- 'हे वशिष्ट ! विष्णु वास्तवमें निद्रा नहीं लेता और जागृत भी नहीं होता, परन्तु वर्षाकाल आनेपर भक्तिसे विष्णुको ये सर्व उपचार किये जाते हैं, विष्णु योगनिद्रामें रहे, तब किन २ वस्तुओंका त्याग करना सो सुन-जो मनुष्य चातुर्मासमें देशाटन न करे, माटी न खोदे तथा बैंगन, चवला, वाल, कुलथी, तूवर, कालिंगडा, मूली और चवलाई इन वस्तुओंका त्याग करे, तथा हे वशिष्ट ! जो पुरुष चातुर्मासमें एक अन्न खावे, वह पुरुष चतुर्भुज होकर परमपदको जाता है. जो पुरुष नित्य तथा विशेष कर चातुर्मासमें रात्रिभोजन न करे, वह इसलोकमें तथा परलोकमें सर्व अभीष्ट वस्तु पाता है. जो पुरुष चातुर्मासमें मद्यमांसका त्याग करता है, वह प्रत्येकमासमें सौवर्ष तक कियेहुए अश्वमेध यज्ञका पुण्य प्राप्त करता है.' इत्यादि.

अविष्यपुराणमें भी कहा है कि:— "हे राजन् ! जो पुरुष चातुर्मासमें तैलमर्दन (अभ्यंग) नहीं करता, वह बहुतसे पुत्र तथा धन पाता है, और नीरोगी रहता है. जो पुरुष पुष्पादिक-

के भोगको छोड़ देता है, वह स्वर्गलोकमें पूजा जाता है. जो पुरुष कडवा, खट्टा, तीक्ष्ण, तूरा, मीठा, खारा इन रसोंका त्याग करता है, वह पुरुष कभी भी दुर्भाग्य व कुरूपता नहीं पाता. तांबूलभक्षणका त्याग करे तो भोगी होता है और शरीरलावण्य पाता है. जो फलशाक और पत्तोंका शाक (भाजीपाला) त्यागता है वह धन सन्तान पाता है. हे राजन् ! चातुर्मासमें गुड भक्षण न करे तो मधुरस्वरवाला होता है. कढ़ाई पर पकाया हुआ अन्न भक्षण त्यागे तो बहुत संतति पाता है. भूमिमें संथारे पर सोवे तो विष्णुका सेवक होता है. दही तथा दूधका त्याग करे तो गौलोक नामक देवलोकको जाय. मध्याह्न समय तक जल पीना बर्जे तो रोगोपद्रव न हों. जो पुरुष चातुर्मासमें एकान्तर उपवास करता है, वह ब्रह्मलोकमें पूजा जाता है. जो पुरुष चातुर्मासमें नख व केश न उतारे, वह प्रतिदिन गंगास्नानका फल पाता है. जो पर अन्न त्यागे वह अनन्त पुण्य पाता है. चातुर्मासमें भोजन करते समय जो मौन न रहे, वह केवल पाप ही भोगता है, ऐसा जानो. मौन धारण करके भोजन करना उपवासके समान है.” इसलिये चातुर्मासमें मौनभोजन तथा अन्य नियम अवश्य ग्रहण करना चाहिये. इत्यादि ।

इति श्रीरत्नशेखरसूरिविरचित—

श्राद्धविधिकौमुदीकी हिन्दीभाषाका चातुर्मासिककृत्यनामक

चतुर्थः प्रकाशः सम्पूर्णः

प्रकाश ५, वर्षकृत्य.

(मूलगाथा)

पहवरिसं संघचण-

साहम्मिअ भत्तिजत्ततिगं ॥१२॥

जिणगिहि ण्हवणं जिणधण-

बुद्धी महपूअ धम्मजागरिआ ॥

सुअपूआ उज्जवणं,

तह तित्थपभावणा सोही ॥१३॥

(चतुर्थप्रकाशमें चातुर्मासिककृत्यका वर्णन किया अब रही हुई अर्धगाथा तथा तेरहवीं गाथाद्वारा एकादश द्वारसे वर्षकृत्य कहते हैं.)

संक्षेपार्थः-सुश्रावकने प्रतिवर्ष १संघकी पूजा, २ साधर्मिक-वात्सल्य, ३ अट्टाई रथ-तीर्थ ऐसी तीन यात्राएं, ४ जिन-मंदिरमें स्नात्रमहोत्सव, ५ देवद्रव्यकी वृद्धि, ६ महापूजा, ७ रात्रिको धर्मजागरिका (रात्रिजागरण), ८ श्रुतज्ञानपूजा, ९ उजमणा, १० शासनकी प्रभावना, और ११ आलोचना इतने धर्मकृत्य करना. (१२-१३)

विस्तारार्थः--श्रावकने प्रतिवर्ष जघन्यसे एक बार भी १ चतुर्विध श्रीसंघकी पूजा, २ साधर्मिकवात्सल्य, ३ तीर्थयात्रा, रथयात्रा और अट्टाईयात्रा, ये तीन यात्राएं, ४ जिन-मंदिरमें स्नात्रमहोत्सव, ५ माला पहिरना, इन्द्रमालाआदि पहिरना,

पहिरावणी करना, धोतियां आदि देना तथा द्रव्यकी वृद्धि हो उस प्रकार आरती उतारना आदि धर्मकृत्य करके देवद्रव्यकी वृद्धि, ६ महापूजा, ७ रात्रिमें धर्मजागरिका, ८ श्रुतज्ञानकी विशेषपूजा, ९ अनेकप्रकारके उजमणे, १० जिन-शासनकी प्रभावना, और ११ आलोचना इतने धर्मकृत्य यथाशक्ति करना.

जिसमें श्रीसंघकी पूजा, अपने कुल तथा धनआदिके अनुसार बहुत आदरसत्कारसे साधुसाध्वीके खपमें आवे ऐसी आधाकर्मोदि दोष रहित वस्तुएं गुरुमहाराजको देना. यथा:- वस्त्र, कम्बल, पादपोंछनक, सूत्र, ऊन, पात्र, जलके तुंबे आदि पात्र, दांडा, दांडी, सूई, कांटा निकालनेका चिमटा, कागज, दावात, कलमें, पुस्तकें आदि. दिनकृत्यमें कहा है कि-वस्त्र, पात्र, पांचों प्रकारकी पुस्तकें, कम्बल, आसन, दांडा, संथारा, सिज्जा तथा अन्य भी औधिक तथा औपग्रहिक, मुह-पत्ति, आसन जो कुछ शुद्ध संयमको उपकारी होवे वह देना. प्रवचनसारोद्धारवृत्तिमें कहा है कि-“जो वस्तु संयमको उपकारी होवे, वह वस्तु उपकार करनेवाली होनेसे उपकरण कहलाती है, उससे अधिक वस्तु अधिकरण कहलाती है. असंयत-पनसे वस्तुका परिहार अर्थात् परिभोग (सेवन) करनेवाला असंयत कहलाता है.” यहां परिहारशब्दका अर्थ परिभोग करनेवाला किया, उसका कारण यह है कि “परिहारः परिभोगः”

ऐसा वचन है, जिससे असंयतपनसे जो परिभोग करना ऐसा अर्थ होता है. ऐसा प्रवचनसारोद्धारवृत्तिमें कहा है.

इसी प्रकार प्रातिहारिक, पीठ, फलक, पाटिया इत्यादिक संयमोपकारि सर्व वस्तुएं श्रद्धापूर्वक साधुमुनिराजको देना. सूई आदि वस्तुएं भी संयमके उपकरण हैं, ऐसा श्रीकल्पमें कहा है. यथा:—

“असणाई वत्थाई सूआई चउकगा तिन्नि”

अर्थ:—अशनादिक, वस्त्रादिक, और सूईआदि ये तीन चतुष्क मिलकर बारह; जैसे कि, १ अशन, २ पान, ३ खादिम, ४ स्वादिम ये अशनादिक चार, ५ वस्त्र, ६ पात्र, ७ कम्बल, ८ पादपोंछनक ये वस्त्रादिक चार; तथा ९ सूई, १० अस्तुरा ११ नहणी और १२ कान कुचलनेकी सलाई ये सूईआदिक ४; इस प्रकार तीन चतुष्क मिलकर बारह वस्तुएं संयमके उपकरण हैं.

इसी प्रकार श्रावकश्राविकारूप संघका भी यथाशक्ति भाक्तिसे पहिरावणीआदि देकर सत्कार करे. देव, गुरु आदिके गुण गानेवाले याचकादिकोंको भी यथोचित रीतिसे सन्तुष्ट करे.

संघपूजा तीन प्रकारकी है. एक उत्कृष्ट, दूसरी मध्यम और तीसरी जघन्य. जिनमतधारी सम्पूर्ण संघको पहिरावणी-दे तो उत्कृष्ट संघपूजा होती है. सर्वसंघको केवल सूत्रआदि दे तो जघन्य संघपूजा होती है. शेष सर्व मध्यम संघपूजा है. जिसमें जिसकी अधिक धन खर्च करनेकी शक्ति न होवे,

उसने भी गुरुमहाराजको सूत्रकी मुंहपत्तिआदि तथा दो तीन श्रावकश्राविकाओंको सुपारी आदि देकर प्रतिवर्ष भक्तिपूर्वक संघपूजा करना. दरिद्री पुरुष इतना ही करे तो भी उसे बहुत लाभ है. कहा है कि—बहुत लक्ष्मी होने पर नियम पालन करना, शक्ति होते क्षमा धारण करना, तरुणावस्थामें व्रत ग्रहण करना, और दरिद्रीअवस्थामें अल्प मात्र भी दान देना, इन चारों वस्तुओंसे बहुत लाभ होता है. वस्तुपाल मंत्रीआदि लोग तो प्रत्येक चातुर्मासमें संघपूजाआदि करते थे और बहुतसे धनका व्यय करते थे, ऐसा सुनते हैं. दिल्लीमें जगसीश्रेष्ठीका पुत्र महणसिंह श्रीतपागच्छाधिपपूज्यश्रीदेवचन्द्रसूरिजीका भक्त था. उसने एकही संघपूजामें जिनमतधारी सर्वसंघको पाहिरावणीआदि देकर चौरासी हजार टंकका व्यय किया. दूसरे ही दिन वहां पंडित देवमंगलगणि पधारे. पूर्वमें महणसिंहके बुलाये हुए श्रीगुरुमहाराजने उन गणिजीको भेजे थे । उनके आगमनके समय महणसिंहने संक्षेपमें संघपूजा करी, उसमें छप्पन हजार टंकका व्यय किया । इत्यादिक वार्त्ताएं सुननेमें आती हैं ।

साधर्मिकवात्सल्य भी सर्वसाधर्मिभाइयोंका अथवा शक्तिके अनुसार कमका करना चाहिये । साधर्मिभाइयोंका योग मिलना प्रायः दुर्लभ है । कहा है कि—सर्व जीव सर्व प्रकारका सम्बन्ध परस्पर पूर्वमें पाये हुए हैं । परन्तु साधर्मि-

आदि संबंधको पाने वाले जीव तो किसी २ जगह बिरले ही होते हैं। साधर्मिभाईका मिलाप भी बड़ा पुण्यकारी है, तो फिर शास्त्रानुसार साधर्मिका आदरसत्कार करे तो बहुत ही पुण्यसंचय होवे इसमें कहना ही क्या है ? कहा है कि—एक तरफ सर्व धर्म और दूसरी तरफ साधर्मिक वात्सल्य रखकर बुद्धिरूप तराजूसे तोलें तो दोनों समान उतरेंगे ऐसा कहा है। साधर्मिकका आदर सत्कार इस प्रकार करना चाहिये:—

अपने पुत्रआदिका जन्मोत्सव और विवाहआदि होवे तो साधर्मिभाइयोंको निमंत्रण करना और उत्तम भोजन, तांबूल, वस्त्र, आभूषणआदि देना. कदाचित् वे किसी समय संकटमें आ पड़े तो अपना द्रव्य खर्च करके उन्हें आपत्तिसे बचाना. पूर्वकर्मके अंतरायके दोषसे किसीका धन चला जावे तो उसे पुनः पूर्ववत् अवस्थामें लाना. जो अपने साधर्मिभाइयोंको पैसे टके सुखी न करे, उस पुरुषकी मोटाई किस कामकी ? कहा है कि—जिसने दीनजीवोंका उद्धार न किया, साधर्मिक वात्सल्य नहीं किया, और हृदयमें वीतरागका ध्यान न किया, उन्होंने अपना जन्म व्यर्थ गुमाया. अपने साधर्मिभाई जो धर्मसे भ्रष्ट होते हों तो, चाहे किसी भी प्रकारसे उन्हें धर्ममें स्थिर करना. जो वे धर्मकृत्य करनेमें प्रमाद करते हों तो उनको स्मरण कराना, और अनाचारादिसे निवारना. कहा है कि,

प्रमाद करे तो याद कराना, अनाचारमें प्रवृत्त होंवे तो रोकना, चूके तो प्रेरणा करना और बारम्बार चूके तो बारम्बार प्रेरणा करना वैसेही अपने साधर्मिकोंको वाचना, पृच्छना, परावर्त्तना, अनुप्रेक्षा और धर्मकथा इत्यादिकमें यथासमय बुलाना, और श्रेष्ठधर्मानुष्ठानके लिये साधारण पौषधशालाआदि बनवाना इत्यादि-

श्राविकाओंका वात्सल्य भी श्रावककी भांति करना, उसमें कुछ भी कम बढ़ न करना. कारण कि, ज्ञान, दर्शन तथा चारित्र्यको धारण करनेवाली उत्कृष्ट शीलको पालनेवाली तथा सन्तोषवाली ऐसी श्राविकाएं जिनधर्ममें अनुरागिणी होती हैं, इसलिये उनको साधर्मिकतासे मानना.

शंकाः--लोकमें तथा शास्त्रमें स्त्रियां महादुष्ट कहलाती हैं. ये तो भूमि बिनाकी विषकदली, बिना मेघकी बिजली, जिस पर औषाधि न चले ऐसी, अकारण मृत्यु, बिना निमित्त उत्पात, फण रहित सर्पिणी, और गुफा रहित वाघिनीके समान हैं. इनको तो प्रत्यक्ष राक्षसीके समानही समझना चाहिये. गुरु तथा बन्धु परका स्नेह टूटनेका कारण ये ही हैं. कहा है कि-असत्य-वचन, साहस, कपट, मूर्खता, अतिलोभ, अपवित्रता, और निर्दयता ये स्त्रियोंके स्वाभाविक दोष हैं. कहा है कि--हे गौतम ! जब अनंती पापराशियां उदय होती हैं, तब स्त्री-भव प्राप्त होता है, यह तू सम्यक् प्रकारसे जान. इस प्रकार समस्त शास्त्रों-

में पद पद पर स्त्रियोंकी निन्दा देखनेमें आती है. इसलिये उनको दूर रखना ऐसा होते हुए उनका दान सन्मानरूप वात्सल्य करना किस प्रकार योग्य है ?

समाधान:—“स्त्रियां ही दुष्ट होती हैं” ऐसा एकांत पक्ष नहीं. जैसे स्त्रियोंमें वैसे पुरुषोंमें भी दुष्टता समान ही है. कारण कि, पुरुष भी क्रूरप्रकृति, महादुष्ट, नास्तिक, कृतघ्न, अपने स्वार्थके साथ धैर्य करनेवाला, विश्वासघाती, असत्यभाषी, परधन तथा परस्त्री हरण करनेवाला, निर्दय तथा गुरुको भी ठगनेवाला ऐसे बहुतसे देखनेमें आते हैं. पुरुषजातिमें कोई कोई ऐसे मनुष्य हैं, उससे जैसे सत्पुरुषोंकी अवज्ञा करना घटित नहीं होती, वैसेही स्त्रीजातिमें कुछ दुष्ट स्त्रियां हैं, उससे समस्त स्त्रियोंकी अवज्ञा करना यह भी घटित नहीं होती. जैसे महादुष्ट वैसेही महागुणवान् स्त्रियां भी हैं. जैसे तीर्थंकरोंकी माताएं श्रेष्ठगुणोंसे युक्त होती हैं, इससे देवताओंके इन्द्र भी उनकी पूजा करते हैं और भुनि भी स्तुति करते हैं. लौकिकशास्त्रज्ञ भी कहते हैं कि, स्त्रियां कोई ऐसा अद्भुत गर्भ धारण करती हैं कि, जो तीनों जगत्का गुरु होता है. इसीलिये पंडित लोग स्त्रियोंका बड़प्पन स्वीकार करते हैं. बहुतसी स्त्रियां अपने शीलके प्रभावसे अग्निको जल समान, जलको स्थल समान, गजको शृंगाल समान, सर्पको रस्सी समान और विषको अमृत समान कर देती हैं, वैसेही चतुर्विध श्रीसंघका चौथा अंग श्राविकाएं हैं.

शास्त्रमें जो उनकी विशेष निन्दा सुननेमें आती है, वह पुरुषोंने उनमें आसक्ति न करना इस उपदेश ही के लिये है. सुलसा आदि श्राविकाओंके गुणोंकी तो तथिक्करोंने भी बहुत प्रशंसा करी है. उनकी धर्मदृढताकी प्रशंसा इन्द्रोंने भी स्वर्गमें करी है; और प्रबलमिथ्यात्वी भी इनको समकितसे न डिगा सके. इसी प्रकार कितनीही श्राविकाएं तद्भवमोक्षगामिनी तथा कितनी ही दो, तीन आदि भव करके मोक्षगामिनी शास्त्रमें सुनी जाती हैं. इसलिये माताकी भांति, वहिनकी भांति, तथा पुत्रीकी भांति इनका वात्सल्य करना घटित ही है.

साधर्मिवात्सल्य कर ही के राजालोग अपना अतिथिसंधि-भागवत पालते हैं. कारण कि, मुनियोंको राजापंड खपता नहीं. इस विषय पर भरतके वंशमें हुए त्रिखंडाधिपति दंडवीर्य-राजाका दृष्टान्त कहते हैं कि:—

दंडवीर्य राजा नित्य साधर्मिभाईको जिमाकर ही स्वयं भोजन करता था. एक समय इन्द्रने उसकी परीक्षा करनेका विचार किया. उसने ज्ञान, दर्शन, चारित्ररूप तीन रत्नोंका सूचक सुवर्णसूत्र (जनेऊ) और बारहव्रतोंके सूचक बारह तिलक धारण करनेवाले तथा भरत रचित चार वेदोंका मुख पाठ करनेवाले, तीर्थयात्रा प्रवासी करोड़ों श्रावक प्रकट किये. दंडवीर्य भक्तिपूर्वक उनको निमंत्रण करके जिमाता है, इतनेमें सूर्यास्त होगया. इस प्रकार लगातार आठ दिन तक श्रावक

प्रकट किये. जिससे राजाको आठ उपवास हुए. परन्तु उसकी साधर्मिक भक्ति तो तरुणपुरुषकी शक्तिकी भांति दिन प्रतिदिन बढ़ती ही गई; जिससे इन्द्र प्रसन्न हुआ, और उसने उसको दिव्य धनुष्य, बाण, रथ, हार तथा दो कुंडल देकर शत्रुजयकी यात्रा करनेके लिये प्रेरणा की. दंडवीर्यने वैसा ही किया.

श्रीसंभवनाथ भगवान् भी पूर्वके तीसरे भवमें धातकी-खंडान्तर्गत ऐरवतक्षेत्रकी क्षेमापुरीनगरीमें विमलवाहन नामक राजा थे. तब उन्होंने भयंकर दुर्भिक्षमें समस्त साधर्मिभाइयोंको भोजनादिक देकर जिननामककर्म उपार्जन किया. पश्चात् दीक्षा ले देहान्त होनेपर आनन्ददेवलोकमें देवतापन भोगकर श्रीसंभवनाथ तीर्थकर हुए. उनका फाल्गुनशुक्ल अष्टमीके दिन अवतार हुआ, उस समय महान् दुर्भिक्ष होते हुए उसी दिन चारों तरफसे सर्व जातिका धान्य आ पहुंचा, इससे उनका नाम 'संभव' पड़ा. बृहद्भाष्यमें कहा है कि--'शं' शब्दका अर्थ सुख है. भगवान्के दर्शनसे सर्व भव्यजीवोंको सुख होता है, इसलिये उनको 'शंभव' कहते हैं. इस व्याख्यानके अनुसार सर्व तीर्थकर शंभव नामसे बोले जाते हैं. संभवनाथजीको संभवनामसे पहिचाननेका और भी एक कारण है. किसी समय श्रावस्ती नगरीमें कालदोषसे दुर्भिक्ष पड़ गया, तब सर्व मनुष्य दुःखी होगये. इतनेहीमें सेनादेवीके गर्भमें संभवनाथजीने अवतार लिया. तब इन्द्रने स्वयं आकर सेनादेवी माताकी पूजा

करी, और जगत्में सूर्यके समान पुत्रकी प्राप्ति होनेकी उसे बधाई दी. उसी दिन धान्यसे परिपूर्ण भरे हुए बहुतसे सार्थ (टांडे) चारों तरफसे आये और उससे वहाँ सुभिक्ष होगया. उन भगवान्के सम्भव (जन्म) में सर्व धान्यका सम्भव हुआ, इसी कारणसे मातापिताने उनका नाम 'सम्भव' रखा.

देवागिरिमें जगसिंह नामक श्रेष्ठ अपने ही समान सुखी किये हुए तीनसौ साठ मुनीमोंके द्वारा नित्य बहत्तर हजार टंक व्यय करके एक एक साधर्मिवात्सल्य कराता था. इस प्रकार प्रतिवर्ष उसके तीनसौ साठ साधर्मिवात्सल्य होते थे. थरादमें श्रीमाल आभू नामक संघपतिने तीनसौ साठ साधर्मि-माइयोंको अपने समान किये. कहा है कि-उस सुवर्णपर्वत (मेरू) तथा चांदाके पर्वत (वैताढ्य) का क्या उपयोग ? कारण कि, जिसके आश्रित वृक्ष काष्ठके काष्ठ ही रहते हैं, सुवर्ण-चांदाके नहीं होते. एक मलय पर्वत ही को हम बहुत भान देते हैं; कारण कि उसके आश्रित आम, नीम और कुटज वृक्ष भी चन्दनमय होजाते हैं. सारंग नामक श्रेष्ठोंने पंचपरमेष्ठिमंत्रका पाठ करनेवाले लोगोंको प्रवाहसे प्रत्येकको सुवर्णटंक दिये. एक चारण "बोल" ऐसा बार बार कहनेसे नौबार नवकार बोला, तब उसने उसे नौ सुवर्णमुद्राएं दीं.

इसी प्रकार प्रतिवर्ष जघन्यसे एक यात्रा भी करना. यात्राएं तीन प्रकारकी हैं. यथा:--१ अट्टाई यात्रा, २ रथयात्रा

और ३ तीर्थयात्रा. जिसमें १ अट्टाईयात्राका स्वरूप पहिले कहा गया है. उसमें सविस्तृत सर्व चैत्यपरिषाटी करना आदि जो अट्टाईयात्रा है वह चैत्ययात्रा भी कहलाती है. २ रथयात्रा तो हेमचन्द्रसूरिविरचित परिशिष्टपर्वमें कही है. यथा:--पूज्य श्रीसुहस्ति आचार्य अवंतीनगरीमें निवास करते थे, उस समय एक वर्ष संघने चैत्ययात्राका उत्सव किया. भगवान् सुहस्ति आचार्य भी नित्य संघके साथ चैत्ययात्रामें आकर मंडपको सुशोभित करते थे. तब संप्रति राजा अति लघुशिष्यकी भांति हाथ जोड़कर उनके सन्मुख बैठता था. चैत्ययात्रा होजानेके अनन्तर संघने रथयात्रा शुरू की. कारण कि, यात्राका उत्सव रथयात्रा करनेसे सम्पूर्ण होता है. सुवर्णकी तथा माणिक्यरत्नोंकी कांतिसे दिशाओंको प्रकाशित करनेवाला सूर्यके रथके समान रथ रथशालामेंसे निकला. विधिके ज्ञाता और धनवान् श्रावकोंने रथमें पधराई हुई जिनप्रतिमाका स्नात्रपूजादि किया. अरिहंतका स्नात्र किया, तब जन्मकल्याणकके समय जैसे मेरूके शिखर परसे, उसी भांति रथमेंसे स्नात्रजल नीचे पडने लगा. मानो भगवान्से कुछ विनय करते हों ! ऐसे मुखकोश बांधे हुए श्रावकोंने सुगंधित चन्दनादि वस्तुसे भगवानको विलेपन किया. जब मालती, कमल आदिकी पुष्पमालाओंसे भगवान्की प्रतिमा पूजाई, तब वह शरत्कालके मेघोंसे धिरी हुई चन्द्रकलाकी भांति शोभने लगी. जलते हुए मलयगिरिके धूपसे उत्पन्न हुई धूम-

रेखाओंसे घिरी हुई भगवान्की प्रतिमा ऐसी शोभने लगी मानो नीलवस्त्रोंसे पूजा गई हो. श्रावकोंने दीपती दीपशिखाओं युक्त भगवान्की आरती करी. वह दीपती औषधिवाले पर्वतके शिखरके समान शोभायमान थी. अरिहंतके परमभक्त उन श्रावकोंने भगवान्को वन्दना करके घोड़ेकी भांति आगे होकर स्वयं रथ खींचा. उस समय नगरवासी जनोंकी स्त्रियोंने रास-क्रीड़ा शुरू की. चारों ओर श्राविकाएं मंगलगीत गाने लगीं. अपार केशरका जल रथमेंसे नीचे गिरता था जिससे मार्गमें छिटकाव होने लगा. इस प्रकार प्रत्येक घरकी पूजा ग्रहण करता हुआ रथ नित्य धीरे धीरे संप्रति राजाके द्वारमें आता था. राजा उसी समय रथकी पूजाके लिये तैयार होकर फणसफलके समान रोमांचित शरीर हो वहां आता था. और नवीन आनन्द-रूप सरोवरमें हंसकी भांति क्रीड़ा करता हुआ रथमें विराजमान प्रतिमाकी अष्टप्रकारीपूजा करता था.

महापद्मचक्रीने भी अपनी माताका मनोरथ पूर्ण करनेके हेतु बड़ी धूमधामसे रथयात्रा करी. कुमारपालकी करी हुई रथ-यात्रा इस प्रकार कही गई है:--चैत्रमासकी अष्टमीके दिन चौथे प्रहरमें मानो चलते हुए मेरूपर्वतके समान व सुवर्णमय विशाल दंडके ऊपर स्थित ध्वजा, छत्र, चामर इत्यादि वस्तुओंसे देदीप्यमान सुवर्णमय रथ महान ऋद्धिके साथ निकलता था, उस समय हर्षसे नगरवासी लोग एकत्र होकर मंगलकारी जय-

ध्वनि करते थे. श्रावक स्नात्र तथा चन्दनका विलेपन करके सुगंधित पुष्पोंसे पूजित श्रीपार्श्वजिनकी प्रतिमाको कुमारपालके बंधवाये हुए मंदिरके सन्मुख खड़े हुए रथमें बड़ीही कृद्धिसे स्थापन करते थे. वाजित्रके शब्दसे जगत्को पूर्ण करनेवाला और हर्ष पूर्वक मंगलगीत गानेवाली सुन्दरस्त्रियोंके तथा सामन्त और मंत्रियोंके मंडलके साथ वह रथ राजमहलके आगे जाता, तब राजा रथमें पधराई हुई प्रतिमाकी पट्टवस्त्र, सुवर्ण-मय आभूषण इत्यादि वस्तुओंसे स्वयं पूजा करता था और विविध प्रकारके नाटक, गायन आदि कराता था । पश्चात् वह रथ वहां एक रात्रि रह कर सिंहद्वारके बाहर निकलता और फहराती हुई ध्वजाओंसे मानो नृत्य ही कर रहा हो ऐसे पट-मंडपमें आता । प्रातःकालमें राजा वहां आकर रथमें विराजमान जिन-प्रतिमाकी पूजा करता और चतुर्विध संघके समक्ष स्वयं आरती उतारता था । पश्चात् हाथी जोता हुआ रथ स्थान स्थानमे बंधवाये हुए बहुतसे पटमंडपोंमें रहता हुआ नगरमें फिरता था । इत्यादि—

अब ३ तीर्थयात्राके स्वरूपका वर्णन किया जाता है ।

श्रीशत्रुंजय, गिरनार आदि तीर्थ हैं । इसी प्रकार तीर्थ-करोंकी जन्म, दीक्षा, ज्ञान, निर्वाण और विहारकी भूमियां भी अनेको भव्यजीवोंको शुभभाव उत्पन्न करती हैं और भव-सागरसे पार करती हैं, अतएव वे भूमियां भी तीर्थ कहलाती

हैं। इन तीर्थोंमें सम्यक्त्वशुद्धिके हेतु गमन करना, वही तीर्थ-यात्रा कहलाती है। उसकी विधि इस प्रकार है:—एक वस्त्र आहार-सचित्त परिहार, भूमिशयन, ब्रह्मचर्यव्रत पादचार, इत्यादि कठिन अभिग्रह यात्रा की जाय वहाँ तक पाले जावे, ऐसे प्रथम ही ग्रहण करना। पालखी, घोड़े इत्यादि ऋद्धि होवे, तो भी यात्रा करनेको निकले हुए धनाढ्यश्रावकको भी यथाशक्ति पैदल ही चलना उचित है। कहा है कि—यात्रा करनेवाले श्रावकने १ एकाहारी, २ समकितधारी, ३ भूमिशयनकारी, ४ सचित्त परिहारी, ५ पादचारी और ६ ब्रह्मचारी रहना चाहिये। लौकिक-शास्त्रमें भी कहा है कि—यात्रा करते वाहनपर बैठे तो यात्राका आधा फल जावे, जूते पहिरे तो फलका चौथा भाग जावे, मुंडन करे तो तीसरा भाग जावे और तीर्थमें जाकर दान ले तो यात्राका सर्व फल जाता रहता है। इसलिये तीर्थयात्रा करनेवाले पुरुषने एक बार भोजन करना, भूमिपर सोना, और स्त्री ऋतुवति होते हुए भी ब्रह्मचारी रहना चाहिये।

उपरोक्त कथनानुसार अभिग्रह लेनेके बाद यथाशक्ति राजाको भेटआदिसे प्रसन्न कर उसकी आज्ञा लेना। यात्रामें साथ लेनेके लिये शक्त्यनुसार श्रेष्ठ मंदिर तैयार करना, स्वजन तथा साधर्मिभाइयोंको यात्राको आनेके लिये निमंत्रण करना, भक्तिपूर्वक अपने सद्गुरुको भी निमंत्रित करना। अहिंसा प्रवृत्त करना, जिनमंदिरोंमें महापूजादि महोत्सव कराना।

जिसके पास भाता (नास्तेके लिये अन्न आदि) न हो तो उसे भाता तथा जिसको वाहन न हो उसे वाहन देना । निराधार-मनुष्योंको द्रव्य तथा मृदु वचनका आधार देना । “ उचित महायता दूंगा ” । ऐसी उद्घोषणा कर उत्साहहीन यात्रियोंको भी सार्थवाहकी भांति हिम्मत देना । आडंबरसे बड़े और भीतरी भागमें बहुत समावेशवाली कोठियां, शराबले, कनाते, तंबू, बड़ी कढ़ाइयां तथा दूसरेभी पानीके बड़े र बरतन कराना, गाड़े, परदेवाले रथ, पालखी, बैल, ऊंट, घोड़े आदि वाहन सजाना । श्रीसंघकी रक्षाके हेतु बहुतसे शूरवीर व सुभटोंको साथमें लेना; और कवच, शिरस्त्राण आदि उपकरण देकर उनका सत्कार करना । गीत, नृत्य, वाजित्रआदि सामग्री तैयार कराना । पश्चात् शुभ शकुन, मुहूर्तआदि देखकर उत्साह पूर्वक गमन करना ।

मार्गमें यात्रियोंके सर्व समुदायको एकत्रित करना । श्रेष्ठ पक्वान्न जिमाकर उनको तांबूलादि देना । उनको वस्त्र आभूषण-आदि पहिराना । श्रेष्ठ, प्रतिष्ठित, धर्मिष्ठ, पूज्य और महान् भाग्य-शाली पुरुषोंसे संघवीपनका तिलक कराना । संघपूजादि महोत्सव करना । योग्यतानुसार दूसरोंके पाससेभी संघवीपनआदिके तिलक करनेका उत्सव कराना । संघकी जोखिम सिरपर लेने-वाले, आगे चलनेवाले, पीछे रहकर रक्षण करनेवाले तथा प्रमुखतासे संघका काम करनेवालेआदि लोगोंको योग्य स्थानपर

रखना । श्रासिंधके चलनेके तथा मुकाम करनेके जो ठहराव हुए हों, वे सर्वत्र प्रसिद्ध करना । मार्गमें सब साधर्मियोंकी भली-भांति सारसम्हाल करना । किसीकी गाडीका पहिया टूट जावे अथवा अन्य कोई तकलीफ हो तो स्वयं सर्वशक्तिसे उनको मदद करना । प्रत्येक ग्राम तथा नगरमें जिनमंदिरमें स्नात्र, ध्वजा चढ़ाना, चैत्यपरिपाटीआदि महोत्सव करना । जीर्णोद्धार आदिका भी विचार करना । तीर्थका दर्शन होनेपर सुवर्ण रत्न मोती आदि वस्तुओं द्वारा बधाई करना । लापशी, लड्डू आदि वस्तुएं मुनिराजको बहोराना । साधर्मिकवात्सल्य करना, उचित रीतिसे दानआदि देना तथा महान् प्रवेशोत्सव करना । तीर्थमें पहुंच जानेपर प्रथम हर्षसे पूजा, वंदनआदि आदरसे करना, अष्टप्रकारी पूजा करना तथा विधिपूर्वक स्नात्र करना । माल पहिरनाआदि करना । घीकी धारावाडी देना, पहिरावणी रखना । जिनेश्वर भगवानकी नवांग पूजा करना तथा फूलघर, केलीघरआदि महापूजा, रेशमीवस्त्रमय ध्वजाका दान, सदावर्त, रात्रिजागरण, गीत, नृत्यादि नाना भांतिके उत्सव, तीर्थ-प्राप्ति निमित्त उपवास, छट्ठआदि तपस्या करना । करोड, लक्ष चावलआदि विविध वस्तुएं विविध उजमणेमें रखना ।

भांति भांतिके चौबीस, बावन, बहत्तर, अथवा एकसौ आठ फल अथवा अन्यवस्तुएं तथा सर्व भक्ष्य और भोज्य वस्तुसे भरी हुई थाली भगवानके सन्मुख रखना । वैसे ही

रेशमीआदि वस्त्रोंके चंदुए, पहिरावणी, अंगलहणे, दीपकके लिये तैल, धोतीयां, चंदन, केशर, भोगकी वस्तु, पुष्प लानेकी छबड़ी, पिंगानिका, (चंगेरी) कलश, धूपदान. आरती, आभूषण, दीपक, चामर, नालयुक्त कलश, थालियां, कटोरियां, घंटे, झालर, नगाराआदि देना. पुजारी राखना. सूतार आदिका सत्कार करना. तीर्थकी सेवा, विनसते तीर्थका उद्धार तथा तीर्थके रक्षकलोंगोंका सत्कार करना. तीर्थको भाग देना. साधर्मिकवात्सल्य, गुरुकी भक्ति तथा संघकी पहिरावणीआदि करना याचकादिकोंको उचित दान देना. जिनमंदिरआदि धर्म-कृत्य करना. याचकोंको दान देनेसे कीर्ति मात्र होती है, यह समझ कर वह निष्फल है ऐसा न मानना. कारण कि, याचक भी देवके, गुरुके तथा संघके गुण गाते हैं इसलिये उनको दिया हुआ दान बहुत फलदायी है. चक्रवर्तीआदि लोग जिनेश्वर-भगवान्के आगमनकी बधाई देनेवालेको भी साढ़े बारह करोड़ स्वर्णमुद्राएंआदि दान देते थे. सिद्धान्तमें कहा है कि— साढ़े बारह लाख तथा साढ़े बारह करोड़ स्वर्णमुद्राके बराबर चक्रवर्तीका प्रीतिदान है. इस प्रकार यात्रा करके लौटते समय संघवी महोत्सवके साथ अपने घरमें प्रवेश करे. पश्चात् देवन्हा-नादि उत्सव करे, और एक वर्ष अथवा अधिक काल तक तीर्थोपवासआदि करे. इत्यादि.

श्रीसिद्धसेनदिवाकरका प्रतिषेधित किया हुआ विक्रमा-

दित्य राजा शत्रुंजयकी यात्राको गया, तब उसके संघमें एक सौ उनसत्तर (१६९) स्वर्णमय और पांचसौ (५००) दांत, चंदनादिमय जिनमंदिर थे. सिद्धसेनदीवाकर आदि पांच हजार ५००० आचार्य थे. चौदह (१४) मुकुटधारी राजा थे, तथा सत्तरलाख (७००००००) श्रावक कुडुम्ब, एक करोड़ दसलाख नव हजार (११००९०००) गाड़ियां, अठ्ठारह लाख (१८०००००) घोड़े, लहत्तरसौ (७६००) हाथी और इसी प्रकार ऊंट, बैलआदि थे। कुमारपालके निकाले हुए संघमें सुवर्णरत्नादिमय अठ्ठारहसौ चौदत्तर (१८७४) जिनमंदिर थे। थरादमें पश्चिममंडलिक नामसे प्रसिद्ध आभु संघवीकी यात्रामें सातसौ (७००) जिनमंदिर थे, और उसने यात्रामें बारह करोड़ स्वर्णमुद्राओंका व्यय किया। पेथड नामक श्रेष्ठिने तीर्थ-के दर्शन किये तब ग्यारह लाख रौप्यटंक व्यय किये, और उसके संघमें बावन जिनमंदिर और सात लाख मनुष्य थे। वस्तुपालमंत्रीकी साठे बारह यात्राएं प्रसिद्ध हैं इत्यादि।

इसी प्रकार प्रतिदिन जिनमंदिरमें धूमधामसे स्नात्रोत्सव करना, ऐसा करनेकी शक्ति न होवे तो प्रत्येक पर्वके दिन करना, यह भी न हो सके तो वर्षमें एक बार तो स्नात्रोत्सव अवश्य करना चाहिये। उसमें मेरुकी रचना करना, अष्टमंगलिककी स्थापना करना, नैवेद्य धरना तथा बहुतसी केशर, चन्दन, सु-

गंधित पुष्प और भोगआदि सकल वस्तुओंको एकत्रित करना, संगीतआदि सामग्री भली भांति तैयार करना । रेशमी वस्त्रमय महाध्वजा देना, और प्रभावनाआदि करना । स्नात्रोत्सवमें अपनी संपत्ति, कुल, प्रतिष्ठाआदिके अनुसार पूर्णशक्तिसे व्यय-आदि कर आडंबर पूर्वक, जिनमतकी विशेष प्रभावना करनेका प्रयत्न करना । सुनते हैं कि- पेथड श्रेष्ठीने श्रीगिरनारजी पर स्नात्रमहोत्सवके समय छप्पन घड़ी प्रमाण सुवर्ण देकर इन्द्र-माला पहिरी थी, और उसने श्री शत्रुंजय पर तथा गिरनारजी पर एक ही सुवर्णमय ध्वजा दी । उसके पुत्र झांझण श्रेष्ठीने तो रेशमी वस्त्रमय ध्वजा दी थी इत्यादि ।

इसी प्रकार देवद्रव्यकी वृद्धिके निमित्त प्रतिवर्ष मालोद्घाटन करना । उसमें इन्द्रमाला अथवा दूसरी माला प्रतिवर्ष शक्तिके अनुसार ग्रहण करना । श्रीकुमारपालके संघमें मालोद्घाटन हुआ, तब वाग्भटमंत्रीआदि समर्थ लोग चार लाख, आठलाखआदि संख्या बोलने लगे, उस समय सौराष्ट्र देशान्तर्गत महुआ-निवासी प्राग्वाट हंसराज धारुका पुत्र जग-दुशा. मलीनशरीरमें मलीन वस्त्र पहिरकर-ओढ़े हुए वहां खड़ा था, उसने एकदम सवा करोड़की रकम कही. राजा कुमारपालने आश्चर्यसे पूछा तो उसने उत्तर दिया कि, “ मेरे पिताने नौका-रुढ़ हो, देशदेशान्तरमें व्यापार करके, उपार्जन किये हुए

द्रव्यसे सवा २ करोड स्वर्णमुद्राकी कीमतके पांच माणिक्य रत्न खरीदे, और अन्त समय पर मुझे कहा कि, “ श्रीशत्रुंजय-गिरनार और कुमारपालपट्टनमें निवास करनेवाले भगवानको एक २ रत्न अर्पण करना, और दो रत्न तू अपने लिये रखना । ” पश्चात् उसने वे तीनों रत्न स्वर्णजडित करके शत्रुंजय निवासी ऋषभ भगवान्को, गिरनार निवासी श्रीनेमिनाथजीको तथा पट्टनवासी श्रीचंद्रप्रभजीको कंठाभरणरूपमें अर्पण किये ।

एक समय श्रीगिरनारजी पर दिगंबर तथा श्वेताम्बर इन दोनोंके संघ एकही साथ आ पहुंचे और ‘ हमारा तीर्थ ’ कह कर परस्पर झगडा करने लगे । तब ‘ जो इन्द्रमाला पहिरे उसका यह तीर्थ है ’ ऐसे वृद्धोंके वचनसे पेथड श्रेष्ठीने छप्पन धडी प्रमाण सुवर्ण देकर इन्द्रमाला पहिरी, और याचकोंको चार धडी सुवर्ण देकर यह सिद्ध किया कि तीर्थ हमारा है । इसी प्रकारसे पहिरावणी, नई धोतियां, भांति भांति के चन्द्रुए, अंगलूहणे, दीपकके लिये तेल, चंदन, केशर, भोगआदि जिनमंदिरोंपयोगी वस्तुएं प्रतिवर्ष शक्त्यनुसार देना । वैसे ही उत्तम-अंगी, बेलबूटोंकी रचना, सर्वांगके आभूषण, फूलधर, केलिधर-पुतलीके हाथमेंके फव्वारे इत्यादि रचना तथा नानाप्रकारके गायन, नृत्य आदि उत्सवसे महापूजा तथा रात्रिजागरण करना, जैसे कि एक श्रेष्ठीने समुद्रमें मुसाफिरी करनेको जाते समय एक

लाख द्रव्य खर्च करके महापूजा करी, और मनवांछित लाभ होनेसे बारह वर्ष बाद पीछा आया तब हर्षसे एक करोड़ रुपये खर्च कर जिनमंदिरमें महापूजाअदि उत्सव किया ।

इसी भांति पुस्तकादिस्थित श्रुतज्ञानकी कपूरआदि वस्तु-से सामान्य पूजा तो चाहे जभी की जा सकती है । मूल्यवान वस्त्रआदिसे विशेष पूजा तो प्रतिमास शुक्लापंचमीके दिन श्रावकने करना चाहिये । यह करनेकी शक्ति न होवे तो जघन्य-से वर्षमें एक बार तो करना ही चाहिये । यह बात जन्मकृत्य-में आये हुए ज्ञानभक्तिद्वारमें विस्तारसे कही जावेगी । इसी प्रकार नवकार, आवश्यकसूत्र, उपदेशमाला, उत्तराध्ययन इत्यादि ज्ञान दर्शन और विविध प्रकारके तप संबंधी उजमणेमें जघन्यसे एक उजमणा तो प्रतिवर्ष यथाविधि अवश्य करना चाहिये, कहा है कि— मनुष्योंको उजमणा करनेसे लक्ष्मी श्रेष्ठ स्थानमें प्राप्त होती है, तपस्या भी सफल होती है और निरन्तर शुभध्यान, समकितका लाभ, जिनेश्वर भगवान्की भक्ति तथा जिनशासन-की शोभा होती है । तपस्या पूरी होने पर उजमणा करना वह नये बनाये हुए जिनमंदिर पर कलश चढ़ानेके समान, चांदलसे भरे हुए पात्र ऊपर फल डालनेके समान अथवा भोजन कर लेने पर तांबूल देनेके समान है, शास्त्रोक्त विधिके अनुसार लाख अथवा करोड़वार नवकारकी गणनाकर जिनमंदिरमें स्नात्रोत्सव,

साधर्मिकवात्सल्य, संघपूजाआदि विशेष धूमधामसे करना । लाख अथवा करोड चाँवल, अडसठ सोने अथवा चाँदीकी कटोरियां, पाटिये, लेखनियां तथा रत्न, मोती, मूंगा, रुपयादि, नारियल आदि अनेक फल, भांति २ के पक्वान्न, धान्य तथा खाद्य और स्वाद्य अनेक वस्तुएं, वस्त्रआदि रखकर उजमणा करनेवाले, उपधान करना आदि विधि सहित माला पहिरकर आवश्यकसूत्रका उजमणा करनेवाले, गाथाकी संख्यानुसार अर्थात् पांचसौ चुम्मालीस मोदक, नारियल, कटोरियांआदि विविध वस्तुएं रखकर उपदेशमालादिकका उजमणा करनेवाले, स्वर्णमुद्राआदि वस्तु अंदर रख लड्डू आदि वस्तुकी प्रभावना करके दर्शनादिकका उजमणा करनेवाले भव्यजीव भी वर्त्तमान-कालमें दृष्टिमें आते हैं ।

माला पहिरना यह महान् धर्मकृत्य है. कारण कि नव-कार, इरियावही इत्यादि सूत्र सत्यनुसार तथा विधि सहित उपधान किये बिना पढ़ना गुणनाआदि अशुद्ध क्रिया मानी जाती है, श्रुतकी आराधनाके लिये जैसे साधुओंको योग करना, वैसेही श्रावकोंको उपधानतप अवश्य करना चाहिये. माला पहिरना यही उपधान तपका उजमणा है. कहा है कि- कोई श्रेष्ठ जीव यथाविधि उपधान तप करके अपने कंठमें नवकार आदि सूत्रकी माला तथा गुरुकी पहिराई हुई सूत्रकी माला धारण करता है, वह दो प्रकारकी शिवश्री (निरुपद्रवता और

मोक्षलक्ष्मी) प्राप्त करता है, मानो मुक्तिरूप कन्याकी वरमाला, सुकृतरूप जल खेंचकर निकालनेकी घड़ोंकी माला तथा प्रत्यक्ष-गुणोंकी गुंथी हुई माला ही हो, ऐसी माला धन्य लोगों ही से पहिरी जाती है. इसी प्रकार ही से सुक्ला पंचमी आदि विविध तपस्याओंके उजमणे भी उन तपस्याओंके उपवासआदिकी संख्यानुसार द्रव्य, कटोरियां, नारियल, लड्डू आदि विविध वस्तुएं रख कर शास्त्र तथा संप्रदायके अनुसार करना.

इसी भांति तीर्थकी प्रभावनाके लिये श्रीगुरुमहाराज पधारनेवाले हो, तब उनका सामैया, प्रभावनाआदि प्रतिवर्ष जघन्यसे एक बार तो अवश्य करना ही चाहिये. जिसमें श्रीगुरुमहाराजका प्रवेशोत्सव पूर्णतः विशेष सजधजसे चतुर्विध संघ सहित साम्हने जाकर तथा श्रीगुरुमहाराज व संघका सत्कार करके यथाशक्ति करना. कहा है कि- श्रीगुरुमहाराजको सन्मुख गमन, वन्दन, नमस्कार और सुखशान्तिकी पृच्छना करनेसे चिरकाल संचित पाप क्षणभरमें शिथिल होजाता है. पेथड श्रेष्ठिने तपा० श्रीधर्मघोषसूरिजीके प्रवेशोत्सवमें बहोतर हजार टंकका व्यय किया था. 'संवेगीसाधुओंका प्रवेशोत्सव करना अनुचित है' ऐसी कुकल्पना कदापि न करनी चाहिये. कारण कि, सिद्धान्तमें साम्हने जाकर उनका सत्कार करनेका प्रतिपादन किया हुआ है. यही बात साधुकी प्रतिमाके अधिकारमें श्रीव्यवहारभाष्यमें कही है. —

‘तीरिअ उठ्भामनिओ-अ दरिसणं सन्नि साहुमप्पाहे ॥

दंडिअ भोइअ असई. सावग संघो व सक्कारं ॥ १ ॥

अर्थ:— प्रतिमा पूरी हो जाय तब प्रतिमावाहक साधु जहां भिक्षुकोंका संचार होते ऐसे ग्राममें अपनेको प्रकट करे, और श्रावक अथवा साधुको संदेशा कहलावे. पश्चात् उक्त ग्रामका राजा, अधिकारी अथवा वे न हों तो श्रावक, श्राविकाओं और वे न हो तो साधुसाध्वियोंका समुदाय उक्त प्रतिमावाहक साधुका सत्कार करे. इस गाथाका यह अभिप्राय है कि, ‘प्रतिमा पूरी होनेपर समीपके जिस ग्राममें बहुतसे भिक्षुक विचरते हों वहां आकर अपनेको प्रकट करे, और इस दशामें जो श्रावक अथवा साधु देखनेमें आवे उनको संदेशा कहलावे कि, ‘मैंने प्रतिमा पूरी करी, और इससे मैं आया हूं.’ पश्चात् वहां जो आचार्य हो वह राजाको यह बात विदित करावे कि, ‘अमुक महातपस्वीसाधुने अपनी तपस्या यथाविधि पूर्ण की है. इसलिये बहुत सत्कारके साथ उसे गच्छमें प्रवेश करना है. ‘पश्चात् राजा अथवा गांवका अधिकारी अथवा वे भी न हो तो श्रावकलोग और वे भी न हो तो साधुसाध्वीआदि श्रीसंघ प्रतिमावाहक साधुका यथाशक्ति सत्कार करे. ऊपर चन्द्रुआ, बांधना, मंगलवाद्य बजाना, सुगंधित वासक्षेप करना इत्यादिक सत्कार कहलाता है. ऐसा सत्कार करनेमें बहुत गुण है. यथा:-

उच्चावणा पवयणे, सद्धाजणं तेह्य बहुमाणो ॥

ओहावणा कुत्तिथे, जजिं तह तित्थबुद्धीअ ॥ १ ॥

अर्थः—प्रवेशके अवसर पर सत्कार करनेसे जैनशासनकी बड़ी दीप्ति होती है, अन्यसाधुओंको श्रद्धा उत्पन्न होती है, कि, जिससे ऐसी शासनकी उन्नति होती है, वह सत्कृत्य हम भी ऐसेही करेंगे. वैसेही श्रावक, श्राविकाओंकी तथा दूसरोंकी भी जिनशासन पर बहुमान बुद्धि उत्पन्न होती है, कि जिसमें ऐसे महान् तपस्वी होते हैं, वह जिनशासन महाप्रतापी है. ” साथही कुतीर्थियोंकी हीलना होती है, कारण कि, उनमें ऐसे महासत्त्वधारी महापुरुष नहीं हैं. इसी प्रकार प्रतिमा पूरी करने-वाले साधुका सत्कार करना यह आचार है. इसी प्रकार तीर्थकी वृद्धि होती है, अर्थात् प्रवचनका अतिशय देखकर बहुतसे भव्य प्राणी संसार पर वैराग्य पाकर दीक्षा लेते हैं, ऐसा व्यवहारभाष्यकी वृत्तिमें कहा है, इसी तरह शक्तिके अनुसार श्रीसंघकी प्रभावना करना, अर्थात् बहुमानसे श्रीसंघको आमंत्रण करना, तिलक करना, चंदन, जवादि, कपूर, कस्तूरी आदि सुगंधित वस्तुका लेप करना, सुगंधित फूल अर्पण करना, नारियल आदि विविध फल देना तथा तांबूल अर्पण करना. इत्यादि-प्रभावना करनेसे तीर्थकरणआदि शुभफल मिलता है, कहा है कि—अपूर्वज्ञान ग्रहण, श्रुतकी भक्ति और प्रवचनकी प्रभावना इन तीनों कारणोंसे जीव तीर्थकरण पाता है. भावना-

शब्दसे प्रभावनाशब्दमें 'प्र' यह अक्षर अधिक है, सो युक्त ही है, कारण कि, भावना तो उसके कर्त्ता ही को मोक्ष देती है और प्रभावना तो उसके कर्त्ता तथा दूसरोंको भी मोक्ष देती है.

इसीतरह गुरुका योग होवे तो प्रतिवर्ष जघन्यसे एकबार तो गुरुके पास अवश्यही आलोयणा लेना चाहिये कहा है कि प्रतिवर्ष गुरुके पास आलोयणा लेना, कारण कि-अपनी आत्माकी शुद्धि करनेसे वह दर्पणकी भांति निर्मल होजाती है. आगममें (श्रीआवश्यक-निर्युक्तिमें) कहा है कि, चौमासी तथा संवत्सरीमें आलोयणा तथा नियम ग्रहण करना. वैसेही पूर्व ग्रहण किये हुए अभिग्रह कहकर नवीन अभिग्रह लेना. श्राद्धजीतकल्पआदि ग्रन्थोंमें जो आलोयणा विधि कही है, वह इस प्रकार है:-

पक्खिअचाउम्भासे, वरिसे उक्कोसओ अ बारसहिं ॥

नियमा आलोइज्जा, गीआइगुणस्स भणिअं व ॥१॥

अर्थ:-पक्खी, चौमासी अथवा संवत्सरीके दिन जो न बन सके तो अधिकसे अधिक बारहवर्षमें तो गीतार्थगुरुके पास आलोयणा अवश्य ही लेना चाहिये. कहा है कि:-

सल्लुद्धरणनिमित्तं, खित्तंमी सत्त जोअणसयाइं ॥

काले बारस वरिसा, गीअत्थगवेसणं कुज्जा ॥२॥

अर्थ:-आलोयण लेनेके निमित्त क्षेत्रसे सातसौ योजन क्षेत्रके प्रमाणमें तथा कालसे बारह वर्ष तक गीतार्थगुरुकी गवेषणा करना । आलोयणा देनेवाले आचार्यके लक्षण ये हैं:-

गीतस्थो कडजोगी, चारित्री तह्य गाहणाकुशल ॥

खेअन्नो अविसाई, भणिओ आलोअणायरिओ ॥३॥

अर्थ:-आलोयणा देनेवाले आचार्य गीतार्थ अर्थात् निशीथ-
आदि सूत्रार्थके ज्ञाता, कृतयोगी अर्थात् मन, वचन, कायाके
शुभ योग रखनेवाले अथवा विविध तपस्या करनेवाले, अर्थात्
विविध प्रकारके शुभध्यानसे तथा विशेषतपस्यासे अपने जीव
तथा शरीरको संस्कार करनेवाले, चारित्री अर्थात् निरतिचार
चारित्र पालनेवाले, ग्राहणाकुशल अर्थात् आलोयणा लेनेवालेसे
बहुत युक्तिसे विविध प्रकारके प्रायश्चित्त तथा तप आदि स्वीकार
करानेमें कुशल, खेदज्ञ अर्थात् आलोयणाके लिये दी हुई तपस्या-
आदिमें कितना श्रम पड़ता है ? उसके ज्ञाता अर्थात् आलोयणा
विधिका जिन्होंने बहुतही अभ्याससे ज्ञान प्राप्त किया है,
अविषादी अर्थात् आलोयणा लेनेवालेका महान् दोष सुननेमें
आवे तो भी विषाद न करनेवाले, आलोयणा लेनेवालेको भिन्न २
दृष्टान्त कहकर वैराग्यके वचनसे उत्साह देनेवाले हो ऐसा शास्त्र-
में कहा है ।

आयारवमाहारव, ववहारुवधीलए पकुव्वी अ ॥

अपरिस्सावी निज्जव, अवायदंसी गुरु भणिओ ॥४॥

अर्थ:- १ आचारवान् याने ज्ञानादि पांच आचारको पालन
करनेवाले, २ आधारवान् याने आलोये हुए दोषका यथावत्
मनमें स्मरण रखनेवाले, ३ व्यवहारवान् याने पांच प्रकारका

व्यवहार जानकर प्रायश्चित्त देनेमें सम्यक् रीतिसे वर्त्ताव करने-
 वाले, पांच प्रकारका व्यवहार इस प्रकार है:—१ प्रथम आगम-
 व्यवहार यह केवली, मनःपर्यवज्ञानी, अवधिज्ञानी, चतुर्दश-
 पूर्वी, दशपूर्वी और नवपूर्वीका जानो. २ श्रुतव्यवहार यह आठ-
 से अर्धपूर्वी तकके पूर्वधर, एकादशअंगके धारक तथा निशी-
 थादिक सूत्रके ज्ञाता आदि सर्वश्रुतज्ञानियोंका जानो. ३ आज्ञा-
 व्यवहार यह कि गीतार्थ दो आचार्य दूर २ देशोंमें रहनेसे एक
 दूसरेको मिल न सकें तो वे चुपचाप जो परस्पर आलोचना-
 प्रायश्चित्त देते हैं वह जानो. ४ धारणाव्यवहार याने अपने
 गुरुने जिस दोषका जो प्रायश्चित्त दिया हो वह ध्यानमें रखकर
 उसीके अनुसार दूसरोंको देना. ५ जीतव्यवहार याने सिद्धांत-
 में जिस दोषका जितना प्रायश्चित्त कहा हो, उससे अधिक
 अथवा कम प्रायश्चित्त परम्पराका अनुसरण करके देना. ६
 अपव्रीडक अर्थात् आलोचना लेनेवाला शर्मसे बराबर न कहता
 होवे तो उसको वैराग्य उत्पन्न करनेवाली वार्त्ताएं ऐसी युक्तिसे
 कहे कि, जिसे सुनते ही वह व्यक्ति शर्मका त्यागकर भलीभांति
 आलोचे, ऐसे ५ प्रकुर्वी अर्थात् आलोचना लेनेवालेकी सम्यक्
 रीतिसे शुद्धि करनेवाले. ६ अपरिस्रावी अर्थात् आलोचना दी
 होवे तो दूसरेको न कहनेवाले. ७ निर्यापक अर्थात् जो जितना
 प्रायश्चित्त ले सके उसे उतनाही देनेवाले. ८ अपायदर्शी अर्थात्
 सम्यक् आलोचना और प्रायश्चित्त न करनेवालेको इस भवमें

तथा परभवमें कितना दुःख होता है, वह जाननेवाले; ऐसे आठ गुणवाले गुरु आलोचना देनेमें समर्थ हैं.

आलोचनापरिणओ, सम्मं संपाद्विओ गुरुसगासे ॥

जइ अंतरावि कालं, करिज्ज आराहओ तहवि ॥५॥

अर्थ:— आलोचना लेनेके शुभपरिणामसे गुरुके पास जानेको निकला हुआ भव्यजीव, जो कदाचित् आलोचना लिये बिना बीचमें ही मर जावे, तो भी वह आराधक होता है

आयरिअइ सगच्छे, संभोइअ इअर भीअ पासत्थे ।

सारुवी पच्छाकड, देवय पाडिमा अरिह सिद्धे ॥ ६ ॥

अर्थ:— साधु अथवा श्रावकने प्रथम तो अपने गच्छ ही-के जो आचार्य होवें, उनके पास अवश्य आलोचना लेना । उनका योग न होवे तो अपने गच्छ ही के उपाध्याय, वे भी न हों तो अपने गच्छहीके प्रवर्त्तक, स्थविर अथवा गणावच्छेदक आदिसे आलोचना लेना । अपने गच्छमें उपरोक्त पांचोंका योग न होवे तो संभोगिक- अपनी समाचारीको मिलते हुए दूसरे गच्छमें आचार्य आदि पांचोंमें जिसका योग मिले, उसीसे आलोचना लेना । समाचारीको मिलते हुए परगच्छमें आचार्य आदि-का योग न होवे तो, भिन्नसमाचारीवाले परगच्छमें भी संवेगी आचार्यादिकमें जिसका योग होवे, उससे आलोचना लेना यह भी न बने तो गीतार्थपासत्थाके पाससे आलोचना लेना, वह भी न बने तो गीतार्थसारूपिकसे आलोचना लेना । उसका

भी योग न मिले तो गीतार्थपश्चात्कृतसे आलोचना लेना । श्वेतवस्त्रधारी, मुंडी, लंगोट रहित, रजोहरणआदि न रखने-वाला, ब्रह्मचर्य पालन न करनेवाला, भार्या रहित और भिक्षा-वृत्तिसे निर्वाह करनेवाला सारूपिक कहलाता है, सिद्धपुत्र तो शिखा और भार्या सहित होता है । चारित्र तथा साधु वेष त्यागकर जो गृहस्थ होगया हो वह पश्चात्कृत कहलाता है । ऊपर कहे हुए पासत्थादिकको भी गुरुकी भांति यथाविधि वन्दनाआदि करना । कारण कि, धर्मका मूल विनय है । जो पासत्थादिक अपने आपको गुणरहित माने और इसीसे वह वन्दना न करावे, तो उसे आसन पर बैठाकर प्रणाम मात्र करना, और आलोचना लेना । पश्चात्कृतको तो दो घड़ी सामा-यिक तथा साधुका वेष देकर विधि सहित आलोचना लेना । उपरोक्त पासत्थादिकका भी योग न मिले तो राजगृही नगरी-में गुणशिलादिक चैत्यमें जहां अनेकवार जिस देवताने अरि-हंतगणधरआदि महापुरुषोंको आलोचना देते देखा हो, वहां उस सम्यग्दृष्टिदेवताको अट्टमआदि तपस्यासे प्रसन्न करके उसके पाससे आलोचना लेना । कदाचित् उस समयके देवता-का ज्यवन होगया हो, और दूसरा उत्पन्न हुआ हो तो वह महाबिदेहक्षेत्रमें जा अरिहंत भगवान्को पूछकर प्रायश्चित्त देता है । यह भी न बने तो अरिहंतकी प्रतिमाके सन्मुख आलोचना करके स्वयं ही प्रायश्चित्त अंगीकार करे । अरिहंतप्रतिमाका

भी योग न होवे तो पूर्व अथवा उत्तरदिशाको मुख करके अरि-
हंतों तथा सिद्धोंके समक्ष आलोवे, आलोये बिना कभी न रहे,
कारण कि, शल्य सहित जीव आराधक नहीं कहलाता है ।

अग्गीओ नवि जाणइ, सोहिं चरणस्स देइ ऊणहिअं ।

तो अप्पाणं आलो- अगं च पाडेइ संसारे ॥ ७ ॥

अर्थ:— स्वयं गीतार्थ न होनेसे चरणकी शुद्धिको न जाने
और लगेहुए पापसे कम या ज्यादा आलोयणा देवे और उससे
तो वह पुरुष अपने आपको तथा आलोयणा लेनेवालेको भी
संसारमें पटकता है ।

जह बालो जंपतो, कज्जमकज्जं च उज्जुअं भणई ।

तं तह आलोइज्जा, मायामयविप्पमुक्को अ ॥ ८ ॥

अर्थ:— जैसे बालक बोलता हो, तब वह कार्य अथवा
अकार्य जो हो सो सरलतासे कहता है, वैसे आलोयणा लेनेवाले-
ने माया अथवा मद न रखते अपना पाप साफ साफ कहकर
आलोयण करना ।

मायाइदोसरहिओ, पइसमयं बड्डमाणसंवेगो ।

आलोइज्ज अकज्जं, न पुणो काहति निच्छयओ ॥ ९ ॥

अर्थ:— माया मद इत्यादि दोष न रखकर समय समय
संवेगभावनाकी वृद्धि कर जिस अकार्यकी आलोयणा करे वह
अकार्य फिर कदापि न करे ऐसा निश्चय करे ।

लज्जाइगारवेणं, बहुसुअमएण वावि दुच्चरिअं ।

जो न कहेइ गुरुणं, न हु सो आराइओ भणिओ ॥ १० ॥

अर्थ:— जो पुरुष शर्म आदिसे, रसादिगारवमें लिपटा रहनेसे अर्थात् तपस्या न करनेकी इच्छाआदिसे अथवा मैं बहुश्रुत-हूँ ऐसे अहंकारसे, अपमानके भयसे अथवा आलोचना बहुत आवेगी इस भयसे गुरुके पास अपने दोष कह कर आलोचना न करे वह कदापि आराधक नहीं कहलाता ।

संवेगपरं चित्तं, काकणं तेहिं तेहिं सुतेहिं ।

सल्लाणुद्धरणविचा- गदंसगाईहिं आलोए ॥ ११ ॥

अर्थ:—संवेग उत्पन्न करनेवाले आगमबचनोंकी सूत्रोंका विचार करके तथा श्लोकका उद्धार न करनेके दुष्परिणाम कहने-वाले सूत्र ऊपर ध्यान देकर अपना चित्त संवेग युक्त करना और आलोचना लेना ।

अब आलोचना लेनेवालेके दश दोषोंका वर्णन करते हैं:-

आकंपइत्ता अणुमाणइत्ता जं विट्ठं बायरं व सुहुमं वा ।

छन्नं सदाउलयं, बहुजण अव्वत्त तस्सेवी ॥ १२ ॥

अर्थ:— १ गुरु थोड़ी आलोचना देंगे, इस विचारसे उनको बैयावच्च आदिसे प्रसन्नकर पश्चात् आलोचना लेना, २ गुरु थोड़ी तथा सरल आलोचना देनेवाले हैं, ऐसी आलोचना के आलोचना करना, ३ अपने जिन दोषोंको दूसरोंने देखे हो उन्हींकी आलोचना करना और अन्य गुप्त दोषोंकी न करना

४ सूक्ष्मदोष गिन्तीमें न लेना और केवल बड़े २ दोषोंकी आलोचना लेना, ५ सूक्ष्मकी आलोचना लेनेवाला बड़े दोषोंको नहीं छोड़ता ऐसा बतानेके लिये तृणग्रहणादि सूक्ष्म दोषकी मात्र आलोचना लेना और बड़े बड़ेकी न लेना । ६ छन्न याने प्रकटशब्दसे आलोचना न करना, ७ शब्दाकुल याने गुरु भली भाँति न जान सकें ऐसे शब्दाडंबरसे अथवा आसपासके लोग सुनने पाँ ऐसी रीतिसे आलोचना करना, ८ जो कुछ आलोचना करना हो वह अथवा आलोचना ली हो उसे बहुतसे लोगोंको सुनावें, ९ अव्यक्त याने जो छेदग्रंथको न जानते हो ऐसे गुरुके पास आलोचना करना और १० लोकनिन्दाके भयसे अपने ही समान दोष सेवन करनेवाले गुरुके पास आलोचना करना । ये दश दोष आलोचना लेनेवालेने त्याग देना चाहिये ।

सम्यक् प्रकारसे आलोचना करनेमें निम्नाङ्कित गुण हैं:—

लघु आल्हाई जणणं, अप्पपरनिवत्ति अज्जवं सोही ॥

दुकरकरणं आणा, निस्सहसं च सोदिगुणा ॥१३॥

अर्थ:—जैसे बोझा उठानेवालेको, बोझा उतारनेसे शरीर हलका लगता है, वैसेही आलोचना लेनेवालेको भी शल्य निकाल डालनेसे अपना जीव हलका लगता है, २ आनन्द होता है, ३ अपने तथा दूसरोंके भी दोष टलते हैं, याने आप आलोचना लेकर दोष मुक्त होता है यह बात प्रकटही है, तथा उसे देखकर दूसरे भी आलोचना लेनेको तैयार होते हैं जिससे

उनके भी दोष दूर होजाते हैं. ४ भलीभांति आलोचना करनेमें सरलता प्रकट होती है. ५ अतिचाररूप मल धुल जानेसे आत्माकी शुद्धि होती है, ६ आलोचना लेनेसे दुष्कर कृत्य किया ऐसा भास होता है. कारण कि अनादिकालसे दोष-सेवनका अभ्यास पड गया है. परन्तु दोष करनेके बाद उनकी आलोचना करना यह दुष्कर है. कारण कि, मोक्ष तक पहुँचे ऐसे प्रबल आत्मवीर्यके विशेष उल्लासहीसे यह काम बनता है. निशश्चिचूर्णमें भी कहा है कि--जीव जिम दोषका सेवन करता है वह दुष्कर नहीं; परन्तु सम्यक् रीतिसे आलोचना करनाही दुष्कर है. इसीलिये सम्यक् आलोचना अभ्यन्तरतपमें गिनी है, और इसीसे वह मासखमणआदिसं भी दुष्कर है. लक्षणा-साध्वी आदिकी ऐसी बात सुनते हैं कि:-

इस चौबीसीसे अतीतकालकी अस्सीवीं चौबीसीमें एक बहुपुत्रवान राजाको सैकड़ों मानतासे एक कन्या हुई. स्वयंवर-मंडपमें उसका विवाह हुआ, परन्तु दुर्दैवसे चौराँके अन्दरही पतिके मरजानेसे विधवा होगई. पश्चात् वह सम्यक्प्रकारसे शील पालनकर सतीस्त्रियोंमें प्रतिष्ठित हुई और जैनधर्ममें बहुतही तत्पर होगई. एक समय उस चौबीसीके अंतिम अरि-हंतने उसे दीक्षा दी. पश्चात् वह लक्षणा नामसे प्रसिद्ध हुई. एक समय चिडा चिडियाका विषयसंभोग देखकर वह मनमें विचार करने लगी कि, "अरिहंत महाराजने चारित्र्यवन्तोंको

विषयभोगकी अनुमति क्यों न दी ? अथवा वे स्वयं वेद रहित होनेसे वेदका दुःख नहीं जानते。” इत्यादि मनमें चिन्तन करने के क्षणभरमें वह सचेत हो पश्चात्ताप करने लगी। उसे लज्जा उत्पन्न हुई कि ‘अब मैं आलोचना किस प्रकार करूंगी ?’ तथापि शल्य रखनेमें किसी प्रकार भी शुद्धि नहीं, यह बात ध्यानमें ले उसने अपने आपको धीरज दी, और वह वहाँसे निकली। इतनेमें अचानक पगमें एक कांटा लगा। जिससे अप-शकुन हुवा समझ वह मनमें झुंझलाई, और ‘जो ऐसा बुरा चिन्तन करता है, उसका क्या प्रायश्चित्त ?’ इस तरह अन्य किसी अपराधीके मिषसे पूछकर उसने आलोचना ली, परन्तु लज्जाके मारे और बडप्पनका भंग होनेके भयसे अपना नाम प्रकट किया नहीं। उस दोषके प्रायश्चित्तरूपमें उसने पचास वर्ष तक उग्र तपस्या करी। कहा है कि—विगय रहित होकर छट्ठ, अट्ठम, दशम (चार उपवास) और दुवालय (पांच उपवास) यह तपस्या दस वर्ष; उपवास सहित दो वर्ष; भोजनसे दो वर्ष; मासखमण तपस्या सोलह वर्ष और आंबिल तपस्या बीस वर्ष। इस तरह लक्षणासाध्वीने पचास वर्ष तक तपस्या करी। यह तपस्या करते उसने प्रतिक्रमणआदि आवश्यक क्रियाएं नहीं छोड़ीं। तथा मनमें किंचित् मात्रभी दीनता न लाई। इस प्रकार दुष्कर तपस्या करी तो भी वह शुद्ध न हुई। अन्तमें उसने आर्तध्यानमें काल किया। दासीआदि असंख्य-

भवोंमें बहुत कठिन दुःख भोगकर अन्तमें श्रीपद्मनाभतीर्थकरके तीर्थमें वह सिद्धिको प्राप्त होंगेगी. कहा है कि- शल्यवाला जीव चाहे दिव्य हजार वर्ष पर्यन्त अत्यन्त उग्र तपस्या करे, तो भी शल्य होनेसे उसकी उक्त तपस्या बिलकुल निष्फल है. जैसे अति-कुशल वैद्यभी अपना रोग दूसरे वैद्यको कहकरही निरोग होता है, वैसेही ज्ञानीपुरुषके शल्यका उद्धार भी दूसरे ज्ञानीके द्वारा ही होता है.

७ आलोचना लेनेसे तीर्थकरोंकी आज्ञा आराधित होती है. ८ निःशल्यपना प्रकट होता है. उत्तराध्ययनसूत्रके उन्तीसवें अध्ययनमें कहा है कि-हे भगवन्त ! जीव आलोचना लेनेसे क्या उत्पन्न करता है ?

उत्तर-- कजुभावको पाया हुआ जीव अनन्तसंसारको बढ़ानेवाले मायाशल्य, नियाणशल्य और मिथ्यादर्शनशल्य इन तीनों प्रकारके शल्योंसे रहित निष्कपट हो स्त्रीवेद तथा नपुंसक-वेदको नहीं बांधता और पूर्वमें बांधा होवे तो उसकी निर्जरा करता है. आलोचनाके उक्त आठ गुण हैं.

अतिशय तीव्रपरिणामसे किया हुआ, बड़ा तथा निका-चित हुआ, बालहत्या, स्त्रीहत्या, यतिहत्या, देव ज्ञान इत्यादिक-के द्रव्यका भक्षण, राजाकी स्त्रीके साथ गमन इत्यादि महापाप-की सम्यक् प्रकारसे आलोचना कर गुरुका दिया हुआ प्रायश्चित्त यथाविधि करे तो वह जीव उसी भवमें शुद्ध होजाता है ऐसा

(७३२)

न होता तो दृढग्रहारीआदिको उसी भवमें मुक्ति किस प्रकार होती ? अतएव प्रत्येकचातुर्मासमें अथवा प्रतिवर्ष अवश्य आलोचना लेना चाहिये.

इति श्रीरत्नशेखरसूगिविरचित-

श्राद्धविधिकौमुदीकी हिन्दीभाषाका वर्षकृत्यनामक

पंचमः प्रकाशः सम्पूर्णः



प्रकाश ६, जन्मकृत्य.

(प्रथम द्वार)

जन्ममं वासठाणं,

निवर्गगसिद्धीइ कारणं उचिअं ॥

उचिअं विज्जागहणं,

पाणिग्गहणं च मित्ताई ॥१२॥

संक्षिप्तार्थः—जन्ममें त्रिवर्ग अर्थात् धर्म, अर्थ और काम इन तीनों वर्गोंकी साधना हो सके ऐसा १ निवासस्थान, २ विद्या सम्पादन, ३ पाणिग्रहण और ४ मित्रादिक करना उचित है. ॥१२॥

विस्तारार्थः—१ जन्मरूप बन्दीगृहमें प्रथम निवासस्थान उचित लेना. कैसा उचित सो विशेषणसे कहते हैं. जिससे त्रिवर्गकी अर्थात् धर्मार्थकामकी सिद्धि याने उत्पत्ति हो ऐसा. तात्पर्य यह है कि, जहां रहनेसे धर्म, अर्थ और काम सधें, वहां श्रावकने रहना चाहिये. अन्य जगह न रहना. कारण कि, वैसा करनेसे इसभवसे तथा परभवसे भ्रष्ट होनेकी सम्भावना है. कहा है कि—भीललोगोंकी पल्लीमें, चोरोंके स्थानमें, पहाड़ी-लोगोंकी बस्तीमें और हिंसक तथा दुष्ट लोगोंका आश्रय करने-वाले लोगोंके पास अच्छे मनुष्योंने न रहना चाहिये. कारण कि कुसंगति सज्जनोंको एव लगानेवाली है. जिस स्थानमें रहने-

से मुनिराज अपने यहां पधारें, तथा जिन-मंदिर समीप होवे, आसपास श्रावकोंकी वस्ती होवे ऐसे स्थानमें गृहस्थने रहना चाहिये. जहां बहुतसे विद्वान् लोग रहते हों, जहां शील प्राणसे भी अधिक प्यारा गिना जाता हो, और जहांके लोग सदैव धर्मिष्ठ रहते हों, वहां ही भले मनुष्योंने रहना चाहिये. कारण कि, सत्पुरुषोंकी संगति कल्याणकारी है. जिस नगरमें जिनमंदिर, सिद्धान्त ज्ञानी साधु और श्रावक हों तथा जल और ईधन भी बहुत हो, वहीं नित्य रहना चाहिये.

तीनसौ जिनमंदिर तथा धर्मिष्ठ, सुशील और सुजान श्रावकआदिसे सुशोभित, अजमेरके समीप हर्षपुर नामक एक श्रेष्ठ नगर था. वहांके निवासी अट्टारह हजार ब्राह्मण और उनके छत्तीस हजार शिष्य बड़े २ श्रेष्ठी श्रीप्रियग्रन्थसूत्रिके नगरमें पधारने पर प्रतिबोधको प्राप्त हुए. उत्तमस्थानमें रहनेसे धनवान्, गुणी और धर्मिष्ठ लोगोंका समागम होता है. और उससे धन, विवेक, विनय, विचार, आचार, उदारता, गंभीरता, धैर्य, प्रतिष्ठाआदि गुण तथा सर्वप्रकारसे धर्मकृत्य करनेमें कुशलता प्रायः विनाही प्रयत्नके प्राप्त होती है. यह बात अभी भी स्पष्ट दृष्टिमें आती है. इसलिये अतः प्रान्त गामडे (ग्राम) इत्यादिमें धनप्राप्ति आदिसे सुखपूर्वक निर्वाह होता हो तो भी न रहना चाहिये. कहा है कि-जहां जिन जिनमंदिर और संघका मुखकमल ये तीन वस्तुएं दृष्टिमें नहीं आतीं, वैसेही जिन-

वचन सुननेमें नहीं आता; वहां अपार संपदा हो तो भी वह किस कामकी ? जो तुझे मूर्खताकी आवश्यकता होवे तो तू गामडेमें तीन दिन रह. कारण कि, वहां नया अध्ययन नहीं होता, और पूर्वमें पढ़ा हुआ हो वह भी विस्मरण होजाता है.

ऐसा सुनते हैं कि -किसी नगरका निवासी एक वणिक् थोड़ेसे वणिकोंकी बसतिवाले एक देहातमें जाकर द्रव्यलाभके निमित्त रहने लगा. खेती तथा अन्य बहुतसे व्यापार कर उसने धन उपार्जन किया. इतनेमें उसके रहनेका धासका झोंपड़ा जल गया. इसी प्रकार बार २ धन उपार्जन करने पर भी किसी समय डाका, तो किसी समय दुष्काल, राजदंडआदिसे उसका धन चला गया. एक समय उस गांवके रहनेवाले चोरोंने किसी नगरमें डाका डाला, जिससे राजाने क्रोधित हो वह गांव जला दिया, और सुभटोंने श्रेष्ठीके पुत्रादिकोंको पकड़ा. तब श्रेष्ठी सुभटोंके साथ लड़ता हुआ मारा गया. कुग्रामवासका ऐसा फल होता है। रहनेका स्थान उचित हो, तो भी वहां स्वचक्र, परचक्र, विरोध, दुष्काल, महामारी, अतिवृष्टिआदि, प्रजाके साथ कलह, नगरका नाश इत्यादि उपद्रवसे अस्वस्थता उत्पन्न हुई हो तो, वह स्थान शीघ्र छोड़ देना चाहिये. ऐसा न करनेसे प्रायः धर्मार्थकामकी हानि होजाती है. जैसे यवनलोगोंने देहली-शहर नष्ट कर दिया, उस समय भयसे जिन्होंने देहली छोड़ दी और गुजरातआदिदेशोंमें निवास किया उन्होंने अपने धर्म,

अर्थ, कामकी पुष्टि करके यह भव तथा परभव सकल किया; और जिन्होंने देहली नहीं छोड़ी, उन लोगोंने वंदीगृहमें पडना आदि उपद्रव पाकर अपने दोनों भव पानीमें गुमाये. नगरका विनाश होने पर स्थान त्यागनेके विषयमें क्षितिप्रतिष्ठितपुर, चणकपुर, ऋषभपुरआदिके उदाहरण विद्यमान हैं. सिद्धांतमें कहा है कि क्षितिप्रतिष्ठित, चणकपुर, ऋषभपुर, कुशाग्रपुर, राजगृह, चम्पा, पाटलीपुत्र इत्यादि एकही राजाकी नई नई राजधानीके नाम है ।

यहां तक रहनेका स्थान याने नगर, ग्राम आदिका विचार किया. घर भी रहनेका स्थान कहलाता है अतएव अब उसका विचार करना चाहिये. अच्छे मनुष्योंने अपना घर वहां बनाना जहां कि अच्छेही मनुष्योंका पडौस हो. बिलकुल एकांतमें नहीं बनाना. शास्त्रोक्त विधिके अनुसार परिमितद्वारआदि गुण जिस घरमें होवे, वह घर धर्म, अर्थ, और कामका साधनेवाला होनेसे रहनेको उचित है. खराब पडौसियोंको शास्त्रमें निषिद्ध किया है. यथा:-वेश्या, तिर्यचयोनिके प्राणी, कोतवाल, बौद्धआदिके साधु, ब्राह्मण, स्मशान, बाघरी, शिकारी, कारागृहका अधिकारी (जेलर), डाकू, भील, कहार, जुगारी, चोर, नट, नर्तक, भट्ट, भांड और कुकर्म करनेवाले इतने लोगोका पडौस सर्वथा त्याज्य है. तथा इनके साथ मित्रता भी न करना चाहिये. वैसेही देवमंदिरके

पास घर हो तो दुःख होता है, बाजारमें हो तो हानि होती है और ठग अथवा प्रधानके पास हो तो पुत्र तथा धनका नाश होता है. अपने हितके चाहनेवाले बुद्धिशालीपुरुषको चाहिये कि, मूर्ख, अधर्मी, पाखंडी, पातित चोर, रोगी, क्रोधी, चांडाल, अहंकारी, गुरुपत्नीको भोगनेवाला, वैरी, अपने स्वामीको ठगने वाला, लोभी और मुनिहत्या, स्त्रीहत्या अथवा बालहत्या करने वाला इनके पड़ोसको त्यागे. कुशीलआदि पड़ोसी होवें तो उनके वचन सुननेसे तथा उनकी चेष्टा देखनेसे मनुष्य सद्गुणी हो, तो भी उसके गुणकी हानि होती है. पड़ोसिनने जिसे स्त्रीर सम्पादन करके दी उस संगमनामक शालिभद्रके जीवको उत्तम पड़ोसीके दृष्टान्तके स्थानमें तथा पर्वके दिन मुनिको बहोराने-वाली पड़ोसिनके सास श्वसुरको झूठमूठ समझानेवाली सोमभद्रकी स्त्रीको खराब पड़ोसिनको दृष्टान्तस्थानमें जानो.

अतिशय प्रकटस्थानमें घर करना ठीक नहीं. कारण कि, आसपास दूसरे घर न होनेसे तथा चारों ओर मैदान होनेसे चोरआदि उपद्रव करते हैं. अतिशय धनी बसतिवाले गुप्त-स्थानमें भी घर होना ठीक नहीं. कारण कि, चारों तरफ दूसरे घरोंके होनेसे उस घरकी शोभा चली जाती है. वैसेही आग-आदि उपद्रव होने पर झटसे अन्दर जाना व बाहर आना कठिन होजाता है. घरके लिये शल्य, भस्म, खात्रआदि दोषोंसे रहित तथा निषिद्धआयसे रहित ऐसा उत्तम स्थान होना चाहिये.

इसी प्रकार दुर्वा, वृक्षांकुर, डाभके मुच्छेआदि जहां बहुत हों तथा सुन्दर रंग व उत्तम गंधयुक्त माटी, मधुर जल तथा निधानआदि जिसमें हों, ऐसा स्थान होना चाहिये. कहा है कि-उष्णकालमें ठंडे स्पर्शवाली तथा शीतकालमें गरम स्पर्शवाली तथा वर्षाकालमें समशीतोष्ण स्पर्शवाली भूमि सबको सुखकारी है. एक हाथ गहरी भूमि खोदकर पीछी उसी माटीसे उसे पूर देना चाहिये. जो माटी बढ जावे तो श्रेष्ठ, बराबर होवे तो मध्यम और घट जावे तो उस भूमिको अधम जानो. जिस भूमिमें गड्ढा खोदकर जल भरा होवे तो वह जल सौ पग जावें तब तक उतना ही रहे तो वह भूमि उत्तम है. एक अंगुल कम होजावे तो मध्यम और इससे अधिक कम होजावे तो अधम जानो. अथवा जिस भूमिके गड्ढेमें रखे हुए पुष्प दूसरे दिन वैसे ही रहें तो उत्तम, आधे सूख जावें तो मध्यम और सब सूख जावें तो उस भूमिको अधम जानो. जिस भूमिमें बोया हुआ डांगरआदि धान्य तीनदिनमें ऊग जावे वह श्रेष्ठ, पांचदिनमें ऊगे वह मध्यम और सातदिनमें ऊगे उस भूमिको अधम जानो. भूमि बल्मीकवाली हो तो व्याधि, पोली होय तो दारिद्र्य, फटी हुई हो तो मरण, और शल्यवाली हो तो दुःख देती है. इसलिये शल्यकी बहुतही प्रयत्नसे तपास करना, मनुष्यकी हड्डी-आदि शल्य निकले तो उससे मनुष्यहीकी हानि होती है, गदहेका शल्य निकले तो राजादिकसे भय उत्पन्न होता है, कुत्तेका

शल्य निकले तो बालकका नाश होवे. बालकका शल्य निकले तो घरधनी देशाटनको जावे, गाय अथवा बैलका शल्य निकले तो गाय बैलका नाश होवे और मनुष्यके केश, कपाल, भस्म-आदि निकले तो मृत्यु होती है इत्यादि.

पहिला और चौथा प्रहर छोड़कर दूसरे अथवा तीसरे प्रहरमें घर पर आनेवाली वृक्ष अथवा ध्वजाआदिकी छाया निरन्तर दुःखदायी हैं. अरिहंतकी पीठ, ब्रह्मा और विष्णुकी बाजू, चंडिका और सूर्यकी दृष्टि तथा महादेवका उपरोक्त सर्व (पीठ, बाजू, और दृष्टि) छोड़ना. वासुदेवका वाम अंग, ब्रह्माका दाहिना अंग, निर्माल्य, न्हवणजल, ध्वजाकी छाया, विलेपन, शिखरकी छाया और अरिहंतकी दृष्टि ये श्रेष्ठ हैं. इसी प्रकार कहा है कि--अरिहंतकी पीठ, सूर्य और महादेवकी दृष्टि व वासुदेवका बायां भाग छोड़ देना चाहिये. घरकी दाहिनी ओर अरिहंतकी दृष्टि पडती होवे और महादेवकी पूठ बाईं ओर पडती होवे तो कल्याणकारी है. परन्तु इससे विपरीत होवे तो बहुत दुःख होता है, उसमें भी बीचमें मार्ग हो तो कोई दोष नहीं. नगर अथवा ग्राममें ईशानादिकोणदिशाओंमें घर न करना चाहिये. यह उत्तमजातिके मनुष्यको अशुभकारी है; परन्तु चांडालआदि नीचजातिको ऋद्धिकारी है. रहनेके स्थानके गुण तथा दोष, शकुन, स्वप्न, शब्दआदिके बलसे जानना चाहिये.

उत्तम स्थान भी उचित मूल्य देकर तथा पडौसीकी सम्मति-
 आदि लेकर न्यायहीसे ग्रहण करना चाहिये. किन्तु किसीका
 पराभवआदि करके कभी न लेना चाहिये. क्योंकि इससे धर्मार्थ-
 कामके नाश होनेकी सम्भावना है. इसी प्रकार ईंट, लकड़ी,
 पत्थर इत्यादि वस्तुएं भी दोष रहित, मजबूत हो वे ही उचित
 मूल्य देकर लेना अथवा मंगाना चाहिये. ये वस्तुएं भी बेचने-
 वालेके यहां तैयार की हुई लेना, परन्तु खास तौर पर अपने
 लिये ही तैयार न करवाना चाहिये. कारण कि, उससे महा-
 आरम्भआदि दोष लगना सम्भव है उपरोक्त वस्तुएं जिन-
 मंदिरआदिकी होवें तो न लेना. कारण कि उससे बहुतही
 हानि होती है. ऐसा सुनते हैं कि, दो वणिक पडौसी थे. उनमें
 एक धनिक था, वह दूसरेका पद पद पर पराभव करता था.
 दूसरा दरिद्री होनेके कारण जब किसी प्रकार उसका नुकसान
 न कर सका तब उसने उसका घर बंध रहा था उस समय
 चुपचाप एक जिनमंदिरका पडा हुआ ईंटका टुकड़ा उसकी
 भीतमें रख दिया. घर बनकर तैयार हुआ तब दरिद्री पडौसीने
 श्रीमन्त पडौसीको यथार्थ बात कह दी. तब श्रीमन्त पडौसीने
 कहा कि, "इसमें क्या दोष है ?" ऐसी अवज्ञा करनेसे विद्यु-
 त्पातआदि होकर उसका सर्वनाश होगया. कहा है कि-जिन-
मंदिर, कुआ, बावडी, स्मशान, मठ और राजमंदिरका सरसों
बराबर भी पत्थर ईंट काष्ठआदि न लेना चाहिये.

पाषाणमय स्तंभ, पीठ, पाट्टिये, वारसाख इत्यादि वस्तुएं गृहस्थको हानि कारक हैं, परन्तु वे धर्मस्थानमें शुभ हैं. पाषाण-मय वस्तु ऊपर काष्ठ और काष्ठमय वातुके ऊपर पाषाणके स्तंभ आदि घर अथवा जिनमंदिरमें कभी न रखना. हलका काष्ठ, घाणी, शकट (गाड़ा) आदि वस्तुएं तथा रहेंट आदि यंत्र ये, सब काटिवाले वृक्ष, बड़आदि पांच ऊंवर तथा जिनमेंसे दूध निकलता हो ऐसे आकआदिकी लकड़ी काममें न लेना. और बीजोरी, केल, अनार, नींबू, दोनों जातिकी हलदी, इमली, बबूल, वार, धतूरा इनके काष्ठ भी निरुपयोगी हैं. जो ऊपरोक्त वृक्षकी जड़ें पट्टासे घरकी भूमिमें घुसें, अथवा इन वृक्षोंकी छाया घरके ऊपर आवे तो उस घरधनीके कुलका नाश होता है. घर पूर्वभागमें ऊंचा होवे तो धनका नाश होता है, दक्षिणभागमें ऊंचा होवे तो धनकी समृद्धि होती है, पश्चिमभागमें ऊंचा हो तो वृद्धि होती है और उत्तरदिशामें ऊंचा होवे तो शून्य होजाता है. गोलाकार, अधिककोणयुक्त अथवा एक, दो या तीन कोण-वाला, दाहिनी तथा बाई ओर लंबा ऐसा घर रहनेके योग्य नहीं. जो किमाड अपने आपही बंद होजावें अथवा खुल जावें वे अच्छे नहीं हैं; घरके मुख्यद्वारमें चित्रमयकलशादिककी विशेष शोभा उत्तम कही जाती है. जिन चित्रोंमें योगिनीके नृत्यका आरम्भ, महाभारत रामायणमेंका अथवा दूसरे राजाओं-का संग्राम, ऋषि अथवा देवके चरित्र होवें वे चित्र घरमें उत्तम

नहीं। फले हुए वृक्ष, फुलकी लताएं, सरस्वती, नवनिधानयुक्त लक्ष्मी, कलश, बधाई, चतुर्दश स्वप्नकी श्रेणीआदि चित्र शुभ हैं, जिस घरमें खजूर, दाडिम, केल, बोर, अथवा बीजोरी इनके वृक्ष उगते हैं, उस घरका समूल नाश होता है। घरमें जिनमेंसे दूध निकले ऐसा वृक्ष हो तो वह लक्ष्मीका नाश करता है, कंटीलावृक्ष होवे तो शत्रुसे भय उत्पन्न करता है, फलवाला होवे तो संततिका नाश करता है, इसलिये इनकी लकड़ी भी घर-आदि बनानेके काममें न लेना। कोई २ ग्रंथकार कहते हैं कि, घरके पूर्वभागमें बड़वृक्ष, दक्षिणभागमें उंबर, पश्चिमभागमें पीपल और उत्तरभागमें प्लक्षवृक्ष शुभकारी है।

घरके पूर्वभागमें लक्ष्मीका घर (भंडार), आग्नेयकोणमें रसोई घर, दक्षिणभागमें शयनगृह, नैऋत्यकोणमें आयुध-आदिका स्थान, पश्चिमदिशामें भोजन करनेका स्थान, वायव्य-कोणमें धान्यागार (धान्यके कोठे) उत्तरदिशामें पानी रख-नेका घर और ईशानकोणमें देवमंदिर बनाना चाहिये। घरके दक्षिणभागमें अग्नि, जल, गाय, वायु और दीपक, इनके स्थान करना और उत्तर तथा पश्चिमभागमें भोजन, द्रव्य, धान्य और देवके स्थान बनाना चाहिये। घरके द्वारकी अपेक्षा-से अर्थात् जिस दिशामें घरका द्वार हो वह पूर्व दिशा व उसी-के अनुसार अन्य दिशाएं जानो, छींककी भांति यहां भी सूर्यो-दयसे पूर्वदिशा नहीं मानना चाहिये। इसी प्रकार घर बनाने-

वाले सुतार तथा अन्य मनुष्य (मजदूर) उनको ठेरावसे अधिक भी देकर प्रसन्न रखना, उनको कभी ठगना नहीं। जितने-में अपने कुटुम्बादिकका सुखपूर्वक निर्वाह होजाय, और लोक-में भी शोभादि हो, उतना ही विस्तार (लंबाई चौड़ाई) घर बंधानेमें करनी चाहिये. संतोष न रखकर अधिकाधिक विस्तार करनेसे व्यर्थ धनका व्यय और आरंभआदि होता है। उपरोक्त कथनानुसार घर भी परिमित द्वारवाला ही चाहिये। कारण कि, बहुतसे द्वार होवें तो दुष्टलोगोंके आनेजानेकी खबर नहीं रहती और उससे स्त्री, धनआदिके नाश होनेकी सम्भावना है. परिमितद्वारोंके भी पाटिये, उलाले, सांकल, कुन्देआदि बहुत मजबूत रखना चाहिये; जिससे घर सुरक्षित रहता है. किवाड भी सहजमें खुल जाय व बन्द होजाय ऐसे चाहिये; अन्यथा अधिकाधिक जीव विराधना होवे और जाना आना इत्यादिक कार्य भी जितना शीघ्र होना चाहिये उतना शीघ्र नहीं हो सके. भीतमें रहनेवाली भागल किसी प्रकार भी अच्छी नहीं. कारण कि उससे पंचेन्द्रिय प्रमुख जीवकी भी विराधना होना सम्भव है. किवाड बन्द करते समय जीवजन्तु-आदि भलीभांति देखकर बन्द करना चाहिये. इसीप्रकार पानीकी परनाल, खाल (मोरी) इत्यादिकी भी यथाशक्ति यतना रखना चाहिये. घरके द्वार परिमित रखना इत्यादिक विषय शास्त्रमें भी कहा है.

जिस घरमें वेध (छिद्र) आदि दोष न होवें, सम्पूर्ण दल (पाषाण, ईंट और काष्ठ) नया होवे, अधिक द्वार न होवें, धान्यका संग्रह होवे, देवकी पूजा होती होवे, आदरसे जलआदिका छिटकाव होता हो, लाल परदा हो, झाडना पोंछनाआदि संस्कार सदैव होते हों, छोटे बड़ेकी मर्यादा भली-भांति पालन की जाती हो, सूर्यकी किरणें अन्दर प्रवेश न करती हों, दीपक प्रकाशित रहती हो, रोगियोंकी सूश्रूषा भलीभांति होती हो और थके हुए मनुष्यकी थकावट दूर की जाती हो, उस घरमें लक्ष्मी निवास करती है. इस प्रकार देश, काल, अपना धन तथा जातिआदिको उचित हो ऐसे बंधाये हुए घरको यथा-विधि स्नात्र, साधर्मिवात्सल्य संघपूजाआदि करके श्रावकने काममें लेना चाहिये. शुभ मुहूर्त, तथा शकुनआदिका बल भी घर बंधवाने तथा उसमें प्रवेश करनेके अवसर पर अवश्य देखना चाहिये. इस प्रकार यथाविधि बंधाये हुए घरमें लक्ष्मीकी वृद्धि-आदि होना दुर्लभ नहीं.

ऐसा सुनते हैं कि, उज्जयिनीनगरमें दांताक नामक श्रेष्ठी-ने अठ्ठारह करोड स्वर्णमुद्राएं खर्च करके वास्तुशास्त्रमें कड़ी हुई रीतिके अनुसार एक सात मंजिलवाला महल तैयार कराया. उसके तैयार होनेमें बारह वर्ष लगे थे. जब दांताक उस महलमें रहने गया, तब रात्रिमें 'पहूं क्या ? पहूं क्या ?' ऐसा शब्द उसके सुननेमें आया. इससे भयभीत हो उसने मूल्यके अनुसार

धन लेकर उक्त महल विक्रमराजाको दे दिया. विक्रमराजा उस महलमें गया और “पहूँ क्या ? पहूँ क्या ?” यह शब्द सुनतेही उसने कहा “पड़” इतनेहीमें तुरन्त सुवर्णपुरुष पड़ा. इत्यादि. इसी तरह विधिके अनुसार बनवाये व प्रतिष्ठा किये हुए श्रीमुनिसुब्रतस्वामीकी थूभकी महिमासे कोणिक राजा प्रबलसेनाका धनी था, तथापि उस विशाला नगरीको बारह वर्षमें भी न ले सका. भ्रष्ट हुए कूलवालुकसाधुके कहने परसे जब उसने गिरवा दिया तब उसीसमय उसने नगरी अपने आधीन करली. इसी प्रकार याने घरकी युक्तिके अनुसार दूकान भी उत्तम पडौस देखकर, न अधिकप्रकट, न अधिकगुप्त ऐसे स्थानमें परिमितद्वारवाली पूर्वोक्तविधिके अनुसारही बनाना उचित है. कारण कि, उसीसे धर्म, अर्थ और कामकी सिद्धि होती है.

द्वितीय द्वार—

‘त्रिवर्गसिद्धिका कारण’ इस पदका सम्बन्ध दूसरे द्वारमें भी लिया जाता है, इससे ऐसा अर्थ होता है कि, धर्म, अर्थ और काम इन तीनोंकी सिद्धि जिसमें होती हो, उन विद्याओंका याने लिखना, पढ़ना, व्यापार इत्यादि कलाओंका ग्रहण अर्थात् अध्ययन उत्तमप्रकारसे करना. कारण कि, जिसको कलाओंका शिक्षण न मिला हो, तथा उनका अभ्यास जिसने न किया हो, उसको अपनी मूर्खतासे तथा हास्यप्रदअवस्थासे पद पद पर तिरस्कार सहना पड़ता है जैसे कि, कालीदासकवि प्रथम तो

गायें चरानेका धन्धा करता था. एक समय राजसभामें उसने 'स्वस्ति' ऐसा कहनेके स्थानमें 'उशरट' ऐसा कहा, इससे उसका बड़ा तिरस्कार हुआ. पश्चात् देवताको प्रसन्न करके वह महान् पंडित तथा कवि हुआ. ग्रन्थ सुधारनेमें, चित्रसभादर्शनादिक-कृत्योंमें जो कलावान् होवे; वह परदेशी होने पर भी वसुदेवा-दिककी भांति सत्कार पाता है. कहा है कि--पंडिताई और राजापना ये दोनों समान नहीं है. कारण कि, राजा केवल अपने देशहीमें पूजा जाता है, और पंडित सर्वत्र पूजा जाता है.

सर्व कलाएं सीखना चाहिये. कारण कि, देशकालआदि-के अनुसार सर्वकलाओंका विशेष उपयोग होना सम्भव है. ऐसा न करनेसे कभी २ मनुष्य गिरीदशामें आ जाता है. कहा है कि-सट्टपट्ट भी सीखना, कारण कि, सीखा हुआ निष्फल नहीं जाता. सट्टपट्टके प्रसादहीसे गोल (गुड) और तुंबड़ा खाया जाता है. सब कलाएं आती हों तो पूर्वोक्त आजीविकाके सात उपायोंमेंके एकाध उपायसे सुखपूर्वक निर्वाह होता है तथा समय पर समृद्धिआदि भी मिलती है. सर्वकलाओंका अभ्यास करनेकी शक्ति न होवे तो, श्रावकपुत्रने जिससे इस लोकमें सुखपूर्वक निर्वाह होवे और परलोकमें शुभगति होवे ऐसी किसी एककलाका तो सम्यक्प्रकारसे अभ्यास अवश्य करना चाहिये. कहा है कि-श्रुतरूप समुद्र अपार है, आयुष्य थोड़ा

है, वर्तमानके जीव चुद्रबुद्धि हैं। इसलिये ऐसा कुछ तो भी सीखना चाहिये कि जो थोड़ा हो, और इष्टकार्य साध सके उतना हो। इसलोकमें उत्पन्न हुए मनुष्यने दो बातें अवश्य सीखना चाहिये। एक तो वह कि, जिससे अपना निर्वाह होय, और दूसरी वह कि, जिससे मरनेके अनन्तर सद्गति प्राप्त हो। निंघ और पापमय कार्यसे निर्वाह करना अनुचित है। मूलगाथा-में 'उचित' पद है, इसलिये निंघ तथा पापमय व्यापारका निषेध हुआ ऐसा समझना चाहिये।

तृतीय द्वार—

पाणिग्रहण याने विवाह, यह भी त्रिवर्ग अर्थात् धर्म, अर्थ और कामकी सिद्धिका कारण है, इसलिये योग्यरीतिसे करना चाहिये। विवाह अपनेसे पृथक्गोत्रमें उत्पन्न तथा कुल, सदा-चार, शील, रूप, वय, विद्या, संपत्ति, वेष, भाषा, प्रतिष्ठाआदिसे अपनी समानताके हों उन्हींके साथ करना चाहिये। शीलआदि समान न हों तो, परस्पर अवहेलना, कुटुम्बमें कलह, कलंक इत्यादिक होते हैं। जैसेकि पौतनपुरनगरमें श्रीमतीनामक एक श्रावक-कन्याने सादर किसी अन्यधर्मावलम्बी पुरुषके साथ विवाह किया था। वह धर्ममें बहुत ही दृढ़ थी। परन्तु उसके पतिको परधर्मी होनेसे उसपर अनुराग नहीं रहा। एक समय पतिने घरके अंदर एकघड़ेमें सर्प रखकर श्रीमतीको कहा कि, अमुक घड़ेमेंसे पुष्पमाला निकाल ला। जब श्रीमती लेने गई तो नव-

कार स्मरणके प्रभावसे सर्पकी पुष्पमाला होगई. पश्चात् श्रीमतीके पतिआदि सब लोग श्रावक होगये. दोनोंके कुलशीलआदि समान होवें तो उत्कृष्ट सुख, धर्म तथा बडप्पनआदि मिलता है. इस विषयमें पेथड श्रेष्ठी तथा प्रथमिणी स्त्रीका उदाहरण विद्यमान है.

सामुद्रिकादिक शास्त्रोंमें कहे हुए शरीरके लक्षण तथा जन्मपत्रिकाकी जांचआदि करके वरकन्याकी परीक्षा करना चाहिये. कहा है कि, १ कुल, २ शील, ३ सगे सम्बन्धी, ४ विद्या, ५ धन, ६ शरीर और ७ वय ये सात गुण कन्यादान करनेवालेनें वरमें देखने चाहिये. इसके उपरान्त कन्या अपने भाग्यके आधार पर रहती है. जो मूर्ख, निर्धन, दूरदेशान्तरमें रहनेवाला, शूरवीर, मोक्षकी इच्छा करनेवाला, और कन्यासे तिगुनीसे भी अधिक वय वाला हो, ऐसे वरको कन्या न देना चाहिये. आश्चर्यकारक अपार संपत्तिवाला, अधिक ठंडा, अथवा बहुतही क्रोधी, हाथ, पैर अथवा किसी भी अंगसे अपंग तथा रोगी ऐसे वरको भी कन्या न देनी चाहिये. कुल तथा जातिसे हीन, अपने मातापितासे अलग रहनेवाला, और जिसके पूर्व-विवाहित स्त्री तथा पुत्रादि होवे ऐसे वरको कन्या न देनी चाहिये. अधिक वैर तथा अपवादवाले, नित्य जितना द्रव्य मिले उस सबको खर्च कर देनेवाले, आलस्यसे शून्यमनवाले ऐसे वरको कन्या न देनी. अपने गोत्रमें उत्पन्न, जूआ, चोरी

आदि व्यसनवाले तथा परदेशीको कन्या न देनी।

कुल स्त्री वह होती है जो अपने पतिआदिलोगोंके साथ निष्कपट वर्त्ताव करनेवाली, सासुआदि पर भक्ति करनेवाली, स्वजन पर प्रीति रखनेवाली, बंधुवर्ग ऊपर स्नेहवाली और हमेशा प्रसन्न मुखवाली हो। जिस पुरुषके पुत्र आज्ञाकारी तथा पितृभक्त हों, स्त्री आज्ञाकारिणी हो और इच्छित सम्पत्ति हो; उस पुरुषको यह मृत्युलोकही स्वर्गके समान है।

अग्नि तथा देवआदिके समक्ष हस्तमिलाप करना विवाह कहलाता है। यह विवाह लोकमें आठ प्रकारका है: - १ आभूषण पहिरा कर उस सहित कन्यादान करना वह ब्राह्मविवाह कहलाता है। २ धन खर्च करके कन्यादान करना वह प्राजापत्यविवाह कहलाता है। ३ गायबलका जोड़ा देकर कन्यादान करना, वह आर्षविवाह कहलाता है। ४ यजमानब्राह्मणको यज्ञ की दक्षिणा-के रूपमें कन्या दे, वह दैवविवाह कहलाता है। ये चारों प्रकार-के विवाह धर्मानुकूल हैं। ५ माता, पिता अथवा बन्धुवर्ग इनको न मानते पारस्परिक प्रेम होजानेसे कन्या मनइच्छित वरको वर ले, वह गांधर्वविवाह कहलाता है। ६ कुछ भी ठहराव करके कन्यादान करे, वह असुरविवाह कहलाता है। ७ बलात्कारसे कन्याहरण करके उससे विवाह करे, वह राक्षसविवाह कहलाता है, ८ सोई हुई अथवा प्रमादमें रही हुई कन्याका ग्रहण करना, वह पैशाचविवाह कहलाता है। ये पछिके चारों विवाह धर्मानुकूल

नहीं है. जो कन्या तथा वरकी परस्पर प्रीति होवे तो अंतिम चारों विवाह भी धर्मानुकूलही माने जाते हैं. पवित्र स्त्रीका लाभ यही विवाहका फल है. पवित्र स्त्री प्राप्त होने पर जो पुरुष उसकी यथायोग्य रक्षा करे तो, संतति भी उत्तम होती है, मनमें नित्य समाधान रहता है, गृहकृत्य सुव्यवस्थासे चलता है, कुलीनता ज्वलित होजाती है, आचार विचार पवित्र रहते हैं, देव, अतिथि तथा बांधवजनका सत्कार होता है, और पापका सम्बन्ध नहीं होता.

स्त्रीकी रक्षा करनेके उपाय इस प्रकार हैं:--उसे गृहकार्यमें लगानी, उसके हाथमें खर्चके लिये परिमित व उचित रकम देनी, उसे स्वतन्त्रता न देनी, उसे हमेशा मातादिके समान स्त्रियोंके सहवासमें रखना इत्यादि स्त्रीके सम्बन्धमें जो उचित आचरण पूर्व कहे जा चुके हैं, उसमें इस बातका विचार प्रकट किया है. विवाहआदिमें जो खर्च तथा उत्सवआदि करना, वह अपने कुल, धन, लोक इत्यादिककी योग्यता पर ध्यान देकर ही करना; अधिक न करना, कारण कि, अधिकव्ययआदि करना धर्मकृत्यहीमें उचित है. विवाहआदिमें जितना खर्च हुआ हो, उसीके अनुसार स्नात्र, महापूजा, महानैवेद्य, चतुर्विध संघका सत्कारआदि धर्मकृत्य भी आदर पूर्वक करना चाहिये. संसारकी वृद्धि करनेवाला विवाहआदि भी इस प्रकार पुण्य करनेसे सफल होजाता है.

चतुर्थ द्वार—

मित्र जो है, वह संपूर्णकार्योंमें विश्वासपात्र होनेसे सम-
ग्रपर मददआदि करता है । गाथामें ' आदि ' शब्द है जिससे
वणिकपुत्र (मुनीम), सहायक, नौकरआदि भी धर्म, अर्थ
और कामके कारण होनेसे उचित रीति ही से करना चाहिये ।
उनमें उत्तमप्रकृति, साधर्मिकता, धैर्य, गंभीरता, चातुर्य,
सुबुद्धिआदि गुण अवश्य होना चाहिये । इस विषयके दृष्टांत
पहिले व्यवहारशुद्धिप्रकरणमें कहे जा चुके हैं ।

(मूलगाथा)

चेइअँ पडिमँ पइढाँ,

सुआइपन्वावणाँ य पयठवणाँ ॥

पुत्थयलेहणवायणाँ

पोसहसालाइकारँवणं ॥ १५ ॥

संक्षिप्तार्थः— ५ जिनमंदिर बनवाना, ६ उसमें प्रतिमा
स्थापन कराना, ७ जिनबिंबकी प्रतिष्ठा करना, ८ पुत्रआदिका
दीक्षाउत्सव करना, ९ आचार्यादि पदकी स्थापना करना,
१० पुस्तकें लिखवाना, पढ़वाना और ११ पौषधशालाआदि
बनवाना ॥ १५ ॥

पंचम द्वार—

ऊँचा तोरण, शिखर, मंडपआदिसे सुशोभित जैसा भरत-
चक्रवर्तिआदिने बनवाया था, वैसा रत्नरचित, सुवर्णरौप्यमय

अथवा श्रेष्ठपाषाणादिमय विशाल जिनप्रासाद बनवाना. इतनी शक्ति न होवे तो श्रेष्ठ काष्ठ, ईंटोंआदिसे जिनमंदिर बनवाना. यह करनेकी भी शक्ति न होवे तो जिनप्रतिमाके लिये न्यायो-पार्जित धनसे घासकी झोपड़ी तो भी बनवाना. कहा है कि-
न्यायोपार्जित धनका स्वामी, बुद्धिमान्, शुभपरिणामी और सदाचारी श्रावक गुरुकी आज्ञासे जिनमंदिर बनवानेका अधिकारी होता है. प्रत्येकजीवने प्रायः अनादिभवमें अनन्तों जिनमंदिर और अनन्त जिनप्रतिमाएं बनवाईं; परन्तु उस कृत्यमें शुभपरिणाम न होनेके कारण उनको समकितका लवलेश भी लाभ नहीं मिला. जिसने जिनमंदिर तथा जिनप्रतिमाएं नहीं बनवाईं, साधुओंको नहीं पूजे और दुर्धरव्रतको अंगीकार भी नहीं किया, उन्होंने अपना मनुष्यभव वृथा गुमाया. यदि पुरुष जिनप्रतिमाके लिये घासकी एक झोपड़ी भी बनाता है, तथा परमगुरुको भक्तिसे एक फूल भी अर्पण करता है, तो उसके पुण्यकी गिन्ती ही नहीं हो सकती. और जो पुण्यशाली पुरुष शुभपरिणामसे विशाल, मजबूत और नक्कुर पत्थरका जिनमंदिर बनवाता है, उसकी तो बात ही क्या है ? वे अतिधन्य पुरुष तो परलोकमें विमानवासी देवता होते हैं. जिनमंदिर बनवानेकी विधि तो पवित्र भूमि तथा पवित्र दल (पत्थर-काष्ठआदि) मजदूरआदिको न ठगना, मुख्यकारीगरका

सन्मान करना इत्यादि पूर्वोक्त घरकी विधिके अनुसार सर्व उचित विधि ही विशेष कर यहां जानो. कहा है कि- धर्म करने-के लिये उद्यत पुरुषने किसीको भी अप्रीति हो ऐसा न करना चाहिये । इसी प्रकारसे संयम ग्रहण करना हितकारी है । इस विषयमें महावीरस्वामीका दृष्टांत है कि-- उन्होंने “ मेरे रहनेसे इन तपस्वियोंको अप्रीति होती है, और अप्रीति अवोधिका बीज है ” ऐसा सोचकर चौमासे के समयमें भी तपस्वियोंका आश्रम छोड़करके विहार किया ।

जिनमंदिर बनवानेके लिये काष्ठादि दल भी शुद्ध चाहिये- किसी अधिष्ठायक देवताको रुष्ट कर अविधिसे लाया हुआ अथवा आरंभ समारंभ लगे इस रीतिसे अपने लिये बनाया हुआ भी न हो, वही काममें आता है । कंगाल मजदूर लोग अधिक मजदूरी देनेसे बहुत संतोष पाते हैं, और संतुष्ट होकर अधिक काम करते हैं । जिनमंदिर अथवा जिनप्रतिमा बनवावे तब भावशुद्धिके लिये गुरु तथा संघके समक्ष यह कहना कि, “ इस काममें अविधिसे जो कुछ परधन आया हो, उसका पुण्य उस मनुष्यको होवे । षोडशकमें कहा है कि- जिस जिस की मालिकी-का द्रव्य अविधिसे इस काममें आया हो उसका पुण्य उस धनीको होवे । इस प्रकार शुभपरिणामसे कहे तो वह धर्मकृत्य भावशुद्ध हो जाता है । नींव खोदना, भरना, काष्ठके खंड करना, पत्थर घड़वाना, जुड़वाना, इत्यादि महारंभ समारंभ

जिनमंदिर बनवानेमें करना पड़ता है, ऐसी शंका न करना, कारण कि, करानेवालेकी यतना पूर्वक प्रवृत्ति होनेसे उसमें दोष नहीं, तथा जिनमंदिर बनवानेसे नानाविध प्रतिमास्थापन, पूजन, संघसमागम, धर्मदेशनाकरण, समकित, व्रत आदिका अंगीकार, शासनकी प्रभावना, अनुमोदना इत्यादिक अनंतपुण्यकी प्राप्तिके कारण होनेसे उससे उत्तम परिणाम उत्पन्न होते हैं। कहा है कि-सूत्रोक्त विधीका ज्ञाता पुरुष यतना पूर्वक प्रवर्ते, और जो कदाचित्त उसमें कोई विराधना हो जाय, तो भी अध्यवसायकी शुद्धि होनेसे, उस विराधनासे निर्जराही हो जाती है। द्रव्यस्तव-आदिपर कुण्ठा दृष्टान्तआदि ऊपर कहा जा चुका है।

जीर्णोद्धार करनेके कार्यमें भी पूर्ण उद्यम करना चाहिये। कहा है कि— जितना पुण्य नवीन जिनमंदिर बनवानेमें है, उससे आठगुणा पुण्य जीर्णोद्धार करानेमें है। जीर्ण जिनमंदिर साफ करानेमें जितना पुण्य है, उतना नवीन बनवानेमें नहीं। कारण कि, नया मंदिर बनवानेमें अनेक जीवोंकी विराधना तथा “ मेरा मंदिर ” ऐसी प्रख्याति भी है; इसलिये उसमें जीर्णोद्धारके बराबर पुण्य नहीं। इसी प्रकार कहा है कि— जिनकल्पा साधु भी राजा, प्रधान, श्रेष्ठी, तथा कौटुम्बिक-आदिको उपदेश करके जीर्ण जिनमंदिर साफ करावे। जो पुरुष जीर्णहुए जिनमंदिरोंका भक्तिसे जीर्णोद्धार कराते हैं, वे भयंकर संसारसमुद्रमें पड़ेहुए अपनी आत्माका उद्धार करते हैं। यथा—

शत्रुंजयका जीर्णोद्धार करनेका पिताने अभिग्रह सहित निर्धारित किया था, जिससे मंत्री वाग्भट्ट ने वह काम शुरू करवाया, तब बड़े २ श्रेष्ठी लोगोंने अपने अपने पासका द्रव्य भी उस कार्यमें दिया. छः द्रम्मकी पूंजीवाला भीम नामक एक घी बेचनेवाला था, जब टीप फिरती हुई उसके पास आई, तब उसने घी बेचकर की हुई पूंजी सहित सर्व द्रव्य दे दिया. जिससे उसका नाम सबके ऊपर लिखा गया, और उसे सुवर्णनिधिका लाभ हुआ. इत्यादि वार्त्ता प्रसिद्ध है. पश्चात् काष्ठमय चैत्यके स्थानमें शिलामय मंदिर तैयार होनेकी बधाई देनेवालेको मन्त्रीने सोनेकी बत्तीस जीमें बक्षिस दीं. तदुपरांत उक्त जिनमंदिर विद्युत्पातसे भूमिशायी होगया, यह बात कहनेवालेको मन्त्रीने सुवर्णकी चौसठ जीमें दीं. उसका यह कारण था कि, मन्त्रीने मनमें यह विचार किया कि, "मैं जीवित रहते दूसरा उद्धार करनेको समर्थ हुआ हूं." दूसरे जीर्णोद्धारमें दो करोड, सत्तानवे हजार द्रव्य खर्च हुआ. पूजाके लिये चौबीस ग्राम और चौबीस वर्गीचे दिये. वाग्भट्ट मन्त्रीके भाई आंबड मन्त्रीने भडौंचमें दुष्टव्यंतरीके उपद्रवको टालनेवाले श्रीहेमचन्द्रसूरिकी सहायतासे अट्टारह हाथ ऊंचे शकुनिका विहार नामक प्रासादका जीर्णोद्धार कराया. मल्लिकार्जुन राजाके भंडार सम्यन्धी बत्तीस धडी सुवर्णका बनाया हुआ कलश शकुनिका विहारके ऊपर चढाया. तथा सुवर्णदंड ध्वजाआदि दी. और मंगलदीपके समय पर

बत्तीस लाख द्रम्म याचक जनोंको दिये. प्रथम जीर्णोद्धार करके पश्चात्ही नवीन जिनमंदिर बनवाना उचित है. इसीलिये संप्रति राजाने भी प्रथम नब्बासी हजार जीर्णोद्धार करवाये, और नवीन जिनमंदिर तो केवल छत्तीस हजार बनवाये. इसी प्रकार कुमारपाल, वस्तुपालआदि धर्मिष्ठ लोगोंने भी नवीन जिनमंदिरोंकी अपेक्षा जीर्णोद्धार ही अधिक करवाये. जिनकी संख्याआदिका वर्णन पूर्वमें होगया है.

जिनमंदिर तैयार होनेके बाद विलम्ब न करके प्रतिमा स्थापन करना. श्रीहरिभद्रसूरिजीने कहा है कि, बुद्धिशाली मनुष्यने जिनमंदिरमें जिनविंबकी शीघ्र प्रतिष्ठा करानी चाहिये. कारण कि, ऐसा करनेसे अधिष्ठायक देवता तुरन्त वहां आ बसते हैं, और उस मंदिरकी भविष्यमें वृद्धिही होती जाती है. मंदिरमें तांबेकी कुंडिया, कलश, ओरसिया, दीपकआदि सर्व-प्रकारकी सामग्री भी देना. तथा शक्त्यनुसार मंदिरका भंडार स्थापित करे उसमें रोकड़ द्रव्य, तथा वाग वगैचे, वाडीआदि देना. राजाआदि जो मंदिर बनवानेवाले हों तो, उन्होंने तो भंडारमें बहुत द्रव्य, तथा ग्राम, गोकुलआदि देना चाहिये. जैसे कि, मालवदेशके जाकुडी प्रधानन पूर्वमें गिरनार पर्वत पर काष्ठमय चैत्यके स्थानमें पाषाणमय जिनमंदिर बंधाना शुरू किया. और और दुर्भाग्यवश उसका स्वर्गवास होगया. पश्चात्

एकसौ पैंतीस वर्षके अनन्तर सिद्धराज जयसिंहके दंडाधिपति सज्जननें तीन वर्षमें सौराष्ट्रदेशकी जो सत्तावीस लाख द्रम्म उपज आती थी, वह खर्चकर उक्त जिनप्रासाद पूर्ण कराया. सिद्धराजजयसिंहने सज्जनसे जब उक्त द्रव्य मांगा, तब उसने कहा कि, “महाराज ! गिरनार पर्वत पर उस द्रव्यका निधि कर रखा है.” पश्चात् सिद्धराज वहां आया और नवीन सुन्दर जिन-मंदिर देख हर्षित हो बोला कि, ‘यह मंदिर किसने बनवाया ?’ सज्जननें कहा-“महाराजसाहेबने बनवाया.” यह सुन सिद्धराज-को बड़ा आश्चर्य हुआ. तदनन्तर सज्जननें यथार्थ बात कहकर विनती करी कि- ‘ये सर्व महाजन आपका द्रव्य देते हैं, सो लीजिए अथवा जिनमंदिर बनवानेका पुण्य लीजिए, जैसी आपकी इच्छा” विवेकी सिद्धराजने पुण्यही ग्रहण किया, और उक्त नेमिनाथजीके मंदिरके खाते पूजाके निमित्त बारह ग्राम दिये. वैसेही जीवन्तस्वामीकी प्रतिमाका मंदिर प्रभावतीरानीने बनवाया. पश्चात् क्रमशः चंडप्रद्योतराजाने उस प्रतिमाकी पूजा-के लिये बारह हजार ग्राम दिये. यथा:-

चंपानगरीमें एक स्त्रीलंपट कुमारनंदी नामक स्वर्णकार रहता था । उसने पांचपांचसौ सुवर्णमुद्राएं देकर पांचसौ कन्याओंसे विवाह किया । वह उनके साथ एकस्तंभवाले प्रासादमें क्रीड़ा किया करता था । एक समय पंचशैलद्वीपनिवासी हासा व प्रहासा नामक दो व्यंतरियोंने अपने पति विद्युन्माली-

का च्यवन होने पर, वहां आ अपना रूप बता कुमारनंदीको मोहित किया। वह जब भोगकी प्रार्थना करने लगा, तब “ पंचशैलद्वीपमें आव ” यह कहकर वे दोनों चली गईं। पश्चात् कुमारनंदीने राजाको सुवर्ण देकर पडह बजवाया (ढिंढोरा पिटवाया) कि, “ जो पुरुष मुझे पंचशैलद्वीपमें लेजाय, उसे मैं एक करोड़ द्रव्य दूं। ” तदनुसार एक वृद्ध निर्यामिक (नाविक) करोड़ द्रव्य ले अपने पुत्रोंको देकर, कुमारनंदीको एक नौकामें बिठा बहुत दूर समुद्रमें लेगया। और वहां कहने लगा कि “ साम्हने जो बड़ वृक्ष दृष्टि आता है, वह समुद्रके किनारे आई हुई पहाड़ीकी तलेटीमें है। इसके नीचे अपनी नौका पहुंचे तब तू बड़की शाखा पर बैठ जाना; तीन पैरवाला भारंड पक्षी पंचशैलद्वीपसे आकर इसी बड़पर सो रहते हैं, उसके बीचके पैरमें तूने बन्धसे अपने शरीरको मजबूत बांध रखना। प्रातःकालमें उक्तपक्षीके साथ तू भी पंचशैलद्वीपमें जा पहुंचेगा। यह नौका तो अब भयंकर भ्रमरमें फंस जावेगी। ” तदनन्तर नाविकके कथनानुसार करके कुमारनंदी पंचशैलद्वीपमें पहुंचा और हासाप्रहासाको देख कर प्रार्थना की। तब हासा, प्रहासाने उसको कहा कि “ तू इस शरीरसे हमारे साथ भोग नहीं कर सकता। इसलिये तू अग्नि प्रवेश आदि करके इस द्वीपका मालिक हो जा। ” यह कह उन्होंने कुमारनंदीको हथेली पर बैठाकर चंपानगरीके उद्यानमें छोड़ दिया। पश्चात् उसके मित्र नागिलश्रावकने उसे

बहुत मना किया, तो भी वह नियाणाकर अग्रिमें पड़ा और मृत्युको प्राप्त हो, पंचशैलद्वीपका अधिपति व्यन्तर देवता हुआ। नागिलको उससे वैराग्य उत्पन्न हुआ और वह दीक्षा ले, काल करके बारहवें अच्युतदेवलोकमें देवता हुआ।

एक समय नन्दीश्वरद्वीपमें जानेवाले देवताओंकी आज्ञासे हासा-प्रहासाने कुमारनन्दीके जीव व्यन्तरको कहा कि- “ तू पडह ग्रहणकर ” वह अहंकारसे हुंकार करने लगा, इतने ही में पडह आकर उसके गलेमें लटक गया। उसने बहुत प्रयत्न किया, किन्तु उसके गलेमेंसे पडह अलग नहीं हुआ। उस समय अवधिज्ञानसे यह बात जानकर नागिल देवता वहां आया। जैसे सूर्यके तेजसे उल्लू पक्षी भागता है, उसी प्रकार उक्त देवताके तेजसे कुमारनन्दी व्यन्तर भागने लगा। तब नागिलदेवताने अपना तेज समेटकर कहा कि, “ तू मुझे पहिचानता है ? ” उसने कहा कि, “ इन्द्रादि देवताओंको कौन नहीं पहिचानता है ? ” तब नागिलदेवताने पूर्वभवके श्रावकरूपसे पूर्वभव कह कर व्यन्तरको प्रतिबोधित किया। तब व्यन्तरने पूछा- “ अब मैं क्या करूं ? ” देवताने उत्तर दिया “ अब तू गृहस्थावस्थामें कार्योत्सर्ग किये हुए भावयति श्रीमहावीरस्वामीकी प्रतिमा बनवा, इससे तुझे आगामीभवमें बोधिलाभ होगा। ” देवताका यह वचन सुन उसने श्रीमहावीरस्वामीको देख नमस्कार किया और हिमवन्तपर्वतसे लाये हुए गौशीर्षचन्दनसे

वैसी ही दुसरी प्रतिमा तैयार की। पश्चात् प्रतिष्ठा करवा कर सर्वांगमें आभूषण पहिरा कर, पुष्पादिक वस्तुसे उसकी पूजा करी और श्रेष्ठचंदनके डब्बेमें रखी। एक समय उस प्रतिमाके प्रभावसे व्यन्तरने समुद्रमें एक नौकाके छः महीनेके उपद्रव दूर किये। और उस नौकाके नाविकको कहा कि- “तू यह प्रतिमाका डब्बा सिंधुसैवीरदेशान्तर्गत वीतभयपट्टणमें ले जा और वहाँके बाजारमें ऐसी उद्घोषणा कर कि, “देवाधिदेवकी प्रतिमा लो।” उक्त नाविकने वैसा ही किया। तब तापस भक्त उदायन राजा तथा दूसरे भी बहुतेसे अन्यदर्शनियोंने अपने अपने देवका स्मरण करके उस डब्बे पर कुल्हाड़ेसे प्रहार किये- जिसमें कुल्हाड़े टूट गये, किन्तु डब्बा नहीं खुला। सर्व लोग उद्विग्न होगये। मध्याह्नका समय भी होगया। इतनेमें रानी-प्रभावतीने राजाको भोजन करनेके लिये बुलानेको एक दासी भेजी। राजाने उसी दासीके द्वारा संदेशा भेजकर कौतुक देखनेके लिये रानीको बुलवाइ। रानीप्रभावतीने वहाँ आते ही कहा कि, “इस डब्बेमें देवाधिदेव श्रीअरिहंत है, दूसरा कोई नहीं। अभी कौतुक देखो।” यह कह रानीने यक्षकर्मसे उस डब्बे पर अभिपेक किया और एक पुष्पांजली देकर कहा कि, “देवाधिदेव ! मुझे दर्शन दो।” इतना कहते ही जैसे प्रातःकालमें कमलकलिका विकसित होती है वैसे डब्बा अपने आप खुल गया। अंदरसे सुकोमल विकसित पुष्पोंकी माला-

युक्त प्रतिमा प्रकट हुई, और जैनधर्मकी बहुत महिमा हुई। रानी उस प्रतिमाको अपने अंतःपुरमें ले गई, और अपने नये बनवाये हुए चैत्यमें स्थापन कर नित्य त्रिकालपूजा करने लगी।

एक समय रानीके आग्रहसे राजा वीणा बजा रहा था और रानी भगवान्‌के सन्मुख नृत्य करती थी। इतनेमें राजाको रानीका शरीर शिरविहीन नजर आया, जिससे वह घबरा गया, और वीणा बजानेकी कंबिका उसके हाथमेंसे नीचे गिर पड़ी। नृत्यमें रसभंग होनेसे रानी कुपित हुई, तब राजाने यथार्थबात कही। एक समय दासीका लाया हुआ वस्त्र श्वेत होते हुए भी प्रभावतीने रक्तवर्ण देखा, और क्रोध कर दासी पर दर्पण फेंक मारा, जिससे वह मर गई। पश्चात् वही वस्त्र प्रभावतीने पुनः देखा तो श्वेत नजर आया, जिससे उसने निश्चय किया कि अब मेरा आयुष्य थोड़ा ही रह गया है, और चेडीरूप स्त्रीकी हत्यासे पहिले प्राणातिपातविरमणव्रतका भी भंग होगया है। ऐसे वैराग्य पा कर दीक्षा लेनेकी आज्ञा मांगनेके लिये राजाके पास गई, राजाने 'देवताके भवमें जाके तूने मुझे सम्यक्प्रकारसे धर्ममें प्रवृत्त करना' यह कह कर आज्ञा दे दी। तदनन्तर प्रभावतीने उस प्रतिमाकी पूजाके निमित्त देवदत्तानामकी कुब्जाको रख कर स्वयं बड़े समारोहसे दीक्षा ग्रहण करी, और अनशनसे काल करके सौधर्म-देवलोकमें देवता हुई, उस देवताने बहुत ही प्रतिबोध किया, परन्तु राजा उदायनने तापसकी भक्ति नहीं छोड़ी। दृष्टिराग

तोडना कितना कठिन है ! अस्तु, पश्चात् देवताने तापसके रूपसे राजाको दिव्य अमृतफल दिया. उसका रस चखते ही लुब्ध हुए राजाको तापसरूपी देवता अपने रचे हुए आश्रममें ले गया. वहां वेषधारी तापसीने बहुत ताडना करनेसे राजा भागा, और जैनसाधुके उपाश्रयमें आया. साधुओंने अभयदान दिया, जिससे राजाने जैनधर्म स्वीकार किया. पश्चात् देवता अपनी क्रुद्धि बताकर, राजाको जैनधर्ममें दृढ़ करके 'आपत्तिके समय मेरा स्मरण करना.' यह कह अदृश्य होगया.

इधर गान्धार नामक कोई श्रावक सर्वस्थानोंमें चैत्य-वन्दन करने निकला था. बहुतसे उपवास करनेसे संतुष्ट हुई देवीने उसे वैताल्य पर्वत पर ले जाकर वहांका प्रतिमाओंको वन्दन कराया, और मनवांछित-इच्छा पूर्ण करनेवाली एकसौ आठ गोलियां दीं. उसने एक गोली मुंहमें डालकर चिन्तवन किया कि, 'मैं वीतभयपट्टण जाता हूं.' गुटिकाके प्रभावसे वह वहां आगया. कुब्जादासीने उसे उस प्रतिमाका वन्दन कराया. अनन्तर वह गान्धारश्रावक वहां बीमार होगया, कुब्जाने उसकी भलीभांति सुश्रूषा करी. अपना आयुष्य स्वल्प रहा जान उस श्रावकने शेष सर्वगुटिकाएं कुब्जाको देकर दीक्षा ली. कुब्जा एक गुटिका भक्षण करनेसे अनुपम सुन्दरी होगई. जिससे उसका नाम 'सुवर्णगुलिका' प्रसिद्ध होगया. दूसरी गोली भक्षण कर उसने चिन्तवन किया कि, "चौदह मुकुटधारी

राजाओंसे सेवित चंडप्रद्योत राजा मेरा पति होवे. अर्थात् उदायन राजा तो मेरे पिता समान है और दूसरे राजा तो उदायन-के सेवक हैं.”

तदनंतर देवताके वचनसे राजा चंडप्रद्योतने सुवर्णगुलिका-के पास दूत भेजा, परन्तु सुवर्णगुलिकाके चंडप्रद्योतको बुलवाया, उससे वह अनिलवेगहाथी पर बैठकर आया. सुवर्णगुलिकाने कहा कि, “यह प्रतिमा लिये बिना मैं वहां नहीं आ सकती. इसलिये इसीके समान दूसरी प्रतिमा बनवाकर यहां स्थापन कर, ताकि यह प्रतिमा ली जा सके ” चंडप्रद्योतने उज्जयिनी-को जाकर दूसरी प्रतिमा तैयार कराई, और कपिलनामक केवलीके हाथसे उसकी प्रतिष्ठा कराकर उसे ले पुनः वीतभय पट्टण आया. नई प्रतिमा वहां स्थापनकर प्राचीन प्रतिमा तथा दासी सुवर्णगुलिकाको साथ ले वह चुपचाप रात्रिमें वापस घर आया. पश्चात् सुवर्णगुलिका और चंडप्रद्योत दोनों विषया-सक्त होगये, जिससे उन्होंने उक्त प्रतिमा विदिशापुरीनिवासी भायल स्वामी श्रावकको पूजा करनेके लिये दे दी.

एक समय केवलशंवल नागकुमार उस प्रतिमाकी पूजा करनेको आये. और पातालमेंकी जिनप्रतिमाको वन्दन करनेके इच्छुक भायलस्वामीको जलमार्ग द्वारा पातालमें ले गये. उस समय भायल प्रतिमाकी पूजा कर रहा था, परन्तु जानेकी उत्सुकता-से आधीही पूजा होने पाई, पातालमें जिनभक्तिसे प्रसन्न हुए नाग-

कुमारको भायलने कहा कि, “ऐसा करो कि, जिससे मेरे नामकी प्रसिद्धि हो.” नागेन्द्रने कहा-ऐसाही होगा. चंडप्रद्योत राजा तेरे नामका अनुसरण करके विदिशापुरीका नाम ‘देवकीयपुर’ रखेगा. परन्तु तू आधी पूजा करके यहां आया है जिससे भाविष्यकालमें वह प्रतिमा अपना स्वरूप गुप्तही रखेगी और मिथ्यादृष्टि लोग उसकी पूजा करेंगे. “यह आदित्य भायल स्वामी हैं.” यह कह कर अन्यदर्शनी लोग उक्तप्रतिमाकी बाहर स्थापना करेंगे. विषाद न करना, दुष्कालके प्रभावसे ऐसा होगा. भायल, नागेन्द्रका यह वचन सुन जैसा गया था वैसाही पीछा आया.

इधर वीतभयपट्टणमें प्रातःकाल होतेही प्रतिमाकी माला सूखी हुई, दासी भी नहीं तथा हाथीके मदका स्राव हुआ देख कर लोगोंने निर्णय किया कि, चंडप्रद्योत राजा यहां आया था. पश्चात् सोलह देश व तीनसौ त्रैसठपुरके स्वामी उदायन-राजाने महासेनआदि दश मुकुटधारी राजाओंको साथ ले चढाई की. मार्गमें ग्रीष्मऋतुके कारण जल न मिलनेसे राजाने प्रभा-वतीके जीव देवताका स्मरण किया. उसने शीघ्रही आकर वहां जलसे परिपूर्ण तीन तालाब प्रकट किये. अनुक्रमसे संग्रामका अवसर आया, तब रथमें बैठकर युद्ध करना ऐसा निश्चित होते हुए भी राजा चंडप्रद्योत अनिलवेग हाथी पर बैठकर आया. जिससे उसके सिर प्रतिज्ञाभंग करनेका दोष पडा. युद्धमें शस्त्र द्वारा हाथीके पैर विध्वजानेसे वह गिर पडा, तब राजा उदायनने

चंडप्रद्योतको बंदी कर उसके कपाल पर “मेरी दासीका पति” ऐसी छाप लगाई. पश्चात् वह चंडप्रद्योत सहित प्रतिमा लेनेके लिये विदिशानगरीको गया. प्रतिमाका उद्धार करनेके लिये बहुत प्रयत्न किया तथापि वह स्थानकसे किंचित्मात्र भी न डिगी. और अधिष्ठात्री देवी कहने लगी कि “मैं न आऊंगी, क्योंकि वीतभयपट्टणमें धूलकी वृष्टि होगी, इसीलिये मैं नहीं आती.” यह सुन उदायन राजा पीछा फिरा. मार्गमें चातुर्मास (वर्षाकाल) आया, तब एक जगह पड़ाव करके सेनाके साथ रहा. संवत्सरीपर्वके दिन राजाने उपवास किया. रसोइयेने चंडप्रद्योतको पूछा कि, “आज हमारे महाराजाने पर्गुषणाका उपवास किया है इसलिये आपके दास्ते क्या रसोई करूं?” चंडप्रद्योतके मनमें ‘यह कदाचित् अन्नमें मुझे विष देगा’ यह भय उत्पन्न हुआ, जिससे उसने कहा कि, “तूने ठीक याद कराई, मेरे भी उपवास है. मेरे मातापिता श्रावक थे.” यह ज्ञात होने पर उदायनने कहा कि, “इसका श्रावकपना तो जान लिया! तथापि यह ऐसा कहता है, तो वह नाममात्रसे भी मेरा साधर्मी होगया, इसलिये वह बंधनमें हो तब तक मेरा संवत्सरीप्रतिक्रमण किस प्रकार शुद्ध हो सकता है ?” यह कह उसने चंडप्रद्योतको बंधनमुक्त कर दिया, खमाया और कपाल पर लेख छिपानेके लिये रत्नमाणिका पट्ट बांधकर उसे अवन्ती देश दिया. उदायनराजाकी धार्मिकता तथा सन्तोष-आदिकी जितनी प्रशंसा की जाय, उतनीही थोड़ी है. अस्तु.

चातुर्मास बीत जाने पर वीतभयपट्टणको आया। सेनाके स्थानमें आये हुए वणिकलोगोंके निवाससे दशपुर नामक एक नवीन नगर बस गया। वह राजा उदायनने जीवन्तस्वामीकी पूजाके लिये अर्पण किया। इसी तरह विदिशापुरीको भायलस्वामीका नाम दे, वह तथा अन्य बारह हजार ग्राम जीवन्तस्वामीकी सेवामें अर्पण किये।

प्रभावतीके जीव देवताके वचनसे राजा कपिलकेवली-प्रतिष्ठित प्रतिमाकी नित्य पूजा किया करता था। एक समय पक्खीपौषध होनेसे उसने रात्रिजागरण किया, तब उसे एक-दम चारित्र लेनेके दृढपरिणाम उत्पन्न हुए, प्रातःकाल होने पर उसने उक्त प्रतिमाकी पूजाके लिये बहुतसे ग्राम, नगर, पुर आदि दिये। “राज्य अन्तमें नरक प्राप्त करानेवाला है, इसलिये वह प्रभावतीके पुत्र अभीचिको किस प्रकार दूं ?” इत्यादि विचार मनमें आनेसे उसने केशिनामक अपने भानजेको राज्य दिया, और आपने श्रीवीरभगवानसे चारित्र ग्रहण किया। उस समय केशिराजाने दीक्षामहोत्सव किया।

एक समय अकालमें अपथ्याहारके सेवनसे राजर्षि उदायनके शरीरमें महाव्याधि उत्पन्न हुई। “शरीर धर्मका मुख्य साधन है” यह सोचकर वैद्यने भक्षण करनेको बताया हुए दहीका योग होय, इस हेतुसे ग्वालोंके ग्राममें मुकाम करते हुए वे वीतभय पट्टणको गये। राजा केशी यद्यपि उदायनमुनिका

अनुरागी था, तथापि उसके प्रधानवर्गने उसे समझाया कि, “ उदायन राज्य लेनेके हेतु यहां आया है ” प्रधानोंकी बात सत्य मानकर केशीने उदायनमुनीको विषमिश्रित दही बहो-रावाया. प्रभावतीदेवताने विषका अपहरण करके फिरसे दही लेनेको मना किया. दही बंद होजानेसे महाव्याधि पुनः बढ गई. देवताने तीन बार दही सेवन करते विषका अपहरण किया, एक समय देवता प्रमादमें था, तब मुनिके आहारमें विष मिश्रित दही आगया, तत्पश्चात् एकमासका अनशनकर केवलज्ञान होने पर उदायनराजर्षि सिद्ध हुए. पश्चात् प्रभावती-देवताने क्रोधसे वीतभयपट्टण पर धूलकी वृष्टि करी और उदायन-राजाका शय्यातर एक कुंभार था, उसे सिन्नपल्लीमें ले जाकर उस पल्लीका नाम ‘कुंभारकृत पल्ली’ रखा.

राजपुत्र अभीचि, पिताने योग्यता होते हुए भी राज्य नहीं दिया, जिससे दुःखी हुआ, और अपनी मौसीके पुत्र क्रोणिक राजाके पास जाकर सुखसे रहने लगा. वहां सम्यक्-प्रकारसे श्रावकधर्मकी आराधना करता था, तो भी, “पिताने राज्य न देकर मेरा अपमान किया” यह सोच पिताके साथ बांधे हुए बैरकी आलोचना नहीं करी. जिससे पन्द्रह दिनके अनशनसे मृत्युको प्राप्त हो एक पल्योपम आयुष्य वाला श्रेष्ठ भवनपति देवता हुआ. वहांसे ज्यवन पाकर महाविदेहक्षेत्रमें सिद्ध होगा. प्रभावतीदेवताने धूलवृष्टि करी थी उस समयकी भूमिमें

गड़ी हुई कपिलकेवलप्रतिष्ठित जिनप्रतिमा, श्रीहेमचन्द्राचार्य गुरुके वचनसे राजा कुमारपालको ज्ञात हुई. उसने उक्त स्थान खुदवाया तो अन्दरसे उक्त प्रतिमा और राजा उदायनका दिया हुआ ताम्रपट्ट भी निकला. यथाविधि पूजा करके कुमारपाल बड़े उत्सवके साथ उसे अणाहिलपुर पट्टणको ले आया तथा नवीन बनवाये हुए स्फटिकमय जिनमंदिरमें उसकी स्थापना करी और राजा उदायनके ताम्रपट्टानुसार ग्राम, पुर आदि स्वीकार रखकर बहुत काल तक उस प्रतिमाकी पूजा की. जिससे उसकी सर्व प्रकारसे वृद्धि हुई इत्यादि.

ऊपर कहे अनुसार देवको भाग देनेसे निरन्तर उत्तम पूजा आदि, तथा जिनमंदिरकी यथोचित सार सम्हाल, रक्षण आदि भी ठीक युक्तिसे होते हैं. कहा है कि—जो पुरुष अपनी शक्तिके अनुसार जिनमंदिर करावे, वह पुरुष देवलोकमें देवताओंसे प्रशंसित होकर बहुत काल तक परम सुख पाता है.

छठवां द्वार—

रत्नकी, सुवर्णकी, धातुकी, चन्दनादिक काष्ठकी, हस्ती-दन्तकी, शिलाकी तथा माटीआदिकी जिनप्रतिमा यथाशक्ति करवाना चाहिये. उसका परिमाण जघन्य अंगूठेके बराबर और उत्कृष्ट पांचसौ धनुष्य तक जानो. कहा है कि—जो लोग उत्तम मृत्तिकाका, निर्मलशिलाका, हस्तिदंतका, चांदीका, सुवर्णका, रत्नका, माणिकका अथवा चन्दनका सुन्दर जिनचिह्न शक्त्य-

नुसार इस लोकमें करवाते हैं, वे लोग मनुष्यलोकमें तथा देव-लोकमें परम सुख पाते हैं. जिनविंश वनवानेवाले लोगोंको दारिद्र्य, दुर्भाग्य, निंद्य जाति, निंद्य शरीर, दुर्गति, दुर्बुद्धि, अपमान, रोग और शोक नहीं भोगना पड़ता. वास्तुशास्त्रमें कही हुई विधि अनुसार तैयार की हुई, शुभलक्षणवाली प्रतिमाएं इस-लोकमें भी उदयआदि गुण प्रकट करती हैं. कहा है कि--अन्यायोपाजित धनसे कराई हुई, परवस्तुके दलसे कराई हुई, तथा कम अथवा अधिक अंगवाली प्रतिमा अपनी तथा दूसरे-की उन्नतिका नाश करती है.

जिन मूलनायकजीके मुख, नासिका, नेत्र, नाभि अथवा कमर इनमें किसी भी अवयवका भंग हुआ हो, उनका त्याग करना. परन्तु जिसके आभूषण, वस्त्र, परिवार, लंछन अथवा आयुध इनका भंग हो, वह प्रतिमा पूजनेमें कोई बाधा नहीं. जो जिनविंश सौवर्षसे अधिक प्राचीन होवे तथा उत्तमपुरुष द्वारा प्रतिष्ठा किया हुआ होवे, वे विंश अंगहीन हो तो भी पूजनीय है. कारण कि, वह लक्षणहीन नहीं होता. प्रतिमाओंके परिवारमें अनेक जातिकी शिलाओंका मिश्रण हो वह शुभ नहीं. इसी तरह दो, चार, छः इत्यादि समअंगुलप्रमाणवाली प्रतिमा कदापि शुभकारी नहीं होती. एकअंगुलसे लेकर ग्यारहअंगुल-प्रमाणकी प्रतिमा घरमें पूजने योग्य है. ग्यारहअंगुलसे अधिक-प्रमाणकी प्रतिमा जिनमंदिरमें पूजनी चाहिये, ऐसा पूर्वाचार्य

कह गये हैं. निरयावलीमें कहा है कि-लेपकी, पाषाणकी, काष्ठकी, दंतकी तथा लोहेकी और परिवार रहित अथवा प्रमाण रहित प्रतिमा घरमें पूजने योग्य नहीं. घरदेरासरकी प्रतिमाके सन्मुख बालिका विस्तार नहीं करना, परन्तु नित्य भावसे न्हवण और त्रिकाल पूजा मात्र अवश्य करना चाहिये

सर्व प्रतिमाएं विशेष करके तो परिवार सहित और तिल-कादि आभूषण सहित बनानी चाहिये. मूलनाथकजीकी प्रतिमा तो परिवार और आभूषण सहित होनीही चाहिये. वैसा करनेसे विशेष शोभा होती है, और पुण्यानुबंधिपुण्यका संचयआदि होता है. कहा है कि-जिनप्रासादमें विराजित प्रतिमा सर्व लक्षण सहित तथा आभूषण सहित होवे तो, उसको देखनेसे मनको जैसे २ आल्हाद उपजता है, वैसे २ कर्म निर्जरा होती है. जिनमंदिर, जिनबिंब-आदिकी प्रतिष्ठा करनेमें बहुत पुण्य है. कारण कि, वह मंदिर अथवा प्रतिमा जब तक रहे, उतनाही असंख्य काल तक उसका पुण्य भोगा जाता है. जैसे कि, भरतचक्रीकी स्थापित की हुई अष्टापदजी ऊपरके देरासरकी प्रतिमा, गिरनार ऊपर ब्रह्मंद्रकी बनाई हुई कांचनबलानकादि देरासरकी प्रतिमा, भरतचक्रवर्तीकी मुद्रिकामेंकी कुल्यपाकतीर्थमें विराजित माणिक्यस्वामीकी प्रतिमा तथा स्तम्भनपार्श्वनाथ आदिकी प्रतिमाएं आज तक पूजी जा रही हैं. कहा है कि, जल, ठंडा अन्न, भोजन, मासिक-आजीविका, वस्त्र, वार्षिक आजीविका, यावज्जीवकी आजीविका

आदि वस्तुओंके दानसे क्रमशः क्षण भर, एक प्रहर, एक दिवस, एक मास, छः मास, एक वर्ष और यावज्जीव तक भोगा जाय इतना पुण्य होता है; परन्तु जिनमंदिर, जिनप्रतिमाआदि करवानेसे तो उसके दर्शनआदिसे प्राप्त पुण्य अनंत कालतक भोगा जाता है । इसीलिये इस चौबीसीमें पूर्वकालमें भरतचक्रवर्तीने शत्रुंजय पर्वतपर रत्नमय चतुर्मुखसे विराजमान, चौरासीमंडपोंसे सुशोभित, डेढ़ माइल ऊंचा, साढ़ेचार माइल लंबा जिनमंदिर जहां पुंडरीकस्वामी पांच करोड मुनियों सहित ज्ञान और निर्वाणको प्राप्त हुए थे, वहां बनवाया ।

इसीतरह बाहुवलि तथा मरुदेवीआदिके शिखरपर, गिरनार-ऊपर, आबूपर, वैभारपर्वतपर, सम्मेतशिखरपर, तथा अष्टापद-आदिमें भी भरतचक्रवर्तीने बहुतसे जिनप्रासाद, और पांचसौ-धनुष्यआदि प्रमाणकी तथा सुवर्णआदिकी प्रतिमाएं भी बनवाईं । दंडवर्षी, सगरचक्रवर्तीआदि राजाओंने उन मंदिरों तथा प्रतिमाओंका उद्धार भी कराया । हरिषेणचक्रवर्तीने जिनमंदिरसे पृथ्वीको सुशोभित कि । संप्रतिराजाने भी सौ वर्ष आयुष्यके सर्वदिवसोंकी शुद्धिके निमित्त छत्तीस हजार नये तथा शेष जीर्णोद्धार मिलकर सवा लक्ष जिनमंदिर बनवाये । सुवर्णआदिकी सवाकरोड प्रतिमाएं बनवाईं । आमराजाने गोवर्धन पर्वतपर साढ़ेतीनकरोड सुवर्णमुद्राएं खर्चकर सातहाथ

प्रमाण सुवर्णप्रतिमायुक्त एक महावीरस्वामीका देरासर बन-
वाया, मूलमंडपमें सवालक्ष सुवर्णमुद्राएं तथा रंगमंडपमें एक-
वीसलाख सुवर्णमुद्राएं लगीं । कुमारपालने तो चौदहसौ चुम्मा-
लीस नूतन जिनमंदिर तथा सौलहसौ जीर्णोद्धार करवाये, छिया-
नवेकरोड द्रव्य खर्च करके पिताके नामसे बनाये हुये त्रिभुवन-
विहारमें एकसौपच्चीस अंगुल ऊंची मूलनायकजीकी प्रतिमा अरिष्ट-
रत्नमयी बनवाइ थी, भिन्न२ बहत्तर देरियोंमें चौदहभार प्रमाणकी
चौबीस रत्नमयी, चौबीस सुवर्णमयी और चौबीस सौम्यमयी प्रति-
माएं थीं । वस्तुपालमंत्रीने तेरहसौतेरह नवीन जिनमंदिर और
बावीससौ जीर्णोद्धार कराये, तथा सवालाख जिनचिंन भरवाये ।
पेथडश्रेष्ठीने चोरासी जिनप्रासाद बनवाये, उसमें सुरगिरिपर
चैत्य नहीं था वह बनवानेका विचारकर वीरमद राजाके प्रधान
विप्र हेमादेके नामसे उसकी प्रसन्नताके लिये उसने मांघाता-
पुरमें तथा औंकारपुरमें तीन वर्षतक दानशाला चालु रखी ।
हेमादे प्रसन्न हुआ और पेथडको सात राजमहलके बराबर भूमि
दी । नीव खोदनेपर मीठा जल निकला, तब किमीने राजाके
पास जा चुगली खाई कि, “ महाराज ! मीठा जल निकला है,
इसलिये बावडी बंधाओ । ” यह बात मालूम होते ही पेथड-
श्रेष्ठीने रातोंरात बारहहजार टंकका लवण पानीमें डलवाया ।
इस चैत्यके बनानेके लिये स्वर्णमुद्राओंसे लदी हुई बत्तीस ऊंटनियां
भेजीं । नीवमें चोरासीहजार टंकका व्यय हुआ, चैत्य तैयार हुआ

तब बधाई देनेवालेको तीनलाख टंक दिये। इस तरह पथडबिहार बना। तथा उसी पथडने शत्रुंजय पर्वतपर श्रीकृष्णभदेव भगवानका चैत्य एकवीसधड़ी सुवर्णसे चारोंतरफ मढाकर मेरु-पर्वतकी भांति सुवर्णमय किया। गिरनार पर्वतपरके सुवर्णमय बलानक (झरोखा) का वृत्तांत इस प्रकार है--

गई चौबीसीमें उज्जयिनिनगरीमें तीसरे श्रीसागर केवलीकी पर्षदा देख कर नरवाहन राजाने पूछा कि, “ मैं कब केवली होऊंगा ? ” भगवानने कहा- “ आगामीचौबीसीमें बावीशमें तीर्थकर श्रीनेमीनाथ भगवान्के तीर्थमें तू केवली होगा ” । यह सुन नरवाहनराजाने दीक्षा ग्रहण की और आयुष्यके अंतमें ब्रह्मेन्द्र हो श्रीनेमिनाथभगवानकी वज्रमृत्तिकामय प्रतिमा बना उसकी दश सागरोपमतक पूजा करी। आयुष्यका अंत आया तब गिरनार पर्वत ऊपर सुवर्णरत्नमयप्रतिमावाले तीन गभारे (मूर्तिगृह) करके उनके सन्मुख एक सुवर्णमय झरोखा (बलानक) बनवाया; और उसमें उक्त वज्रमृत्तिकामय प्रतिमाकी स्थापना करी। अनुक्रमसे संघवी श्रीरत्नश्रेष्ठी महान् संघके साथ गिरनारपर यात्रा करने आया। विशेष हर्षसे स्नात्र करनेसे मृत्तिकामय (लेप्यमय) प्रतिमा गल गई। जिससे रत्नश्रेष्ठीको बड़ा खेद हुआ। साठ उपवास करनेसे प्रसन्न हुई अंबादेवीके वचनसे वह सुवर्णमयबलानककी प्रतिमा को लाया,

वह कच्चे सूतसे लपेटी हुई लाइ जाती । चैत्यके द्वारमें आते पीछे फिरकर देखा जिससे वह प्रतिमा वही स्थिर रह गई । पश्चात् चैत्यका द्वार फिरा दिया । वह अभी तक वैसाही है । कोई २ ऐसा कहते हैं कि, सुवर्णमयबलानकमें बहत्तर बड़ी २ प्रतिमाएं थीं । जिनमें अट्टारह सुवर्णमयी, अट्टारह रत्नमयी, अट्टारह रौप्यमयी और अट्टारह पाषाणमयी थी । इत्यादि—

सातवां द्वार—

प्रतिमाकी प्रतिष्ठा शीघ्र कराना चाहिये । षोडशकमें कहा है कि— पूर्वोक्त विधिके अनुसार बनवाई हुई जिनप्रतिमाकी प्रतिष्ठा शीघ्रही दश दिनके अंदर करनी चाहिये । प्रतिष्ठा संक्षेपसे तीन प्रकारकी है—एक व्यक्तिप्रतिष्ठा, दूसरी क्षेत्रप्रतिष्ठा और तीसरी महाप्रतिष्ठा, सिद्धांतके ज्ञाता लोग ऐसा कहते हैं कि, जिस समयमें जिस तीर्थंकरका शासन चलता हो उस समयमें उसी तीर्थंकरकी ही अकेली प्रतिमा हो वह व्यक्तिप्रतिष्ठा कहलाती है । ऋषभदेवआदि चौबीसोंकी क्षेत्रप्रतिष्ठा कहलाती है और एकसौ सत्तर भगवानकी महाप्रतिष्ठा कहलाती है, बृहद्भाष्यमें कहा है कि— एक व्यक्तिप्रतिष्ठा, दूसरी क्षेत्रप्रतिष्ठा और तीसरी महाप्रतिष्ठा, उन्हें अनुक्रमसे एक, चौबीस और एकसौसत्तर भगवानकी जानों । सब प्रकारकी प्रतिष्ठाओंकी सामग्री संपादन करना, श्रीसंघको तथा श्रीगुरु-महाराजको बुलाना, उनका प्रवेशआदि महोत्सवपूर्वक करके,

सम्यक्प्रकारसे उनका आगत स्वागत करना । भोजन वस्त्र-
आदि देकर उनका सर्वप्रकारसे सत्कार करना । कैदियोंको
छुड़वाना । अहिंसा प्रवर्त्तना । किसीको भी बाधा न होवे ऐसी
दानशाला चलाना । सुतारआदिका सत्कार करना । बहुत
धूमधामके साथ संगीतआदि अद्भुत उत्सव करना । अट्टारह
स्नात्र करना । इत्यादिक विशेष प्रतिष्ठाकल्पआदि ग्रंथोंमें देखो ।

प्रतिष्ठामें स्नात्रके अवसरपर भगवानकी जन्मावस्थाका
चिंतवन करना, तथा फल, नैवेद्य, पुष्प, विलेपन, संगीत
इत्यादि उपचारके समय कौमार्यआदि चटती अवस्थाका
चिंतवन करना । छत्रस्थावस्थाके सूचक वस्त्रादिकसे शरीरका
आच्छादन करना इत्यादि उपचारके समय भगवानकी शुद्ध
चारित्र्यावस्थाका चिंतवन करना. अंजनशलाकासे नेत्रका
उघाड़ना करते समय भगवानकी केवली अवस्थाका चिंतवन
करना । तथा पूजामें सर्वप्रकारके बड़े २ उपचार करनेके समय
समवसरणमें रही हुई भगवानकी अवस्थाका चिंतवन करना ।
श्राद्धसामाचारीवृत्तिमें कहा है कि— प्रतिष्ठा करनेके अनंतर
बारह मास तक प्रतिमास उस दिन उत्तमप्रकारसे स्नात्रआदि
करना । वर्ष पूरा होनेपर अट्टारह उत्सव करना, और आयुष्यकी
ग्रंथि बांधना, तथा उत्तरोत्तर विशेषपूजा करना । वर्षगांठके
दिन साधर्मिवात्सल्य तथा संघपूजाआदि शक्त्यनुसार करना.
प्रतिष्ठाषोडशकमें तो इस प्रकार कहा है कि— भगवानकी

लगातार आठ दिन तक एक सरीखी पूजा करना, तथा सर्व-प्राणियोंको यथाशक्ति दान देना चाहिये ।

आठवां द्वार—

पुत्र, पुत्री, भाई, भतीजा, स्वजन, मित्र, सेवक आदिकी दीक्षाका उत्सव बड़ी सजधजमे करना चाहिये । कहा है कि— भरतचक्रवर्तीके पांचसौ पुत्र और सातसौ पौत्रोंने उस समवसरणमें साथ ही दीक्षा ग्रहण की । श्रीकृष्ण तथा चेटकराजाने अपनी संततिका विवाह करनेका नियम किया था, तथा अपनी पुत्रीआदिको तथा थावचापुत्रआदिको उत्सवके साथ दीक्षा दिलाई थी सो प्रसिद्ध है । दीक्षा दिलानेमें बहुत पुण्य है । कहा है कि— जिसके कुलमें चारित्रधारी उत्तम पुत्र होता है, वे माता, पिता स्वजनवर्ग बड़े पुण्यशाली और धन्य है । लौकिकशास्त्रमें भी कहा है कि— जबतक कुलमें कोई पुत्र पवित्रसंन्यासी नहीं होता, तबतक पिंडकी इच्छा करनेवाले पितृ संसार भ्रमण करते हैं ।

नवमां द्वार—

पदस्थापना याने गणि, वाचकाचार्य, वाचनाचार्य, दीक्षा लिये हुए अपने पुत्रादि तथा अन्य भी जो योग्य हों, उनकी पदस्थापना शासनकी उन्नतिआदिके लिये महोत्सवके साथ कराना । सुनते हैं कि, अरिहंतके प्रथम समवसरणमें इंद्र स्वयं

गणधर पदकी स्थापना कराता है । वस्तुपालमंत्रीने भी एक-
 बीस आचार्योंकी पदस्थापना कराई थी ।

दशवां द्वार—

श्रीकल्पत्रादि आगम, जिनेश्वर भगवानके चरित्रआदि पुस्तकें न्यायोपार्जित द्रव्यसे शुद्ध अक्षरसे तथा उत्तमपत्रमें युक्ति पूर्वक लिखवाना. इसी प्रकार वाचन अर्थात् संवेगी सत्तिार्थ मुनिराजसे ग्रंथका आरम्भ होवे, उस दिन उत्सवआदि करके तथा प्रतिदिन सादी पूजा करके व्याख्यान करवाना; इससे बहुतसे भव्यजीवोंको प्रतिबोध होता है. साथही व्याख्यान करने तथा पढ़नेवाले मुनिराजोंको वस्त्रआदि बहोराकर उनकी सहायता करना चाहिये. कहा है कि जो लोग जिनाज्ञाकी पुस्तकें लिखावें, व्याख्यान करावें, पढ़ें, पढ़ावें, सुनें और विशेष यतनाके साथ पुस्तकोंकी रक्षा करें, वे मनुष्यलोक, देवलोक तथा निर्वाणके सुख पाते हैं. जो पुरुष केवलभाषित सिद्धान्त-
 को स्वयं पढ़े, पढ़ावे अथवा पढ़नेवालेको वस्त्र, भोजन, पुस्तक-
 आदि देकर सहायता करे, वह पुरुष इस लोकमें सर्वज्ञ होता है. जिनभाषित आगमकी केवलज्ञानसे भी श्रेष्ठता दीखती है. कहा है कि-सामान्यतः श्रुतोपयोग रखनेवाला श्रुतज्ञानी साधु जो कदाचित् अशुद्ध वस्तु बहोरी लावे तो उस वस्तुको केवली भगवान भी भक्षण करते हैं. कारण कि, ऐसा न करे तो श्रुत-

ज्ञान अप्रमाणित होता है। सुननेमें आता है कि, किसी समय दुष्कालवश बारह वर्ष तक दुर्भिक्ष रहा, जिससे तथा अन्य भी कारणोंसे सिद्धान्त उच्छिन्न प्रायः हुए देखकर भगवान् नागार्जुन, स्कंदिलाचार्यआदि लोगोंने उसे पुस्तकारूढ किया। इसलिये सिद्धान्तको सन्मान देनेवाले मनुष्यने उसे पुस्तकमें लिखवाना तथा रेशमीवस्त्रआदि वस्तुसे उसकी पूजा करना चाहिये। सुनते हैं कि, पेथड श्रोष्ठिने सात करोड तथा वस्तुपाल-मन्त्रीने अठ्ठारह करोड द्रव्य खर्च करके तीन ज्ञानमांडार लिख-वाये थे। थरादके संघवी आभूने तीन करोड टंक व्यय करके सर्व आगमकी एक एक प्रति सुवर्णमय अक्षरसे और अन्य सर्व-ग्रन्थोंकी एक एक प्रति स्याहीसे लिखाई थी।

ग्यारहवां द्वार—

पौषधशाला अर्थात् श्रावकआदिको पौषध लेनेके लिये उपयोगमें आने योग्य साधारण स्थान भी पहिले कही हुई घर बनानेकी विधिके अनुसार बनवाना चाहिये। साधर्मियोंके लिये कराई हुई उक्त पौषधशाला सुव्यवस्थावाली और निरवद्य योग्य स्थान होनेसे समय पर साधुओंको भी उपाश्रयरूपमें देना चाहिये। कारण कि, ऐसा करनेमें बहुतही पुण्य है। कहा है कि—जो मनुष्य तपस्या तथा अन्य भी बहुतसे नियम पालने-वाले साधुमुनिराजोंको उपाश्रय देता है, उसने मानो वस्त्र,
अन्न, पान, शयन, आसनआदि सर्व वस्तुएं मुनिराजको दीं

ऐसा समझना चाहिये, वस्तुपाल मन्त्रीने नवसौ चौरासी पौषध-
शालाएं बनवाईं. सिद्धराज जयसिंहके मुख्य मन्त्री सातूने अपना
नया महल वादिदेवसूरिको दिखाकर कहा कि, “यह कैसा
है ?” तब शिष्य माणिक्य बोला कि, “जो इसे पौषधशाला करो
तो हम इसकी प्रशंसा करें” मन्त्रीने कहा—“जो आज्ञा, आज-
से यह पौषधशाला होगई.” उस पौषधशालाकी बाहरकी परशाल-
में श्रावकोंको धर्मध्यान कर लेनेके अनन्तर मुख देखनेके लिये
एक पुरुष प्रमाण उंचे दो दर्पण दोनों ओर रखे थे.

(मूलगाथा)

आजम्भं सम्मत्तं,^२

जहसात्ति वयाई दिक्खगहँ अहवा ॥

आरंभचाउं बंभं,^{३६}

पडिमाई “अंतिआरहणाँ ॥१६॥

संक्षेपार्थः—१२ यावज्जीव समकित पालना, १३ यथाशक्ति
व्रत पालना, १४ अथवा दीक्षा लेना, १५ आरम्भका त्याग
करना, १६ ब्रह्मचर्य पालना, १७ श्रावककी प्रतिमा करना,
१८ तथा अन्तमें आराधना करना. ॥१६॥

विस्तारार्थः—

षारहवां—तेरहवां—द्वार

आजन्म याने बाल्यावस्थासे लेकर यावज्जीव तक समाकित
और अणुव्रतआदिका यथाशक्ति पालन करना. इसका वर्णन

आप (श्रीरत्नशेखरसूरिजी) की विरचित अर्थदीपिकामें देखो.
चौदवां द्वार—

दीक्षाग्रहण याने अवसर आने पर चारित्र्य अंगीकार करना. इसका भावार्थ यह है कि—श्रावक बाल्यावस्थामें दीक्षा न ले सके तो अपनेको वंचित हुआ समझे. कहा है कि—जिनने सारे-
लोकको दुख न दिया कामदेवको जीत कर कुमारअवस्था ही में दीक्षा ली, वे बालमुनिराज धन्य हैं. अपने कर्मवश प्राप्त हुई गृहस्थावस्थाको, एकाग्रचित्तसे अहर्निशि सर्वविरतिके परिणाम रखकर पानीका वेड़ा सिर पर धारण करनेवाली सामान्य-स्त्रीकी भांति पालना. कहा है कि—एकाग्र चित्तवाला योगी अनेक कर्म करे तो भी पानी लानेवाली स्त्रीकी भांति उसके दोषसे लिप्त नहीं होता. जैसे परपुरुषमें आसक्त हुई स्त्री ऊपरसे पतिकी मरजी रखती है, वैसे ही तत्त्वज्ञानमें तल्लीन हुआ योगी संसारका अनुसरण करता है. जैसे शुद्ध वेद्या मनमें प्रीति न रखते 'आज अथवा कल इसको छोड़ दूंगी' ऐसा भाव रख कर जारपुरुषका सेवन करती है, अथवा जिसका पति मुसाफिरी करने गया है, ऐसी कुलीन स्त्री प्रेमरंगमें रह पतिके गुणोंका स्मरण करती हुई भोजन-पानआदिसे शरीरका निर्वाह करती है, वैसे सुश्रावक भी सर्वविरतिके परिणाम मनमें रखकर अपनेको अधन्य मानता हुआ गृहस्थपण पाले. जिनलोगोंने प्रसरते मोहको रोक कर दीक्षा ली, वे सत्पुरुष धन्य हैं, और यह पृथ्वी-

मंडल उन्हींसे पवित्र हुआ हैं.

भावश्रावकके लक्षण भी इस प्रकार कहे हैं:— १ स्त्रीके वश न होना, २ इन्द्रियां वशमें रखना, ३ धनको अनर्थका हेतु समझना, ४ संसारको असार समझना, ५ विषयकी अभिलाषा न रखना, ६ आरम्भका त्याग करना, ७ गृहवासको बन्धन समान समझना ८ आजन्म समकितका पालन करना, ९ साधारण मनुष्य जैसे भेड प्रवाहसे चलते हैं, ऐसा चलता है ऐसा विचारना, १० सब जगह आगमके अनुसार बर्ताव करना, ११ यथाशक्ति दानादि चतुर्विध धर्मका आचरण करना, १२ धर्मकार्य करते कोई अज्ञ मनुष्य हंसी करे, तो उसकी शर्म न रखना, १३ गृहकृत्य राग द्वेष न रखते हुए करना, १४ मध्यस्थवना रखना, १५ धनादिक होवे तो भी उसीमें लिप्त न हो रहना, १६ स्त्रीके बलात्कार आग्रह पर कामोपभोग सेवन करना, १७ वेदया समान गृहवासमें रहना. यह सत्रह पद भावश्रावकका लक्षण है यह इसका भाव संक्षेप जानो. अब इसकी व्याख्या करते हैं.

१ स्त्रीको अनर्थ उत्पन्न करनेवाली, चंचलचित्तवाली और नरककी जानेके मार्ग समान मानकर अपना हित चीहनेवाला श्रावक उसके वशमें न रहे. २ इन्द्रियरूप चपल अश्व हमेशा दुर्गतिके मार्गमें दौड़ते हैं, उनको संसास्का यथार्थस्वरूप जाननेवाले श्रावकने सम्यग्ज्ञानरूप लगामसे कुमार्गमें जानेसे रोकना. ३ धनको सकल अनर्थोंका, प्रयासका तथा बलेशका

कारण और असार समझकर बुद्धिशाली पुरुष स्वल्पमात्र भी द्रव्यका लोभ न रखे. ४ संसार स्वयं दुःखरूप, दुःखदायी फल-का देनेवाला, परिणाममें भी दुःखकी संतति उत्पन्न करनेवाला, विटंबनारूप और असार है, यह समझकर उसमें प्रीति न रखना. ५ विषय विषयके समान क्षणमात्र सुख देनेवाले हैं, ऐसा निरन्तर विचार करनेवाला पुरुष संसारसे डरनेवाला और तत्त्व-ज्ञाता होनेसे उनकी अभिलाषा नहीं करे. ६ तीव्र आरम्भसे दूर रहे निर्वाह न होय तो सर्वजीवों पर दया रखकर विवशतासे स्वल्प आरम्भ करे, और निरारंभीसाधुओंकी स्तुति करे. ७ गृहवासको पाश (बन्धन) समान मानता हुआ, उसमें दुःखसे रहे, और चारित्र्यमोहनीय कर्म खपानेका पूर्ण उद्यम करे. ८ बुद्धिमान् पुरुष मनमें गुरुभक्ति और धर्मकी श्रद्धा रखकर धर्मकी प्रभावना, प्रशंसा इत्यादिक करता हुआ निर्मलसमाकितका पालन करे. ९ विवेकसे प्रवृत्ति करनेवाला धीरपुरुष, 'साधारण मनुष्य जैसे भेड़ प्रवाहसे याने जैसा एकने किया वैसाही दूसरेने किया ऐसे असमझसे चलनेवाले हैं, यह सोच लोकसंज्ञाका त्याग करे. १० एक जिनागम छोड़ कर दूसरा प्रमाण नहीं और अन्य मोक्षमार्ग भी नहीं, ऐसा जानकर सर्व क्रियाएं आगमके अनुसार करे. ११ जीव जैसे यथाशक्ति संसारके अनेकों कृत्य करता है, वैसेही बुद्धिमान् पुरुष यथाशक्ति चतुर्विध धर्मको, आत्माको बाधा-पीड़ा न हो उस रीतिसे ग्रहण करे. १२ चिंता-

माणि रत्नकी भांति दुर्लभ, ऐसी हितकारिणी और निरवद्य धर्म-क्रिया पाकर उसको सम्यक् रीतिसे आचरण करते अपनेको देखकर कोई अज्ञानी लोग अपनी हंसी करे, तो भी उससे मनमें शर्म नहीं करना. १३ देहस्थितिके मूल कारण धन, स्वजन, आहार, गृह इत्यादि सांसारिकवस्तुओंमें रागद्वेष न रखते हुए संसारमें रहना. १४ अपना दित चाहनेवाला पुरुष मध्यस्थस्थितिमें रहकर तथा नित्य मनमें समताका विचार रखकर रागद्वेषके वश न होवे तथा कदाग्रहको भी सर्वथा छोड़ दे. १५ नित्य मनमें सर्ववस्तुओंकी क्षणभंगुरताका विचार करनेवाला पुरुष धनादिकका स्वामी होते हुए भी धर्मकृत्यको बाधा पहुंचे ऐसा उनमें लिप्त न होजावे. १६ संसारसे विरक्त हुआ श्रावक भोगोपभोगसे जीवकी तृप्ति नहीं होती, ऐसा विचारकर स्त्रीके आग्रहसे बहुतही विवश होने परही कामभोग सेवन करे. १७ वेदयाकी भांति आशंसा रहित श्रावक आज अथवा कल छोड़ दूंगा ऐसा विचार करता हुआ पराई वस्तुकी भांति शिथिलभावसे गृहवास पाले. उपरोक्त सत्रह गुणयुक्त पुरुष जिनागममें भावश्रावक कहलाता है. यही भावश्रावक शुभकर्मके योगसे शीघ्र भावसाधुत्वको प्राप्त करता है. ऐसा धर्मरत्नशास्त्रमें कहा है.

उपरोक्त रीतिसे शुभभावना करनेवाला, पूर्वोक्त दिन-कृत्यमें तत्पर अर्थात् “यह निर्ग्रथ प्रवचनही अर्थरूप तथा परमार्थरूप है, शेष सब अनर्थ है,” ऐसी सिद्धान्तमें कही हुई

रीतिके अनुसार समस्तकार्योंमें पूर्णप्रयत्नसे यतनाहीसे प्रवृत्ति करनेवाला, किसी जगह भी जिसका चित्त प्रतिबंधको प्राप्त नहीं हुआ ऐसा और अनुक्रमसे मोहको जीतनेमें निपुण पुरुष अपने पुत्रभतीजेआदि गृहभार उठानेको समर्थ हों तब तक अथवा अन्य किसी कारणवश कुछ समय गृहवासमें बिता कर उचित समय अपनी तुलना करे. पश्चात् जिनमंदिरमें अट्टाह उत्सव, चतुर्विधसंघकी पूजा, अनाथआदि लोगोंको यथाशक्ति अनुकूलपादान और मित्र स्वजनआदिको खमाना इत्यादिक करके सुदर्शन श्रेष्ठीआदिकी भांति विधि पूर्वक चारित्र ग्रहण करे. कहा है कि—कोई पुरुष सर्वथा रत्नमय जिनमंदिरोंसे समग्र पृथ्वीको अलंकृत करे, उस पुण्यसे भी चारित्रकी काङ्क्षि अधिक है. वैसेही पापकर्म करनेकी पीडा नहीं, खराब स्त्री, पुत्र तथा स्वामी इनके दुर्वचन सुननेसे होनेवाला दुःख नहीं राजा आदिको प्रणाम नहीं करना पड़ता, अन्न वस्त्र, धन, स्थान आदिकी चिन्ता नहीं करनी पड़ती, ज्ञानकी प्राप्ति होवे, लोक द्वारा पूजे जायें, उपशम सुखमें रक्त रहे और परलोकमें मोक्ष आदि प्राप्त होवे. चारित्रमें इतने गुण विद्यमान हैं. इसलिये हे बुद्धिशाली पुरुषो ! तुम उक्त चारित्र ग्रहण करनेका प्रयत्न करो.

पन्द्रहवां द्वार—

यदि किसी कारणवश अथवा पालनेकी शक्ति आदि न होनेसे जो श्रावक चारित्र ग्रहण न कर सके तो आरंभआदि

वर्जें याने दीक्षा ग्रहण न की जासके तो आरंभका त्याग करे । उसमें पुत्रआदि कोई भी घरका सर्व कार्य भार सम्हाल लेने योग्य होवे तो सर्वआरंभका त्याग करना, और वैसा न होवे तो सचित्तवस्तुका आहारआदि निर्वाहके अनुसार आरंभ त्याग करे । बन सके तो अपने लिये अन्नका पाक आदि भी न करे । कहा है कि— जिसके लिये अन्नका पाक (रसोई) बने उसीके लिये आरंभ होता है । आरंभमें जीवहिंसा है, और जीवहिंसासे दुर्गति होती है ।

सोलहवां द्वार—

श्रावकने आजीवन ब्रह्मचर्यका पालन करना चाहिये । जैसे पेथड श्रेष्ठीने बत्तीसवें वर्षमें ब्रह्मचर्य व्रत स्वीकार किया और बादमें वह भीमसोनीकी मढीमें गया । ब्रह्मचर्य-आदिका फल अर्थदीपिकामें देखो ।

सत्रहवां द्वार—

श्रावक प्रतिमाआदि तपस्या करे, आदिशब्दसे संसार-तारण इत्यादि कठिन तपस्या समझनी चाहिये । उसमें मासिकी आदि ११ प्रतिमाएं कही हैं । यथाः—

दंसण १ वय २ सामाइअ ३, पोसह ४, पडिमा ५ अबंभ ६ सच्चित्ते ७ आरंभ ८ पेस ९ उदि-ट्टवज्जए १० समणभूए ११ अ ॥ १ ॥

अर्थः— १ दर्शनप्रतिमाका स्वरूप यह है कि उसमें राजाभियोगादि छः आगार रहित, श्रद्धानआदि चार गुण

सहित समकितको भय, लोभ, लज्जा आदि दोषोंसे अतिचार न लगाते हुए एक मास तक पालना, और त्रिकाल देवपूजा आदि करना । २ व्रतप्रतिमा, उसमें दो मास तक खंडना तथा विराधना बिना पांच अणुव्रत पालना तथा प्रथमप्रतिमाकी क्रिया भी करना । ३ सामायिकप्रतिमा, उसमें तीन मास तक दोनों समय प्रमाद छोड़कर दो बार सामायिक करना तथा पूर्वोक्त प्रतिमाकी क्रिया भी करना । ४ पौषधप्रतिमा उसमें पूर्वोक्त प्रतिमाके नियम सहित चार मास तक चार पर्वतिथिमें अखंडित और परिपूर्ण पौषध करना । ५ प्रतिमाप्रतिमा अर्थात् कायोत्सर्गप्रतिमा, उसमें पूर्वोक्तप्रतिमाकी क्रिया सहित पांच मास तक स्नानका त्यागकर, रात्रिमें चौविहार पचखान करके, दिनमें ब्रह्मचर्य पालना तथा धोतीको कांछ छूटी रख चार पर्वतिथिको घरमें, घरके द्वारमें अथवा बाजारमें परीषद् (असह्य) उपसर्गसे न डगमगते समग्र रात्रि तक काउत्सर्ग करना । आगे जिन प्रतिमाओंका वर्णन किया जाता है, उन सबमें पूर्वोक्त प्रतिमाकी क्रिया सम्मिलित कर लेनी चाहिये । ६ ब्रह्मचर्यप्रतिमा, उसमें छः मास पर्यंत निरतिचार ब्रह्मचर्यव्रतका पालन करना । ७ सचित्तपरिहारप्रतिमा, उसमें सात मास तक सचित्तवस्तुका त्याग करना । ८ आरंभपरिहारप्रतिमा, उसमें आठ मास तक कुछ भी आरंभ स्वयं न करना । ९ प्रेषणपरिहारप्रतिमा, उसमें नवमास तक अपने नौकरआदि-

से भी आरंभ न कराना । १० उद्दिष्टपरिहारप्रतिमा, उसमें दस मास पर्यंत मस्तक मुंडाना अथवा चोटी मात्र धारण करना, निधानमें रखे हुए धनके सम्बन्धमें कोई स्वजन प्रश्न करे तो यदि ज्ञात हो तो बता देना और ज्ञात न हो तो इन्कार कर देना, शेष सर्वगृहकृत्योंका त्याग करना, तथा अपने निमित्त तैयार किया हुआ भोजन भी भक्षण न करना । ११ श्रमणभूत-प्रतिमा, उसमें ग्यारह मास पर्यंत घरआदि छोड़ना, लोच अथवा मुंडन कराना, ओषा, पात्रा आदि मुनिवेष धारण करना, अपने संबंधी गोकुलआदिमें निवास करना, और “ प्रति-मावाहकाय श्रमणोपासकाय भिक्षां दत्त ” ऐसा कह साधुकी भांति आचार पालना, परन्तु धर्मलाभ शब्दका उच्चारण नहीं करना ।

अद्वारहवां द्वार—

अन्तमें याने आयुष्यका अन्त समीप आने पर निम्नांकित रीतिके अनुसार संलेखना आदि विधी सहित आराधना करना । इसका भावार्थ यह है कि— “ वह पुरुष अवश्य करने योग्य कार्यका भंग होने पर और मृत्यु समीप आने पर प्रथम संलेखनाकर पश्चात् चारित्र ग्रहण करे ” इत्यादि ग्रंथोक्त वचन है, इसलिये श्रावक आवश्यकीय कर्त्तव्यरूप पूजा प्रतिक्रमण-आदि क्रिया करनेकी शक्ति न होय तो अथवा मृत्यु समीप आ पहुँचे तो द्रव्यसे तथा भावसे दो प्रकारसे संलेखना करे । उसमें

क्रमशः आहारका त्याग करना वह द्रव्यसंलेखना और क्रोधादि कषायका त्याग करना वह भावसंलेखना कहलाती है। कहा है कि— शरीर संलेखनावाला न होवे तो मरणसमयमें सात धातुका एकदम प्रकोप होनेसे जीवको आर्त्तध्यान उत्पन्न होता है। मैं तेरे इस शरीरको बखानता नहीं। शरीर किसका अच्छा है? क्या तेरी अंगुली टूट गई? इसलिये हे जीव! तू भावसंलेखनाकर समीप आई हुई मृत्यु, स्वप्न, शकुन तथा देवताके वचन परसे निर्धारित करना चाहिये। कहा है कि— दुःस्वप्न, अपनी स्वाभाविकप्रकृतिमें हुआ कोई भिन्न फेरफार, बुरे निमित्त, उलटे ग्रह, स्वरके संचारमें विपरीतता, इन कारणोंसे पुरुषने अपनी मृत्यु समीप आई जानना। इस प्रकार संलेखना करके सकल श्रावक मानो धर्मके उद्यापन ही के निमित्त अन्त-कालके समय भी चरित्र ग्रहण करे। कहा है कि— जीव शुभ परिणामसे जो एक दिवस पर्यंत भी चारित्रको प्राप्त होजावे, तो यद्यपि वह मोक्षको नहीं प्राप्त करता, तथापि वैमानिक देवता तो अवश्य होता है।

नलराजाका भाई कूबरका पुत्र नई शादी होनेपर भी ज्ञानीके मुखसे अपनी आयुष्य पांचदिन बाकी है यह सुन शीघ्र चारित्र लेकर सिद्ध हुआ। हरिवाहनराजा ज्ञानीके वचनसे अपनी आयुष्य नव प्रहर शेष जानकर दीक्षा ले सर्वार्थसिद्धि-

विमानको पहुँचा । अंतसमयमें श्रावक दीक्षा ले, तब प्रभावना आदिके लिये शक्त्यनुसार धर्ममें धन व्यय करे । जैसे कि, थरादके आभू संघवीने आतुरदीक्षाके अवसरपर (अंतसमय) सात क्षेत्रोंमें सातकरोड धन व्यय किया । जिससे अंतसमय आनेपर संलेखना करके शत्रुंजयआदि शुभतीर्थमें जाय और निर्दोष स्थंडिल (जीवजंतु रहित भूमि) में शास्त्रोक्त-विधिके अनुसार चतुर्विध आहारका पचखान कर आनंदादिक-श्रावकोंकी भांति अनशन ग्रहण करे । कहा है कि— तपस्यासे और व्रतसे मोक्ष होता है, दानसे उत्तम भोग मिलता है और अनशनकर मृत्यु पानेसे इन्द्रत्व प्राप्त होता है । लौकिकशास्त्रमें भी कहा है कि— हे अर्जुन ! विधिपूर्वक जलमें अंतसमय रहं तो सात हजार वर्षतक, अग्निमें पड़े तो दसहजार वर्षतक, झंपापात (ऊँचे स्थानसे गिरना) करे तो सोलहहजार वर्षतक भीषणसंग्राममें पड़े तो साठहजार वर्षतक, गाय लुडानेके हेतु देहत्याग करे तो अस्सीहजार वर्षतक शुभ गति भोगता है, और अंतसमय अनशन करे तो अक्षय गति पाता है ।

पश्चात् सर्व अतिचारके परिहारके निमित्त चार शरणरूप आदि आराधना करे । दशद्वाररूप आराधना तो इस प्रकार है:-
 १ अतिचारकी आलोचना करना, २ व्रतादिक उच्चारण करना
 ३ जीवोंको खमाना, ४ अद्वारहों पापस्थानकोंका त्याग करना,

(७९०)

५ अरिहंतादि चारों शरण करना, ६ किये हुए दुष्कृतकी निंदा करना, ७ किये हुए शुभकर्मोंकी अनुमोदना करना, ८ शुभ भावना करना, ९ अनशन ग्रहण करना और १० पंचपरमेष्ठिनवकारकी गणना करना । ऐसी आराधना करनेसे यद्यपि उसी-भवमें सिद्धि नहीं होवे, तथापि शुभ देवतापना तथा शुभ-मनुष्यत्व पाकर आठभवके अंदर सिद्ध हो ही जाता है । कारण कि, चात्रिवान् सात अथवा आठ भवसे अधिक भवग्रहण नहीं करता ऐसा आगमवचन है ।

—*—

उपसंहार

(मूलगाथा)

एअं गिहिधम्मविहिं,

पइदिअहं निब्बहंति जे गिहिणो ॥

इहभवि परभवि निब्बुइ-

सुहं लहुं ते लहन्ति पुवं ॥ १७ ॥

संक्षेपार्थः— जो श्रावक प्रतिदिन इस ग्रंथमें कही हुई श्रावकधर्मकी विधिको आचरे, वह श्रावक इसभवमें, परभवमें अवश्य ही शीघ्र मुक्तिसुख पावे.

विस्तारार्थः--उपरोक्त दिनकृत्यआदि छः द्वारवाली श्रावक-
धर्मविधिको जो श्रावक निरन्तर सम्यक्कारसे पाले, वे
वर्तमानभवमें रहकर सुख पाते हैं, और परलोकमें सात आठ
भवके अन्दर परम्परासे मुक्तिसुख शीघ्र व अवश्य पाते हैं.

इति श्रीरत्नेशखरसूरिविरचित—

श्राद्धविधिकौमुदीकी हिंदिभाषाका जन्मकृत्यप्रकाशन।मक

षष्ठः प्रकाशः संपूर्णः

इति श्राद्धविधिका हिंदीभाषांतर समाप्त.



(७९२)

प्रशस्ति



विख्याततपेत्याख्या, जगति जगच्चन्द्रसूरयोऽभूवन् ॥

श्रीदेवसुन्दरगुरु-त्तमाश्च तदनु क्रमाद्विदिताः ॥१॥

अर्थः--इस जगत्में 'तपा' ऐसा प्रख्यात नाम धारण करने-
वाले श्रीजगच्चन्द्रसूरि हुए. उनके बाद अनुक्रमसे प्रख्यात श्री-
देवसुन्दर गुरुवर्ध हुए ॥१॥

पांच च तेषां शिष्या--स्तेष्व्याद्या ज्ञानसागरा गुरवः ॥

विविधावचूर्णिलहरि--प्रकटनतः सान्वयाह्वानाः ॥२॥

अर्थः--उनके पांच शिष्य थे. जिनमें प्रथम शिष्य श्री-
ज्ञानसागर गुरु हुए. विविधप्रकारकी सूत्रोंकी अवचूर्णिरूप लहरें
प्रकट करके उन्होंने अपना ज्ञानसागर नाम सार्थक किया ॥२॥

श्रुतगतविविधालापक--समुद्धृतः समभवश्च सूरीन्द्रः ॥

कुलमण्डना द्वितीयाः, श्रीगुणरत्नास्तृतीयाश्च ॥३॥

अर्थः--शास्त्रस्थित विविध आलापकके उद्धार करनेवाले
कुलमंडन नामक सूरीन्द्र दूसरे शिष्य और श्रीगुणरत्न नामक
तीसरे शिष्य हुए ॥३॥

पद्धर्शनवृत्तिक्रिया--रत्नसमुच्चय-विचारनिचयसृजः ॥

श्रीभुवनसुन्दरादिषु, भेजुर्विद्यागुरुत्वं ये ॥४॥

अर्थः-- वे श्रीगुणरत्न गुरुवर्य षड्दर्शनसमुच्चयवृत्ति क्रियारत्नसमुच्चय और विचारसमुच्चय ग्रन्थोंके रचयिता और श्रीभुवनसुन्दरआदि आचार्योंके विद्यागुरु हुए ॥४॥

श्रीसोमसुन्दरगुरु--प्रवरास्तुर्या अहार्यमाहिमानः ॥

येभ्यः संततिरुच्चै--रभवद् द्वेधा सुधर्मभ्यः ॥५॥

अर्थः--उत्कृष्टमहिमावन्त श्रीसोमसुन्दर गुरुवर्य चौथे शिष्य हुए. इन द्रव्यसे तथा भावसे श्रेष्ठ धर्मात्मा गुरुवर्यसे बहुत शिष्य संतति बढ़ी. ॥५॥

यतिजीतकल्पविधृत--श्च पंचमाः साधुरत्नसूरिवराः ॥

यैर्मादृशोऽप्यकृष्यत, करप्रयोगेण भवकूपात् ॥६॥

अर्थः--यतिजीतकल्पकी व्याख्या करनेवाले श्रीसाधुरत्न-सूरिवर पांचवें शिष्य हुए, जिन्होंने हाथ लम्बा करके मेरे समान सामान्य व्यक्तिका संसाररूप कुएँमेंसे उद्धार किया ॥६॥

श्रीदेवसुन्दरगुरोः, पट्टे श्रीसोमसुन्दरगणेन्द्राः ॥

युगवरपदवीं प्राप्ता--स्तेषां शिष्याश्च पञ्चैते ॥७॥

अर्थः--श्रीदेवसुन्दरगुरुके पाट पर श्रीसोमसुन्दर गुरु हुए. उनके युगप्रधान पदवी पाये हुए ये पांच शिष्य हुए ॥७॥

मारीत्यवमनिराकृति--सहस्रनामस्मृतिप्रभृतिकृत्यैः ॥

श्रीमुनिसुन्दरगुरव--श्चिरंतनाचार्यमहिमभृतः ॥८॥

अर्थः--एक श्रीभुनिसुन्दर गुरु महामारी, ईति आदि-
उपद्रवका दूर करना तथा सहस्रनाम स्मरण करना इत्यादि-
कृत्योंसे चिरन्तन आचार्यकी महिमा धारण करनेवाले हुए ॥८॥

श्रीजयचन्द्रगणेन्द्रा--निस्तन्द्राः संघगच्छकार्येषु ॥

श्रीभुवनसुन्दरवरा, दूरविहारैर्गणोपकृतः ॥९॥

अर्थः--दूसरे संघ तथा गच्छके काममें आलस्य न करने-
वाले श्रीजयचन्द्र आचार्य तथा तीसरे दूर विहार करके संघ पर
उपकार करनेवाले श्रीभुवनसुन्दरसूरि हुए ॥९॥

विषममहाविद्यात--द्विडम्बनाधौ तरीव वृत्तिर्यैः ॥

विदधे यज्ज्ञाननिधिं, मदादिशिष्या उपाजीवन् ॥१०॥

अर्थः--जिन्होंने विषममहाविद्याके अज्ञानसे विडम्बना-
रूप समुद्रमें पड़े हुए लोगोंके उद्धारार्थ नाव समान महाविद्यावृत्ति
करी, और जिन्के ज्ञाननिधिको मेरे समान शिष्य आश्रय
कर रहे हैं ॥१०॥

एकाङ्गा अप्येकादशानिन्श्च जिमसुन्दराचार्याः ॥

निर्गन्धा ग्रन्थकृतः, श्रीमज्जिनकीर्त्तिगुरवश्च ॥११॥

अर्थः--चौथे एक अंग (शरीर) धारण करते हुए भी
ग्यारहअंग (सूत्र) धारण करनेवाले श्रीजिनसुन्दरसूरि तथा

पांचवें निग्रंथ (ग्रन्थ-परिग्रह रहित) होते हुए भी ग्रन्थ रचना करनेवाले श्रीजिनकीर्ति गुरु हुए ॥११॥

एषां श्रीसुगुरुणां, प्रसादतः षट्खतिथिमिते (१५०६) वर्षे ॥

श्राद्धविधिसूत्रवृत्ति, व्यधित श्रीरत्नशेखरः सूरिः ॥१२॥

अर्थः—श्रीरत्नशेखरसूरिने उपरोक्त गुरुओंके प्रसादसे विक्रम संवत् १५०६ में श्राद्धविधिसूत्रकी वृत्तिकी रचना करी. ॥१२॥

अत्र गुणसत्रविज्ञावतंसजिनहंसगणिवरप्रमुखैः ॥

शोधनलिखनादिविधौ, व्यधायि सांनिध्यमुद्युक्तैः ॥१३॥

अर्थः—परमगुणवन्त और विद्वद्भरत्न श्रीजिनहंसगणि-आदि विद्वानोंने यह ग्रन्थ रचना, संशोधन करना लिखना आदिकार्यमें परिश्रमसे सहायता करी. ॥१३॥

विधिवैविध्याच्छ्रुतगत—नैयत्यादर्शनाच्च यत्किञ्चित् ॥

अत्रोत्सूत्रमसूयत, तन्मिध्यादुष्कृतं मेऽस्तु ॥१४॥

अर्थः—विधि नानाप्रकारकी होनेसे तथा सिद्धान्तस्थित-निश्चय बातको नहीं देखनेसे इस ग्रन्थमें मैंने जो कुछ उत्सूत्र रचना की हो, वह मेरा दुष्कृत मिथ्या होवे. ॥१४॥

विधिकौमुदीतिनाम्न्यां, वृत्तावस्थां विलोकितैर्बर्णैः ॥

श्लोकाः सहस्रषट्कं, सप्तशती चैकषष्ट्यधिका ॥१५॥

अर्थः—विधिकौमुदीनामक इस वृत्तिमें अक्षराक्षरकी संख्यासे इस ग्रन्थकी श्लोक संख्या ६७६१ होती है. ॥१५॥

श्राद्धहितार्थं विहिता, श्राद्धविधिप्रकरणस्थसूत्रयुता ॥

वृत्तिरियं चिरसमयं, जयताञ्जयदायिनी कृतिनाम् ॥१६॥

अर्थः--श्राद्धविधि नामक मूलग्रन्थ सहित जिसकी यह वृत्ति मैंने श्रावकोंके हितार्थ रची, सो (वृत्ति) कुशलपुरुषोंको जय देनेवाली होकर चिरकाल विजयी होवे. ॥१६॥

